रा. सा. शेठ वसनजी त्रीकमजी जे. पी. ग्रंथमाळा

मणको ५ मो.

श्रीमन्मुनिसुंदरसूरि विरचित,

उपदेशरत्नाकर.

भाषांतर सहित.

प्रसिद्ध कर्त्ता,

श्री जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग—पालीताणा.

" आनंद प्रीन्टींग प्रेस "

भावनगर.

मूल्य काचुं पुंठुं १–८–०.   पाकुं पुंठुं १–१२–०.

प्रस्तावना.

जय, लक्ष्मी अने वांछित सुख—आ त्रिपुटी संपादन करवाने दरेक मनुष्य उद्यमवंत थाय छे. पण ते त्रिपुटी मेळववाना साधनो केवा जोइए? तेनो विचार करनारा थोडा लोको होय छे. ए त्रिपुटी मेळववानुं मुख्य साधन सम्यग् धर्म छे. सम्यग् धर्मना प्रभावथी जय, लक्ष्मी अने वांछित सुखनी त्रिपुटी सहेलाइथी प्राप्त करी शकाय छे. एटलुंज नहि पण आधि, व्याधि, व्यसन, शोक, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, दुष्ट ग्रह, सर्व उपद्रव, अने दारिद्र ए सर्व धर्मथी नाश पामे छे. एवा परम प्रभावक धर्म संपादन करवाने उपदेशनी आवश्यकता छे. उत्तम प्रकारना उपदेश विना धर्मनुं तात्त्विक स्वरूप समजवामां आवतुं नथी.

उपदेशनो प्रभाव दिव्य छे. संसारना मलिन आवरणथी अंध थइ गयेला हृदयने शुद्ध उपदेश उज्ज्वल प्रकाश आपे छे. उपदेशरूप कल्पवृक्षनी शीतळ छाया नीचे रहेला साधको संसारनो तीव्र परिताप पामता नथी. सद्गुण, सुख अने ज्ञान—ए त्रिपुटी उपदेशनेज आधीन छे. जेओने सद्गुण, सुख अने ज्ञान मेळववा होय, तेमणे उपदेशनुं शरण लेवुं जोइए. उपदेश विना ए गुणो कदि पण प्राप्त थता नथी. ज्यांसुधी उपदेश मळतो नथी, त्यां सुधी दोष, दुःख अने अज्ञान ए त्रणे आपणने हेरान करे छे. माटे तेमनी प्रतिकूळ एवा सद्गुण, सुख अने ज्ञान—ए त्रणे मेळववा प्रयत्न करवो जोइए. दोषोनी आपणे जरूर नथी, पण शुद्ध गुणोनी छे. दुःखनी जरूर नथी, पण सुखनी छे. अज्ञाननी आपणे स्पृहा नथी, पण ज्ञानने इच्छीए छीए. त्यारे हवे ए त्रणे वस्तु मेळववानुं साधन शुं छे? तेनो जो विचार करवो तो जणाशे के, ए त्रणेनुं साधन उपदेशज छे.

एवा उपदेशनो प्रतिपादन करनारो आ उपदेशरत्नाकर ग्रंथ छे. आ ग्रंथमां धर्म अने तेना अधिकारी कोण छे अने केवा नथी, तेने माटे विस्तारथी कहेलुं छे. जेम रत्नाकर—समुद्रमां अनेक तरंगो उछळे छे, तेम आ उपदेशना

रत्नाकरमां उपदेशना विविध भागना अनेक तरंगो कल्पेला छे जेमांथी तेनो अधिकारी उपदेशरूपी अमूल्य रत्नो संपादन करवाने समर्थ थइ शके छे.

प्रथम अंशना प्रथम तरंगमां ग्रंथकारे मंगलाचरण करी पीठीका बांधी धर्मना माहात्म्यनुं सामान्य वर्णन करेलुं छे, अने तेवा शुद्ध धर्मने विषे शुद्ध भावथी यत्न करवानो उपदेश आपेलो छे. बीजा तरंगमां परमरहस्यरूप एवा धर्मने केवी रीते ग्रहण करवो? तेनो विधि बताव्यो छे. त्रीजा तरंगमां धर्मना योग्य अधिकारी कोण छे अने कोण नथी, तेने माटे कहेलुं छे. चोथा तरंगमां 'केवा मनुष्यो उपदेशने योग्य नथी.' ते विषे विस्तारथी दर्शावेलुं छे. पांचमा तरंगमां उपदेशने योग्य तथा अयोग्य मनुष्योने ओळखवाना दृष्टांतो आपी ते विषे सारूं वर्णन करेलुं छे. छठा, सातमा, आठमा अने नवमा तरंगोमां पण योग्य अयोग्यनो विचार जणावेलो छे. दशमा तरंगमां योग्य तथा अयोग्यना स्वरूपनुं निरूपण करवुं नकामुं छे, एवी शंका दूर करवाने ग्रंथकारे सारूं विवेचन करी सिद्ध करेलुं छे. अगीयारमा तरंगमां पण ए वातने दृढ करवामां आवी छे. बारमा तरंगमां ते योग्य अयोग्यनुं स्वरूप बीजे प्रकारे दर्शावेलुं छे. तेरमा तरंगमां उपदेशने योग्य एवा केटलाएक अधिकारीओनुं वर्णन करेलुं छे चौदमा अने पंदरमा तरंगोमां योग्यता दर्शावी गुरु तथा श्रावकना स्वरूपनुं वर्णन करेलुं छे. सोळमा तरंगमां गुरु संबंधी चोभंगीने विस्तारथी उपमा आपी वर्णवेली छे. सत्तरमा तरंगमां सामान्य जीवोनी चोभंगी वर्णवेली छे. अढारमा तरंगमां गुरु वगेरेनुं स्वरूप बीजे प्रकारे दर्शावेलुं छे, अने ओगणीशमा तरंगमां गुरु वगेरेना योग्य—अयोग्य स्वरूपना दृष्टांतो आप्या छे. अने त्यां प्रथम भागनी समाप्ति करवामां आवी छे.

आ उपयोगी ग्रंथमां प्रणेताए स्थाने स्थाने चालता प्रसंगने दृढ करवाने उत्तम प्रकारना दृष्टांतो आप्या छे अने ते दृष्टांतोथी प्रस्तुत विषयने पल्लवित करी सारो उपदेश आप्यो छे. उपदेश प्रधान आ ग्रंथ जैन साहित्यमां उत्तम पद भोगवे छे. मूळ ग्रंथने टीकामां सारी रीते स्पष्ट करवाथी जैन धर्मना प्रवेशक अभ्यासकोने आ ग्रंथ उपयोगी थइ पडे

एम छे. तेमां खास करीने धर्मोपदेशक मुनिओने आ ग्रंथ विशेष उपयोगी छे, तेथी धर्मजिज्ञासी उपदेशकोवडे तथा जैन साहित्य पोषक विद्वानो वडे आ ग्रंथना उत्तम सत्कार थवानी आवश्यकता छे. व्याख्याता मुनिवर्गने व्याख्यान तरीके वांचवामां उपयोगी थाय, तेवा हेतुथी आ ग्रंथने पत्राकृतिए मुद्रित करवामां आव्यो छे. आ ग्रंथना कर्त्ता मुनि-सुंदरसूरि विक्रम संवत १४३६ ना वर्षमां जन्म्या हता. तेओ सोमसुंदरसूरिना पांच शिष्यो मांहेला एक हता. तेमणे सात वर्षनी वयमां दीक्षा लीधी हती. विक्रम संवत १४६६ ना वर्षमां तेमने वाचक पद मळ्युं हतुं अने विक्रम संवत् १४७८ ना वर्षमां तेओ तपगच्छना आचार्य थया हता. तेमनी मतिजाशक्ति घणीज उग्र हती; तेथी तेओ "सहस्रा-वधानी" कहेवाता हता. तेमनी अद्भुत शक्ति जोइ तेमने "काळी सरस्वती" नुं बिरुद मळ्युं हतुं. तेमना वखतमां हिंद-ना राज्यतख्त उपर "मुजफरखान" नामे बादशाह हतो. ते बादशाहे मुनि सुंदरसूरिनी ख्याति सांभळी तेनी मुलाकात लीधी हती. तेमणे पोतानी अवधान शक्तिथी बादशाहने प्रसन्न कर्यो हतो, तेथी बादशाह तरफथी तेमने "वादिगो-कुलषंढ" एवुं बिरुद मळ्युं हतुं. सहस्रावधानी मुनिसुंदरसूरिए आर्हत धर्मना अनेक ग्रंथो रचेला छे. ते-ओमां आ उपदेशरत्नाकर मुख्य छे. ते शिवाय अध्यात्मकल्पद्रुम, गुर्वावली अने शांतिकर वगेरे बीजा पण ग्रंथो रची तेमणे जैन प्रजाना भारे उपकार करेलो छे ते महानुभाव अनेक ग्रंथोथी आर्हत धर्मनो दिव्य प्रभाव वधारी विक्रम संवत १५०३ ना वर्षमां कालधर्मने पाम्या हता.

ते महानुभावे आ ग्रंथमां धर्मनी योग्यताना मोह विषयने पल्लवित करी उपदेशनो उत्तम मार्ग दर्शाव्यो छे. संसारना विकट मार्गमां प्रवेशेला पुरुषो उत्तम प्रकारे धर्म साधी शकता नथी तेमणे धर्म साधवाने केवी योग्यता मेळववी जोइए, अने पोताना विशुद्ध जीवनमां धार्मिक प्रवृत्ति केवी रीते करवी जोइए, ते विषे ग्रंथकारे सारी रीते सिद्ध करी आप्युं छे अने ते संबंधी उदार विचारो दृष्टांतपूर्वक वर्णवेला छे. तेथी आ प्रस्तुत ग्रंथ सर्वने वांचवा तथा मनन करवा योग्य छे.

आवा सुशोभित टाईप अने कागळमां [illegible] प्रकाशित करावीने बाहेर मूकवाथी जैनशाळाने तथा ज्ञान [illegible] [illegible] छे. तेथी [illegible] [illegible] [illegible] शेठ [illegible] श्री[illegible] जे. पी. ए तेमा ज्ञानवृद्धिने पुष्टि आपवाने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मदद करी छे. जेथी आवा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ज्ञानतरफ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करी पुण्यधन वधारशे.

आ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अवलोकन करी शुद्ध करी आपवामां आव्ये छे [illegible] मुनि [illegible] [illegible] [illegible] छे. [illegible] [illegible] पोतानी ज्ञानमय दृष्टिथी आ ग्रंथना मूळ [illegible] [illegible] छे. [illegible] [illegible] [illegible] मूळ तथा भाषांतर-ना जाणवे अवलोकी तेमां [illegible] [illegible] करी छे अने [illegible] [illegible] आदिथी ते अने [illegible] सर्व जाणवे [illegible] [illegible] शुद्धि करी आपी छे. आ बन्ने [illegible] मुनिओना [illegible] आभार [illegible] आ ग्रंथने प्रकाशित करवाने अमे भाग्यशाळी थया छीए. तथापि दृष्टिदोषथी अथवा प्रमादथी जो कांइ पण अशुद्धता रही गइ होय तो विद्वान वाचक वर्ग अमोने क्षमा आपशे.

संवत [illegible]
आषाढ शुक्लपंचमी पालीताणा.

श्री जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग—पालीताणा.

विषयानुक्रमणिका.

प्रथम तरंग.

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ग्रंथदीपिका ...	१	अनिष्टने दूर करनारा धर्म उपर धर्मराजानुं दृष्टांत ...	८
मंगलाचरण ...	६		
धर्मोपदेशमाहात्म्य ...	७		

द्वितीय तरंग—

धर्मने ग्रहण करवानो विधि ...	१२	ते उपर श्रेणिक राजानुं वृत्तांत ...	१४

तृतीय तरंग—

उपदेश आपवाने अयोग्य एवा मनुष्योनुं स्वरूप ...	१८	ते उपर 'गंग' नामना पात्रकनी कथा ...	२२
ते उपर नंदन नामना कोटवालनी कथा ...	१९	जमेला माणसनुं स्वरूप ...	२४
मिथ्यात्वी जीवना राग द्वेषनुं विवेचन ...	२०	ते उपर गोपालकनी कथा ...	२५
ते उपर दुर्योधननुं वृत्तांत ...	२१	अति रागी उपर उदायन राजानो वृत्तांत ...	२७
मोहितचित्तवृत्तिवाला पुरुषनुं लक्षण ...	२२		

चतुर्थ तरंग—

केटलाक जातना मनुष्यो धर्मने पामी शकता नथी तेमनुं स्वरूप ...	३३	बधिर कुटुंबनुं वृत्तांत ...	३५
		कदाग्रह उपर ओद्ग्राहक पुरुषनुं दृष्टांत ...	३७

अनवस्थित माणस उपर एक शेठनी स्त्रीनुं उदाहरण ३४
प्रमत्तना प्रकरण ३५
दश प्रकारना मनुष्यो धर्म पाळता नथी, ते उपर दुर्वासा अने धृतराष्ट्रनो संबंध ३५
पामर उपर एक कुटुंबीनी कथा ३८
माग सांभळेलुं ग्रहण करवा उपर तापसनी कथा ३९

पंचम तथा षष्ठ तरंग—

धर्मोपदेशनी वृष्टिथी फळ उत्पन्न करवामां जीवना छ दृष्टांत ४१
पहेला गिरिशिखरना दृष्टांत उपर मुद्गशैलनी कथा ४२
बीजा पर्वतना झरणाना दृष्टांत उपर विवेचन ४२
त्रीजा मरुस्थलना दृष्टांतनुं विवेचन ४४
ते उपर श्यामल शेठनी कथा ४५
चोथा काळी जमीनना दृष्टांतनुं विवेचन ४६
ते उपर आनंद कामदेव विगेरे दस श्रावकोनो वृत्तांत ४७
पांचमा समुद्रनी छीपना दृष्टांतनुं स्वरूप.... .... ४९
छठा मणिनी खाणना दृष्टांतनुं स्वरूप ५०
ते उपर इंद्रनागनी कथा ५०

सप्तम तरंग—

पांच प्रकारना घडाना दृष्टांते दर्शावेला पांच प्रकारना जीवोनुं स्वरूप ५३
दत्त नामना ब्राह्मण मंत्रीनी कथा ५५
वाच्य अने अवाच्य जीवोनुं स्वरूप ५६

अष्टम तरंग—

बीजी रीते योग्य अयोग्यनो विचार अने ते उपर सरोवर अने कागडानुं दृष्टांत ५७
धर्मने नष्ट करवा उपर कपिलनी कथा ५९
ते उपर श्वान, हाथी अने हंसना दृष्टांतो ६१

नवम तरंग—

उपदेशने अयोग्य एवा पुरुषो उपर सर्प, जळो, वंध्या गाय अने अवंध्या गायना दृष्टांतो ... ६४
कुष्टपुरुषनुं बीजुं अवांतर दृष्टांत.... ... ... ६५

दशम तरंग

धर्मनो उपदेश सर्वने गुणकारी छे, तेमां अयोग्यनुं निरूपण करवुं व्यर्थ छे, एवी शंकानुं समाधान ६९

एकादश तरंग—

उपरना अर्थने दृढ करवा माटे मेघमुनिनुं दृष्टांत ७१

द्वादश तरंग—

योग्य तथा अयोग्यनुं स्वरूप विशेष स्पष्ट करवा माटे पाषाण, वरसाद, घडो, चालणी, सुगरीनो माळो, हंस, पाडो, घेटो, मशक, जळो, बीलाडी, शेरो, गाय, भेरी अने आभीरीना दृष्टांतो ... .७२
आभीरीना दृष्टांतनुं सविस्तर विवेचन ७५

त्रयोदश तरंग—

उपदेशने योग्य केवा जीव होय छे, तेनुं विवेचन ७९
ते उपर सोमवसु ब्राह्मणनी कथा ...८०
धर्मना तत्वने सारी रीते नहि जाणनार माणस अयोग्य छे, ते उपर कुरुचंद्र राजानी कथा . ८४
फरीवार धर्मने योग्य एवा पुरुषोना स्वरूपनुं विवेचन. ८५

चतुर्दश तरंग—

केवा गुरु योग्य अने केवा गुरु अयोग्य, ते विषे विवेचन ... ९९

आठ प्रकारना गुरुओ उपर सर्षपो, क्रौंच, भ्रमर, मोर, कोयल, हंस, पोपट अने कागडो ए आठे जातना पक्षीओना दृष्टांत १००

मोर पक्षीना दृष्टांत उपर मंगु आचार्यनी कथा १०३

पंचदश तरंग—

गुरु अने श्रावक बंनेनी योग्यतानुं स्वरूप ...१०७

ते उपर चंडाल, वेश्या, गृहपति अने राजाना आभरणोना दृष्टांत १०७

जिनेश्वर भगवंते कहेला कल्याणक सावद्य कर्मोनुं स्वरूप ११०

कुगुरुनुं स्वरूप १११

कुगुरुओना दुराचरणनुं वर्णन ११२

ते प्रसंगे अंगारमर्दक आचार्यनो संबंध ११६

बीजी यवराजर्षिनी कथा ११८

चार प्रकारना आभरण दृष्टांते चार प्रकारना श्रावकोनुं स्वरूप १२१

ते प्रसंगे वरदत्त शेठना दासीपुत्रनी कथा १२४

धर्मनी शुद्धि उपर विवेचन १२९

सामान्य जीवोना धर्मने उद्देशीने आभरणना दृष्टांते चार प्रकार ... .१३२

षोडश तरंग—

चंडाल, वेश्या, गृहपति अने राजाना कर्डीयाना चार दृष्टांते गुरुओना चार प्रकार १३४

सप्तदश तरंग—

रत्नने दृष्टांते आचार्यो, साधुओ, श्रावको अने सामान्य जीवोना चार प्रकार १३७
ते उपर श्री आर्य महागिरि सूरिनो संबंध १३९
रत्नने दृष्टांते साधुओना चार प्रकार १४१
रत्नने दृष्टांते श्रावकोना चार प्रकार १४२
ते उपर सद्देवनी कथा १४२
चोथा प्रकार उपर श्री कुमारपाळनो संबंध १४४

अष्टादश तरंग—

गुरु, शिष्य अने श्रावकोना वचन तथा विनय वगेरे क्रियाओथी चार प्रकार १४८
प्रथम गुरुना चार प्रकार.... ....१४९
शिष्यना संबंधमां युगप्रधान श्री कालकसूरिना शिष्यनी कथा १५१
गृहस्थ श्रावकोना चार प्रकार १५२

नवदश तरंग—

गुरु तथा श्रावकनी योग्यता तथा अयोग्यतानुं स्वरूप १५४
ते उपर सर्प, चोर, ठग, वणिक, वेश्यागाय, नट, गाय, मित्र, बंधु, पिता, माता अने कल्पवृक्षना दृष्टांतो १५४
नटना दृष्टांत उपर अंगार मर्दकाचार्यनी कथा १६३
गायना दृष्टांतनुं विवेचन १६३
मित्रना दृष्टांत उपर बप्पभट्टिसूरिनी कथा . १६५
बंधु दृष्टांत उपर श्रीकुमारपाळ राजा अने हेमचंद्र गुरुनो संबंध १७१

सर्पना दृष्टांत उपर रोहिणक नामना परिव्राजकनी कथा १५५
चोरना दृष्टांत उपर वसुराजा नारद वत्तेला पर्वतनी कथा १५७
ठगना दृष्टांत उपर केदारनी माळावाळा चीलाका-नुं दृष्टांत १५८
वणिकना दृष्टांत उपर विवेचन १६०
वंध्या गायना दृष्टांत उपर मौलिकाचार्यना शिष्यो-नो संबंध १६३
पिताना दृष्टांत उपर युवराजर्षिनी कथा १७०
माताना दृष्टांत उपर कमळ शेठना पुत्रने प्रतिबोध आपनार बीजा आचार्यनी कथा १७१
कल्पवृक्षना दृष्टांतनुं विवेचन १७४
तेवी रीते श्रोताओना चार प्रकार १७५
दांभिक श्रावक बनेला बे मुनिओनी कथा १७६
केटलाएक श्रावको गाय जेवा होय छे ते उपर धनपति शेठनो संबंध १७७
पिताना दृष्टांत उपर वज्रचंद्र राजानी कथा १७८

प्रथम भागनी विषयानुक्रमणिका समाप्त.

वांचीने विनोद पामो.

तत्त्वने जाणवानी दरेकने स्वाभाविक इच्छा होय छे. पण तेनी शोध करवी न करवी ते कर्त्ताने आधीन छे.

आजकाल तत्त्वेच्छु पुरुषो वधारे जोवामां आवे छे, पण तेमने तेवा प्रकारना साधनो थोडे अंशे मळवाथी तेओ आगळ वधी शकता नथी. आवा हेतुथी जनसमाजना हितार्थे अमारा तरफथी "तत्त्वभूमिमां प्रवास" ए नामनुं पुस्तक बहार पड्युं छे. जेनी अंदर विद्वान् कवि बनारसीदासना पद्यो तथा तेनुं भाषांतर स्पष्टपणे बताववामां आव्युं छे. प्रसंगे बोधक श्लोको विगेरेथी पण आ ग्रंथ अलंकृत छे, भाषा मधुर अने सरल छे, वाचकवृंदने प्रिय थाय अने तेओ वांची विनोद पामे तेटला माटे आ ग्रंथ चालीश फारमनुं छतां पण तेनी कींमत जुज राखवामां आवी छे.

आ पुस्तक तत्त्वेच्छुने वधारे प्रिय थइ पडे तेम छे, माटे जेमने मंगाववुं होय तेओए नीचेना शीरनामे पत्र लखी जणाववुं.

पाकुं पुंठुं १-२-० काचुं पुंठुं ०-१४-०

श्री जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग,
पालीताणा.

शुद्धिपत्र.

अशुद्ध.	शुद्ध.	पत्र.	पंक्ति.
शुडया	शुक्या	११	३–४
ककम्नं	मेकम्नं	१४	१
इनि	इति	२०	७
षणमार्म्यंते	षणमार्म्यंते	२४	७
गोपाल	गोपालः	२५	३
धरणाद्र	धरणेंद्र	३१	८
षणमासी	षण्मासी	३०	१
वाचक	वाचकः	३४	८
महाजारेन	महाजारे	३५	७
गृह्णातीति	गृह्णातीति	३७	३
पत्रन्य	पत्रन्य	३७	६
कादयां अकादयां	कादयां	४३	५
माप्स्यंतीति	माप्स्यंतीति	४७	७
ताश्चतयति	ताश्चितयति	५७	३
स्त्येजंति	स्त्यजंति	५८	६

अशुद्ध.	शुद्ध.	पत्र.	पंक्ति.
सचयोग्यः	सत्यायोग्यः	८०	६
नपास	तापस	९१	३
परत्रस्त्री	परस्त्री	१०४	१
अर्हद्धचन	अर्हद्वचन	११७	४
श्राद्धर्याधागे	श्राद्धर्स्तीर्थाधागे	१५१	४
अपादशत्र	अष्टादश	१५३	५
साधुसंग	साधुमंग	१५८	४
निरश्वां	निरश्वां	१५९	२
कुर्वं	कुर्वे	१६०	१
गृह्णांति	गृह्णंति	१६०	५
दुप्यनाया	दुष्पमाया	१६१	२
वीर्क्षेव नदर्श	वीक्ष्य चदर्श	१६६	३
मनक्रमं	मनक्रमं	१६८	१
भ्रव	त्रय	१६८	४
श्रीगुरु	श्रीगुरु	१६९	५
श्रीगुरुर्गाक	श्रीगुरुर्गाक	१७०	१
श्रीर्गमनं	श्रीर्गमनं	१७३	६
द्रुमाः	द्रुमः	१७३	६
पुमर्धर्म	पुनर्धर्म	१७८	७

अशुद्ध.	शुद्ध.	पत्र.	पंक्ति.
यकुराजश्लोकं	यकूराजश्लोकं	१७९	७
रश्यां	राश्यां	१८१	४
निर्बंधे	निर्बंधे	१८१	५
इश	ईश	१८२	४
शिशुसुध	शिशुस्कंध	१८३	७
मायध	मध्यघ	१८४	३
पिथ्याम	पिथ्याम	१८४	३
वादी देव	वादी देव	१८४	५
पुच्छस्य	पुच्छस्य	१८५	६
सुल्यकपुरुषः	सुर्मकपुरुषः	१८८	५
राजोप	राजोच	१८९	१
श्रुत्वाऽगतां	श्रुत्वाऽऽगतां	१९०	३
पश्चाद्वावितः	पश्चाद्वावितः	१९४	४
कष्टया	काष्टया	१९६	६
सेवतेस्म	सेवतेस्म	१९६	६
षष्ठस्तरंगः	अष्टमस्तरंगः	२०१	१

रा. सा. शेठ वसनजी त्रिकमजीनुं संक्षिप्त जीवन चरित्र.

"महाराव" एवा उपनामथी अंकित चंद्रवंशी राजाओथी सुरक्षित एवा कच्छ देशमां आर्हत धर्मना उपासक कच्छी दशा ओशवाळ ज्ञातिनां घणां कुटुंबो वसे छे. ते देशमां आवेला "सुथरी" नामना गाममां रा. सा. शेठ वसनजी त्रिकमजीना वडिलो वसता हता. तेमना पितामह शेठ मूळजी देवजी संवत १८८० ना वर्षमां प्रथम व्यापार अर्थे मुंबइ आव्या हता. ते वखते मोहमय नगरी व्यापार लक्ष्मीनुं उच्च शिखर बनी हती. विदेशी व्यापारीओनी मोटी मोटी पेढीओ ते स्थळमां पोतपोतानी व्यापार कळाने प्रसारती हती. ते व्यापारीओमां कच्छवासी मरहुम "शेठ नरसी केशवजी" नायकनी पेढी व्यापारकळामां सारी ख्याति पामेली हती. शेठ वसनजीभाइना पितामह शेठ मूळजीए पोताना व्यापारनो आरंभ शेठ नरसी केशवजीना व्यापारनी साथे जोगथी जोड्यो अने ते शिवाय पोतानी स्वतंत्रताथी पण बीजो व्यापार करवा मांड्यो. पूर्व पुण्यना प्रभावथी तेमणे व्यापार लक्ष्मीनी सारी वृद्धि करी. संवत १९२२ ना वर्षमां ज्येष्ठ मासमां शेठ वसनजीभाइनो जन्म थयो. पुत्र जन्मथी तेमना पिता अने पितामहने अति आनंद थयो हतो. कर्मनी गति विचित्र छे. एक तरफ पुत्र जन्मनी वधामणी चालती हती अने बीजी तरफ ते पुत्रनी माता सूतिकागृहमांज अचानक व्याधि ग्रस्त थयां. छेवटे शेठ वसनजीभाइने छ दिवसना मूकी तेओए स्वर्गवास कर्यो. वसनजीभाइना मातुश्रीनुं नाम "मालबाइ" हतुं. तेओ स्वभावे शांत अने सद्गुणी हतां. पण कोइ पूर्व कर्मना उदयथी पोताना पुण्यना पुत्रनो माताने स्तनपान माटे वियोग थयो. एज वर्षमां शेठ वसनजीभाइना पितामहे शेठ केशवजी नायकथी जुदा थइ पोताना पुत्र 'त्रिकमजी मूळजी' ना नामथी नवीन पेढी उघाडी पोतानी व्यापारकळानो समारंभ कर्यो. व्यापार कळानी कुशळताथी अने उत्तम प्रकारनी प्रमाणिकताथी ए पवित्र पेढीए मोहमयीनगरमां सारी प्रतिष्ठा संपादन करीने व्यापार लक्ष्मीनो मोजो वधार्यो.

शेठ वसनजीभाइनी बाल्यावस्था पुण्यनी प्रभाथी प्रकाशित हती. तेमना शरीरनी अने मननी चंचलता विलक्षण हती अने ते उपरथी भविष्यमां तेमने माटे सारी आशा बंधाती हती, संवत् १९३०ना वर्षमां तेमना प्रेमी पिता शेठ त्रिकमजीभाइनो स्वर्गवास थयो. ते वखते शेठ वसनजीभाइनी वय मात्र आठ वर्षनी हती. पोताना पुत्र शेठ त्रिकमजी भाइना स्वर्गवासथी तेमना पिता शेठ मूळजीभाइना हृदयने खेद थयो हतो. तथापि तेओ धार्मिक वृत्तिना होवाथी आ संसारना क्षणिक स्वरूपने जाणता हता. तेमज पोताना बाळपौत्र शेठ वसनजी त्रिकमजीमां अस्फुट देखाता सद्गुणोने लइने भविष्यमां तेमने माटे सारी आशा बांधता हता. तेथी तेओ पुत्रमरणना शोकाग्निने शमन करनारी मनोवृत्तिमां शांति राखी रह्या हता.

शेठ वसनजीभाइना पितामह मूळजी शेठ धर्म तरफ सारी लागणी धरावता हता. सुकृत कर्ममां लक्ष्मीनो व्यय करवानी उत्तम अभिलाषा तेमना हृदयमां सर्वदा रहेती हती. ते अभिलाषाने लइने तेमणे संवत् १९२८ना वर्षमां श्रीकेशरीयाजी तीर्थनी यात्रानो मोटो संघ काढ्यो हतो. ते संघमां सातसो माणसोनो मोटो रसालो साथे लीधो हतो. यात्राळुओने सुखकारी सगवडता करी आपवामां अने ते प्रसंगे धार्मिक कार्यो करवामां तेमणे सारी उदारता दर्शावी हती. जेमां तेमने चालीश हजार रुपीयानो गंजावर खर्च थयो हतो. संवत् १९३४ना कार्तिक मासनी कृष्णएकादशीने दिवसे मूळजी शेठनो पवित्र आत्मा आ लोकमांथी अदृश्य थइ परलोकमां गयो अने ते महान् व्यापारनी धुरा बाळवयना शेठ वसनजीभाइना कोमळ शिरपर आवी पडी. पवित्रप्रेमी अने पौत्रवत्सल मूळजी शेठे पोताना पुत्र त्रिकमजी शेठना स्वर्गवास पछी पोतानी व्यापारी पेढी पोताना पौत्र वसनजीभाइना नामथी अंकित करी हती, तेथी ए व्यापारनुं महान् कार्य शेठ वसनजी त्रिकमजीना नामथी चालतुं हतुं. शेठ वसनजीभाइनुं बाल्यवय होवाथी तेमनी विशाळ पेढीनो बधो कारोबार "शा. लखमशी गोविंदजी" नामना एक प्रमाणिक गृहस्थे चलाव्यो हतो.

शेठ वसनजीभाइ बाल्यवयमांज पोताना उपकारी मातपिताना वियोगी थया हता, तेमनी शारीरिक अने मानसिक स्थितिने संभाळ राखी केळववाने कोइ पण वडिल तेमना कुटुंबवाळा वासगृहमां हाजर न हतुं, तथापि तेमणे

संस्कृतथी देशभाषा अने राजनीतिनो अभ्यास करी तेमां यथाशक्ति अनुभव मेळव्यो हतो. तेमनुं हृदय जो पोताना व्यापारनी चिंतामां परोवायुं न होत तो तेओ तीव्र बुद्धिना योगथी एक सारा विद्वान तरीके प्रख्यात थात. पण तेमना सत्कर्मनो उदय अने तीव्र बुद्धिनुं बळ व्यापार कळामांज कृतार्थ थवाथी तेओनी प्रवीणता तेमांज वृद्धि पामवा लागी. जनमंडळमां तेमनी विख्याति तेनाथीज विशेष थइ.

विनय, विवेक, धैर्य, उत्साह, औदार्य, दया, अने दृढता विगेरे जे गुणो उत्तम प्रकारनी विद्वत्ताथी संपादित थाय छे, ते गुणो शेठ वसनजीभाइना संसारी जीवनना आरंभमांथी स्वाभाविक रीते प्रगट थया हता अने तेथी तेओ मोहमयीनगरीना राजकीय अने व्यापारी मंडळमां सारी प्रतिष्ठा पामता गया. तेओ धनाढ्य कुटुंबमां जन्म्या छतां गर्व श्रीमंताइनो त्याग करवानो समय ओळखी सद्वर्तन करवाना उत्तम गुणने प्राप्त करी पोतानुं धनिकजीवन सार्थक करवाने सदा तत्पर रहेवा लाग्या.

शेठ वसनजीभाइए युवावस्थामां जोता कुटुंबमां, अंदर आ संसारनी घटमाळना विविध प्रसंगोमां सुख दुःखनो अनुभव करेलो छे. तेमनो प्रथम विवाह "शा. वालजी वर्द्धमान"ना विख्यात कुटुंबमां जन्मेलां "खेतबाइ"नी साथे थयो हतो. "खेतबाइ" एक पवित्र अने कुलीन श्राविका हतां. तेमना उदरथी "प्रेमाबाइ" अने हीराबाइ नामे बे पुत्रीओ अने "शामजीभाइ" नामे एक पुत्र थयेल छे. ते त्रण संतानोने मूकी खेतबाइए पोताना सौभाग्य साथे स्वर्गवास कर्यो हतो. आ संसार सागरने तरवाना आरंभमांज ए संसारनी नाविका भांगी जवाथी शेठ वसनजीभाइए शेठ नरशी नाथाना कुटुंबमां उत्पन्न थयेलां "रतनबाइ"नी साथे फरी वार लग्न कर्युं. तेमना उदरथी "गवरजीभाइ" नामे पुत्र अने लक्ष्मी नामे पुत्रीनो जन्म थयेलो छे. भाइबेनने कुशळ—क्षेम मूकी सौभाग्यवंतां रतनबाइए पण स्वर्गवास कर्यो. आ संसारना बीजा भंगथी शेठ वसनजीभाइने विशेष शोक उत्पन्न थयो हतो, तथापि तेओ संसार स्वरूपना ज्ञाता होवाथी ते दुःख सहन करी पोताना व्यवहारमार्गने आगळ चलाववा लाग्या.

शेठ वसनजी त्रिकमजीनो संसार आवी विषम अवस्थामां जेटलो वहेलो शरु थयो, तेटलोज वहेलो तेमने दुःखदायक थइ पडयो हतो, तथापि दृढताना गुणथी अने स्नेही संबंधिओना आग्रहथी तेमने त्रीजा संसारमां प्रवेश करवानो विचार करवो पडयो. जेथी शेठ ठाकरशी पसाइआना पुत्री बाइ "लालबाइ" साथे तेमनो विवाह संबंध जोडायो जे संबंध तेमना पुण्यना उदयथी अत्यारे बीजानी दृष्टिए पूर्व दुःखने जरा विस्मरण करावी सुखसाधक थइ पडयो छे. तथापि ते दीर्घविचारी शेठ आ संसारनी अनुभवेली विषमताने कदिपण भूलता नथी.

शेठ वसनजी त्रिकमजीने तेमना परिवारनुं सांग सुख मळ्युं नथी. तथापि तेओ अवशिष्ट परिवारथी संतोष मानी तटस्थवृत्ति वडे संसारने दुःख अने सुखथी मिश्र जाणीने पोताना आत्माने प्रवृत्तिमार्गमां जोडे छे; तोपण अंतवृत्तिने निवृत्तिमार्ग तरफ प्रेमी बनावे छे. तेमने सर्वथी मोटां "प्रेमाबाइ नामे पुत्री छे, तेओ सारी केळवणी पामी पिताना कुटुंबने अलंकृत करे छे. संवत् १९४१ ना वर्षमां तेमनो जन्म थयेलो छे. तेमनी माता खेतबाइनो तेमने बाल्यवयथी वियोग छे, तथापि ते पवित्र अपर मातामां मातृबुद्धि राखी पोताना प्रेमी पिताना कुटुंबमां केळवणी रुप कल्पलतानो आश्रय करी सुखे काळ निर्गमन करे छे. तेमने "शामजी" नामे एक लघु बंधु हतो. पण ते मात्र बे वर्षनी वयमांज आ दुःखी संसारमांथी चाल्या गया छे. शेठ वसनजीभाइने प्रथम पत्नी खेतबाइना उदरथी झीलबाइ नामे एक पुत्री थयां हतां, तेमनो जन्म संवत् १९४५ ना पोष शुदी नवमीने दिवसे थयो हतो. ए पवित्र आत्मानुं बाल्यवय शेठना सुखी कुटुंबमां सारी रीते निर्गम्युं हतुं. परंतु अंतकाळ रुप महासागरमां ए आत्मा तरुणवयमांज निमग्न थइ गयो छे. ए सद्गुणी बाळाना वियोगनो शोकानळ अद्यापि शेठ वसनजीभाइना हृदयमां स्मरण रुपे प्रज्वलित थया करे छे. पवित्र झीलबाइना सद्गुणनी ललित लीला तेमना जीवन चरित्र रुपे "आनंदमंदिर" नवलकथानी आदिमां विस्तारवामां आवी छे. जे उपरथी शेठ वसनजीभाइना संसारनुं केटलुं एक सुंदर स्वरुप जोवामां आवे छे.

शेठ वसनजीभाइनां स्वर्गवासी द्वितीय पत्नी रतनबाइथी थयेल "मेघजी अने लक्ष्मी" नामे भाइव्हेननी एक जोडी शेठना सुखी कुटुंबमां विद्यमान छे. संवत् १९५१ ना भाद्रपद मासनी कृष्णद्वादशीए मेघजीभाइनो जन्म थयेल छे. संवत् १९५३ ना आश्विन मासमां दीपोत्सवीने दिवसे व्हेन लक्ष्मीनो जन्म थयेल छे. मेघजीभाइ तथा लक्ष्मी व्हेन बाल्यवय छतां स्वभावे सुशील अने नम्र छे. तेमने सद्गुणी बनाववाने तेमना प्रेमी पिताए उत्तम प्रकारनी केळवणी आपवानी सारी योजना करेली छे. ते बन्ने बाळक पोताना मायाळु मातापितानी शीतळ छाया नीचे केळवणीरूप कल्पलतानुं सेवन करे छे.

शेठ वसनजीभाइना तृतीय पत्नी वालबाइ अत्यारे गृहिणीपद उपर विद्यमान छे. तेमणे पोताना सुशील अने शांत स्वभावथी शेठना कुटुंबने सुशोभित बनावेलुं छे. केळवणी पर अतिशय व्हाल धरावनारा वालबाइ धार्मिक अने सांसारिक केळवणी पामेला छे. तथापि तेओ ज्ञानने वधारे वधारवाने सर्वदा उत्सुक छे. विख्यात पंडित "ज्ञान" ना विशाळ हृदयनुं शिक्षण शेठना सुखी कुटुंबमां चालु रहे छे. अने तेथी तेमना दरेक कुटुंबीना हृदयमां सद्गुणोनी सुवास प्रसरी रही छे.

संवत् १९६० ना मागशिर मासनी कृष्ण प्रतिपदाने दिवसे विद्यावंता वालबाइए "वकिमचंद" नामना पुत्रने जन्म आप्यो छे. ते बाळक हजु माताना उत्संगमां क्रीडा करे छे, तथापि तेनामां चंचळता अने नम्रता वगेरे केटलाएक उत्तम गुणोनुं स्वाभाविक रीते अत्यारथीज दर्शन थाय छे. माटे भविष्यमां सारी आशा बांधवामां आवे छे. आ प्रमाणे विद्यमान परिवारथी परिवृत थयेला शेठ वसनजीभाइ ते संसारमां संतोष मानी रह्या छे. संसारमां रह्या छतां एमनुं लक्ष्य विद्वानोना समागम द्वारा ज्ञानविलासमांज बद्ध छे. ते साथे तेओ धार्मिक अने सांसारिक केळवणीना हिमायती छे अने ते द्वारा पोतानी कोमना उदयनी सतत अभिलाषा राखे छे अने तेवा कार्यने माटे लक्ष्मीनो व्यय करवामां तेओ सदा बद्धपरिकर रहे छे.

शेठ वसनजीभाइनी सखावतनो आरंभ तेमना बाल्यवयथीज थयेलो छे. पितानो वियोग थया पछी ज्यारथी तेमना व्यवहारनो तथा कुटुंबनो भार तेमने शिर आरूढ थयो त्यारथीज तेमनी सखावतना जीवननो आरंभ थयो छे. संवत् १९३६ ना वर्षमां तेमनां माताजी अने दादीजीना उजमणामां तेमणे घणो खर्च कर्यो हतो. जे प्रसंगे तेमनी उदारता प्रशंसापात्र जोवामां आवी हती. शेठ वसनजीभाइए कच्छ—सायरामां पोताने खर्चे एक भव्य जिनालय बंधाव्युं छे, ते पाछळ तेओए दश हजार रुपीआनो सद्व्यय करेलो छे. संवत १९३४ ना वर्षमां ए जिनालयमां प्रभुनी प्रतिष्ठा करवामां आवी ते समये आसपासना घणां गामोमांथी कच्छी जैन प्रजानो मोटो समुदाय एकठो थयो हतो. तेमनो सत्कार करवा माटे ए शेठे सारी लागणी दर्शावी हती. सर्वना आतिथ्यने माटे भोजन वगेरेनी सारी गोठवण करी हती. ए प्रसंगे लक्ष्मीनो सदुपयोग करवाथी तेमनी धर्मकीर्त्ति आखा कच्छ देशमां प्रसरी हती.

संवत् १९५३ ना वर्षमां उदार शेठ वसनजीभाइए स्वज्ञातिना गरीब बंधुओने ओछे भावे अनाज आपवानी एक मोटी दुकान उघाडी हती अने ते दोढ वर्ष सुधी चालु राखी ते पाछळ पांच हजार रुपीआनी मोटी रकम खर्ची हती. जेने माटे तेओ स्वज्ञातिजनोमां पूर्ण प्रशंसा पाम्या हता. ज्यारे मोहमयीनगरीमां मरकीनो भयंकर रोग प्रवर्त्यो, त्यारे ए दयाळु शेठे मरकीथी पीडाता लोकोने शांति आपी सारवार करवा माटे बंदर उपर एक खास औषधालय स्थापी मरकीथी पीडाता बंधुओने सारो लाभ आप्यो हतो. अने ते शुभ कार्य त्रण वर्ष सुधी चलावीने पाछळ रुपीआ चाळीशहजारनो गंजावर खर्च कर्यो हतो. जेमां कोइनी पण मदद न हती. आथी प्रसन्न थइ नामदार सरकारे तेओने प्रमाणपत्र आपेलुं छे. जेनी अंदर शेठ वसनजीभाइनी परोपकारी वृत्तिनी प्रशंसा करवामां आवी छे.

गया छपनना भयंकर दुकाळमां संकटमां आवी पडेला लोकोने मदद आपवामां शेठ वसनजीभाइए सारी सहाय आपी हती. पोतानी जन्मभूमि कच्छ—सुथरीमां अनाजनी दुकान काढी घणां गरीब कुटुंबोने तेमणे सारो

आश्रय आप्यो हतो. अने तेथी तेमणे घणा दीनजननी अंतरनी आशीषो लीधी हती. आ शुभ कार्यनी पाछळ तेमणे उदारताथी पंदर हजार रुपीआनो खर्च कर्यो हतो.

आ तेमनी उत्तम सखावतनी सुगंध चारे तरफ प्रसरवाथी तथा तेमनी लायकातनी अने परोपकार वगेरे उत्तम गुणोनी परीक्षानी पिछान करी नामदार सरकारे तेमने जे. पी, (सुलेहना अमलदार) नी उत्तम पदवी आपी हती अने पाछळथी रावसाहेबनुं बिरुद नवाजी शेठ वसनजीभाइना सन्माननो मोटो वधारो कर्यो हतो. आ पदवी अने सन्मान मेळववामां शेठ वसनजीभाइ आखी कच्छी जैनसमाजमां पेहेलाज छे. आवुं सारुं सन्मान पाम्या छतां पण शेठ वसनजीभाइनुं जीवन अति सरल, शुद्ध, सादुं अने स्वच्छ रहेलुं छे. एक खरा सद्गृहस्थने घटती सर्व नम्रता, सादाइ अने सत्य प्रीति तेमनामां रहेली छे. धंधामां प्रतिष्ठा, स्वदेशीओमां मान, लोकप्रीति अने महान संपत्ति ए सर्वनी परिसीमाए पोहोंच्या छतां पोते केवळ अहंकार शून्य छे. नाना मोटा सर्व साथे एकसरखा भावथी वर्ते छे. तेओनी सखावतनो प्रवाह प्रकाश बहार गुप्तरीते वधारे चाले छे. तेमनी केटलीएक सखावतो प्रकाशमां आवती नथी. तेम तेने प्रकाशित करवाने तेओ इच्छता पण नथी. कीर्तिदानना करतां गुप्त दानने तेओ वधारे मान आपे छे. एवा गुणथी तेओनुं जीवन उत्तम प्रकारनुं गणाय छे.

शेठ वसनजीभाइनी नानी मोटी घणी सखावतो प्रख्यात छे. धार्मिक अने सांसारिक कोइ पण लोकोपयोगी कार्यमां तेमनी लक्ष्मीनो हीस्सो आप्या वगर रहेलो नथी. तेओ गरीबो तेमज श्रीमंतो तरफ एक सरखी नजरे जुवे छे. दुकाळना संकट वखते रुना वेपारीओए उभा करेला फंडमां शेठ वसनजीभाइए सारो हिस्सो आप्यो हतो. शेठ वसनजीभाइए मरहुम पेहेला सर दीनशाह पीटीटना मित्र होवाथी तेमनी यादगीरीना फंडमां सारो भाग लइ त्रण हजार रुपीआ अर्पण कर्या हता. सर जमसेदजी हॉस्पीटलनां नरसींग फंडमां छसो रुपीया, लेडी नार्थकोट हिन्दु ओरफनेजना फंडमां एक हजार रुपीआ, एडमवाळी हॉस्पीटलना फंडमां पांचसो रुपीआ, फरग्युसन कोलेजमां त्रणसो रुपीया

अने जखमी थयेला जापानीओनी सारवार माटेना फंडमां बारसोने बावन रूपीआ शेठ वसनजीभाइ तरफथी आपवामां आव्या छे.

शेठ वसनजीभाइनी धार्मिक सखावत पण उत्तम प्रकारनी छे. जैन देरासरना जीर्णोद्धार माटे तेमणे बे हजार रूपीआ आपेला छे. ते शिवाय तेवी घणी टीपोमां तेओनी न्यायद्रव्यनो सदुपयोग थाय छे. संवेगी अने गोरजी एवा बे पक्ष मुनि वर्गमां अर्वाचीन काळमां ऊभा थयेला छे. संवेगी मुनिओ पोताना चारित्र मार्गना शुद्ध अनुयायी कहेवाय छे, त्यारे गोरजीओ तेमनाथी उलटी रीते प्रवृत्ति करनारा कहेवाय छे. ए गोरजीना शिष्यो जैन संप्रदायना होवाथी जो कोइ रीते सुधारी शकाय तो भविष्यमां लाभ थाय, आवा पवित्र हेतुथी सात हजार रूपीआनी मोटी रकम अर्पण करी छे.

शेठ वसनजीभाइ बाळकेळवणी तथा स्त्रीकेळवणीना मोटा हिमायती छे. ते साथे ज्ञानक्षेत्रने पुष्टि आपवामां तेओ सर्वदा उत्सुक रहे छे. "जैनोना प्राचीन विद्यानो उद्धार थाय अने पूर्वाचार्योना उपयोगी लेखो जनमंडळमां प्रसिद्ध पामी वंचाय" एवा उत्तम हेतुथी तेमणे प्राचीन पुस्तकोनो उद्धार करवाने दश हजार रूपीआनी मोटी रकम अर्पण करी छे. ए महान कार्यने उत्तेजनारा अमारा जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्गना तेओ स्थापक थया छे अने ए वर्गरूप कल्पवृक्षने उत्तेजनरूप जळनुं सिंचन करी तेने नवपल्लवित करवा सदा उत्सुक रहे छे.

शेठ वसनजीभाइ जेवा सखावतमां बहादुर छे, तेवाज तेओ प्रजा उपयोगी कार्योमां उमंगथी भाग लेनारा छे. दृढप्रतिज्ञ, सत्यवक्ता अने प्रमाणिक नर तरीके तेओए सारी प्रतिष्ठा मेळवी छे, तेथी तेओ सर्व रीते लोकोना विश्वासपात्र बन्या छे. तेओ ख्वाजा जनरल हीरांगरमना जार्दगी सुधीना सभासद छे, अने मांगरोळ जैन समाजना प्रतिनिधि छे. शेठ नरशी नाथाना चेरीटी फंडना, कुमठा देरासरना, सिद्धक्षेत्रमां स्थपायेल वीरबाइ पाठशाळा तथा पोताना पवित्र नामथी अंकित जैन बोर्डींग के जेना माटे पचास हजार रूपीआनी गंजावर रकम आ-

पण करी के तेना तेओ मानवंता ट्रस्टी छे. ए उपरांत केटलीएक सोसाइटीओना तेओ डीरेक्टर छे. आवी उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त करी तेमणे पोताना मानव जीवननी सफळता करेली छे.

"माणस विदेशमां गमे तेटली प्रतिष्ठा प्राप्त करे, पण ज्यांसुधी ते स्वदेशमां के स्ववतनमां पोतानी उदारता के सखावत प्रसारे नहीं, त्यांसुधी ते प्रतिष्ठा पूर्ण कहेवाती नथी." आ नीतिसूत्रने समजनारा शेठ वसनजीभाइए पोताना कुटुंबनी जन्मभूमि कच्छ—सुथरी वगेरे गामोमां सारां सारां कार्यो करेलां छे. अने तेथी तेओ कच्छपति महाराव "श्री सर खेंगारजी" सवाइ बाहादुर सी. आइ. इनी आगेवानी प्रजामां प्रकाशी नीकळ्या छे. महाराव श्री तेमने प्रेमनी दृष्टिए नीहाळे छे, अने तेओनी योग्यता प्रमाणे तेओने मान आपे छे.

केळवणी रुप कल्पताने पल्लवित करवाने शेठ वसनजीभाइए पोताना वतन सुथरीमां पोतानां स्वर्गवासी पत्नीओना निर्मळ नामथी "खेतबाइ जैन पाठशाळा अने रतनबाइ कन्याशाळा" स्थापी छे. तेमज पोतानां विद्यमान सौभाग्यवंता पत्नी वालबाइना नामथी "जसापुर गाममां एक बीजी जैन पाठशाळा पण स्थापित करेली छे". ते शिवाय कच्छी जैन प्रजामां ज्ञान वृद्धि करवाने नानी नानी जैनशाळाओ कच्छ देशमां उघाडवामां तेमणे सारी सहाय आपेली छे. अने अद्यापि आपवाने सदा उत्सुक रहे छे

भारतवर्षनी प्राचीन जैन धार्मिक अने सांसारिक पद्धती जे आपणी दृष्टि समक्ष अवनवीन जासे छे, तेनुं ज्यारे सूक्ष्म अवलोकन करीए छीए त्यारे कांइक कांइक प्रबल विचारोर्मि आपणा हृदयमां उछळे छे. ते पद्धतीनो पुनःप्रचार करवाने अने ज्ञाति बंधनना संतानन थइ वेरेला रीति कुरिवाजो तथा एकज 'दिशामां प्रयत्न करवाथी उद्धार थशे, एम माननारा तथा तदनुसार विरुद्ध वर्तनारा सुधारकोने पूर्वनी नीतिरीतिथी वर्ताववाने शेठ वसनजीभाइ तन मन धनथी प्रयत्न करनारा छे. तेमज व्यापार अने उद्योगना व्यवहारमां निपुण थवाने विदेशगमन कर-

वामां अने पाश्चिमात्य प्रवृत्तिओमां स्वधर्मने दूषित कर्या विना जणाववामां तेओ हृदयथी संमत छे अने तेमने सहाय आपवामां तेओ सर्वदा उत्सुक रहे छे. पोतानी कोमना लोको विद्वान तथा उद्योगी थवा इच्छता होय तेमने मासिक वेतन (स्कोलरशीप) आदिथी निर्वाहनी चिंतामांथी मुक्त करवा अने तेमने उन्नतिना ऊंचा शिखरनुं दर्शन कराववुं एवी शेठ वसनजीभाइना हृदयमां सदा इच्छा रह्या करे छे. आ देशना तेमज परदेशना म्होटा विद्वानोने, कविओने अने ग्रंथकारोने तेमना कार्यमां उत्तेजन आपवामांज तेमनी उदारता सार्थक थाय छे. "केळवणी पामी संस्कारिणी थयेली श्राविकाओ स्वतंत्र, समर्थ, सदाचारी, अने धर्मिष्ठ विदुषिओ थइ श्रावक संसारने दीपावे अने पोतानी बाळ प्रजाने केळवी वीरपुत्रनी पदवी सार्थक करे" ए इच्छा शेठ वसनजीभाइना हृदयकमळमां सदा जाग्रत रहे छे. "जनप्रजा सदा आरोग्य, स्वस्थता, शक्ति, सुंदरता अने कल्याण प्राप्त करवाने अधिकारी थाय," एवी उत्तम भावना तेओ धारण करे छे.

शेठ वसनजीभाइनुं वर्त्तमान जीवन उच्च प्रकारनुं छे. तेओ प्राये करीने नियमित रीते पोतानुं प्रवर्त्तन चलावे छे. तेमनी दिनचर्या नियमित अने सत्कर्मथी भरपूर छे. आर्हत धर्मनी आराधना करवामां अने सद्विचारथी सुशोभित एवा सत्पुस्तको वांचवामां तेमनो समय घणो भाग निर्गमन थाय छे तेओ व्यवहारने अनुसरी प्रवर्त्ते छे, तथापि तेमना हृदयमां तात्त्विक विचारो सदा उद्भव्या करे छे. तेमनो स्वभाव दयामय अने प्रेमाळु होवाथी तेओ प्रत्येक स्थाने उत्तम मान पामे छे. कोइपण विद्वान के गुणी तेमनी मुलाकात ले छे, ते तेमना विनय, विवेक अने सादाइ वगेरे उत्तम गुणो जोइ संतोष पामे छे.

शेठ वसनजीभाइ पोताना सुखी कुटुंबमां संतोषथी रही स्वकर्त्तव्यमां तत्पर रहे छे. तेओनी अर्वाचीन भावनाओ प्राचीन भावनाओने अनुसरे छे. तेओ व्यवहार मार्गने मान आपे छे, तथापि "भोगैश्वर्यमांथी—विषय वासनामांथी निवृत्त थवुं अने साधुता संपादन करवी ए आपणुं पोतानुं कार्य छे अने आपणा पोताना वशमां छे."

एम तेओ हृदयथी माने छे. वळी तेओ सारीरीते समजे छे के, "देश काळना बळे मनुष्य मात्रने चालता युगना—आराना धर्मो प्राप्त थाय छे अने ते धर्मना प्रतिपादनमां मनुष्ये शुं करवुं जोइए? तेनी स्वाभाविक रीते गणना थाय छे अने थवी जोइए. अने ते गणनामां फळनी कसोटी पण वास्तविकरीते स्वीकारवी जोइए, तथापि महत्त्वानुं खरुं बीज पोतपोताना कर्त्तव्यमांज छे. संसारना मोहमांथी निवृत्तिपरायण एवा जीवनने जो कर्त्तव्यमां जोडवामां आवे तो ते जीवन पोतानी ए स्थितिनुं फळ सारीरीते मेळवी शके छे" आवा विचारने लइने शेठ वसनजीभाइ हमेशां धनाढ्य गृहस्थ तरीकेनुं पोतानुं कर्त्तव्य अदा करवाने तत्पर रहे छे, अने तेमांज पोताना जीवननी सार्थकता माने छे.

आवा उच्च, उन्नत, उदार लक्षणोवाळा एक धनाढ्य नरनुं जीवन आ लोकमां सर्वने अनुकरणीय छे. तेमनी कृतिओ उपरथी भविष्यमां हजु ते जीवन केवुं प्रशंसनीय थशे? ए वातनी आपणने पूर्ण प्रतीति प्राप्त थाय छे. शेठ वसनजीभाइना जीवननो प्रभाव सर्व जैन कोममां अने आर्य धर्मिओमां उज्ज्वल कीर्ति स्तंभरूप छे. ते आदरथी अने मान्यभावथी हमेश झळकशे, एमां संशय नथी. आवा योग्य नरनुं संक्षिप्त जीवन वांचवाथी अनेक प्रकारना ज्ञान थाय छे अने भविष्यमां ते बीजाने प्रोत्साहक अने उत्तेजक थइ पडे छे. श्री परमात्मा एवा वीरपुत्रने दीर्घायुष्य आपो अने तेमना निर्मळ हृदयने हवे पछीना जीवनमां सारां सारां कार्यो करवानी प्रेरणा करो एज अमारी नम्र प्रार्थना छे:—

श्री जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग.

श्री उपदेश रत्नाकर

भाग १ लो.

श्री जिनाय नमः

श्री उपदेशरत्नाकर.

"श्री सर्वज्ञाय नमः श्री गुरुभ्यो नमः" जयश्रीप्राप्तितो मोह–रिपोरमलकेवलः ॥ यो जगत्कृपया धर्म–मूचे तं श्री जिनं स्तुवे ॥ १ ॥ नाथः प्रजानां पुरुषार्थदेशनादनिष्टहर्त्ता-प्रकरश्च योऽभवत् ॥ तमादिमं भूमिभृतां तथार्हतां । जगद्गुरुं श्रीऋषभं प्रभुं स्तुमः ॥ २ ॥

श्री सर्वज्ञप्रति नमस्कार थाओ, श्री गुरुओ प्रति नमस्कार थाओ, जे (मोक्षरूपी) लक्ष्मीनी प्राप्तिथी मोहरूपी शत्रुने जीत्या छे, तथा जे निर्मळ केवल ज्ञानवाळा छे, तथा जेणे जगतपर कृपा लावीने धर्म उपदेश्यो छे, ते श्री जिनेश्वर प्रभुनी हुं स्तुति करुं छुं ॥ १ ॥ प्रजाओना स्वामी तथा (धर्म, अर्थ, काम अने मोक्षरूपी) पुरुषार्थोना उपदेशथी दुःखने हरनारा, तथा सुख करनारा जे थया छे, तेमज जे राजाओमां तथा तीर्थंकरोमां पहेला छे, एवा जगतना स्वामी श्री ऋषभदेव प्रभुनी अमो स्तुति करीए छीए ॥ २ ॥

॥ २ ॥ अशेषतः शांतिमुपद्रवाणां । जगत्सु कुर्वंस्कृतवत्करिष्यत् ॥ यस्याभिधानं दधतेऽन्वयित्वं
स शांतिजिनोऽभिमतार्थसिद्ध्यै ॥ ३ ॥ यः श्यामवर्णोऽपि वशीकरोति । ध्यातः सतामीप्सितश-
र्मलक्ष्मीः ॥ जयाय बाह्यांतरवैरिनेमिः । नेमिस्त्रिलोकः स जिनेंद्रनेमिः ॥ ४ ॥ पार्श्वः स वः पातु
विजार्ति सप्त द्वीपांगिनां सप्त भयानि जेतुं ॥ यः सप्तशूलायुधमंसगामि–सप्तस्फटाढ्यो-
ऽहितनुच्छलेन ॥ ५ ॥ श्री वर्धमानप्रभुरेष पुष्यात् । प्रवर्धमानाः सुखसंपदो वः ॥ जगत्सु
यस्त्रासयितुं नु विघ्न–मृगान् दधात्यंकमिषान्मृगेंद्रं ॥ ६ ॥

जे प्रभुनुं नाम (जाणे) जगतोमां समस्त प्रकारे उपद्रवोनी शांति करे छे, जाणे शांति करेली छे, तथा जे शांति करनारुं छे (अने एवी रीते) जे पोतानुं सार्थकपणुं धारण करे छे, ते शांतिनाथ प्रभु इच्छित अर्थनी सिद्धि माटे थाओ ॥ ३ ॥ जेनुं ध्यान धरवामां आवेलुं छे, एवा श्याम कांतिवाला पण जे प्रभु सज्जनोनी इच्छित सुखनी (मोक्ष सुखनी) लक्ष्मीने वश करे छे, तथा जे बाह्य अने अंतरंग शत्रुओनो नाश करनारा छे, तेमज त्रणे लोक जेमने नमस्कार करे छे, ते श्री नेमि जिनेश्वर (तमारा) जय माटे थाओ ॥ ४ ॥ खभा-पर रहेला सात फणोवाला नागेंद्रना शरीरना मिषथी साते द्वीपोमां रहेला प्राणीओना सात भयोने जीतवा माटे जे सात शूलोवाला हथीयारने धारण करे छे, ते पार्श्वनाथ प्रभु तमारुं रक्षण करो ॥ ५ ॥ जगत्नी अंदर रहेलां विघ्नोरुपी हरिणोने जाणे त्रास आपवा माटे लांछनना मिषथी जे सिंहने (पोतानी पासे) धारण करे छे ते श्री वर्धमान प्रभु तमारी वृद्धि पामती सुख संपदानुं पोषण करो ॥ ६ ॥

नामादिभेदैर्विशदैश्चतुर्भिर्यैर्लोककालत्रितयं पुनंतः॥ भवोद्विजां मुक्तिपदं ददंते । सर्वेऽपि ते सर्वविदो जयंतु ॥ ७ ॥ ध्यातापि या प्रवरकाव्यफलान्यमंदानंदोल्लसद्विबुधरस्यरसानि दत्ते ॥ श्रीभारती जगति कल्पलतेव नव्या । बोधिं धियं च विशदां दिशतामियं मे॥ ८ ॥ विश्वोत्तमैर्महिमलब्धिगुणैरशेषैर्भास्वत्सु येषु किरणैरिव भानवत्सु ॥ सूक्ष्मीभवंति निखिला अपिसूरयोऽन्ये । श्रीदेवसुंदरगणप्रभवो मुदे ते ॥ ९ ॥ यैर्मादृशोऽपि कठिनोपलसंनिभेऽस्मिन् । गोभिर्व्यधायि वरबोधरसोद्भवःस्वैः ॥ नव्यानिमानमृतदानपरान् सुधांशून् । श्रीज्ञानसागरगुरून् प्रणतोऽस्मि भक्त्या ॥ १० ॥

नाम आदिक चार निर्मळ भेदोवडे करीने जेओ त्रण लोकने तथा त्रणे काळने पवित्र करे छे, तेम संसारथी उद्विग्न थयेलाओने जेओ मोक्षपद आपे छे, ते सघळा सर्वज्ञो जयवंता वर्तो ॥ ७ ॥ ध्यान धरवाथी पण जे, अत्यंत आनंदमां उल्लासमान थता विद्वानोने चाखवा लायक रसवाळां उत्तम काव्योरूपी फळोने आपे छे, एवी जगतमां नवीन प्रकारनी कल्पवेल्ली सरखी आ श्री सरस्वती देवी मने निर्मळ ज्ञान अने बुद्धि आपो ॥ ८ ॥ महिमा अने लब्धिरूप सर्व विश्वोत्तम गुणोरूपी किरणोवडे करीने जे सूर्यनी पेठे प्रकाशित होते छते. बीजा आचार्यो सूक्ष्म ताराओ सरखा लागे छे, एवा ते श्री देवसुंदरगणी महाराज (मारा) हर्षमाटे थाओ ॥ ९ ॥ आ मारा जेवा कठण पत्थर सरिखामां पण जेओए पोताना वचनोरूपी किरणोवडे करीने उत्तम ज्ञानरूपी रसनी उत्पत्ति करेली छे, तथा अमृतनुं (मोक्षनुं) दान देवामां तत्पर, एवा आ नवा चंद्र सरीखा श्री ज्ञानसागर गुरुने हुं भक्तिपूर्वक नमस्कार करुं छुं ॥ १० ॥

मूर्त्तिं सुधारसमयीमिव वीक्षमाणा । येषां सुधाप्लवसुखं ददतां दृशां ज्ञाः ॥ अक्ष्णामवाप्य मतिकृत्त्वमुदासते ते । श्री सोमसुंदरगणप्रभवो जयंतु ॥ ११ ॥ इति स्तुत्यगणं स्तुत्वा । मुनिसुंदरसूरिणा ॥ जैनधर्मोपदेशेन । क्रियते वाक् फलेग्रहिः ॥ १२ ॥ परोपकारः सततं विधेयः स्वशक्तितोद्युत्तमनीतिरेषा ॥ न स्वोपकारश्च स भिद्यते तत् । तं कुर्वतैतद्द्वितयं कृतं स्यात् ॥ १३ ॥ स चाखिलानिष्टवियोजनेन । सर्वेष्टसंयोजनतश्च साध्यः ॥ इष्टं त्विहाकैटभवैरिकीट मैकांतिकात्यंतिकमेव सौख्यं ॥ १४ ॥ तच्चास्ति मोक्षे न भवे यतोऽत्र । क्षणभंगुरं दुःखयुतं च शर्म ॥ दानेन मोक्षस्य तदर्थिनां तत् । सम्यक् प्रसाध्योऽत्र परोपकारः ॥ १५ ॥

आंखोने अमृतना छंटकावना सुखने आपनारा एवा गुरु महाराजनी, जाणे अमृत रसमय होय नहीं एवी मूर्तिने जोता थका विद्वानो (पोतानी) आंखोनी बुद्धिपूर्वक कृतिने पामीने संतुष्ट थाय छे, ते श्री सोमसुंदरगणी महाराज जयवंता वर्त्तो ॥ ११ ॥ ए रीते स्तुति करवा लायक गणने स्तवीने मुनि सुंदरसूरि जैन धर्मना उपदेशवडे करीने पोतानी वाणी सफळ करे छे ॥ १२ ॥ पोतानी शक्ति मुजब हमेशां परोपकार करवो, ए उत्तम माणसोनी नीति छे, वळी ते परोपकार स्वोपकारथी कंइ भिन्न नथी, अने तेथी ते परोपकार करनारे स्वोपकार अने परोपकार बन्ने करेला कहेवाय ॥ १३ ॥ वळी ते परोपकार सर्व दुःखोने दूर करवाथी, तथा सर्व सुखोने मेळवी आपवाथी साधेलो कहेवाय, अने एकांत तथा अत्यंत सुख तो अहीं छेककीडामांथी मांडीने विष्णु सुधीने प्रिय छे ॥ १४ ॥ अने तेवुं सुख तो मोक्षमां छे, परंतु संसारमां नथी, केमके संसारमां तो क्षणभंगुर अने दुःखवाळुं सुख छे, माटे तेना अर्थिओने मोक्षनुं दान आपीने, ते परोपकारने अहीं सम्यक् प्रकारे साधवो जोइए ॥ १५ ॥

मोक्षस्तु दातुं न करेण शक्य–स्तद्दर्शनीयस्तदवाप्त्युपायः ॥ उपायतः सम्यगुपासिताद्धि । भवेदुपेयस्य सुखेन सिद्धिः ॥ १६ ॥ तस्यास्त्युपायः खलु धर्म एव । तं च प्रवादा बहुधा वदंति ॥ पृथक् पृथक् स्वस्वमतीयशास्त्रैः । स्वरूपभेदहेतुफलादिवाग्भिः ॥ १७ ॥ न ते च सर्वे शिवसिद्ध्युपायाः । किंत्वेक एवाखिलवित्प्रणीतः ॥ सुदुर्लभोऽयं मिलितः परैस्तु । मुग्धैर्विनाशुद्धगुरूपदेशं ॥ १८ ॥ अयं पृथक्कृत्य ततः परेभ्यः । प्रदर्शनीयः शिवहेतुरेकः ॥ परेऽप्यशुद्धा इति दर्शनीयाः पृथक्कृतिर्ह्यस्य तथैव साध्या ॥ १९ ॥

वळी मोक्ष कंइ हाथथी आपी शकातो नथी, माटे ते मेळववानो उपाय देखाडवो जोइये. केमके सारी रीते साधेला उपायथी सुखे सुखे उपेयनी सिद्धि थाय छे ॥ १६ ॥ वळी ते मोक्षनी प्राप्तिनो उपाय तो धर्मज छे, अने ते धर्मने अन्यदर्शनीओ पोतपोताना मतना, स्वरूप, भेद, हेतु तथा फळो आदिकोनां वचनोवाळां जुदां जुदां शास्त्रोवडे करीने घणा प्रकारनो कहे छे ॥ १७ ॥ वळी ते सघळा धर्मो कंइ मोक्ष साधवाना उपायरूप नथी, परंतु एक सर्वज्ञ प्रभुएज प्ररूपेलो धर्म मोक्षसाधक छे, अने ते धर्म शुद्ध गुरुना उपदेश विना मुग्ध एवा अन्योने मळवो दुर्लभ छे ॥ १८ ॥ माटे मोक्षना एक हेतुरूप एवा ते धर्मने बीजा धर्मोथी जुदो पाडीने देखाडवो जोइये, तेमज बीजा धर्मो अशुद्ध छे, एम पण देखाडवुं जोइये तेम तेनुं अन्य धर्मोथी जुदापणुं पण सिद्ध करवुं जोइये ॥ १९ ॥

शिवार्थिनां मंदधियां ततो नृणा–मनुग्रहार्थं विविधैर्निदर्शनैः ॥ व्यक्त्या विशुध्यादिभिदां जिनोदितं । धर्मं ब्रुवेऽन्यानपि तत्प्रसंगतः ॥ २० ॥ सम्यग्जानते स्वल्पधियापि तेनो–पदेशरत्नाकरनामशास्त्रं ॥ नानातरंगादिमयोपदेशै–र्दधत्स्वरूपं स्वपरोपकृत्यै ॥ २१ ॥ विचार्यते शक्तिरथाप्यशक्ति–र्न वै मया येन तयोर्विचारः ॥ परोपकारैकरसे कलंक–स्तत्र प्रवृत्तश्च तदेकहेतोः ॥ २२ ॥ व्याख्यातॄणां बुद्धिभेदान् विभाव्य । श्रोतॄणामप्याशयाननेकरूपान् ॥ तादृक् सामग्र्योपकार्योपकारं । जानेऽनेकैरेव धर्मोपदेशैः ॥ २३ ॥

माटे मोक्षना अर्थी एवा मंदबुद्धि माणसोनो अनुग्रह माटे नानाप्रकारना दृष्टांतोवडे करीने विशुद्धि आदिक भेदोनी व्यक्तिपूर्वक जिनेश्वर प्रभुए कहेलो धर्मज हुं कहुं छुं, तेम ते प्रसंगे बीजा धर्मोनुं स्वरूप पण हुं कहुं छुं ॥ २० ॥ अने तेटला माटे मंदबुद्धि एवो पण हुं विविध प्रकारना तरंग आदिकवाळा उपदेशोवडे स्वरूपने धारण* करनारा एवा आ उपदेश रत्नाकर नामना शास्त्रनो मारा अने अन्योना उपकार माटे प्रारंभ करुं छुं ॥ २१ ॥ वळी (आ कार्यमां) हुं मारी शक्ति अथवा अशक्तिनो पण विचार करतो नथी, केमके तेनो विचार करवो, ते परोपकाररूपी एक रसनी अंदर कलंक जेवो लागे छे, अने हुं तो अहीं फक्त एक परोपकार माटेज प्रवृत्त थयेलो छुं ॥ २२ ॥ व्याख्यान करनाराओना बुद्धिना भेदोने, तेमज सांभळनाराओना पण अनेक प्रकारना आशयोने जाणीने तेवी रीतनी सामग्रीवडे करीने अनेक प्रकारना धर्म संबंधि उपदेशोथीज उपकारीओपर उपकार थाय एम हुं जाणुं छुं ॥ २३ ॥

* स्व नामने सार्थक करनारा.

ऐकाह्निकागमगम्भीरफलैःसदन्यमिथ्यात्विजडकबुधेतरयोग्यताद्यैः ॥ भेदैस्ततो नवनवैः सुकृतोपदेशान् । वक्ष्ये बहूनिहपरप्रतिबोधसिद्ध्यै ॥ २४ ॥[1] एतद्वृत्तद्वयस्य व्याख्या—व्याख्याकृतां बुद्धिभेदान् मंदमंदतरविशिष्टविशिष्टतराद्यवगमरूपान् प्रकरणसिद्धांतविचारकथादिव्याख्येयरुचिरूपान् वा, श्रोतॄणामप्याशयांश्चैतदनुसारेण विचित्ररूपान् विभाव्य, तादृक् सामग्र्येति तादृशा क्षेत्रावसरश्रोतृपुरुषादिवैचित्र्यरूपया सामग्र्या उपकार्याणां किं व्याख्यास्यत इति चिंतानिरासेनोपदेष्टॄणांनवनवव्याख्यानश्रवणप्रमोदिश्रोतॄणां चोपकारमुपदेशैरनेकैर्विचित्रैरेव जाने, इति संटंकः॥ २४ ॥[2]

अने तेटलामाटे एक दिवस वांची शकाय तेवा अने तेथी अन्य आगमने अनु सरनारा अने तेथी अन्य, गंभीर अर्थोवाळा अने तेथी अन्य, पुण्य पापनां फळोने प्रकाश करनारा अने तेथी अन्य, तेमज मिथ्यात्विओनी अने तेथी अन्योनी जडकोनी अने तेथी अन्योनी, विद्वानोनी अने तेथी अन्योनी योग्यता आदिक नवा नवा भेदोवडे करीने अन्यना प्रतिबोधनी सिद्धि माटे आ कार्यमां हुं घणा सुकृत उपदेशो कहीश ॥ २४ ॥[1] हवे ते (त्रेवीस अने चोवीसना आंकवाळा) बन्ने काव्योनी व्याख्या करे छे—व्याख्यान करनाराओना बुद्धि भेदोने एटले मंद अथवा वधारे मंद, विशेष अथवा वधारे विशेष इत्यादिक ज्ञानरूपी भेदोने, अथवा प्रकरण, सिद्धांत, विचार कथा आदिकनी व्याख्यान करवा योग्य रुचिरूपी भेदोने जाणीने तेवी रीतनी सामग्रीवडे करीने, एटले तेवी रीतनां क्षेत्र, काळ तथा श्रोता पुरुष आदिकनी विचित्रतारूप सामग्रीवडे करीने, अर्थात् उपकार करवा लायक मनुष्यो प्रते शानुं व्याख्यान करीशुं ? एवी रीतनी चिंताने दूर करवावडे करीने उपदेश देनाराओ प्रते, तेमज नवां नवां व्याख्यानना श्रवणवडे करीने हर्ष पामनारा श्रोताओ प्रते नाना प्रकारना उपदेशोवडे करीनेज उपकार थाय छे, एम हुं मानुं छुं, एवो संबंध जाणवो ॥ २५ ॥[2]

ऐकाह्नि०—ततः श्रीऑंकारणादिहोपदेशरत्नाकराह्वे ग्रंथे नवनवैर्जैनैर्बहून् सुकृतोपदेशान् वक्ष्ये इति योगः, केदानेव कियतो नामग्राहमाह—ऐकाह्निकेत्यादि, एकदिनव्याख्यानार्हा ऐकाह्निकाः, एतदन्यशब्दस्य प्रत्येकं योजनात् एतेभ्योऽन्ये द्व्याह्निकादयः, आगमेति सूचकत्वात्सूत्रस्य आगमानुसारिण आगमालापकाद्यर्थरूपा एतदन्ये प्रकरणविचाराद्यर्थरूपाः स्वमतिग्रथितवृत्तगाथादिरूपाश्च, गम्भीरेति, गम्भीरार्था एतदन्ये प्रकटार्थाः, फलेति, पुण्यपापफल प्रकाशनरूपाः, एतदन्ये पुण्यपापस्वरूपकारणादिप्रकाशनरूपाः, अत्रैह्निकादीनां चतुर्णां पदानां द्वंद्वं कृत्वा, तत् एतदन्यशब्देन बहुवचनांतेन द्वंद्वः। तथा मिथ्यात्विनां इतरशब्दस्य प्रतिपदं योगात्तदितरेषां मिश्रसम्यग्दृगादीनाम्, जडकाणां इतरेषां कठिनादिप्रकृतीनामभिगृहीतमिथ्यात्वादिना तच्छास्त्राऽनुपदेशार्हाणां. बुधानां स्वपरशासनाऽनुगविज्ञानां. इतरेषां मुग्धादीनां च. प्राग्वद्द्वंद्वे योग्या उपदेशा इति सर्वत्र विशेष्यपदाऽध्याहारः

ततः प्राग्योजितपदैर्द्वंद्वे. तेषां जातस्तत्ता. तदाद्यैर्जैनैः आदिशब्दाद्राजमंत्रिक्षत्रियब्राह्मणादिवेश्यग्रहः ॥१७॥

अने तथी एटले पूर्वे कहेलां कारणथी अहीं, एटले आ उपदेशरत्नाकर नामना ग्रंथमां नवा नवा भेदोवडे करीने घणा सुकृत उपदेशोने हुं कहीश; एवो (काव्यनो) संबंध छे. हवे तेमाना केटलाक भेदोनेज नाम लइने देखाडे छे. एक दिवसमां जेनुं व्याख्यान थइ शके, तेवा उपदेशो ऐकाह्निक कहेवाय. 'तथी अन्य' ए शब्दने दरेकनी साथे जोडवाथी तेओथी अन्य एटले बे आदिक दिवसोमां जेओनुं व्याख्यान थइ शके एवा उपदेशो जाणवा. आगम ए सूत्रने सूचवनारूं होवाथी आगमने अनुसरनारा एटले आगमना आलावा आदिकना अर्थरूप उपदेशो जाणवा; तेमज तथी अन्य एटले प्रकरणोना विचार आदिकना अर्थरूप, तथा पोतानी बुद्धिथी रचेलां काव्य तथा गाथा आदिकरूप उपदेशो जाणवा. गंभीर एटले गहन अर्थोवाळा, अने तेओथी अन्य एटले प्रगट अर्थोवाळा उपदेशो जाणवा. फळ एटले पुण्यपापनां फळोने प्रकाशनारा, अने तथी अन्य एटले पुण्यपापोनां स्वरूप तथा कारण आदिकने प्रकाशवारूप उपदेशो जाणवा. अहीं 'ऐकाह्निकादिक' चारे पदोनो द्वंद्व समास करीने पछी बहु वचनांत 'एतदन्य' शब्दनी साथे द्वंद्व समास करवो. वळी मिथ्यात्विओ प्रते तथा 'इतर' शब्दने दरेक पद साथे जोडवाथी तेओथी अन्य प्रते एटले मिश्र सम्यग् दृष्टिओ प्रते, तेमज जडको प्रते तथा तेओथी अन्य प्रते एटले कठिन आदिक प्रकृतिवाळाओ प्रते अर्थात् ग्रहण करेल, एवा मिथ्यात्वे करीने ते शास्त्रोना उपदेशने नहीं लायक एवाओ प्रते. वळी पंडितो प्रते एटले पोतानां शासननुं अनुकरण करनाराओ प्रते, तथा अन्य शासननुं ज्ञान धरावनाराओ प्रते तेओथी अन्य प्रते एटले मुग्ध आदिको प्रते पूर्वनी पेठे द्वंद्व समास करते छते, योग्य एवा उपदेशो, एवी रीतनां विशेष पदनो सर्व जगोए अध्याहार जाणवो.

पछी पूर्वे योजेलां पदोनी साथे द्वंद्व समास करवो. तेओनो जे भाव, ते तेओनी योग्यतापणुं कहेवाय. ते आदिक भेदोवडे करीने आदि शब्दथकी राजा, मंत्रि. क्षत्रिय, ब्राह्मण, आदिकने योग्य, एवा उपदेशोनुं ग्रहण करवुं ॥ २४ ॥

॥ ५ ॥ स्तुवे तमुच्चैर्विजहाति गोस्तनी-रसोऽप्यसत्यैर्न तु निन्दतीह यः ॥ स्वकार्यतो योऽप्युपजीव्य दूषये-द्वैतैः कवेर्वाचममुं तु धिक्खलं ॥ २५ ॥ कवेर्न दोषोऽयममुष्य यद्गिरं वदत्यदोषाम पि दोषिणीं खलः ॥ रविर्न दुष्टोऽत्र यदस्य नांधिक-स्त्विषन् सुदीप्रामऽपि वेत्ति तामसीं ॥ २६ ॥ स्तवं स कस्यार्हति नो गणः सतां । विदूरसूक्ष्मार्थदृगप्यहो न यः ॥ परस्य दोषान् महतोऽप्य वेक्षते । न वक्ति वा यो हृदयस्थितानऽपि ॥ २७ ॥ सदूषणास्ते न खलाः कथं स्यु-र्गृह्णंति येतान्यऽनुशास्त्रगुंफं ॥ रीत्यैव संतः सगुणा गुणान् ये । समंततोऽप्याददते कवीनां ॥ २८ ॥

ते हंसनी हुं स्तुति करूं छुं, के जे द्राक्षने तजि आपे छे, परंतु असत्य वचनोथी तेनी निंदा करतो नथी, वळी ते खल मनुष्यने धिक्कार छे, के जे पोतानी मतलब साधी लेइने असत्य वचनोद्वारा कविनी वाणीने दूषित करे छे. ॥ २५ ॥ कविनी निर्दोष वाणीने पण खल मनुष्य जे दूषणवाळी कहे छे, ते कविनो दोष नथी, परंतु ते खलनोज दोष छे, केमके सूर्यनी तेज युक्त कांतिने पण घूवड जे अंधकारमय जाणे छे, तेमां कंइ सूर्य दूषणवाळो नथी, (अर्थात् ते घूवडज दूषणवाळो छे.) ॥ २६ ॥ जे सज्जनोनो समुह दूरदर्शी तथा सूक्ष्म पदार्थोने पण जोवावाळो छे छतां पण आश्चर्यनी वात छे के, परना महान् दोषोने पण जे जोइ शकतो नथी, अथवा हृदयमां रहेला ते दोषोने पण जे (मुखथी) प्रकाशतो नथी, एवो ते सज्जनोनो समुह कोनी स्तुतिने लायक नथी? ॥ २७ ॥ ते खल मनुष्यो दूषण युक्त केम न होय? के जेओ दरेक शास्त्रनी रचनामांथी ते दूषणोनेज ग्रहण करे छे, वळी तेज रीतिथी सज्जनो गुण युक्त केम न होय? के जेओ चारे बाजुथी कविओना गुणोने ग्रहण करे छे. ॥ २८ ॥

संतस्ते सुचिरं जयंतु सुतरामीहे खलानप्यमून् ॥ शास्त्रे येऽनुपदं गुणप्रकटनाद्दद्युः प्रतिष्ठां कवेः ॥ ये चाऽनुग्रहकाम्ययेव विविधान् दोषान् गृहीत्वाथवा । यादृक्तादृगपीदमर्थि गुणकृद्भूयाज्जयश्रीप्रदं ॥ १९ ॥

इति श्री तपागच्छे श्री मुनिसुंदरसूरिविरचिते जयश्रयंके श्री उपदेशरत्नाकरे पीठिका रूपो जगतीतीर्थावतारः ॥

ते संत पुरुषो घणा काळ सुधि जय पामो वळी ते खल पुरुषोनी पण हुं सारी रीते स्तुति करुं छुं, ते संत पुरुषो केवा छे? तो के, जेओए (पगले पगले अथवा) शास्त्रना पदे पदे गुणोने प्रगट करीने कविने शोभा आपेली छे; वळी ते खल पुरुषो केवा छे? तो के जेओए जाणे कृपानी इच्छाथी होय नहीं तेम विविध प्रकारना दोषोने ग्रहण करीने (कविने शोभा आपेली छे); एवी रीते कोइ पण रीते आ शास्त्र (तेना) अर्थिओने गुण करनारुं तथा जय अने लक्ष्मी देनारुं थाओ? ॥ १९ ॥

“ एवी रीते श्री तपागच्छमां श्री मुनिसुंदर सूरिए रचेला जयश्रीना चिन्हवाळा श्री उपदेशरत्नाकर नामना ग्रंथमां पीठिकारूप जगतीतीर्थावतार जाणवो. ॥

॥ अथ प्रथम तटं ॥

तत्रादौ स्वेष्टसिद्धये समुचितेष्टदेवतानमस्कारमंगलं चिकीर्षुर्युगादिसमयेसमग्रधर्मकर्मव्यवस्थितिसूत्रणासूत्रधारश्रीऋषभदेवनमस्कारमाह ग्रंथकारः ॥ १ ॥

जयश्रीसंगमं रातु । श्रीमानादिजिनो मम ॥ सुतत्त्वनिधयो येन । सतां दत्ता हितैषिणा ॥ २ ॥

॥ अथ प्रथम तटं ॥

त्यां प्रथम पोतानी इच्छित सिद्धि माटे उचित अने इष्ट देवने नमस्काररूप मंगळ करवानी इच्छावाळा ग्रंथकार, युगनी आदि वखते सर्व धर्मकार्यनी रचनाना सूत्रधार सरखा श्री ऋषभदेव प्रभुने नमस्कार करे छे ॥ १ ॥

जे हितेच्छु एवा श्री आदिनाथ प्रभुए सज्जनोने उत्तम तत्त्वोना भंडारो आपेला छे, ते श्री आदिनाथ प्रभु मने जयलक्ष्मीनो संगम आपो ? ॥ २ ॥

स्पष्टं ॥ धर्मं ब्रुवे इत्युक्तं प्राक्, अथ धर्मस्यैवादौ ग्रहणविधिमुपलक्षणात्प्रदान-विधिं चाभिधित्सुः फलप्रधानाः प्रारंभाः प्रेक्षावतां भवंति इति फलाविष्करणपूर्वकं तद्वि-षयमुद्यमोपदेशमाह ॥ ३ ॥

जयसिरिवंछिअसुहए । अणिट्ठहरणे तिवग्गसारंमि ॥
इहपरलोअहिअत्थं । सम्मं धम्मंमि उज्जमह ॥ १ ॥

व्याख्यान—जय सिरित्ति, जयः सर्वोत्कर्षः समग्रबाह्यांतरंगद्विषज्जयेन श्रीभर-तचक्रवर्त्तिप्रभृतीनामिव ॥ १ ॥

उपरना श्लोकनो अर्थ स्पष्ट छे." हुं धर्म कहुं छुं एम पेहेलांज कहेलुं छे; हवे आदिमां धर्मनेज ग्रहण करवानी विधिने, तथा उपलक्षणथी धर्मनुं दान देवानी विधिने कहेवानी इच्छावाळा ग्रंथकार, 'विद्वा-नोना प्रारंभो फलप्रधान होय छे' एवा हेतुथी फलने प्रगट करवा पूर्वके ते धर्मना विषयवाळो उद्यम संबंधि उप-देश कहे छे ॥ ३ ॥

जय,, लक्ष्मी तथा वांछित सुखने देनारा, अनिष्टने हरनारा तथा त्रणे वर्गोमां सारभूत एवा सम्यग् धर्मने विषे आ लोक अने परलोकना हितने अर्थे तमो उद्यम करो ॥ १ ॥

व्याख्या—जय एटले सर्व प्रकारे उत्कर्ष, अने ते श्री भरत चक्रवर्त्ति आदिकोनी पेठे बहारना अने अंतरंगना सघळा वैरीओने जीतवाथी थाय छे. ॥ १ ॥

देशोत्कर्षश्च कियद्द्विषज्जयेन श्रीकृष्णमहाराजादीनामिव ॥ २ ॥
श्रियो मणिसुवर्णाद्या राज्यादिकाश्च, नवनिध्यवधयोऽत्र इंद्राऽहमिंद्रत्वाद्याः ॥ ३ ॥
परत्र तीर्थकृत्पदसंबंधिन्योऽष्टमहाप्रातिहार्यादयश्च ॥ ४ ॥
जयेन युक्ता वा श्रियः प्राग्वर्णितस्वरूपाः जयश्रियः ॥ ५ ॥
वांछितानि सुखानि च श्रीशालिभद्रादीनामिव, उपलक्षणाद्वांछाऽतिगानि चः ॥६॥
ततः पदद्वयस्य पदत्रयस्य द्वंद्वे, तानि ददातीति जयश्रीवांछितसुखदः, तस्मिन् ॥ ७ ॥

देशथी उत्कर्ष श्री कृष्ण महाराज आदिकोनी पेठे केटलाक शत्रुओने जीतवाथी थाय छे ॥ २ ॥

लक्ष्मी एटले आ लोकमां मणिसुवर्ण आदिक, राज्यआदिक, तथा ठेक नवनिधि पर्यंत इंद्र अहमिंद्रपणा आदिक जाणवी ॥ ३ ॥

तथा परलोकमां तीर्थंकरनी पदवी संबंधि आठ महाप्रातिहार्यादिकनी लक्ष्मी जाणवी. ॥ ४ ॥

अथवा जयवडे करीने युक्त एवी जे लक्ष्मी, के जेनुं स्वरूप पूर्वे वर्णववामां आव्युं छे, ते जयलक्ष्मी कहेवाय ॥ ५ ॥

वळी वांछित सुखो शालिभद्रादिकोनी पेठे जाणवां, तथा उपलक्षणथी वांछाथी पण अधिक सुखो जाणवां. ॥ ६ ॥

पछी बन्ने पदोनो अथवा त्रणे पदोनो द्वंद्व समास करवो. तेओने एटले जय, लक्ष्मी अने वांछित सुखोने देनारो जे धर्म, तेने विषे तमो (उद्यमकरो) ॥ ७ ॥

तथा अनिष्टं दुःखं दुःखनिमित्तं च, आधिव्याधिव्यसनशोकेष्टवियोगाऽनिष्टयोगदुष्टग्रहदेवताद्युपद्रवदारिद्र्यादि, तत् हरति, स्वाराधकगतं परगतं उभयगतं चेत्यनिष्टहरणस्तस्मिन् ॥ ८ ॥

तत्र स्वाराधकगतं यथा सुदर्शनश्रेष्ठिधम्मिल्लविद्यापतिचंदनबालादिनां शीलतपोदानादिधर्मः ॥ ९ ॥

परगतं यथा तीर्थंकरलब्धिसंपन्नमहर्ष्यादीनां तादृक् तपः, यथा निजस्नानजलनिखिलनरतिर्यक्सर्वरोगाद्युपद्रवापहर्तृ स्वकरस्पर्शश्रीलक्ष्मणहृदयप्रविष्टशक्तिविनाशिविशल्यादीनां च प्राग्भवाद्याचीर्णं तपः ॥ १० ॥

(वळी ते धर्म केवो छे? तोके) अनिष्ट एटले दुःख अने दुःखनां निमित्तो, जेवांके आधि, व्याधि, व्यसन, शोक, इष्टनो (वहालाना) वियोग, अनिष्टनो (शत्रुओनो) संयोग, दुष्ट ग्रह तथा देवता आदिकना उपद्रवो तथा निर्धनता आदिक, तेने जे हरे छे, अर्थात् स्वाराधकगत दुःखने, परगत दुःखने अने उभयगत दुःखने जे हरे छे ते धर्म अनिष्टने हरनारो कहेवाय, एवा ते धर्मने विषे तमो (यत्न करो?) ॥ ८ ॥

तेमां स्वाराधकगतना (एटले पोताना भक्तना) संबंधमां सुदर्शन शेठ, धम्मिल्ल विद्यापति तथा चंदनबाला-आदिकोना (अनुक्रमे) शील, तप तथा दानादिक रूप धर्म जाणवो. ॥ ९ ॥

परना दुःखने हरवाना संबंधमां तीर्थंकर महाराजनो तथा लब्धिवाळा महामुनि आदिकोनो तेवा प्रकारनो तप जाणवो; जेम पोताना स्नानना जळथी सर्व मनुष्य तथा तिर्यंचोना सर्व प्रकारना रोग आदिक उपद्रवने हरनार, तथा पोताना हाथना स्पर्शथी श्री लक्ष्मणना हृदयमां पेठेली शक्तिने दूर करनार एवी विशल्या आदिकोनो पूर्व भवादिकमां करेला तपनो प्रभाव जाणवो ॥ १० ॥

उभयगतं च यथा श्रीधर्मनृपस्य सचित्तादिविरतिः पात्रादिदानं चेति ॥ ११ ॥

उभयगताऽनिष्टहरणे धर्मनृपोदाहरणं यथा ॥ १२ ॥

कमलपुरे कमलसेननृपस्य पुरोऽन्यदा नैमित्तिको द्वादशवार्षिकं दुर्भिक्षं आख्य-चकथत् ॥ १३ ॥

राज्ञश्चिंतातुरस्य सभास्थस्याषाढनवम्यां मक्षिकापक्षमात्रमभ्रं जातं ॥ १४ ॥

सभ्यैः प्रेक्ष्यमाणं मनोरथैःसहाऽवर्धत ॥ १५ ॥

जलदवृष्ट्या जवाज्जलस्थलैक्यमजायत ॥ १६ ॥

गतं दुर्भिक्षं दुरितैः सह जनानां ॥ १७ ॥

उभयगत अनिष्टने हरवाना संबंधमां श्रीधर्म राजानी सचित्त आदिकनी विरति अने सुपात्र आदिकमते दान जाणवुं ॥ ११ ॥

ते उभयगत अनिष्टने हरवाना संबंधमां धर्मराजानुं नीचे मुजब दृष्टांत जाणवुं ॥ १२ ॥

एक दहाडो कमलपुरमां कमलसेन राजानी पासे निमित्तिए कह्युं के बार वर्षोनो दुकाळ पडशे ॥ १३ ॥

(ते सांभळी) चिंतातुर थयेलो राजा अषाड मासनी नोमने दिवसे ज्यारे सभामां बेठो हतो त्यारे फक्त माखीनी पांख जेवडुं एक वादळुं थयुं ॥ १४ ॥

सभासदोना जोतजोतामां मनोरथोनी साथे ते वादळुं वधवा लाग्युं ॥ १५ ॥

अने तुरत वरसाद वरसवाथी सघळुं जळमय थई गयुं ॥ १६ ॥

अहोज्ञानीत्युपजहसे नैमित्तिकः ॥ १८ ॥

अन्यदा चतुर्ज्ञानी युगंधरगुरुरागमत् ॥ १९ ॥

राजादयस्तं वंदित्वा नैमित्तिकोक्तं कथं विघटितमित्यप्राक्षुः ॥ २० ॥

गुरुराह ग्रहचारयोगेन द्वादशवार्षिकं दुर्भिक्षं भाव्यपि कस्यचित् पुण्यवतो महता पुण्योदयेन क्षिप्तं, तत्स्वरूपं यथा ॥ २१ ॥

पुरिमतालपुरे प्रवरदेवनामोच्छिन्नकुलः सदाऽपथ्यसेवितत्वेन सर्वरोगी, अजीर्णेन कुष्ठ्यभूत् ॥ २२ ॥

अहो! महोटो ज्ञानी! एम कही ते निमित्तिआनी हांसी थवा लागी. ॥ १८ ॥

हवे एक दहाडो त्यां चार ज्ञानवाळा युगंधर गुरु आव्या ॥ १९ ॥

राजा आदिकोए तेमने वांदीने पूछ्युं के (हे भगवान!) निमित्तिआनुं कहेलुं केम जुठुं पड्युं? ॥ २० ॥

गुरुए कह्युं के ग्रहचारना योगथी बार वर्षोनो दुकाळ पडनार हतो, परंतु कोइक पुन्यवानना मोटा पुण्योदये करीने ते दूर थयो. तेनुं वृत्तांत नीचे मुजब छे. ॥ २१ ॥

पुरिमताल नामना नगरमां जेनुं कुळ नष्ट थयेलुं छे, एवो प्रवरदेव नामनो मनुष्य हमेशां अविरतिपणाथी सर्वरोगी हतो, अने तेथी अजीर्ण रोगे करीने ते कुष्टी थयो. ॥ २२ ॥

३

लोकैर्धिक्कृतो मुनीन् दृष्ट्वा, कथं मे कुष्ठरोगः, कथं च उपशाम्यत्येषः ॥ २३ ॥

तेऽप्यूचुः, जड अविरतो ह्यात्माऽसंतोषतो यत्र तत्र यत्तद् यदातदा खादति, ततोऽजीर्णप्राबल्येन कुष्ठादिरोगोद्भवः ॥ २४ ॥

यदि च विरतो भूत्वा चतुर्विधाहारपरिमाणतो भोजनं कुर्वे तदा रोगक्षयः श्रेयश्च स्यात् ॥ २५ ॥

तत एकमन्नं एका विकृतिरेकं शाकं च प्रासुकं नीरमिति परिमितभोजी बभूव, क्रमान्नीरोगतां गतः सः ॥ २६ ॥

लोकोए धिक्कारवाथी (अेक दहाडो) मुनिओने जोइने तेओने कहेवा लाग्यो के, मने कोढनो रोग शाथी थयो? अने हवे ते केम नष्ट थाय? ॥ २३ ॥

त्यारे मुनिओए कह्युं के हे जड! विरतिविनानो जीव असंतोषथी ज्यां त्यां, जे ते, अने ज्यारे त्यारे खाधा करे छे, अने तेथी अजीर्ण रोगनी प्रबलताथी कुष्ट आदिक रोगोनी उत्पत्ति थाय छे. ॥ २४ ॥

माटे जो विरतिवाळो थइने चारे प्रकारना आहारोनुं तुं अमुक परिमाणथी भोजन करीश, तो रोगनो नाश थइने तारुं कल्याण थशे. ॥ २५ ॥

पछी ते एकज अनाज, अेकज विगय, शाक अने अचित्त जळना परिमित भोजनवाळो थयो, अने तेथी अनुक्रमे ते नीरोगीपणाने पाम्यो. ॥ २६ ॥

ततोऽवगतधर्ममाहात्म्यो निष्पापवृत्त्या व्यवहरन् क्रमतः प्राप कोटीमितं धनं ॥२७॥

स्वयं भोगोपभोगपराङ्मुखो नियमिताहारभोजी पात्रदीनादिदानपरोऽजनि ॥२८॥

एकदा दुर्भिक्षसमये प्रत्यहाभयप्रासुकघृतादिभिर्लङ्कमितान् महर्षीन्, प्रच्छन्नदानादिनोद्दध्रे च लक्षशः साधर्मिकान् ॥ २९ ॥

एवं यावज्जीवमखंडितव्रतो मृत्वा सौधर्मे शक्रसामानिकोऽभूत् ॥ ३० ॥

त्यारबाद धर्मनुं माहात्म्य जाणीने पापरहित वृत्तिथी व्यापार करतां थकां अनुक्रमे ते क्रोडगमे द्रव्य पाम्यो ॥ २७ ॥

पोते भोगोपभोगथी रहित थयां थकां नियमित आहारना भोजनवाळो थइने, सुपात्र तथा दीन आदिकोने दान आपवामां तत्पर थयो ॥ २८ ॥

एक समये दुकाळ वखते निर्दोष घृत आदिकथी लाख मुनिओने तेणे प्रतिलाभ्या, तथा गुप्त दान आदिकवडे करीने लाखो गमे साधर्मीओनो तेणे उद्धार कर्यो २९ ॥

एवी रीते जेक जीवित पर्यंत अखंड रीते व्रत पाळ्या बाद मृत्यु पामीने सौधर्म देवलोकमां शक्रसामानिक देवता थयो ३० ॥

सावय कुलंमि वर, हुज, चेरुओ। नाणदंसणसमेओ ॥ मिच्छत्तमोहिअमइ ।मा रायचक्कवट्टीति ॥ ३१ ॥

इत्यादि विनायधर्मस्तम्भ्युतेऽत्रैव पुरे शुद्धबोधश्रेष्ठिनो व्योमश्रापत्न्यां सुतो जातः ॥ ३२ ॥

तत्पुण्योदयेन दुर्भिक्षं ग्रहचारादियोगेनोत्पन्नमपि प्रणष्टं ॥ ३३ ॥

इति गुरुवचः श्रुत्वा विस्मितमना राजा राजन्यादिपरिवृतः शुद्धबोधश्रेष्ठिगृहे गतः ॥३४॥

पुत्रं सर्वलक्षणं अंकोत्संगे कृत्वोवाच. भो पुण्यशालिन् जगदाधार दुर्भिक्षभंजक नमो भवते ॥ ३५ ॥

ज्ञान दर्शने करीने युक्त एवा श्रावकना कुळमां दास थवुं सारुं, परंतु मिथ्यात्वथी मोहित बुद्धिवाळा एवा चक्रवर्ती राजा थवुं पण सारुं नथी ॥ ३१ ॥

इत्यादि भावना भावतो थको त्यांथी चवीने ते आज नगरमां शुद्धबोध नामना शेठनी व्योमश्रा नामनी स्त्रीनी कुक्षिए पुत्रपणे उत्पन्न थयो छे. ॥ ३२ ॥

तेना पुण्योदयवडे करीने ग्रहचार आदिकना योगथी उत्पन्न थयेलो दुकाळ पण नाश पाम्यो छे ॥ ३३ ॥

एवी रीतनुं गुरुनुं वचन सांभळीने अंतःकरणमां आश्चर्य पामेलो राजा, राजपुरुषो आदिकथी परिवर्यो थको शुद्धबोध शेठने घेर गयो ॥ ३४ ॥

त्यां सर्व लक्षणोवाळा ते पुत्रने जोइने खोळामां बेसारीने एम कह्युं के, हे पुण्यशाळी! हे जगतना आधारभूत! हे दुकाळनो नाश करनार तारा प्रत्ये नमस्कार थाओ? ॥ ३५ ॥

त्वमेवात्र तात्विको राजा अहं तवारक्षस्त्वेवास्मीत्यभिधाय धर्मनृप इति नाम तस्य दत्तवान् ॥ ३६ ॥

यौवने बह्वीः राजकन्याः परिणिन्ये सः, तत्पुण्यप्रभावाच्च प्रजासु अशिवदुर्भिक्षादिनामाप्यनश्यत् ॥ ३७ ॥

सदा प्रमोदाऽद्वैतं चाभूत्, सम्यक्त्वद्वादशव्रताराधकः स भुक्तभोगः क्रमाद्दीक्षामादाय तद्भव एवाप्तकेवलः प्राप मुक्तिमिति ॥ ३८ ॥

एवं धर्मनृपस्य विरतिपात्रादिदानरूपो धर्मः स्वपरयोरनिष्टं रोगदारिद्र्यादि दुर्भिक्षादि चाहार्षीदिति ॥ ३९ ॥

वळी तुंज अहीं खरेखरो राजा छे, अने हुं तो तारो कोटवाळ (नोकर) छुं, एम कहीने तेणे तेनुं 'धर्मराजा' एवं नाम पाड्युं ॥ ३६ ॥

वळी ते यौवन अवस्थामां घणी कन्याओने परण्यो; अने तेना पुण्य प्रभावथी प्रजामां दुःख अने दुकाळ आदिकनुं नाम पण नाश पाम्युं ॥ ३७ ॥

अने हमेशां आनंद आनंद थइ रह्यो; वळी ते सारी रीते बारे व्रतोने आराधीने तथा भोगो भोगव्या बाद अनुक्रमे दीक्षा लेइने तेज भवे केवळ ज्ञान पामी मोक्षे गयो ॥ ३८ ॥

एवी रीते धर्म राजानी विरति अने सुपात्र आदिकोमां दान देवा रूप धर्मे, पोताना अने परना अनिष्टने एटले रोगदारिद्र्य आदिकने तथा दुकाळ आदिकने हरी लीधो ॥ ३९ ॥

तथा त्रिवर्गो धर्मकामार्थाः, तेषु सारः, धर्ममूलत्वादितरयोः, तदुक्तं—धर्मे सिद्धे ध्रुवा सिद्धि- र्ध्रुम्नप्रद्युम्नयोरपि ॥ दुग्धोपलंभे सुलभा । संपत्तिर्दधिसर्पिषोः ॥ ४० ॥

तस्मिन् धर्मे इहलोकपरलोकयोर्हितार्थं हे भव्याः, सम्मंति सम्यग् विधिशुद्धयाभाव शुद्धया च, तथैवाराधने समग्रफलत्वात् ॥ ४१ ॥

यद्वा सम्यगिति धर्मविशेषणं, असम्यग्धर्मस्य कूटकार्षापणस्येव अभिलषितफला- ऽनर्पकत्वात्, ततश्चैवंविशेषणे सम्यग्धर्मे उद्यच्छतेतिगाथार्थः ॥ ४२ ॥

वळी ते धर्म केवो छे? तोके धर्म, काम अने अर्थ रूप जे त्रिवर्ग, तेमां सारभूत छे, केमके अर्थ अने कामनुं मूळ धर्म छे. कह्युं छे के—धर्मनी सिद्धि होते छते अर्थ अने कामनी निश्चये सिद्धि थाय छे; केमके दूध मळवाथी दहीं अने घीनी प्राप्ति सुलभ छे ॥ ४० ॥

एवी रीतना ते धर्मने विषे आ लोक अने परलोकना हितने माटे हे भव्यो! सम्यग् प्रकारे शुद्ध विधिथी तथा शुद्धभावथी (तमो प्रयत्न करो?) केमके तेवी रीते धर्मनुं आराधन करवाथी समस्त फळ मळे छे ॥ ४१ ॥

अथवा 'सम्यग्' ए धर्मनुं विशेषण जाणवुं. केमके असम्यग् धर्म खोटा सिक्कानी पेठे इच्छित फळने आपी शकतो नथी; माटे एवी रीतना विशेषणवाळा सम्यग् धर्मने विषे तमो प्रयत्न करो? एवी रीते गाथानो अर्थ जाणवो. ॥ ४२ ॥

॥ एवी रीते पेहेलो तरंग समाप्त थयो. ॥

इति प्रथमस्तरंगः समाप्तः

अथ द्वितीयस्तरंगः

अथास्य परमरहस्यभूतस्य धर्मस्य ग्रहणविधिमाह ॥ १ ॥

जुग्गेहिं जुग्गपासे । सो पुण जुग्गो गहिज्जए विहिणा ॥ संपुन्न सुह फलो जं । एवं चिअ अन्नहा इयरं ॥ २ ॥

हवे आ उत्कृष्ट सारवाळा धर्मने ग्रहण करवानी विधि कहे छे. ॥ १ ॥

वळी ते धर्म योग्य मनुष्यो योग्यनी पासे योग्य रीते विधि पूर्वक ग्रहण करे छे; केमके एवी रीते योग्यता पूर्वक ग्रहण करेलो धर्म संपूर्ण शुभ फळने देनारो छे; अने जो तेथी उलटो एटले अयोग्यतापूर्वक ग्रहण करवामां आवे, तो अशुभ फळ देनारो थाय ॥ २ ॥

द्वारगाथाव्याख्या—जुग्गेहिंत्ति. स पुनर्धर्मो योग्यैर्गृह्यते, योग्यानामेव दीयत इत्यर्थः ।३।

बहिर्मलप्रक्षालनं जलमपिहि योग्य एव पात्रे निधीयते, नत्वयोग्ये. तत्राऽनर्थफल-त्वात् ॥ ४ ॥

किं पुनर्जन्मसहस्रसंचितांतरंगमलतृष्णातापदुःखापत्तिविच्छेदहेतुर्धर्मः. ॥ ५ ॥

त उक्तं—आमे घडे निहत्तं । जहा जलं तं घडं विणासेइ ॥ इअ सिद्धंतरहस्सं । अप्पाहारं विणासेइ ॥ ६ ॥

तथा जुग्गपासेत्ति. योग्यनामेव पार्श्वे गृह्यते, नत्वयोग्यानां जलवत् ॥ ७ ॥

द्वार गाथानी व्याख्या—वळी ते धर्म योग्य मनुष्योथीज ग्रहण कराय छे, अर्थात योग्योप्रत्येज देवामां आवे छे ॥ ३ ॥

केमके ज्यारे बहारना मळने धोनारुं जळ पण योग्यज पात्रमां रखाय छे, परंतु अयोग्यमां रखातुं नथी, केमके अयोग्यमां राखवाथी निरुपयोगी फळवाळुं थाय छे ॥ ४ ॥

त्यारे हजारो जन्मोनां संचित करेला अंतरंग मल, तृष्णा, ताप अने दुःखनो नाश करवाना हेतुरूप धर्मनी शुं वात करवी? ॥ ५ ॥

कह्युं छे के: जेम काचा घडामां नाखेलुं पाणी ते घडानो नाश करे छे तेम आ सिद्धांतनो रहस्य पण अ-योग्यनो नाश करे छे ॥ ६ ॥

वळी ते धर्म योग्योनी पासेज ग्रहण कराय छे, परंतु जळनी पेठे अयोग्यनी पासेथी ग्रहण कराता नथी ॥ ७ ॥

यदुक्तं—चारित्रेण विहीनः। श्रुतवानपि नोपजीव्यते सद्भिः। शीतलजलपरिपूर्णः। कुलजैश्चांडालकूप इव ॥ ८ ॥

सो पुण हुणोत्ति, स पुनर्धर्मो योग्य एव गृह्यते, नत्वयोग्यो हिंसादिरूपः, परिखोदकवत् ॥ ९ ॥

तथा गहिज्जए विहिणत्ति, गृह्यते विधिनैव, नत्वविधिना, न खलु जलमपि प्रतिकूले कलसे संक्रामतीति ॥ १० ॥

विधिश्चात्र विनयबहुमानादिः, उक्तं च—सीहासणेनिसन्नं। सोवागं सेणिओ नरवरिंदो ॥ विज्जं मग्गइ पयओ। इअ साहु जणस्स सुअविणओ ॥ ११ ॥

कह्युं छे के–चारित्र विनानो ज्ञानवान पण, सज्जनोथी आदर पामतो नथी; कोनी पेठे? तो के शीतल जलथी भरेला एवा पण चांडालना कुवानो कुलीनो जेम आदर करतां नथी तेम ॥ ८ ॥

वळी ते धर्म योग्यज ग्रहण करवो, परंतु खाडना जलनी पेठे हिंसाआदिक रूपवाळो अयोग्य धर्म ग्रहण करवो नही ॥ ९ ॥

वळी ते धर्म विधिपूर्वकज ग्रहण कराय छे, परंतु अविधिथी ग्रहण करातो नथी, केमके पाणी पण ऊंधा कळशमां भरी शकातुं नथी ॥ १० ॥

अहीं विधि एटले विनय तथा बहुमान आदिक जाणवुं कह्युं छे के–सिंहासनपर बेठेला चांडालनी पासेथी श्रेणिक राजाए विद्या मागेली छे; माटे एवी रीते साधुजने श्रुतनो विनय करवो ॥ ११ ॥

श्री श्रेणिकसंबंधश्चायं—राजगृहनगरे श्रीश्रेणिकः क्ष्मापतिः, चेल्लणा राज्ञी ॥१२॥
अन्यदा मेदिनीशकश्चेल्लणाया एकस्तंभधवलगृहनिवासमनोरथमजिज्ञपदभयकुमारं॥१३॥
ततोऽभयमंत्री तादृक्स्तंभार्थमटव्यां भ्रमन् स्तंभोचितं सुलक्षणं तरुमेकमद्राक्षीत् ॥ १४ ॥

नायमनधिष्ठायकः त्यागानहरित्यौत्पत्तिक्या धियाऽवधार्य तदधिष्ठायकमाराद्धुमुपवासत्रयमतनोत् ॥ १५ ॥

तुष्टः सुरः समाचष्ट, तिष्ठत्वसौ ममाश्रमः, सर्वर्तुकवनाद्भुतमेकस्तंभं रत्नमयं सौधं विधास्ये ॥ १६ ॥

श्री श्रेणिक राजानुं वृत्तांत नीचे मुजब छे—राजगृह नामना नगरमां श्रेणिक नामे राजा हतो. तेनी चेल्लणा नामे राणी हती ॥ १२ ॥

एक दिवसे ते चेल्लणा राणीने एक थंभवाळा धवल गृहमां रहेवानो मनोरथ थयो, अने ते वात राजाए अभयकुमारने जणावी ॥ १३ ॥

तेथी अभयकुमार मंत्रीए तेवा स्थंभने माटे वनमां भमतां थकां स्थंभ लायक एक उत्तम लक्षणोवाळुं वृक्ष जोयुं ॥ १४ ॥

आ वृक्ष तेना अधिष्ठायक विना होवुं न जोइए, एवुं उत्पातिकी बुद्धिथी जाणीने, तेना अधिष्ठायकने आराधवा माटे तेणे त्रण उपवास कर्या ॥ १५ ॥

तेथी प्रसन्न थयेला देवे कह्युं के, आ मारा स्थानने तारे एमज रहेवा देवुं. हुं तने सर्व ऋतुना बगीचावाळो एक थंभना अद्भुत रत्नमय मेहेल बनावी आपीश ॥ १६ ॥

एवमस्त्वित्युक्त्वा यावत् सचिववरः पुरमलमकार्षीत्तावदैक्षिष्ट जवनकैकस्तंभं त्रिमानश्रीविमंबि निष्पन्नं सर्वर्तुवनोपेतं ॥ १७ ॥

तथाविधसौधं निध्यायाधिकं धन्यंमन्यस्तद्वनं रक्षितुमभ्रंलिहं वप्रमकारयत्, रक्षकांश्च न्ययुंक्त तथा, यथा पक्षिणोऽपि तत्र प्रवेशं नालभंतेति ॥ १८ ॥

अन्यदा तत्रैव पुरे श्वपचप्रेयसी गुर्विणी स्वभर्तुश्चूतफलास्वाददोहदमवादीत्, अकालश्चाम्राणां सः, सर्वर्तुकवने च तानि संति, परं न केनाप्युपायेनाप्यंते ॥ १९ ॥

एमज थाओ ? एम कहीने जेटलामां ते उत्तम मंत्री नगरमां गयो, तेटलामां तेणे एक थंभवाळो विमान जेवी शोभावाळो तथा सर्व ऋतुना बगीचावाळो तैयार थयेलो मेहेल जोयो ॥ १७ ॥

एवी रीतना मेहेलने जोइने ते पोताने अधिक धन्य मानवा लाग्यो, तथा ते वननी रक्षा माटे तेणे एक आकाश सुधि पहोंचे एवो किल्लो बनाव्यो, तथा त्यां एवा तो चोकीदारो राख्या के जेथी पक्षीओ पण तेमां पेसवाने अशक्त थया ॥ १८ ॥

हवे एक दिवसे तेज नगरमां एक चांडालनी स्त्री गर्भवती थइ, तेणे पोताना भर्तारने कह्युं के मने आंबाना फळो खावानो दोहलो उत्पन्न थयेलो छे; हवे ते समये आंबानी ऋतु नहोती; परंतु सर्व ऋतुवाळा ते वनमां आंबाओ छे, पण कोइ पण उपायथी ते मळी शके तेम नथी ॥ १९ ॥

इति ध्यात्वा श्वपाकः सुधीर्बहिःस्थित एवाऽवनामिन्या विद्यया शाखामाकृष्य चूतान्युपाददे ॥ २० ॥

निशि उन्नामिन्या विद्यया यथास्थानं तां न्यास्थपच्च, पूरयामास च दोहदं पत्न्याः ॥ २१ ॥

अथारक्षाः प्रातः शाखां फलरहितां प्रेक्ष्य साशंकमनसः कथयामासुर्महीपतेः ॥२२॥

देव गताऽऽगताद्यभिज्ञानं नेक्ष्यते कस्यापि, फलानि तु केनाप्यात्तानि शाखायाः। य एवं गृह्णीयात् कथं तस्माद्रक्षणीयं वनमिति ॥ २३ ॥

तत् श्रुत्वा मंत्रीकुमारादिशन्मेदिनीपतिः, पंचषड्दिनांतश्चौरं स्वशिरो वाऽर्पयेरिति ॥२४॥

एम विचारीने ते उत्तम बुद्धिवाळा चांडाले किल्लानी बहार ज रहीने अवनामिनी विद्याये करीने डाळीने खेंचीने आंबाओ लेइ लीधा ॥ २० ॥

वळी रात्रिये उन्नामिनी विद्यायें करीने योग्य स्थानके ते डाळीने राखी; अने एवी रीते पोतानी स्त्रीनो दोहलो तेणे संपूर्ण कर्यो ॥ २१ ॥

पछी चोकीदारोए प्रभातमां ते डाळीने फळ विनानी जोइने मनमां शंका लावीने राजाने कह्युं के, ॥ २२ ॥

हे स्वामी कोइनुं आववा जवानुं चिह्न तो देखातुं नथी, अने शाखामांथी फळ तो कोइये पण लीधां छे: अने एवी रीते जे चोरी थाय, तेथी वननी केम रक्षा करवी ? ॥ २३ ॥

ते सांभळीने राजाए अभयकुमार मंत्रीने हुकम कर्यो के, पांच अथवा छ दिवसोनी अंदर चोरने हाजर कर नहि तो तारुं माथुं आपवुं पडशे ॥ २४ ॥

तस्करस्तु मंत्रीदोर्न क्वाप्यभूद् दृग्गोचरः, ॥ २५ ॥

अन्यदा कस्मिंश्चिद्देवायतने पूर्वंरंगमण्डपसंगतान् जनान् मुख्यनट्यामप्राप्तायां अभयः प्रोचे ॥ २६ ॥

वसंतपुरे जीर्णश्रेष्ठी निःस्वः, तदंगजा विवाहसामग्र्ययोगाद् वृद्धत्वमभूत्, जनेऽपि वृद्धकुमारीति नाम प्रासिध्यत् ॥ २७ ॥

सा वरार्थं कामदेवमपूजयत्. अन्यदा निशि पुष्पार्थं मध्ये प्रविष्टा, मालिकेन उक्ता च चौरि किं ते कुर्वे ॥ २८ ॥

साऽवोचत्, कुमार्यस्मि मां कोऽप्युद्वहति न. तेन पुष्पाण्यादाय काममर्चामि ॥२९॥

हवे चोर तो मंत्रीनी नजरे क्यांयें पण पड्यो नहीं। ॥ २५ ॥

एक दिवसे कोइक देवमंदिरमां (नृत्य वखते) मुख्य नटी हजु आवी नहोती. तेटलामां पेहेलेथी रंगमंडपमां आवीने बेठेला लोकोने अभयकुमारे कह्युं के, ॥ २६ ॥

वसंतपुर नामना नगरमां जीर्णश्रेष्ठ नामे एक निर्धन मनुष्य वसतो हतो, तेनी एक पुत्री, धननी सामग्री नहीं मळवाथी मोटी थइ; अने तेथी लोकोमां ते 'वृद्धकुमारी' ना नामथी प्रसिद्ध थइ ॥ २७ ॥

ते वर मळवा माटे कामदेवने पूजवा लागी; एक दिवसे रात्रिए पुष्पो लेवा माटे ते बागमां गइ, त्यां माळीए तेणीने कह्युं के, अरे चोर हुं तारुं शुं करुं ? ॥ २८ ॥

त्यारे तेणीए कह्युं के, हुं कुमारी छुं, मने कोइ पण परणतुं नथी, माटे पुष्पो लेइने हुं कामदेवने पूजुं छुं ॥ २९ ॥

मालिकोऽवदूढा सती चेत् प्रथमं ममांतिकमेष्यसि तदा त्वां मुंचे. यथेष्टं च पुष्पाणि गृहाणेति. तदभ्युपगम्य गृहं गता ॥ ३० ॥

परिणीता च मृतजायेंण केनापि धनिना. वासगृहावसरे च प्रतिज्ञातं पत्युः प्रोचे. तेन महिता च निशि मलयं यांती दृष्टा सालंकारा चौरैः ॥ ३१ ॥

तैर्ध्रियमाणा च स्ववृत्तांतमुक्त्वा वलमानायां वांछितं कुर्यातत्याख्यात् ॥ ३२ ॥

तैर्विसृष्टाचाग्रे गक्षसं भक्षणोद्यतं वीक्ष्य स्ववृत्तांतं निवेद्य व्यावृत्तां मां जक्षयेरित्याचख्यौ ॥ ३३ ॥

पछी मालीए कह्युं के, परण्या बाद जो पेहेलां तुं मारी पासे आवे, तो हुं तने छोडुं, अने तारी खुशी मुजब तुं पुष्पोने ग्रहण कर? पछी ते वात स्वीकारीने ते घेर गइ ॥ ३० ॥

पछी जेनी स्त्री मरी गयेली छे, एवा कोइक धनवान पुरुष साथे ते परणी; पछी वास भुवनमां जती वेळाए पोते जे प्रतिज्ञा करेली हती, ते वात तेणीए पोताना भर्तारने जणावी; तेणे रजा आपवाथी ते रात्रिए बागमां आभूषणो सहित जवा लागी, एटलामां चोरोए तेणीने दीठी ॥ ३१ ॥

तेओ ज्यारे तेणीने पकडवा लाग्या, त्यारे तेणीए स्ववृत्तांत जणावीने कह्युं के, पाछा वळतां तमारुं वांछित करजो ॥ ३२ ॥

पछी तेओए तेणीने रजा आपवाथी ते आगळ चालवा लागी, एटलामां भक्षण करवाने तैयार थयेला एक राक्षसने जोइने तेणीए पोतानुं वृत्तांत तेने निवेदन कर्युं, अने कह्युं के, ज्यारे हुं पाछी वळुं त्यारे तुं मारुं भक्षण करजे ॥ ३३ ॥

तेनापि मुक्ता मन्नये प्रापत्. कथमागतेत्यारामिकेण पृष्टा स्ववृत्तांतमादितोऽवादीत्. यावत्या चौरै राक्षसेन च मुक्ता. प्रहिता च. सा न सामान्येत्यामृश्यारामिकस्तां व्यसृजत् ॥ ३४ ॥

सद्यो व्यावृत्तां तां वृत्तांतं पृष्ट्वामालिकादऽपि कथं हीनः स्यामित्युक्त्वाऽमुंचद्राक्षसः. मालिकराक्षसाभ्यां मुक्तेत्यमुंचंश्चौरा अपि ॥ ३५ ॥

साभरणा स्वगृहागताऽवगतवृत्तांतेन भर्त्रा गृहस्वामिनी कृतेति. भो लोका विचार्य वदत, भर्तृमालिकचौरराक्षसानां कः साहसिक इति ॥ ३६ ॥

पछी तेणे पण छोडवाथी ते बागमां गइ; त्यां माळीए पूछ्युं के केम आवी? त्यारे तेणीए पोतानुं वृत्तांत पहेलेथी कह्युं. त्यारे माळीए विचार्युं के, जेणीने पतिए, चोरोए, तथा राक्षसे पण छोडी दीधी छे. ते स्त्री सामान्य होय नहीं. एम विचारी तेणे पण छोडी दीधी ॥ ३४ ॥

पछी तुरत पाछी वळेली एवी तेणीने वृत्तांत पूछीने, माळीथी पण हुं केम नीच थाउं? एम कहीने राक्षसे पण तेणीने छोडी दीधी; वळी माळी तथा राक्षसे छोडी एम धारी चोरोए पण छोडी दीधी ॥ ३५ ॥

एवी रीते आभूषणो सहित ते ज्यारे पोताने घेर पाछी आवी, त्यारे तेणीना स्वामीए तेणीनुं वृत्तांत जाणीने घरनी मालिक बनावी; माटे हे लोको! तमो विचारीने कहो के, भर्तार, माळी, चोर तथा राक्षसमांहेथी साहसिक कोण? ॥ ३६ ॥

ततः प्रशशंसुः सेर्ष्या भर्तारं, चोराश्च तस्करान्, औदरिका राक्षसं, पारदारिका मालिकं चेति ॥ ३७ ॥

ततश्चौरप्रशंसकत्वेन श्वपाकं तस्करं विदन् मंत्रींदुरुवादीत्, कथमग्रहीराम्राणीति वद, विद्ययेत्युक्ते तां राज्ञे प्रयच्छ जिजीविषुश्चेत् ॥ ३८ ॥

ततः सिंहासनोपविष्टाय राज्ञे दत्ते स्म तां विद्यां पाणपतिः, नतु संक्रांता सा मनागपि ॥ ३९ ॥

ततः सचिववचसा भूतलनिविष्टो भूपतिः सिंहासननिषण्णं पाणपतिं विद्यामर्थयते स्म, सद्यः संक्रमति स्म च सेति ॥ ४० ॥

त्यारे ईर्ष्यावाळी स्त्रीओ तेओना भर्तारनी प्रशंसा करवा लाग्यां, चोरो चोरोनी प्रशंसा करवा लाग्या, उदरभरियो राक्षसने वखाणवा लाग्या, तथा परस्त्री भोगवनारा माळीने वखाणवा लाग्या ॥ ३७ ॥

पछी चोरनी प्रशंसा करवाथी ते चांडाळने चोर जाणीने मंत्रीश्वरे तेने कह्युं के तें आंबाओ शीरीते ग्रहण कर्या? ते कहे त्यारे चांडाळे कह्युं के, विद्याथी ग्रहण कर्या, त्यारे अभयकुमारे तेने कह्युं के, जो तारे हवे जीववानी इच्छा होय, तो ते विद्या तुं राजाने आप? ॥ ३८ ॥

पछी ते चांडाळ सिंहासनपर बेठेला राजाने ते विद्या आपवा लाग्यो, परंतु जरा पण ते विद्या राजाने आवी नहीं; ॥ ३९ ॥

त्यारबाद मंत्रीना वचनथी राजा पृथ्वीपर नीचे बेठो, अने ते चांडाळने सिंहासनपर बेसारीने तेनी पासेथी ते विद्या तेणे मागी, के तुरत आवडी गई ॥ ४० ॥

एवं ग्रहणे हेतुमाह—संपुन्नसुहफलो जं एवं चियत्ति, यदित्यव्ययं हेतौ ॥ ४१ ॥

यस्माद्धेतोरेवमेव पूर्वोक्तचतुःप्रकारशुद्ध्यैव गृहीतो धर्मः संपूर्णशुभफलः संपूर्ण-सुखफलो वा भवतीति ॥ ४२ ॥

अत्रैव व्यतिरेकमाह—अन्नहा इहरत्ति, अन्यथा योग्यत्रयाऽमिलने अविधिना वा गृहीते इतरदिति अशुभफलोऽफलो भोगराज्यादिमात्रफलो वा भवतीति गाथार्थः ॥४३॥

इति द्वितीयस्तरंगः ॥

हवे एवी रीते (पूर्वे कह्या मुजब) धर्मने ग्रहण करवामां हेतु कहे छेः—'संपुन्न सुहफलोजं'—अहीं यत् ए हेतु अर्थमां अव्यय छे ॥ ४१ ॥

कारणके एवी रीते एटले पूर्वे कहेली चार प्रकारनी शुद्धिवडे करीनेज ग्रहण करेलो धर्म संपूर्ण शुभ फळवाळो अथवा संपूर्ण सुखफळवाळो थाय छे. ॥ ४२ ॥

हवे तेमांज व्यतिरेक कहे छे—अन्यथा एटले योग्य एवा त्रण* नहीं मळवाथी, अथवा अविधिपूर्वक तेने ग्रहण करवाथी, ते अशुभफळवाळो अर्थात् तात्विकफळ विनानो, अथवा फक्त भोग अने राज्य आदिक फळवाळो थाय छे, एवी रीते गाथानो अर्थ जाणवो ॥ ४३ ॥

॥ इति द्वितीयस्तरंगः ॥

* धर्म धर्मग्राहक अने धर्मदाता.

इति द्वितीयस्तरंगः समाप्तः

अथ तृतीयस्तरंगः

योग्या एव धर्माधिकारिण इत्युक्तं, योग्यस्वरूपं चाऽयोग्यस्वरूपनिरूपणे सुज्ञानमिति प्रथमत उपदेशाऽयोग्यानाह ॥ १ ॥

रत्तो दुट्ठो मुढो । पुव्विं वुग्गाहिओ अ चत्तारि ॥ उवये सस्स अणरिहो । अहवा इसएहिं बुज्झंति ॥ २ ॥

योग्य मनुष्योज धर्मना अधिकारीओ छे, एम पूर्वे कहेलुं छे; हवे ते योग्यनुं स्वरूप अयोग्यनुं स्वरूप निरूपण करवाथी सारी रीते जणाय छे, माटे पहेलां उपदेशने अयोग्य एवा मनुष्योनुं स्वरूप कहे छे ॥ १ ॥

रागी, द्वेषी, मूढ तथा प्रथमथीज व्युद्ग्राहित, ए चार जातना मनुष्यो उपदेशने लायक होता नथी, अथवा तेओ (कोइ पण प्रकारना चमत्कार आदिक) अतिशयोथी बोध पामे छे. ॥ २ ॥

रक्तो रागी. यो हि यत्र क्वचिद्रक्तः स तदीयान् दोषानपि गुणतयैव पश्यति, तदुक्तं, जं जस्स पिअं तंतस्स सुंदरं रूवगुणविमुक्कंपि ॥ मुत्तूण रयणहारं । हरेण सप्पो-कओकंठे ॥ न तु गुणदोषविवेकपुरस्सरं यथावस्थं वस्तुस्वरूपं तलवरवत्तथाहि ॥ ३ ॥

मगधेषु क्वचित्सन्निवेशे नंदनो नाम तलवरः, तस्य प्रथमश्रीद्वितीयश्रीनाम्न्यौ पत्न्यौ ॥ ४ ॥

द्वितीयश्रियां रक्तः, स तद्गृहएवतिष्ठति, अन्यदाऽगमत् प्रथमश्रिया गृहं, रचितश्च तयोचितो मज्जनाद्युपचारः ॥ ५ ॥

रक्त एटले रागी, जे मनुष्य जेकंइमां रागी होय, ते तेना दोषोने पण गुणरूपेज जुए छे. कह्युं छे के—जे जेने प्रिय होय ते तेने सुंदर लागे छे, पछी ते जोके रूपगुण विनानुं होय; जेम महादेवे रत्नोनो हार तजीने सर्पने कंठमां धारण कर्यो छे. वळी तेवो रागी माणस कोटवाळनी पेठे गुणदोषना विवेचनपूर्वक यथार्थ रीते वस्तुना स्वरूपने जाणी शकतो नथी; ते कोटवाळनुं उदाहरण नीचे मुजब छे ॥ ३ ॥

मगधदेशमां कोइक गाममां नंदन नामे एक कोटवाळ हतो, तेने प्रथमश्री अने द्वितीयश्री नामनी बे स्त्रीओ हती ॥ ४ ॥

ते कोटवाळ द्वितीयश्रीमां आसक्त हतो, अने तेथी तेनाज घरमां ते रहेतो हतो; एक दहाडो ते प्रथमश्रीने घेर गयो, अने तेथी तेणीए तेनो स्नानआदिक उचित सत्कार कर्यो ॥ ५ ॥

प्रगुणितं च नानाव्यंजनगुणोपेतं जोजनं, परं सुंदरमपि न बहुमतं किमपि तच्चित्ते, उक्तवांश्च ॥ ६ ॥

किं जुज्यते द्वितीयश्रिया यन्न राद्धं, तदानय किमपि तद्देरमनः, शाकं, ततः प्रथमश्रीः सपत्नीं शाकमयाचिष्ट ॥ ७ ॥

तयोक्तं नाद्य राद्धं कुतः शाकं, आगत्योक्तं तद्धवराय, पुनरुक्तं तेन, किंचिदुद्धरिताद्यपि मार्गय ॥ ७ ॥

पुनर्गत्वाऽमार्गयत्प्रथमश्रीः, कर्मकरेज्यो दत्तमित्युद्धरितमपि नास्तीति प्रत्युवाच सपत्नी ॥ ए ॥

वळी नाना प्रकारना शाकवाळुं सुंदर जोजन तेणीए तैयार कर्युं, परंतु ते उत्तम जोजन पण तेना मनने कंई पण रुच्युं नहीं, अने तेथी ते कहेवा लाग्यो के ॥ ६ ॥

द्वितीयश्रीये जे रांध्युं नथी, ते शुं खाई शकाय? माटे तेणीने घेरथी कंइक शाकभाजी लाव? पछी प्रथमश्रीये (पोतानी) शोक पासे जइ शाक माग्युं ॥ ७ ॥

तेणीये कह्युं में आज रांध्युं नथी, माटे शाक क्यांथी होय? पछी ते प्रथमश्रीये पाछा आवीने ते हकीकत कोटवाळने कही; त्यारे फरीने कोटवाळे कह्युं के, जे कंइ वध्युं घट्युं होय ते मागी लाव? ॥ ७ ॥

त्यारे वळी प्रथमश्रीए त्यां जइने माग्युं; त्यारे वळी शोके एवो जवाब आप्यो के, जे कंई वध्युं हतुं, ते पण चाकरोने दई दीधुं, माटे ते पण नथी ॥ ए ॥

तदपि व्यङ्ग्यप्रत्यये, यत्किंचित्कांजिकप्रायमप्यानय तन्निश्चयादित्युक्तवांश्च सः ॥१०॥

ततः कषायिता सा गत्वा बहिः सद्यो व्युत्सृष्टं वत्सगोमयं तुवरीचणकमिश्रं गृहीत्वा किंचित् संस्कृत्य, तद्गृहादानीतमिति वदंत्युपनिन्ये ॥ ११ ॥

तलवरस्तुष्टो भुंजानोऽजाणीत, अहो मिष्टं, अहो अहो रसविशेषः, अहो सुस्त्रीगुण इति ॥ १२ ॥

एष स्त्रीरक्तो यथा गुणदोषविवेकपराङ्मुखः तथा यः क्वचिद्दर्शने रक्तः स विशिष्य गुणदोषौ न विवेचयति ॥ १३ ॥

पछी ते वात पण तेणे पोताना स्वामिने जणावी, त्यारे वळी तेणे कह्युं के, जे कंइ कांजी जेवुं पण तुं तेने घेरथी लाव? ॥ १० ॥

पछी तो क्रोधायमान थयेली ते प्रथमथी बहार जइने तुरतनुं करेलुं ताजुं वाछरानुं छाण, के जेमां तुवर अने चणा मिश्रित थयेला हता, ते लइ आवी, अने तेने जरा (मरी मसालाथी) स्वादिष्ट बनावीने, तथा पतिनी पासे लइ जइने कह्युं के, आ हुं दत्तिलथीने घेरथी लावी छुं ॥ ११ ॥

(ते सांभळी) खुशी थयेलो कोटवाळ ते छाण खातो थको कहेवा लाग्यो के, अहो! केवुं मीठुं छे! तेमां रस केवो आवे छे! अहो उत्तम स्त्रीनो केवो गुण छे! ॥ १२ ॥

एवी रीते स्त्रीमां रक्त थयेलो ते कोटवाळ जेम गुण दोषनुं विवेकपूर्वक विवेचन करी शकयो नहीं, तेम मनुष्य, के जे कोइक दर्शनमां रक्त थयेलो छे, ते गुण दोषने समजीने तेनुं विवेचन करी शकतो नथी ॥ १३ ॥

यदुक्तं, कामरागस्नेहरागा—वीषत्करनिवारणौ ॥ दृष्टिरागस्तु पापीयान् । दुरुच्छेदः सतामपि ॥ १४ ॥

अपि च, मिथ्याकलंकमलिनो । जीवो विपरीतदर्शनो भवति ॥ श्रद्धत्ते न च धर्मं । मधुरमपि रसं यथा ज्वरितः ॥ १५ ॥

इति ॥ द्विष्टः, क्रोधमानाऽतिरेकवान्, यो यत्र द्विष्टः स तस्य गुणानपि दोषतयैव पश्यति ॥ १६ ॥

इति तद्विषयत्वेनोपदिश्यमानं द्विष्टस्यात्महिततया परिणामसुंदरमपि न कस्मैचिद्गुणाय, प्रत्युतोपदेष्टुरनर्थायापि भवति दुर्योधननृपस्येव ॥ १७ ॥

कह्युं छे के कामराग अने स्नेहरागने रोकवा तो सहेला छे, परंतु पापी एवो दृष्टिराग उत्तमोने पण छोडवो मुश्केल पडे छे ॥ १४ ॥

वळी पण, ज्वरवाळो मनुष्य जेम मधुर रसने पण मधुरतरिके जाणी शकतो नथी, तेम मिथ्यात्वरूपी कलंकथी मलीन थयेलो मनुष्य विपरीत दर्शनवाळो थाय छे, तथा धर्मपर श्रद्धा करतो नथी ॥ १५ ॥

इति ॥ हवे द्विष्ट एटले द्वेषी अर्थात् क्रोध अने मानना अतिशयवाळो जाणवो; जे मनुष्यनो जेनापर द्वेष होय छे, तेना गुणोने पण दोषोतरीकेज जुए छे १६ ॥

माटे ते संबंधी द्वेषीने जो उपदेश देवामां आवे, अने ते उपदेश तेना आत्महितपणे जोके परिणामे सारो होय, तोपण तेने कंइपण गुणकारक थइ शकतो नथी; परंतु उलटो दुर्योधन राजानी पेठे उपदेश देनारने ते नुकशानकारक पण थाय छे ॥ १७ ॥

तथाहि—वनवासे त्रयोदशवर्ष्यामतिक्रान्तायां राज्यलुब्धैः कुरुभिः पांडुपुत्रैः सह विग्रहारंभे कुटुंबकलहमार्यानिविरसं विज्ञाय संधये श्रीकृष्णः प्राप दुर्योधनांतिकं ॥ १८ ॥

अत्रोक्तिप्रत्युक्तिविस्तरः, यावत्—इंद्रप्रस्थं यवप्रस्थं । माकंदीं वारणावतं ॥ देहि मे चतुरो ग्रामान् । पंचमं हस्तिनापुरं ॥ १९ ॥

इत्थं पंचग्राममार्गणे संधिकरणे च दुर्योधनोऽभ्यधत्त—सूच्यग्रेण सुतीक्ष्णेन । या सा भिद्येत मेदिनी ॥ तदर्धं न प्रदास्यामि । विना युद्धेन केशव ॥ २० ॥

ततः पुनर्नारायणः—संदिग्धो विजयो युद्धे । प्रधानपुरुषक्षयः ॥ उपायत्रितयादूर्ध्वं । तस्माद्युध्येत पंडितः ॥ २१ ॥

ते दुर्योधन राजानुं दृष्टांत कहे छे.—वनवासमां तेर वर्षो संपूर्ण थया बाद राज्यना लोभी एवा कुरुओ पांडुना पुत्रो साथे ज्यारे झघडो करवाने तैयार थया, त्यारे श्रीकृष्णे विचार्युं के, कुटुंबक्लेश परिणामे सारो नथी, एम विचारि ते संधि माटे दुर्योधन पास गया ॥ १८ ॥ अहीं सवाल जवाब नीचे मुजब छेः—

इंद्रप्रस्थ, यवप्रस्थ, माकंदी तथा वारणावत ए चार गाम तथा पांचमुं हस्तिनापुर गाम आपो ? ॥१९॥

एवी रीते पांच गामनी मागणीपूर्वक संधि करवानुं कहेतां दुर्योधने कह्युं के, हे केशव! तीक्ष्ण एवा सोइना अग्र जागथी जेटली पृथ्वी छेदाय, तेथी अरधुं पण युद्ध कर्या विना आपुं नहीं ॥२०॥

त्यारे फरीने श्रीकृष्णे दुर्योधनने कह्युं के युद्धमां विजय थवो तो संदेहवाळो छे, अने वळी तेथी उत्तम पुरुषोनो नाश थाय छे; माटे विद्वान माणसे तो (शाम, दाम अने भेद) ए त्रण उपायोने अजमाव्या बादज छेवटे युद्ध करवुं जोइए ॥२१॥

असंदधानो मानांधः । समेनापि हतो भृशं ॥ आमकुंभमिवाश्मना । नावतिष्ठेत शक्तिमान् ॥ २२ ॥

इत्यादि नीतियुक्तिभिस्तावद्धितानुशास्तिगोचरीचक्रे दुर्योधनं. यावत्सक्रुद्धस्तं बद्धुं सज्जोऽभवत् ॥ २३ ॥

तथा चाप्याहुः, आकेशग्रहणान्मित्र—मकार्याद्विनिवर्त्तयेत । कृष्णः सुयोधनं प्राह । यावत्तं बद्धुमुद्यतः ॥ २४ ॥

ततः पंचग्रामाऽनर्पणात्सकलराज्यहरणं स्वकुलक्षयकरणादि च कुरूणां सुप्रतीतमेवेति ॥ २५ ॥

संधि नहीं करनार एवो मानांध मनुष्य शक्तिवान होय तो पण सामान्य शत्रुथी अत्यंत हत प्रहत थयो छतो काचा घडानी पेठे भांगी जइ स्थिर रही शकतो नथी ॥ २२ ॥

इत्यादि नीति तथा युक्तिओवडे करीने श्रीकृष्णे दुर्योधनने छेक त्यांसुधी हितशिक्षा आपी, के ज्यांसुधी ते क्रोधायमान थइ तेने बांधवाने तैयार थयो ॥ २३ ॥

वळी कह्युं छे के, छेक वाळ पकडवा सुधी करीने पण मित्रने अकार्यथी अटकाववो. एवी रीते ज्यांसुधी तेने बांधवाने उद्यमवंत थयो, त्यांसुधी कृष्णे दुर्योधनने समजाव्यो ॥ २४ ॥

पछी पांच गामो नहीं आपवाथी तेना सर्व राज्यनुं हरण थयुं, तथा एवी रीते कुरुओना कुळनो क्षय थयो, इत्यादिक वृत्तांत प्रसिद्ध छे ॥ २५ ॥

ततश्च श्रीकृष्णोऽपि प्रतिबोधदायिनि उत्तानेऽप्यैहिके हितार्थे यथा पांडुपुत्रेषु द्विष्टः स दुर्योधननृपतिर्नाऽबुध्यत हितं, प्रत्युत श्रीकृष्णोऽपि बंधनाद्यचिंतयत्. एवं शासने द्विष्टोऽपीति ॥ २६ ॥

मूढो मोहोपहतचित्तवृत्तिः, स हि नाऽवधारयति यथावस्थितं वस्तुतत्त्वं, नापि परोक्तं श्रद्धत्ते गंगाख्यपाठकवत् ॥ २७ ॥

तद्यथा अस्ति लाटदेशे भृगुपुरे गंगाख्यः पाठकः, स बहुशिष्यपाठनोपार्जितधनो वृद्धत्वे परिणिन्ये ॥ २८ ॥

माटे एवी रीते पांडवो प्रत्ये द्वेषवाळो एवो ते दुर्योधन राजा, प्रतिबोध आपनार तथा आ लोक संबंधि हितेच्छु एवा श्रीकृष्णे समजाव्या छतां पण पोतानुं हित समज्यो नहीं, अने उलटो श्रीकृष्णने पण जेम बांधवानो विचार तेणे कर्यो, एवी रीते शासननी अंदर द्वेष राखनारने पण जाणवो ॥ २६ ॥

मूढ एटले मोहथी हणायेली छे मनोवृत्ति जेनी एवो, एवी रीतनो ते मूढ माणस खरेखर यथार्थ रीते वस्तुतत्त्वने जाणी शकतो नथी. तेम गंग नामना पाठकनी पेठे अन्ये कहेला वस्तु तत्त्वपर पण श्रद्धा करतो नथी ॥ २७ ॥

ते गंग पाठकनुं वृत्तांत नीचे मुजब छेः—लाट देशमां भृगुपुर नामना नगरमां एक गंग नामनो पाठक हतो, ते घणा शिष्योने भणावीने तथा तेथी धन उपार्जन करीने वृद्धपणामां परणयो ॥ २८ ॥

तद्भार्या तरुणी, सा नर्मदाऽपरतटवासिनि कस्मिंश्चित्पुंसि रता प्रत्यहं निशि घटेन नर्मदामुत्तीर्य याति ॥ २९ ॥

भर्तुश्चित्तं रञ्जंती मायाविनी दिवा काकेभ्यो बिभेमीति वक्ति ॥ ३० ॥

ततो बलिं कुर्वन्त्यास्तस्या रक्षायै छात्रान् रक्षपालान् दत्ते ॥ ३१ ॥

पाठकेनाऽमुकमाह्वयेत्युक्ता च वक्ति, नाऽहंमनुष्येण समं वक्तुं वेद्मि, ततः स स्वयमेवाह्वयति ॥ ३२ ॥

तत्रैकेन छात्रेणाऽचिंति, नखल्वेतदार्जवलक्षणं, यतः ॥ ३३ ॥

तेनी स्त्री जुवान हती, अने ते नर्मदाने सामे किनारे वसता एवा कोइक पुरुषपर आसक्त हती. तेथी हमेशां रात्रिए घडाने आधारे नर्मदा नदी उतरीने जती हती ॥ २९ ॥

पोताना भर्तारनुं मन रंजवती थकी ते कपटी स्त्री तेने एम कहेती हती के, दिवसे पण हुं कागडाओथी डरुं छुं ॥ ३० ॥

अने तेथी बलिदान करती वेळाए तेणीनी रक्षा माटे ते पाठक निशाळीआओने चोकी माटे राखतो हतो ॥ ३१ ॥

वळी ते पाठक ज्यारे तेणीने कहे के, तुं अमुक माणसने बोलाव, त्यारे ते कहेती के, मने मनुष्य साथे बोलवानुं आवडतुं नथी; पछी ते पाठक पोतेज तेने बोलावतो ॥ ३२ ॥

पछी त्यां एक निशाळीए विचार्युं के, आ कंइ तेणीनी सरळतानुं लक्षण नथी, केमके ॥ ३३ ॥

अत्याचारमनाचार—मत्यार्जवमनार्जवं ॥ अतिशौचमशौचं च । षड्विधं कूटलक्षणम् ॥ ३४ ॥

ततस्तस्याश्चराचरं विलोकयता रात्रौ दृष्टा सा नर्मदामुत्तरंती, कुतीर्थेनोत्तरतश्चौरान् मकरेण गृहीतान्, किं कुतीर्थेनोत्तरत, संप्रत्यपि मकरस्याक्षिणी पिधत्तेति जल्पंती च ॥ ३५ ॥

चिंतितं च अहो स्त्रिया साहसं अन्यदा बलिविधानावसरे काकरक्षार्थमागतेन प्रत्यभिज्ञाता, उक्तं च ॥ ३६ ॥

अति आचार, अनाचार, अति आर्जवपणुं, अनार्जवपणुं, अति पवित्रपणुं अने अपवित्रपणुं, ए छ प्रकारे कपटनुं लक्षण छे ॥ ३४ ॥

पछी ते निशाळीओ तेणीनी हिलचाल तपासवा लाग्यो, तो रात्रिए नर्मदा उतरती तेणीने तेणे जोइ, तेमज खराब आरेथी उतरता चोरोने मगरमच्छे पकडवाथी तेओने कहेवा लागी के, ते खराब आरेथी केम उतरो छो? हजु पण मगरमच्छनी आंखोने ढांकी राखो? ॥ ३५ ॥

ते सघळुं जोइने ते निशाळीए विचार्युं के, अहो! स्त्रीनुं साहस केवुं छे? पछी एक वखते बलिदान करती वेळाए कागडाओनुं रक्षण करवा माटे तेज निशाळीओ आव्यो, अने तेणीने चेतावता माटे तेणे कह्युं के ॥ ३६ ॥

दिश्रा कागाण वीहेसि । रत्तिं तरसि नम्मयं ॥ कुतित्थाणि य जाणासि । श्र-च्छीणं ढंकणाणिश्र ॥ ३७ ॥

तया शंकितयोचेऽदृश एव लोकस्वजावो मुष्टिं कुर्विति मुक्तमतः परं नर्मदातरण-मिति ॥ ३८ ॥

ततश्चंचलतया तेनैव ग्रात्रेण समं जातोऽस्याः संबंधः ॥ ३९ ॥

अन्यदा निरर्गलतायै देशांतरगमनाय तं ग्रात्रं प्रतिपाद्य ग्रामांतरे गते जर्त्तरि गृहे मृतकलेवरमानीयाऽग्निना संस्कृत्य च निशि तेन समं प्रस्थिता ॥ ४० ॥

दिवसे तो तुं कागडाथी बीहे छे, अने रात्रिए नर्मदा तरे छे, तेमज खराब आराओने पण जाणे छे, तथा (मगरनी) आंखोना ढांकणने पण जाणे छे ॥ ३७ ॥

(ते सांजळी) तेणीने शंका थवाथी तेणीए कह्युं के, एवोज दुनियानो स्वजाव होय छे, ए वात तुं मुट्ठीमां राख? आजथी में नर्मदा तरवानुं छोड्युं ॥ ३८ ॥

पछी चंचलपणाथके करीने तेज निशाळीआनी साथे तेणीनो संबंध थयो ॥ ३९ ॥

पछी एक दहाडो छुटापणा माटे तेणीए देशांतर जवा माटे ते निशाळीआने समजाव्यो, तथा ज्यारे तेणीनो जर्त्तार कोइ बीजे गाम गयेल हतो, त्यारे घरमां एक मरण पामेला मनुष्यनुं मुडदुं लावीने तथा तेनो त्यां अग्निसंस्कार करीने, रात्रिए ते निशाळीआनी साथे ते परदेश चालती थइ ॥ ४० ॥

प्रातरागतः पतिर्दृष्ट्वा तत्स्वरूपं, हा मृता प्रियेति भृशं खेदं कृत्वौर्ध्वदेहिककार्याणि विधाय तदस्थीनि गृहीत्वा गंगां प्रति प्रस्थितः ॥ ४१ ॥

यमुनातटे प्राप्तः, दृष्टश्च तत्र तिष्ठंत्या षण्मास्यंते तेन छात्रेण समं विरक्तीभूतया तयैव जारया सः ॥ ४२ ॥

जातानुतापया च तया प्रकाशितं तस्यात्मस्वरूपं याथातथ्येन ॥ ४३ ॥

पातकः प्राह, अनुहरसे तां, किंत्वेतानि तदस्थीनि: विविधाभिज्ञानकथनेऽपि एतानि तदस्थीनीत्येव वदन् न प्रतिपाद्यते ॥ ४४ ॥

प्रभाते तेणीनो स्वामी आव्यो, अने ते स्वरूप जोयुं; त्यारे अरे! मारी प्रिया मृत्यु पामी. एम घणो खेद करीने तथा पछी तेणीनां मृत कार्यो करीने, तेणीना हाडकां लइने गंगा प्रत्ये जवा प्रयाण कर्युं ॥ ४१ ॥

अनुक्रमे यमुना नदीने कांठे ते पहोंच्यो, अने त्यां तेज निशाळीआनी साथे छ मास बाद विरक्त थइने रहेली तेज स्त्रीए तेने जोयो ॥ ४२ ॥

पश्चाताप थवाथी तेणीए तेने पोतानुं खरेखरं स्वरूप प्रकाशित कर्युं ॥ ४३ ॥

त्यारे पातके कह्युं के, तेणीना जेवी तुं लागे छे, परंतु तेणीना तो आ हाडकां रह्यां; पछी तेणीए घणां एंधाणो कह्यां, उर्ता [?] पण 'आ तेणीना हाडकां रह्यां' एमज कहेतो थको तेणीनी वात ते न स्वीकारवा लाग्यो ॥ ४४ ॥

ततो दर्शितस्तया स छात्रः दृष्टेऽपि तस्मिन्नाह, एष तादृशः प्रतिभाति, परमेतानि तदस्थीनि ॥ ४५ ॥

ततः सा खिन्ना तमत्यजत् इति, एवंविधस्य मूढस्य सुगुरूपदेशोऽपि न कस्मैचित्फलाय ॥ ४६ ॥ तदुक्तं—उदितौ चंद्रादित्यौ । प्रज्वलिता दीपकोटिरमलापि ॥ नोपकरोति यथांधे । तथोपदेशस्तमोंधानां ॥ ४७ ॥

पूर्वं व्युद्ग्राहितस्तु वस्त्ववस्तु परीक्षाक्षमोऽपि तादृग्व्युद्ग्राहणावशाद्विपरीत्याभिनिविष्टबुद्धिः गोपालकवत्, तथाहि ॥ ४८ ॥

पछी तेणीए ते निशाळीआने देखाड्यो, तेने जोया छतां पण ते कहेवा लाग्यो के, ते तेना जेवो देखाय छे, परंतु आ तो तेणीना हाडकां ॥ ४५ ॥

पछी तेणीए खेद पामीने तेने तजी दीधो; एवी रीतना मूढने सुगुरुनो उपदेश पण कंइ फलदायक थतो नथी ॥ ४६ ॥

कह्युं छे के—चंद्र अने सूर्य उग्या होय तेम निर्मळ एवा क्रोडो दीवा प्रगट कर्या होय, परंतु ते जेम अंध मनुष्यने उपकार करता नथी, तेम मोहांध मनुष्यने उपदेश पण उपकार करतो नथी ॥ ४७ ॥

प्रथमथीज भमावेलो माणस, जोके ते वस्तु अथवा अवस्तुनी परीक्षा करवामां समर्थ होय, तोपण तेवी रीतना भमाववाथी गोवाळनी पेठे विपरीत कदाग्रहयुक्त बुद्धिवाळो थाय छे, ते कहे छे ॥ ४८ ॥

राजपुरे गोचारणोपार्जितधन एको गोपालः, तन्मित्रं स्वर्णकारः, स च ज्ञापितः स्वधनोपार्जनं गोपालेन ॥ ४९ ॥

अवोचच्च स्वर्णं कारयेति, गोपाल प्राह: त्वमेव कुरु, स्वर्णकारस्त्वाह नाहं करिष्ये, अन्येन कारय ॥ ५० ॥

त्वमेव कुरु, किं बहुनेत्यादिवादिनं गोपालं पुनराह नार्हधमः, वयस्य प्रीतिरावयोश्चिराजिता, प्रीतिच्छेदकारकश्च लोकः ॥ ५१ ॥

यतः—परवसणहरिसिअमणा । मुहमहुरा पिट्ठओ जसणसीला ॥ बहवे उवहासपरा । कलिकाले दुज्जणसहावा ॥ ५२ ॥

राजपुर नामना नगरमां गायो चरावीने एकटुं कर्युं छे धन जेणे एवो एक गोवालीओ हतो, तेनो एक सोनार मित्र हतो; तेने तेणे पोताना धनना उपार्जननी वात करी ॥ ४९ ॥

त्यारे सोनारे कह्युं के, तुं सुवर्णनो (दागीना) कराव? त्यारे गोवालीए कह्युं के ते तुंज करी आप? सोनारे कह्युं, हुं नहीं करूं, बीजा सोनार पासे कराव? ॥ ५० ॥

अरे! तुंज कर? वधारे शुं कहुं? एम बोलता गोवालीआने फरीने सोनारे कह्युं के, मित्र! आपण बन्नेनी प्रीति घणा काळथी छे, अने दुनिया तो ते प्रीतिनो नाश करावनारी छे ॥ ५१ ॥

केमके—कलिकाळमां परना दुःखमां खुशी थनारा, मोढे मीठा अने परपुंठे अवर्णवाद बोलनारा, तथा घणाओ तो मश्करी करनारा, एवा दुर्जनोना स्वभाववाळा लोको छे ॥ ५२ ॥

महद् भेदस्य कारणमर्थः, यतः—यदीच्छेद्विपुलां प्रीतिं । तत्र त्रीणि निवारयेत् ॥ विवादमर्थसंबंधं । परोक्षे दारदर्शनं ॥ ५३ ॥

इति वचनात्, तन्मे तद्विषये मावादीः. एतामपि तावत्प्रीतिमवेहि. अन्येन कारय, नगरमहं परीक्षयिष्यामीति ॥ ५४ ॥

गोपालः—नैवं ब्रवेत्. किमहं त्वच्चित्तं न वेद्मि, स्वर्णकारः—वेत्सि त्वं, किंतु विरुद्धो लोक इति ॥ ५५ ॥

वळी प्रीति तुटवानुं मोटुं कारण पैसो छे, जेथके जो गाढी प्रीतनी इच्छा करवी होय, तो त्यां विवाद, धन संबंधी लेवडदेवड, तथा परोक्ष * (तेनी) स्त्रीने मळवानुं, ए त्रण बाबतो करवी नहीं ॥ ५३ ॥

एवुं नीतिवचन छे, माटे हुं तारे घरे आवीने तारे घेर न रहुं. आटली पण तुं जाव प्रीति जाणजे; तेथी तुं ते बीजा सोनार पासे करावे? वळी आ हुं तेनी परीक्षा करी आपीश ॥ ५४ ॥

त्यारे गोवाळीए कह्युं के, एम न थाय, शुं हुं तारुं मन जाणतो नथी? सोनारे कह्युं के, तुं तो जाणे छे, परंतु दुनिया बुरी छे ॥ ५५ ॥

* मित्रनी गेरहाजरीमां.

गोपालः—किमस्माकं लोकेन, स्वर्णकारः—तथापि लोकस्वभावं दर्शयामि ते, ततः स्वर्णकृता तुभ्यमेवाऽकारि कटकयुग्मं, सौवर्णमेकं रीरीमयं चान्यत् ॥ ५६ ॥

अर्पितं सौवर्णं, भणितश्च गोपः, दर्शयेर्हट्टे, कथयेश्चामुकस्य स्वर्णकारस्येदं, कीदृशं किञ्च लभते इति ॥ ५७ ॥

ततोऽनेन तथा कृते कथितं वणिग्भिरिदं हेमं, इयच्च लभत इति. ज्ञापितं च स्वर्णकृतः, द्वितीयदिने च हस्तलाघवेन रीरीमयमर्पितवानभाषि. अद्य कल्यं कृतमस्या दर्शय ॥ ५८ ॥

त्यारे वळी गोवाळीए कह्युं के, मारे दुनियानुं शुं काम छे? सोनारे कह्युं के, तोपण हुं तने दुनियानो स्वभाव देखाडुं; पछी ते सोनारे एक सोनानुं अने बीजुं पीतळनुं एम बे सरखां कडां बनाव्यां ॥ ५६ ॥

पछी तेमांथी सोनानुं कडुं गोवाळीआने आपीने कह्युं के आ तारे (वेपारीनी) दुकाने देखाडवुं, (अने मारुं नाम आप्या विना) कहेवुं के, आ अमुक सोनारनुं बनावेलुं छे, ते केवुं छे? तथा तेनी शुं किंमत थाय छे? ॥ ५७ ॥

पछी तेणे तेम करवाथी वेपारीओए कह्युं के आ कडुं सोनानुं छे; तथा तेनी आटली किंमत थाय छे; पछी तेणे ते वात सोनारने जणावी; पछी बीजे दिवसे ते सोनारे हाथचालाकीथी तेने पीतळनुं कडुं बदलावी आपीने कह्युं के, आज हवे आ मारुं बनावेलुं छे, एम कहीने तुं देखाडजे? ॥ ५८ ॥

ततः स मुग्धस्तत्परावर्त्तमविदन्नदर्शयद्वणिजः, तैश्चाभणि रीरीमयमिदं, न किं विजानते इति ॥ ५९ ॥

ज्ञापितः स्वर्णकृत् ऊचे च दृष्टो लोकस्वभावः, गोपालः—त्वमेव स्वर्णं कुर्विति ॥६०॥

ततस्तद्धनं सर्वं गृहीत्वा रीरीकटकं कृत्वा तस्यार्पितं, तदुक्तं—पासा वेसा अग्गि जल । ठग ठक्कुर सोनार ॥ ए दस न हुइ अप्पणा । मंकड वडुअ बिलाड ॥ ६१ ॥

अन्यदा परिहितं तद्गोपेन दृष्टं केनापि, भणितश्च रे मित्रेण ते रीरीमयं कटकं कृतं, अहो मुषितोऽसि, अन्यैरपि तथोक्ते प्रतिवक्ति ॥ ६२ ॥

पछी ते विचारे मुग्ध गोवाळीओ ते कडांना फेरफारने नहीं जाणीने वेपारीओने देखाडवा लाग्यो; त्यारे वेपारीओए कह्युं के, आतो पीतळनुं छे, आना कंइ पण पैसा मळे तेम नथी ॥ ५९

पछी ते वात गोवाळीए ते सोनारने जणाववाथी, तेणे कह्युं के, जोयो तें दुनियानो स्वभाव? पछी गोवाळीए कह्युं के, हवे तो तुंज सुवर्णनो दागीनो मने करी आप? ॥ ६० ॥

पछी ते सोनारे तेनुं सघळुं धन लेइने पीतळनुं कडुं करीने तेने आप्युं, कह्युं छे के—पासा, वेश्या अग्नि, जल, ठग, ठाकुर, सोनार, वांदरो, बटुक अने बिलाडो, ए दशे आपणा न होय ॥ ६१ ॥

एक दहाडो गोवाळीए ते कडुं पहेर्युं, अने कोइए ते जोवाथी तेने कह्युं के, अरे! तारा मित्रे तो आ पीतळनुं कडुं बनाव्युं छे, अहो! तुं ठगायो छुं; बीजाओए पण तेम कहेवाथी तेओने गोवाळीओ कहेवा लाग्यो के ॥ ६२ ॥

वेद्म्यहं यादृगेतत्, किं वः परितसिकरणेन, तैः कथायितैरुक्तं, रे निरूपय, मात्मानं वंचयस्व ॥ ६३ ॥

गोपः—निरूपितं मया, यूयमात्मानं निरूपयतेत्यादिः एष पूर्वं व्युद्ग्राहितो गुरुणाप्युक्तं न विवेद, एवं यः कुश्रुतिव्युद्ग्राहितः सोऽपीति निदर्शितो व्युद्ग्राहितः ॥६४॥

एते चत्वार उपदेशस्याऽनर्हा इति, अहवा इसएहिंति, अथवाऽतिशयैस्ते चत्वारोऽपि बुध्यंते ॥ ६५ ॥

जेवुं ते छे, तेवुं हुं जाणुं छुं, तमारे बीजा कोइनी अदेखाइ शामाटे करवी जोइये? त्यारे तेओए गुस्से थइने वळी कह्युं के अरे! तुं जो तो खरो, तुं पोते न ठगा? ॥ ६३ ॥

गोवाळीए कह्युं के, में तो जोयुं छे, तमो तमारुं संभाळोनी, इत्यादि; एवी रीते पहेलेथीज भमविल्लो ते गोवाळ कहेला एवां योग्य वचनने पण जाणी शक्यो नहीं, तेम जे कुशास्त्रथी भमेलो होय, ते पण युक्तिने जाणी शकतो नथी, एवी रीते पहेलेथी भमविल्ला मनुष्यनुं उदाहरण कह्युं ॥ ६४ ॥

एवी रीते उपर वर्णवेला ते चारे जातना मनुष्यो उपदेशने लायक नथी, अथवा अतिशयोवडे करीने ते चारे प्रकारना मनुष्यो पण बोध पामी शके छे ॥ ६५ ॥

तत्राऽतिशय आधिक्यं जातिस्मरणराज्यादिसद्यस्कधर्मफलप्राप्तिदर्शनविद्याचमत्कारादि सुरादिभिः संकटपातनादि च ॥ ६६ ॥

तत्र रक्तस्याप्यतिशयात्प्रतिबोधे निदर्शनमुदायननृपः, तथाहि—वीतभयपत्तने पृथ्वीपतिरुदायनस्तापसधर्मरक्तः ॥ ६७ ॥

तत्राऽन्यदाऽगमत् पोतवणिगेकः, प्राभृतयच्च पृथ्वीपतये गोशीर्षचंदनदारु, व्यज्ञपयच्चेद देवाधिदेवस्य प्रतिमा कर्त्तव्येति कथयित्वा देवेन ममैतत्समर्पितमिति ॥ ६८ ॥

त्यां अतिशय एटले अधिकपणुं, अने ते जातिस्मरणज्ञान अथवा राज्यआदिकनी प्राप्तिरूप धर्मना तुरत फळनी प्राप्तिनुं देखावुं, विद्या चमत्कार आदिक, तथा देवता आदिकोथी दुःखमां पाडवा आदिकरूप जाणवुं ॥ ६६ ॥

त्यां रक्तने पण अतिशयथी प्रतिबोध थवामां उदायन राजानुं दृष्टांत जाणवुं ते नीचे मुजब छे:—वीतभय नामना नगरमां उदायन नामे राजा हतो, अने ते तापसोना धर्ममां आसक्त हतो ॥ ६७ ॥

एक दहाडो ते नगरमां एक वहाणवटी व्यापारी आव्यो; अने तेणे राजाने एक गोशीर्षचंदननुं लाकडुं भेट कर्युं; अने विनंति करी के मने आ काष्ठ देवताए एम कहीने आप्युं छे के, आमांथी देवाधिदेवनी मूर्ति बनाववी ॥ ६८ ॥

राज्ञापि पुरे चातुर्विद्यान् मेलयित्वा श्रावयित्वा च वणिगुक्तमादिष्टा वनकुट्टका, इह देवाधिदेवप्रतिमां कुरुतेति ॥ ६९ ॥

कृतेऽधिवासने भणितं ब्राह्मणैर्देवाधिदेवो ब्रह्मा, तस्य प्रतिमां कुरुत, वाहितः कुठारो न तु वहति ॥ ७० ॥

अन्यैर्भणितं, विष्णुर्देवाधिदेवः, तथापि नवहति, एवं स्कंदरुद्रादिदेवभणनादि ॥ ७१ ॥

इतश्च सिद्धे भोजनपाके प्रभावतीराज्ञ्या प्रहिता दासी नृपस्याकारणाय, सा तु सुखितास्ति, अस्माकं पुनरीदृशः समयो वर्त्तत इत्यभाणि दास्या मुखेन राज्ञीं प्रति ॥ ७२ ॥

राजाए पण नगरमांथी चारे विद्याओमां पारंगामी पंडितोने एकठा करीने तथा तेओने तथा व्यापारीनुं कहेवुं संभळावीने कठीआराओने हुकम कर्यो के, आमांथी देवाधिदेवनी मूर्त्ति बनावो? ॥ ६९ ॥

पछी शुभ मुहूर्त्तआदिकनी क्रिया कर्या बाद ब्राह्मणोए कह्युं के, देवाधिदेव तो ब्रह्मा छे, माटे तेनी प्रतिमा करो त्यारे तेपर कुहाडो लगाव्यो परंतु कुहाडो चाल्यो नहीं ॥ ७० ॥

त्यारे बीजाओए कह्युं के देवाधिदेवतो विष्णु छे, परंतु कुहाडो चाल्यो नहीं, एवी रीते कार्त्तिकेय, महादेव इत्यादि देवोनां नामो लीधां ॥ ७१ ॥

एटलामां रसोइ तैयार थवाथी प्रभावती राणीए राजाने बोलाववा माटे दासीने मोकली; त्यारे राजाए दासीने मोंढेथी राणीने कहेवराव्युं के, ते राणी तो अत्यारे सुखी थइ बेठी छे, अने अमारो तो आवो समय वर्त्ते छे ॥ ७२ ॥

निवेदितं तया राज्ञे, ततः प्रभावत्यवक् अहो मिथ्यात्वमोहिता देवाधिदेवमपि न शृण्वंति, ततः सा नृपानुज्ञया स्नाता कृतकौतुकमंगला शुक्लवस्त्रपरिधाना बलिपुष्पधूपकडुच्छुकहस्ता तत्रागत्याह ॥ १३ ॥

देवाधिदेवो वर्धमानस्तस्य प्रतिमा क्रियतामित्युक्ते वाहितः कुठारः, एकघात एव द्विधाभूद्दारु दृष्टा च पूर्वनिर्मिता सर्वालंकारभूषिता भगवतो वर्धमानजिनस्य प्रतिमा ॥ १४ ॥

स्थापिता च राज्ञा गृहासन्ने नव्यकृते चैत्ये, अष्टमीचतुर्दश्योः प्रभावती भक्त्या स्वयं नृत्यं करोति राजापि तदनुवृत्त्या मुरजं वादयति ॥ १५ ॥

पछी ते दासीए ते वात राणीने जणावी, त्यारे प्रभावतीए कह्युं के, अहो! मिथ्यात्वथी मूढ थएला लोको देवाधिदेवने पण सांभळता नथी. पछी ते राजानी आज्ञाथी स्नान करीने तथा कौतुकमंगळ करीने, तथा श्वेत वस्त्रो पेहेरीने बलि, पुष्प तथा धूप धाणुं हाथमां लइने सभामां आवी कहेवा लागी के ॥ १३ ॥

देवाधिदेव तो वर्धमानप्रभु छे, माटे तेनी प्रतिमा करो? एम कहेतां कुहाडो चलाव्यो, तो एक घाएज ते काष्ठना बे टुकडा थया, अने तेमां पूर्वथीज बनेली तथा सर्व आभूषणोथी शोभिती थएली भगवान श्री वर्धमान प्रभुनी प्रतिमा जोवामां आवी ॥ १४ ॥

पछी राजाए ते प्रतिमा पोताना घरनी नजदीक नवा करेला मंदिरमां स्थापन करी, पछी आठम चौदसे प्रभावती राणी भक्तिथी पोते नाच करे छे, तथा राजा पण तेने अनुसरतो मृदंग वजावे छे ॥ १५॥

अन्यदा नृपेण नृत्यन्त्या राज्ञ्याः शिरश्छाया न दृष्टा, उत्पात इति कृत्वा व्यग्रचित्तोऽभून्नृपः, स्खलितश्च मुरजध्वनिः ॥ १६ ॥

पृष्टा देवी, ततो राजाह, मादृशः उत्पातो दृष्टस्ततः स्खलितोऽस्मि. उक्तं प्रभावत्या. जिनमतप्रपन्नेन जेतव्यं मरणात् ॥ १७ ॥

अन्यदा पुनः स्नाता प्रभावती देवपूजार्थं शुद्धवस्त्रे अनाययत् ॥ १८ ॥

एक दहाडो राजाए नाचती एवी राणीनी मस्तकनी छाया न दीठी. तेथी कंइक उत्पात छे. एम विचारी राजा व्याकुल चित्तवाळो थयो, अने तेथी मृदंगना नादमां स्खलना थइ ॥ १६ ॥

वळी ते कारणथी राणी रुष्मान थइ. त्यारे राजाए कह्युं के, तुं रोष नहीं कर ? में उत्पात जोयो, अने तेथी मने स्खलना थइ छे; त्यारे प्रभावतीए कह्युं के, जैनमतने माननाराओए मृत्युथी डरवुं न जोइए ॥ १७ ॥

वळी एक दहाडो प्रभावती राणीए स्नान करीने देवपूजा माटे बे शुद्ध वस्त्रो मगाव्यां ॥ १८ ॥

आनीयमाने च ते अंतरा कौसुंभरागरक्ते इव संवृत्ते, राज्या दर्पणे पश्यंत्या उपनीते च दृष्टा च सा, देवायतनं प्रविशंत्याः किममंगलं मे करिष्यसि, किंवासगृहंप्रवेशिन्यहमिति भणित्वा च आनेत्रीं दर्पणेनाजघान ॥ ७९ ॥

प्राणैरमुच्यत सा. ततोऽचिंतयद्राज्ञी, चिरानुपालितं भग्नं ममाद्य प्रथमं व्रतं, एषोऽपि ममोत्पातः. ततो नृपं व्यजिज्ञपत्, युष्मदनुज्ञाताऽहं प्रव्रजामीति ॥ ८० ॥

नृपः स्माह यदि मां सद्धर्मे बोधयिष्यसीति, ततस्तया प्रतिपन्ने नृपेणाऽनुमता साप्राव्राजीत् ॥ ८१ ॥

ते वस्त्रो लेइ आवतें छते मार्गमां जाणे कसुंबी रंगवाळां थइ गयां; अने आरीसामां जोती एवी राणीनी पासे (ते वस्त्र) लावी मुक्यां तेथी ते क्रोधायमान थइने ते वस्त्र लावनार दासी प्रत्ये कहेवा लागी के, देवमंदिरमां प्रवेश करती एवी मने शुं तुं अमंगळ करवा मांगे छे? शुं आ समये हुं वासभुवनमां प्रवेश करवानी छुं? एम कहीने ते लावनार दासीने आरीसो मार्यो ॥ ७९ ॥

अने तेथी ते दासीनां प्राण गयां; त्यारे राणी विचारवा लागी के, घणा काळथी पाळेलुं पेहेलुं व्रत में आजे भांग्युं; माटे आ पण मारापर उत्पात थयो; तेथी ते राजाने विज्ञप्ति करवा लागी के, जो आप मने अनुज्ञा आपो तो हुं दीक्षा लेउं ॥ ८० ॥

त्यारे राजाए कह्युं के, जो तुं मने उत्तम धर्मनो बोध आपवानुं कबुल करे, तो हुं रजा आपुं; पछी तेणीए पण तेम करवानुं स्वीकारवाथी राजाए अनुमति आपवाथी दीक्षा लीधी ॥ ८१ ॥

पमाणुसी संयममाराध्य वैमानिकेष्वगमत्, ततो नानारूपैर्नृपं बोधयामास, परं तापसभक्तो राजा न प्रतिबुध्यते, ततोऽचिंतयदेवः ॥ ८२ ॥

तापसेषु रक्तोऽयं तेषां गुणानेव पश्यति, यतः—रत्ता पिच्छंति गुणे। दोसे पिच्छंति जे विरज्जंति ॥ मज्झत्थच्चिअ पुरिसा। दोसे अ गुणे अ पिच्छंति ॥ ८३ ॥

ततः कथमपि तापसेषु विरक्तीकरोमि, यथा तेषु विरक्तो जिनधर्मं सम्यगवबुध्यते. ततस्तापसवेषः पुष्पफलहस्तः प्राप्तो नृपसमीपं ॥ ८४ ॥

छ मास पर्यंत संयम पाळीने ते वैमानिक देवलोकमां गइ; पछी ते देवरूपे थयेलो राणीनो जीव नाना प्रकारना रूपो वडे करीने राजाने प्रतिबोधवा लाग्यो, परंतु तापसोनो भक्त एवो ते राजा प्रतिबोध पाम्यो नहीं, त्यारे ते देवे विचार्यु के ॥ ८२ ॥

तापसोमां रक्त एवो आ राजा तेओना गुणोनेज जुए छे, केमके रक्त माणसो गुणोने जुए छे, तथा विरक्त माणसो दोषोने जुए छे, अने मध्यस्थ मनुष्यो तो दोषोने अने गुणोने बन्नेने जुए छे ॥ ८३ ॥

माटे कोइ पण रीते हुं तेने तापसोमां विरक्त करूं, के जेथी तेओमां विरक्त थइने जैनधर्मने ते सारी रीते जाणी शके; पछी ते देव तापसनो वेष लेइने, तथा हाथमां पुष्प अने फळ लेइने राजा पासे आव्यो ॥ ८४ ॥

फलमेकं राज्ञोऽर्पितमतीवमनोहरं, राज्ञा घ्रातं सुरभितरमिति, आलोकितं सुरूपमिति, आस्वादितं अमृतरसोपममिति, पृष्टस्तापसः क्वैतादृंशि फलानि संजवंति ॥ ८५ ॥

तापसः—इतो नातिदूरासन्ने तापसाश्रमे, नृपः—दर्शय मे तं तापसाश्रमं, तांश्च तरून, तापसः—एह्येकाकी ॥ ८६ ॥

ततो राजा मुकुटाद्यलंकृतश्चलितः, तापसेन सह दृष्टं तादृग्वनं, तापसाश्रमाश्च ॥ ८७ ॥

शृणोति च तत्र मिथो मंत्रयतस्तापसान्, यथैष राजैकाकी सर्वालंकारः, तदेनं हत्वा गृह्यीमोऽस्याऽजरणानीति ॥ ८८ ॥

पछी तेणे राजाने एक अत्यंत मनोहर फळ आप्युं, राजाए ते सुंघ्युं, तो अत्यंत सुगंधी लाग्युं, जोयुं तो उत्तम रुपवाळुं लाग्युं, चाख्युं तो अमृत सरखा रसवाळुं लाग्युं, पछी तापसने पूछ्युं के आवां फळो क्यां उत्पन्न थाय छे? ॥ ८५ ॥

तापसे कह्युं के, अहींथी नजदीकज तापसोना आश्रममां थाय छे; त्यारे राजाए कह्युं के, मने ते तापस आश्रम तथा ते वृक्षो देखाड? तापसे कह्युं के, तुं एकलो आव? ॥ ८६ ॥

पछी राजा मुकुट आदिकथी शोभायमान थइने तापसनी साथे चाल्यो, तो तेवुंज वन अने तापस-आश्रमो जोया ॥ ८७ ॥

वळी त्यां तापसोने परस्पर एवी वातो करतां सांभळ्या के, आ राजा सर्व अलंकारोथी भूषित थयेलो एकलो छे, माटे तेने हणीने तेना आभूषणो आपणे लेइ लेइए ॥ ८८ ॥

भीतो नृपः पश्चाद्वलितः, तावत् कोकूयितं तापसेन, धावत धावत पलायित एष ग्राह्यः, धावितास्तापसाः हत हतेति भणंतः ॥ ८९ ॥

नश्यंश्च नृपोऽपश्यदेकं महद्वनं शृणोति च तत्र मानुषालापं, शरणमत्रेति मत्वाऽगतः प्रेक्षांचक्रे चंद्रमिव सोमं, कंदर्पमिव सुरूपं, नागकुमारमिव सुनेपथ्यं, बृहस्पतिमिव सर्वशास्त्रविशारदं, बहूनां श्रमणादीनां मध्यगतं धर्ममाख्यांतं गुरुं ॥ ९० ॥

शरणं शरणं इति भणंश्च गतस्तत्र, गुरुणा भणितं च न भेतव्यमिति छुटितोऽसीति भणित्वा प्रत्युगुस्तापसाः, राजापि तेषु विपरिणत ईषदाश्वस्तोऽभूत् ॥ ९१ ॥

राजा डरीने पाछो वळ्यो, एटलामां तापसे पोकार कर्यो के, दोडो ? दोडो ? आ नाशी जाय छे, माटे तेने पकडवो जोइए, पछी ते तापसो मारो ? मारो ? एम बोलता दोडवा लाग्या ॥ ८९ ॥

पछी राजाए नासतां थकां एक महोटुं वन जोयुं, अने त्यां मनुष्यनो शब्द सांभळ्यो, अहीं मने शरणुं मळशे, एम जाणीने ज्यां आगळ जुए छे, त्यां चंद्र सरखा शांत, कामदेव सरखा उत्तम रूपवाळा, नागकुमार सरखा उत्तम वेषवाळा, बृहस्पतिनी पेठे सर्व शास्त्रोना जाण तथा घणा मुनि आदिकोनी वच्चे बेसीने धर्मोपदेश देता एवा गुरुमहाराजने तेणे जोया ॥ ९० ॥

पछी शरण! शरण! एम कहेतो थको ते राजा त्यां गयो, त्यारे गुरुए कह्युं के तमारे डरवुं नहीं; हवे तुं छुट्यो, एम कही तापसो पण पाछा गया; राजा पण ते तापसो प्रत्ये विरक्त थइने जरा शांत थयो ॥ ९१ ॥

धर्मश्च कथितस्तस्य गुरुणा, प्रतिपन्नश्च तेन, प्रजावतीदेवेन च सर्वं प्रतिसंहृतं, राजात्मानं सिंहासनस्थमेव पश्यति ॥ ८२ ॥

देवेन च नभःस्थेनाऽभाणि, सर्वमिदं त्वत्प्रतिबोधार्थं कृतं मया, धर्मे तवाऽविघ्नं भवत्विति, अन्यत्राप्यापदि मां स्मरेरित्युक्त्वा स्वपदं प्राप्तेति ॥ ८३ ॥

इति रक्तस्याऽतिशयात् सुरेण संकटपातरूपात् धर्मप्रतिबोधे श्रीउदायननृपसंबंधः ॥ ८४ ॥

एवं द्विष्टस्य कमठासुरस्य श्री पार्श्वजिने कायोत्सर्गस्थे निरर्गलजलाद्युपसर्गकारिणो धरणेंद्रप्रणीततादृगधिक्षेपज्ञापनादिना ॥ ८५ ॥

पछी गुरुए तेने धर्म संभळाव्यो, तेणे पण ते अंगीकार कर्यो; पछी ते प्रभावती देवे आ सघळो खेल पाछो संहरी लीधो, त्यारे राजा पोताने सिंहासनपर बेठेलोज जोवा लाग्यो ॥ ८२ ॥

पछी ते देवे आकाशमां रहीने तेने कह्युं के, आ सघळुं में तने प्रतिबोधवा माटे कर्युं हतुं, हवे तने धर्ममां निर्विघ्नपणुं थाओ ? वळी फरीने पण जो तने कष्ट पडे तो मारुं स्मरण करजे ? एम कहीने ते देव पोताने स्थानके गयो ॥ ८३ ॥

एवी रीते रक्तने पण ते देवे संकटमां पाडवारूप अतिशयथी धर्मनो प्रतिबोध देवामां श्री उदायन राजानुं उदाहरण जाणवुं ॥ ८४ ॥

एवी रीते द्वेषी एवा कमठासुर, के जेणे काउसग्गमां रहेला एवा श्री पार्श्वप्रभुपर अत्यंत जळवरसाववा आदिकनो उपसर्ग करेलो हतो, तेने धरणेंद्रे करेला तेवा आक्षेप तथा भय पमाडवा आदिकवडे करीने प्रतिबोध जाणवो. ॥ ८५ ॥

पापबुद्धिनृपस्य च युद्धवधादिरूपात्पापादेव राज्यादिसकलश्रेयःसमीहितप्राप्तिरितिवादिनो धर्मद्वेषिणः सुबुद्धिमंत्रिणा कामघटदिव्यलकुटसर्वोपद्रवापहारिचामरकन्यात्रयपाणिग्रहणदिव्यपल्यंकश्वेतरक्तकणवीरकंबाद्वयराज्यादिमद्यसुधर्मफलप्राप्तिदर्शनेन प्रतिबोधः ॥ ८६ ॥

पूर्वभवे किंचिद्विराधितधर्मतया धर्मे मूढस्य च मेतार्यादेः सुरैः संकटपातनादिभिः, कमलस्य चोपहासादिना. कुंभकारटट्टिदर्शनाभिग्रहवतो निधानप्राप्त्या. पूर्वं व्युद्ग्राहितस्य च भृगुपुरोहितपुत्रद्वयस्य साधुपात्राऽऽहाराचारदर्शनजजातिस्मरणेन प्रतिबोधश्च निदर्शनीयः ॥ ८७ ॥

वळी पापबुद्धि राजा, के जे युद्ध तथा वध आदिरूप पापथीज राज्यआदिक सकल कल्याण तथा इच्छित प्राप्ति थाय छे, एम कहेनारो हतो, तथा धर्मनो द्वेष करनारो हतो, तेने सुबुद्धि मंत्रिए धर्मना तुरत फळनी प्राप्ति देखाडवा रूप कामघट, देवताइ लाकडी, सर्व उपद्रवने हरनार चामर, त्रण कन्याओनुं पाणिग्रहण, देवताइ पलंग, सफेद तथा लाल कणेरनी बे कांबडीओ तथा राज्य आदिकनो लाभ बतावीने प्रतिबोध आपेलो छे ॥ ८६ ॥

पूर्व जन्ममां धर्मनी कंइक विराधना करवाथी धर्ममां मूढ एवा मेतार्य आदिकने देवोए संकटमां पाडवा आदिकथी प्रतिबोधेला छे; कमळने हांसी आदिकथी प्रति बोधेलो छे, कुंभारनी टालने जोवाना अभिग्रहवाळाने निधाननी प्राप्तिथी प्रतिबोध्यो छे, पेहेलेथी भमावेला एवा भृगुपुरोहितना बन्ने पुत्रोने साधुना पात्र, आहार तथा आचार देखाडीने जातिस्मरण उत्पन्न करावीने प्रतिबोधेला छे, एम जाणवुं ॥ ८७ ॥

रक्तादीनां दुर्लभ—बोधिकतामिति विज्ञाय भव्यजनाः ॥ माध्यस्थ्यं धत्त यतो ।
धर्मः सुलभो जयश्रीदः ॥ ९८ ॥

माटे एवी रीते ते रक्त आदिकोने बोध थवो दुर्लभ छे, एवुं जाणीने हे भव्यजनो ! तमो मध्यस्थभावने धारण करो ? जेथी तमोने धर्म सुलभ तथा जयलक्ष्मीने देनारो थाय ॥ ९८ ॥

॥ एवी रीते त्रीजो तरंग समाप्त थयो ॥

इति तृतीयस्तरंगः समाप्तः

अथ चतुर्थस्तरंगः

पूर्वतरंगे चत्वार उपदेशस्याऽयोग्याः प्रतिपादितास्तत्र मूढस्य भेदरूपान् पुनरयोग्यान् कतिचिदाह ॥ १ ॥ मूलम्—अणवट्ठिओपमत्तो । बहिरकुडुंबसमो अ कुग्गहत्थं ॥ पामरसम सुअमित्त—गाही धम्मं न साहंति ॥ २ ॥

पूर्वना तरंगमां चार उपदेशने अयोग्य कह्या; तेमां मूढना भेदरूप केटलाक अयोग्योनुं फरीने वर्णन करे छे ॥ १ ॥ मूळनो अर्थः—अनवस्थावाळो, प्रमादी, बहेरा कुटुंब जेवो, कदाग्रही, पामर सरिखो, तथा श्रुत मात्र ग्रहण करनारो, एटली जातना मनुष्यो पण धर्मने साधी शकता नथी ॥ २ ॥

अनवस्थितात्मनो धर्मं न साधयन्तीत्ययोग्या उपदेशस्येति संटंकः ॥ ३ ॥ तत्राऽनवस्थितो विविधव्यासंगचञ्चलितचित्तोऽस्थिरासनश्च श्रेष्ठिगृहिणीवत्, तथाहि ॥४॥ श्रीपुरनगरे वसुश्रेष्ठी, पत्नी गोमती, पुत्रो धनपालः, क्रमाऽपरते पितरि व्यतीते शोकेऽन्यदा वधूभिःसह कलहायते गोमती ॥ ५ ॥ उक्ताऽङ्गजेन किं तवेदानीं गृहचिंतया, धर्मं कुरु, अहं तवाज्ञाकरोऽस्मि; न चाऽनाकर्णितोऽवधार्यते धर्मः, शृणु धर्मं ॥६॥ गृह एवाकारितः शास्त्रवाचकः, प्रारेभे वाचनां, उपाविशद् गोमती ॥ ७ ॥

अनवस्थावाळा आदिक मनुष्यो धर्मने साधी शकता नथी, माटे तेओ उपदेशने लायक नथी; एवो संबंध छे ॥ ३ ॥ त्यां अनवस्थावाळो एटले शेठनी स्त्रीनी पेठे नाना प्रकारना व्यासंगथी चपळचित्तवाळो तथा अस्थिर आसनवाळो जाणवो; ते शेठनी स्त्रीनुं उदाहरण कहे छे ॥ ४ ॥ श्रीपुर नामना नगरमां वसु नामे शेठ हतो. तेने गोमती नामे स्त्री हती, अने धनपाळ नामे पुत्र हतो; अनुक्रमे पिता मृत्यु पाम्ये छते तथा तेनो शोक पण मूकाते छते, एक दहाडो गोमती वहुओ साथे क्लेश करवा लागी ॥ ५ ॥ त्यारे पुत्रे कह्युं के, हवे तारे घरनी फिकर करवानी शी जरुर छे, तुं तारे धर्मध्यान कर हुं तारा हुकमने ताबे छुं; वळी श्रवण कर्याविना धर्म धारण करी शकातो नथी, माटे तुं धर्मनुं हवे श्रवण कर? ॥ ६ ॥ पछी शास्त्र वांचनारने घेरज बोलाव्यो, अने शास्त्र वंचाववा मांडयुं, गोमती पण सांभळवा बेठी ॥ ७ ॥

भीष्म उवाचेति यावद्भणितं तावत् प्रतोल्यामर्धप्रविष्टशुनः दूरात् हाकिहाकिति जल्पंत्युत्तस्थौ ॥८॥ रुष्टा दौवारिकाय, किंचिज्जल्पित्वा स्वल्पवेलया पुनरागत्योपविष्टा. भीष्म उवाचेत्यकथयत् कथकः ॥९॥ तावद्ददर्शे महानसासन्नां मार्जारीं, दूरात् छिरि छिरि वदंत्युदस्थात्, अरुष्यत् सूपकारिकायै, पुनरुपाविक्षत् ॥१०॥ भीष्म उवाचेति अवोचत्पुस्तकवाचकः, अत्रांतरे छुटितो वत्सः, उत्थिता छुछु इति जल्पंती क्रुद्धा वत्सपालाय. न्यविक्षत् पुनः॥११॥ भीष्म उवाचेति यावदूचे वाचकः, तावत् काकाकाका इति कोलाहलपरा पराङ्मुख्यभूत्, अरुष्यत् कर्मकरीभ्यः, एवं याचकागमनादिष्वपि पुन पुनरुत्थानादि एवमतिक्रांतः प्रहरो गतः पुस्तकवाचक॥१२॥

जेटलामां कथा वांचनार भटजीए कह्युं के 'भीष्म उवाच' एटलामां कुतरीमां अर्ध प्रवेश करेला कुतराने जोइने दूरथीज ते हाक हाक करती उभी थइ ॥ ८ ॥ पछी द्वारपाळ प्रत्ये क्रोध करीने तथा कंइक बबडीने तुरतज पाछी आवी बेठी. एटले वळी भटजीए कथा शिरू करी के 'भीष्म उवाच' ॥ ९ ॥ वळी एटलामां गोमतीए रसोडा नजदीक बीलाडीने जोइ, तेथी दूरथीज छीछी करती उभी थइ; तथा रसोइ करनारी प्रत्ये क्रोधायमान थइ, अने पाछी आवीने बेठी ॥ १० ॥ त्यारे वळी भटजीए कथा शरु करी के 'भीष्म उवाच एटलामां वाछडो छुटी गयो, ते जोइ छु छु करती उठी, अने गोवाळ प्रत्ये क्रोध करीने पाछी आवी बेठी ॥ ११ ॥ वळी भटजीए कह्युंके 'भीष्म उवाच' एटलामां तो ते गोमती का का का का एवा कोलाहल करती थकी पराङ्मुखी थइ, अने दासीओ प्रत्ये क्रोध करवा लागी. एवी रीते याचकना आगमन आदिक वखते पण वारंवार उठी; अने एवी रीते एक पहोर नीकळी गयो. तेथी पुस्तक वांचनार भटजी तो घेर सीधावी गया ॥ १२ ॥

प्रातः पुनरागात्, परं तदापि प्रकारः स एवेति खिन्नो गतः सः तया चोक्तं—
अणवट्टिअस्स धम्मं । माहु कहिज्जहि सुट्ठु वि पिअस्स विज्झायं होइ मुहं ।
विज्झाय ग्गिंधमंतस्स ॥ १३ ॥ अन्यधिष्महि च, अप्युल्लसल्लब्धिनिधिः प्रबोधयेद्
बहूपदेशैरपि कोऽनवस्थितं ॥ नेतुं तडिद्वह्निमलं न पुष्करावर्त्तोऽपि धाराशतल-
क्षकोटिभिः ॥ १४ ॥ इति ॥ प्रमत्तो विषयकषायविकथानिद्रादिप्रमादप्ला-
वितचेतनः, स च धर्मं न बुध्यते, प्राग्जन्मभ्रातृचित्रमहर्षिप्रतिबोध्यमानब्रह्मदत्तच-
क्र्यादिवत् ॥ १५ ॥

वळी प्रभाते फरीने भटजी पधार्या परंतु ते दिवसे पण तेज हाल जोया, तेथी बिचारा भटजी तो थाकी थाकीने चाल्या गया. वळी कहुं छे के—प्रिय एवा पण अनवस्थित एटले व्यग्र चित्तवाळा मनुष्यने उत्तम एवो पण धर्म संभळाववो नहीं, केमके बुझेला अग्निने धमवाथी जेम तेनुं मोढुं खराब थाय छे ॥ १३ ॥ वळी आगळ पण कहुं छे के—जेनी पासे लब्धिओनो भंडार उल्लासमान थइ रहेलो छे, एवो पण कोण मुनि घणा उपदेशोथी पण अनवस्थित चित्तवाळाने प्रबोधी शके तेम छे? (अर्थात कोइ नथी) केमके पुष्करावर्त मेघ पण पोतानी सेंकडो, लाखो तथा क्रोडो गमे धाराओथी पण विजळीना अग्निने ठारवाने समर्थ नथी ॥ १४ ॥ इति ॥ प्रमादी एटले विषय, कषाय, विकथा तथा निद्रा आदिक प्रमाद युक्त चित्तवाळो माणस, अने ते पूर्वजन्मना भाइ एवा चित्रमहर्षिथी प्रतिबोधता ब्रह्मदत्तचक्री आदिकनी पेठे धर्मने जाणी शकतो नथी ॥ १५ ॥

तदुक्तं—चित्ते प्रमादनिभृते। धर्मकथाः स्थानमेव न लभंते ॥ नीलीरक्ते वाससि। कुंकुमरागो दुराधेयः ॥ १६ ॥ महाभारतेऽपि, एकदा मथुरायां समागतं दुर्वाससं मुनिं प्राह धृतराष्ट्रनृपः, मुने मत्पुत्राणां दुर्योधनादीनां धर्मशिक्षां ददस्व, यथा ते पांडुपुत्रैः सह न कलहायंते ॥ १७ ॥ मुनिराह—वेदागमपुराणोक्ति—युक्तिवाक्यशतैरपि ॥ दश धर्मं न बुध्यंते। धृतराष्ट्र निशम्यतां ॥ १८ ॥ मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः। श्रांतः क्रोधी बुभुक्षितः ॥ त्वरमाणश्च भीरुश्च। लुब्धः कामीत्यमी दश ॥ १९ ॥ इति ॥ बधिरकुटुंबकोपमायस्य स बधिरकुटुंबोपमः, सोऽप्युपदेशाऽनर्हः, बधिरकुटुंबसंबंधो यथा ॥ २० ॥

कह्युं छे के—प्रमादथी भरेला चित्तमां धर्म कथाने स्थानज मळतुं नथी, केमके गळीथी रंगेला वस्त्रपर कसुंबानो रंग चडी शकतो नथी ॥ १६ ॥ महाभारतमां पण कह्युं छे के, एक वखते मथुरामां आवेला दुर्वासा मुनिने धृतराष्ट्र राजाए कह्युं के, हे मुनिराज! मारा आ दुर्योधन आदिक पुत्रोने तमो धर्म शिक्षा आपो? के जेथी तेओ पांडवो साथे कजीआ न करे ॥ १७ ॥ मुनिए कह्युं के, हे धृतराष्ट्र राजा! दश प्रकारना मनुष्यो सेंकडो गमे वेदोना, आगमोना, पुराणोना तथा युक्तिओना वचनोथी पण प्रतिबोध पामी शकता नथी. (ते दश प्रकारना मनुष्यो कया कया छे?) ते तमो सांभळो? ॥ १८ ॥ मदोन्मत्त, प्रमादी, उन्मत्त, थाकेलो, क्रोधी, भुख्यो, उतावळना कार्यवाळो, बीकण, लोभी तथा कामी, ए दश प्रकारना मनुष्यो प्रतिबोध पामता नथी ॥ १९ ॥ इति ॥ बेहेरा कुटुंबनी साथे छे उपमा जेने एवो मनुष्य बेहेरा कुटुंबनी उपमावाळो कहेवाय: अने ते पण उपदेशने लायक नथी; ते बेहेरा कुटुंबनो संबंध नीचे मुजब छे ॥ २० ॥

पूरकग्रामे स्थविरः, स्थविरा, सुतः, स्नुषा चेति बधिरकुटुंबमवात्सीत्. सुतो हलमवाहयत्. पथिकैरन्यदा पंथानं पृष्टः प्रोवाच ॥ २१ ॥ ममैतौ गृहजातौ वृषौ, न क्रीतौ पूत्रामः. कथय पंथानमिति पुनस्तैरुक्तेऽवदत्. सर्वो वेत्ति ग्रामश्चेन्न प्रत्ययस्तर्हि ग्रामं व्रजामः ॥ २२ ॥ बधिरोऽयमिति विचिन्त्य गतास्ते; तावद्भक्तमानैषीद्भार्या. अवादीत् तदग्रे शृंगितौ वृषभाविति ॥ २३ ॥ साऽवक् सलवणमलवणं वा युष्मन्माता रान्द्धं, किमहं वेद्मि. ऊचे सः. निराकर्षमहं पथिकांस्तान् ॥ २४ ॥

पूरक नामना गाममां एक डोसो, डोसी, पुत्र अने पुत्रनी वहु, ए चारे मनुष्योनुं बेहेरुं कुटुंब वसतुं हतुं; तेओमांथी पुत्र हळ खेडतो हतो; एक दहाडो केटलाक वटेमार्गुओए तेने मार्ग पुछयो; (त्यारे ते बेहेरो होवाथी) कहेवा लाग्यो के, ॥ २१ ॥ अरे! आ तो मारे घेर जनमेला बळदो छे; पंथिओए कह्युं के, अमो तारा बळदो माटे पुछता नथी, परंतु अमोने तुं मार्ग बताव! एवी रीते तेओए फरीने कहेते छते ते कहेवा लाग्यो के अरे! ते (मारा बळदनी हकीकत) आखुं गाम जाणे छे, जो तमोने खातरी न थती होय तो चालो गाममां जइए ॥ २२ ॥ अरे! आ तो बेहेरो छे, एम विचारीने तेओ चाल्या गया; एटलामां तेनी स्त्री * भात लावी; त्यारे तेनी आगळ ते कहेवा लाग्यो के, आजे बळदोने चिन्ह कर्यां छे ॥ २३ ॥ त्यारे ते पण (बेहेरी होवाथी) कहेवा लागी के, आ भात—भोजन लुणवाळुं के लुण विनानुं तमारी माए रांध्युं छे, एमां हुं शुं जाणुं? त्यारे ते कहेवा लाग्यो के, में आजे ते पंथिओने हांकी कहाड्या छे ॥ २४ ॥

* प्रसिद्ध शब्द भात के भोजन छे. भतवार शब्द नवो लागे छे.

जायोचे, मम कोऽधिकारः, गृहागतोऽगदत्स्वरूपं स्वमातुः. सा कर्त्तनकर्मकृत् प्रोवाच, श्लक्ष्णं वा स्थूलं वास्तु, स्थविरस्य वस्त्रं जविष्यति ॥ २५ ॥ स्नुषाऽजापिष्ट को मेऽधिकारो जवाणे. श्वश्रूः—गतः स्थविरस्य श्लक्ष्णवस्त्रसमयः स्नुषा—सर्वचिंतापरा श्वश्रूः. नाहं वेद्मि गृहव्यापारं ॥ २६ ॥ श्वश्रूः—परिहितानि बहुकालं स्थविरेण श्लक्ष्णानि, तं वृत्तांतं स्थविरं, प्रतिजगाद स्थविरा, तिलरक्षाधिकारी सोऽप्याख्यत् ॥ २७ ॥ नाहमेकमपि तिलमद्मि, स्थविरा—स्नुषा ममैवमजाष्यत स्थविरः—मिथ्यैवाऽदायि त्वया ममालं न रक्षिष्याम्यतस्तिलान् इत्यादि ॥ २८ ॥

स्त्रीए कह्युं के, (खुण माटे) मारे शुं अधिकार छे? पछी घेर आवीने तेणे पोतानी माने ते बळदानुं वृत्तांत कह्युं; (ते समये) ते रु कांतवानुं काम करती हती, अने (ते पण वेहेरी होवाथी) कहेवा लागी के, सुतर जाडुं झीणुं थाय के जाडुं थाय, डोसानुं वस्त्र थशे ॥ २५ ॥ पुत्रनी वहुए कह्युं के, खुण नाखवामां मारे शुं अधिकार छे? सासु बोली, हवे ते डोसाने झीणा सुतरनां कपडां पेहेरवानो वखत गयो; वहु बोली के, सर्व कामनी सासुने फिकर होय, हुं घरना काममां कांइ न जाणुं ॥२६॥ सासुए कह्युं, डोसाए तो घणो वखत आछां कपडां पहेर्यां; पछी ते वृत्तांत डोसीए डोसाने कह्युं हवे ते डोसो तलना रक्षणनो उपरी हतो, तेथी ते पण कहेवा लाग्यो के ॥ २७ ॥ हुं तो तलनो एक पण दाणो खातो नथी; डोसी बोली के, में तो वहुने एम कह्युं; डोसो बोल्यो के, तें मारापर जुठुंज कलंक चडाव्युं छे, हवेथी हुं तल साचवीश नहीं; इत्यादि ॥ २८ ॥

एवं योऽन्यस्मिन्नुपदिष्टेऽन्यदनुजानाते स्वाभिप्रायाऽनुसारेण स बधिरकुटुंबोपमः. यदागमः—॥ २९ ॥ अन्नं पुट्ठो अन्नं । जो साहइ सो गुरू य बहिरुव्व ॥ न य सीसो जो अन्नं । मुणेइ अणुजासए अन्नं ॥ ३० ॥ इति ॥ कुत्सितो ग्रहः, इदमित्थमेवेत्यायव्ययुक्तत्वादिविचाराऽनपेक्ष एकांताभिनिवेशः. सोऽस्यास्तीत्यसौ कुग्रहवान् लोहग्राहकनरवत्. तथाहि—॥ ३१ ॥ चत्वारो नरा धनार्जनायोत्तरापथे प्राप्ताः. उपार्जितधना लोहैः कुशीः कारयित्वा ताः स्वीकृत्य च स्वदेशं प्रति प्रस्थितवंतः ॥ ३२ ॥

एवी रीते जे कोइ कहेवाथी. सामो कोइ उलटोज उत्तर आपे छे. ते पोताना अभिप्रायने अनुसरनारो बेहेरा कुटुंब जेवोज जाणवो-आगममां पण कह्युं छे के ॥ २९॥ जेने पूछे कोइ, अने तेनो उत्तर कोइ जे जूदोज आपे छे. ते गुरु नहीं. पण बेहेरा जेवो तेने जाणवो; वळी ते शिष्य पण नहीं. के जे अन्य जाणे. अने तेनो उत्तर कोइ अन्यज आपे ॥ ३० ॥ इति ॥ कुत्सित जे ग्रह, ते कुग्रह कहेवाय; अर्थात् आ आमज छे, एवी रीते लाभ. हानि. आवक जावक तथा युक्त अयुक्तपणा आदिकना विचारनी अपेक्षा कर्या विना, एकांत जे कदाग्रह ते कुग्रह कहेवाय; अने तेवो कुग्रह जेने होय ते लोखंड लेनार मनुष्यनी पेठे कुग्रहवाळो कहेवाय; ते उदाहरण कहे छे ॥ ३१ ॥ चार मनुष्यो धन कमावा माटे उत्तर तरफ चाल्या; धन मेळवीने. तथा लोखंडनी कोशो करावीने. अने ते लइने पोतानां देश तरफ चाल्या ॥ ३२ ॥

अंतराऽध्वां निधानीकृतास्ताम्रमयीः कुशीर्दृष्ट्वा गृहीतवंतो लोहीरुज्झित्वा, तुर्यः पुनर्नैच्छति. वक्ति च. एको ग्रहः पुरुषाणामिति ॥ ३३ ॥ एवं रौप्यसौवर्णकुशीप्राप्त्यावसरे प्राचीनपरित्यागेन विशिष्टग्रहणे बहुशो ज्ञाप्यमानोऽपि तुर्यो नेच्छत्प्राक्तनत्यागं. नाऽवैच्च हितं चेतसीति ॥ ३४ ॥ एवं बहूपदिष्टोऽपि यः स्वकदाग्रहं न मुंचति सोऽनुपदेश्यः. यदुक्तं—कुग्गहगहगहिआणं । मुद्धो जो देइ धम्मउवएसं ॥ सो चम्मासीकुक्कर—वय—णंमि खिवेइ कप्पूरं ॥ ३५ इति ॥

वच्चे वनमां दाटेली त्रांबानी कोशोने जोइने, लोखंडनी छोडीने ग्रहण करी; परंतु चोथा मनुष्ये तेम ते करवानुं इच्छयुं नहीं. अने वळी तेणे कह्युं के, पुरुषाए पोतानी एकज वात पकडवी जोइये ॥ ३३ ॥ एवी रीते रुपानी तथा सोनानी कोशो प्रगट होते छते. बीजाओए तेने पेहेली कोश छोडीने आ उत्तम कोश लेवा माटे घणुं समजाव्यो. परंतु ते चोथा मनुष्ये पेहेलां ग्रहण करेली कोशने तजवानुं इच्छयुं नहीं, अने एवी रीते तेणे पोतानुं हित मनमां विचार्युं नहीं ॥ ३४ ॥ एवी रीते घणो उपदेश देवाथी पण जे पोतानो कदाग्रह छोडतो नथी, ते पण उपदेशने लायक नथी; कह्युं छे के—जेओने कदाग्रहरूपी ग्रहे ग्रहण करेला छे, तेवा मनुष्योने जे मूढ माणस धर्मोपदेश आपे छे, ते चांमडुं खानार कुतराना मोहोडामां कपुर नाखवा जेवुं करे छे ॥ ३५ ॥ इति ॥

पामरो लोकप्रसिद्धः, तस्य समः, पामरस्वरूपं च कथानकाद् ज्ञेयं, तच्चेदं, तथाहि शालिग्रामे कश्चित्कौटुंबिकः, तस्य शरदि पक्वः शालिः, कर्मकरं गवेषयता च तेन दृष्टो भिक्षां भ्रमन् पामर एकः ॥ ३६ ॥ भोजितो दधिकूरेण, भणितश्च यदि मे क्षेत्रलवनादि करोषि तदा नित्यमीदृग् भोजयामि, तेनोक्तं करोमि, परं न वेद्मि कथं क्रियत इति ॥ ३७ ॥ कौटुंबिकेनोक्तं शिक्षयामि अन्येनोक्तं एवमस्तु, कौटुंबिकः प्राह यद्यथाहं करोमि तत्त्वयापि तथैव कार्यं, तेनोक्तमस्त्वेवं ॥ ३८ ॥ ततः पामरस्य नीरघटमर्पयित्वा लगणिकां गृहीत्वा प्रवृत्तः क्षेत्रं प्रति, गत्वा च तत्र क्षिप्ता कौटुंबिकेन लगणिका ॥ ३९ ॥

पामर (एटले समज विनानो) अने ते लोकोमां प्रसिद्ध छे, तेना सरखो; वळी ते पामरनुं स्वरूप कथाथी जाणवुं; ते नीचे मुजब छे, ते कहे छेः—शालि नामना गाममां कोइक कुटुंबी रहेतो हतो; शरद ऋतुमां तेनां (खेतरमां) कमोद पाकी, तेथी ते कोइ चाकरने शोधवा लाग्यो, एटलामां भिक्षा माटे रखडतो एक पामरने तेणे जोयो ॥ ३६ ॥ तेने दहीं भात खवराव्या; अने पछी तेने कह्युं के, जो तुं मारां खेतरनी कापणी आदिकनुं काम करीश, तो हुं तने हमेशां आवुं खवरावीश; त्यारे तेणे कह्युं के, हुं करीश, परंतु केम करवुं? ते हुं जाणतो नथी ॥ ३७ ॥ कौटुंबिके कह्युं के, हुं तने शीखावीश; त्यारे ते पामरे कह्युं के, बहु सारूं, पछी कौटुंबिके तेने कह्युं के, जे कंइ हुं जेवी रीते करूं, ते तारे पण तेवी रीते करवुं; त्यारे पामरे कह्युं के, बहु सारूं ॥ ३८ ॥ पछी ते पामरने पाणीनो घडो आपीने, तथा पोते झाड एकठुं करवानी पावडी लइने खेतर तरफ चाल्यो; त्यां जइने ते कौटुंबिके ते पावडी खेतरमां फगावी ॥ ३९ ॥

अपरेण क्षिप्तो घटो भग्नः, रुष्टः कौटुंबिकः, प्रतिरुष्टः परोऽपि, ताडितः कौटुंबिकेन, प्रतिताडितः सोऽप्यनेन, लग्नं युद्धं, कुट्टितः कौटुंबिकः कथमपि नष्टः ॥ ४० ॥ नश्यतश्च वृक्षादौ लग्नं परिधानवस्त्रं, अन्येनापि पृष्ठत आगच्छता स्वकीयं छोटयित्वा मुक्तं, प्राप्तो ग्रामद्वारं कौटुंबिकः ॥ ४१ ॥ नग्नत्वात् परिधानार्थं गृहीतं तेनोदकार्थं गच्छंत्याः पत्न्या उत्तरीयांशुकं, अपरेण परिधानांशुकमपि जयविलक्षः प्रविष्टो गृहकोणके कौटुंबिको, अपरोऽपि तदन्यस्मिन् ॥ ४२ ॥ यावन्मिलितो लोकः, किमेतदिति कौटुंबिको दर्शयति पामरं, सोऽपि तमेवेत्यादि ततः स कथमपि प्रज्ञापितो लोकेनेति ॥ ४३ ॥

ते जोइ पेला पामरे पण घडो फगाव्यो, तेथी ते भांगी गयो; त्यारे कुटुंबी तेनापर गुस्से थयो, त्यारे पामर पण तेनापर सामो गुस्से थयो; कौटुंबिके तेने मार्यो, तो पामरे पण तेने सामो मार्यो; एवी रीते बन्ने वच्चे मारामारी चाली; पछी ते कुटुंबीने मार पडवाथी ते केमे करीने त्यांथी नाठो ॥ ४० ॥ एटलामां नासतां थकां तेनुं पहेरवानुं कपडुं (धोतीयुं) वृक्ष आदिकमां वळगी गयुं; ते जोइ पाछळ आवता पामरे पण पोतानुं धोतीयुं काढीने (वृक्षपर) मूकी दीधुं, पछी छेवटे ते कुटुंबी गामने दरवाजे आव्यो. ॥ ४१ ॥ तथा नग्न होवाथी तेणे पोतानी स्त्रीनो साडलो ग्रहण कर्यो, के जे पाणी भरवा माटे त्यांथी जती हती, ते जोइ पेला पामरे तेणीनो घाघरो पण लेइ लीधो; पछी ते कुटुंबी जयदीन थइने घरना खुणामां लपाइ गयो, त्यारे पामर पण त्यां बीजा खुणामां जइ बेठो ॥ ४२ ॥ पछी एटलामां लोको एकठा थइ गया, अने पुछवा लाग्या के, आ ते शुं छे? त्यारे कुटुंबी पामरने देखाडवा लाग्यो, अने ते पामर पण कुटुंबिने देखाडवा लाग्यो; इत्यादि पछी ते पामरने लोकोए केटलीक महेनते समजाव्यो ॥ ४३ ॥

एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्याद्युपदेशेऽपि तद्विषयाद्यनभिज्ञः पामरसमोऽनुपदेश्यः. नदुक्तं यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा । शास्त्रं तस्य करोति किं ॥ लोचनाभ्यां विहीनस्य । प्रदीपः किं करिष्यति ॥ ४४ ॥ इति ॥ तथा श्रुतमेव गृह्णातीति. श्रुतमात्र ग्राही, न तंत्रयुक्तिज्ञ-तापसवत्, तथाहि—क्वचिद्ग्रामे कश्चिद् द्विजः पापभीरुस्तापसत्वं प्रपेदे, श्रुतं चानेन कृपया धर्म इति, ग्लानोऽभूत् कोप्यन्यदा तापसः ॥ ४५ ॥ उत्पन्नस्तस्य संनिपातः, वारितं शीतं वारि, क्वापि गतेष्वन्यतापसेषु रोगिणा नव्यतापसस्य पार्श्वे शीतं वारि प्रार्थितं, कृपया धर्म इति कृत्वा दत्तं ॥ ४६ ॥

एवी रीते अमुक कार्य करवा योग्य छे, अमुक कार्य करवा योग्य नथी. इत्यादिक उपदेश आप्यो होय, तोपण तेना विषय आदिकने नहीं जाणनारो एवो ते पामर सरखो मनुष्य उपदेशने लायक नथी; कह्युं छे के—जेने पोतानेज अक्कल नथी, तेने शास्त्र शुं करी शके ? केमके जे आंखोथी अंध छे, तेने दीपक शुं करी शके ? ॥ ४४ ॥ इति ॥ वळी जे फक्त सांभळेलुंज ग्रहण करे, ते श्रुतमात्रग्राही कहेवाय; अने तेवो मनुष्य तापसनी पेठे तंत्रयुक्ति जाणी शकतो नथी; ते तापसनुं उदाहरण कहे छे, कोइक गाममां कोइक ब्राह्मण रहेतो हतो; ते पापथी डरतो होवाथी तेणे तापसपणुं अंगीकार कर्युं; वळी तेणे सांभळ्युं हतुं के, दयावडे करीने धर्म थाय छे; पछी एवामां एक दहाडो कोइक तापस मांदो पड्यो ॥ ४५ ॥ अने तेने सन्निपात थयो, तेथी तेने ठंडुं पाणी आपवुं बंध करवामां आव्युं हतुं; पछी बीजा तापस त्यांथी क्यांक जता हता ते रोगीए ते नवा तापस पासे ठंडुं पाणी माग्युं; त्यारे ते नवा तापसे विचार्युं के, दयाथी धर्म थाय छे, एम विचारी तेणे तेने ठंडुं पाणी आप्युं ॥ ४६ ॥

तेन प्राप्तोऽनिष्क्लेशं रोगी, आक्रुष्टश्च तव्यतापसोऽपरैः, रे मूर्ख हतोऽसौ त्वया, किं वा न संज्ञातव्यमज्ञानिन इति ॥ ४७ ॥ चिंतितं च तेन अज्ञान्यहं, तत् ज्ञानमधीये, श्रुतं च तपसा ज्ञानाऽवाप्तिः यतः—तपसैव प्रपश्यंति, त्रैलोक्यं सचराचरं, इति तत्स्वाधीनं तपः करोमीत्यनाख्याय कस्यापि गतो गिरिगुहां, आरब्धं तपः फलादेरपि त्यागेन ॥ ४८ ॥ अतिगतेषु च कियत्स्वपि दिनेषु पीडितः क्षुधा, कंठगतप्राणश्च प्रेक्षितस्तद् गवेषणपरैस्तापसैः उक्तं च, न खल्वित्थं तपः क्रियते, समाधानं हि मूलं धर्मस्येति ॥ ४९ ॥

अने तेथी ते रोगी मरणांत कष्ट पाम्यो; त्यारे बीजा तापसो ते नवा तापसपर गुस्से थया के, अरे! मूर्ख! तें तो तेने मारी नाख्यो; (पछी तेओए विचार्युं के) अज्ञानी शुं नथी करतो? ॥ ४७ ॥ पछी ते नवा तापसे विचार्युं के, हुं अज्ञानी छुं, माटे ज्ञाननो अभ्यास करूं; वळी तेणे सांभळ्युं हतुं के, तपथी ज्ञान मळे छे; केमके तपथीज चराचर एवा त्रणे लोकने जोइ शकाय छे; माटे जेथी ज्ञान मळे, एवो तप हुं करूं; एम विचारी कोइने कह्या विना ते पर्वतनी गुफामां गयो, अने त्यां फळआदिकनो पण त्याग करीने तेणे तप तपवा मांड्यो ॥ ४८ ॥ एवी रीते केटलाक दिवसो गया बाद, ते क्षुधाथी दुःख पामवा लाग्यो, अने तेना प्राण कंठे आव्या, एटलामां तेनी शोध माटे निकळेला तापसोए तेने जोयो; अने तेने कह्युं के, अरे! आम तप न थाय; धर्मनुं मूळ तो समाधान एटले मनमां रहेवापणुं छे ॥ ४९ ॥

ततः समाधाने यत्नं करोमीत्यगमद् ग्रामं सः. लेभे च पूजां भक्तजनेभ्यः. कियद्भिर्दिनैर्लब्धं च द्रव्यं. ज्ञातस्वरूपैश्च धूर्तैः प्रारब्धः परिचयः. गतस्तद्विश्वासं. आख्यातश्च स्वाभिमतः समाधानमूलो धर्मस्तत्पुरः ॥ ५० ॥ लब्धोपायैश्च तैर्गणिकाकौलादिप्रयोगेणापहृतं तद्धनं. ज्ञातश्च लोकैर्निर्घाटितश्चेति ॥ ५१ ॥ एवं श्रुतमात्रग्राही वचनमात्रार्थालोचकः शास्त्रोपदेशानामनर्हः. यदुक्तं—विचारसारा अपि शास्त्रवाचो! मूढैर्गृहीता विफलीभवंति ॥ मितंपचग्राम्यदरिद्रदाराः । कुर्वंत्युदारा अपि किं कदाचित् ॥ ५२ ॥

(ते सांभळी तेणे विचार्युं के) हवे हुं समाधान माटे यत्न करुं, एम विचारी ते गाममां गयो, अने त्यां भक्तजनो तरफथी तेने सत्कार मळ्यो; केटलाक दिवसे धन पण मेळव्युं; एटलामां ते वृत्तांत केटलाक ठगोने मालुम पडवाथी, तेओए ते तापसनो परिचय करवा मांड्यो; तापस पण तेओनो विश्वासी थयो; अने तेथी तेणे पोते स्वीकारेलो समाधान मूळवाळो धर्म तेओनी आगळ कही संभळाव्यो ॥ ५० ॥ ते ठगोए पण उपाय मळवाथी, तेनी पासे वेश्याने मोकलवा आदिक प्रयोगोवडे करीने तेनुं धन हरी लीधुं; पछी ते वातनी लोकोने मालुम पडवाथी, तेओए ते तापसने कहाडी मेल्यो ॥ ५१ ॥ एवी रीते फक्त सांभळीनेज ग्रहण करनारो मनुष्य वचनना भावार्थने नहीं विचारनारो होवाथी शास्त्रना उपदेशने लायक नथी. कह्युं छे के—मूढोए ग्रहण करेली उत्तम विचारवाळी एवी पण शास्त्रनी वाणी निष्फळ थाय छे; केमके उदार एवी पण थोडुं रांधनारी एवी गामडीआनी दरिद्र स्त्री शुं कदापि पण कंई उदारता करी शके छे? ॥ ५२ ॥

ये चाऽविषयज्ञाऽविशेषज्ञाऽमतिमच्छून्यादयोऽप्ययोग्या ग्रंथांतरेषु प्रतिपादितास्तेऽप्येतष्वेवांतर्भवंतीति न पृथगुक्ता इति ॥ ५३ ॥ नानाविधानयोग्यानिति मत्वा धर्मत्वमुपदिशत ॥ योग्येष्वेव यतः स्यात् । शुभजा जावारिविजयश्रीः ॥ ५४ ॥

॥ इति चतुर्थस्तरंगः ॥

वळी विषयने नहीं जाणनारा, विशेषने नहीं जाणनारा, निर्बुद्धि तथा शून्य आदिकोने बीजा ग्रंथोमां जे अयोग्य जणाव्या छे, तेओनो पण आनी अंदरज समावेश थाय छे; माटे तेओने जुदा पाडीने कह्या नथी; इति ॥ ५३ ॥ एवी रीते विविध प्रकारना अयोग्य मनुष्योने ध्यानमां लइने, योग्योप्रत्येज धर्मनो उपदेश आपो? के जेथी जाव शत्रुओनो विजय करनारी लक्ष्मी सुलज थाय ५४ ॥

॥ एवी रीते चोथो तरंग समाप्त थयो. ॥

इति चतुर्थस्तरंगः समाप्तः

अथ पंचमस्तरंगः

योग्यायोग्यानेव दृष्टांतैराह—मूलम्—गिरिसिर पणाल मरुथल । कसिणावणि जलहिसुत्तिमणिखाणी ॥ धम्मोवएसवासे फलजणणे जीवदिठ्ठंता ॥ १ ॥ धर्मोपदेशवृष्टौ फलजनने च, जीवदिठ्ठंत्ति. जीवानां दृष्टांता गिरिशिरःप्रभृतयः षड् भवंति. षष्ठीलोपः प्राकृतत्वात् ॥ २ ॥

वळी ते योग्य तथा अयोग्योनेज दृष्टांतो पूर्वक कहे छे.—मूळनो अर्थ—धर्मोपदेशनी वृष्टि होते छते, तेनुं फळ उत्पन्न करवामां गिरिशिखर, पणालिका, मरुस्थल, कृष्णभूमी समुद्रनी छीप, तथा मणिनी खाण सरखा जीवोनां दृष्टांतो जाणवां ॥ १ ॥ धर्मोपदेशनी वृष्टि होते छते फळनी उत्पत्ति माटे जीवोनां गिरिशिखर आदिक छ दृष्टांतो छे; अहीं प्राकृत भाषा होवाथी छठ्ठी विभक्तिनो लोप थयो छे ॥ २ ॥

यथाहि जलधरवर्षणे सति स्थानविशेषेण फलजननाऽजननादिविषये षट्प्रकारता दृश्यते, तथा गुरूपदेशेऽपि योग्याऽयोग्यजीवरूपस्थानविशेषेण प्रतिबोधादिरूपफललाभादि षोढा विभाव्यते ॥ ३ ॥ एतदेव प्रत्येकं भावयति, गिरिशिरः पर्वतशीर्षं शिलादिरूपं ॥ ४ ॥ तत्र यथा जलदजलं स्वल्पं बहु बहुतरं वा पतितं सत् सद्यो लुठित्वा याति, न तु क्षणमपि मिलति, दूरंगतः, तथा केषुचिज्जीवेषु धर्मोपदेशोऽप्येवमेव प्रमादादिनाऽवज्ञोपयोगांतरव्यग्रचित्तत्वादिना चाऽनवधारणेनैव निष्फल एव स्यात् ॥ ५ ॥

वरसाद वर्षे छते स्थानविशेषे करीने फळनी उत्पत्ति तथा अनुत्पत्ति आदिकना विषयमां जेम छ प्रकारो देखायेछ, तेम गुरुना उपदेशमां पण योग्य अयोग्य जीवरूप स्थान विशेषे करीने प्रतिबोध आदिकरूप जे फळ लाभ आदिक, ते पण छ प्रकारनो देखाय छे ॥ ३ ॥ हवे तेज दरेक प्रकारनुं स्वरूप कहे छे; गिरिशिखर एटले पत्थर आदिकरूप पर्वतनुं शिखर जाणवुं ॥ ४ ॥ तेपर पडेलुं थोडुं, घणुं अथवा वधारे घणुं एवुं वरसादनुं पाणी जेम तुरतज ढळी जाय छे, अने क्षणवार पण थोभतुं नथी, तथा दूर गयाथी ढळती अंदर जिरवता थाय छे, तेम केटलाक जीवो मध्ये धर्मोपदेश पण एवीज रीते प्रमाद आदिके करीने तथा अवज्ञा, बीजी बाबतमां उपयोग तथा विह्वल चित्तपणा आदिकवडे करीने तेमज नहीं अवधारण करवावडे करीने त्यारे निष्फळज थाय छे ॥ ५ ॥

कुतः पुनः परिणतिः, श्रवणं तु बहिर्वृत्त्या पारतंत्र्यादिनाऽभिमानादिना वा स्याद् बटुकवत्, तथाहि—॥ ६ ॥ क्वचित्सन्निवेशे द्विजन्मा बटुं धर्मं श्रावयति, स तु तत्कंठघंटिकां चलंतीं विस्मित इव प्रेक्षते ॥ ७ ॥ कियदुपदिश्योवाच द्विजः, ज्ञातं तत्त्वमिति, बटुरुवाच ज्ञातं, द्विजः—कथं, बटुः—तवैषा कंठघंटिकाऽनवरतं चलंतीति॥८॥ द्विजः—रे मूर्ख किं तवैतया, किंचिद्वस्तु निरूप्यते, बटुः—एवं करिष्यामीति. द्विजः पुनः कियदुपदिश्याप्राक्षीत्, निरूपितं किंचित्, बटुः—निरूपितं, द्विजः—कथं ॥ ९ ॥

त्यारे तेनुं परिणमवापणुं तो क्यांथीज थाय? मात्र बहारना देखावरूपे परतंत्रपणा आदिकथी अथवा अभिमान आदिकथी बटुकनी पेठे श्रवण थाय; ते बटुकनुं उदाहरण कहे छे ॥ ६ ॥ कोइक गाममां एक ब्राह्मण एक बाळकने धर्म संभळाववा लाग्यो, त्यारे ते बाळक तो चालता एवा ते ब्राह्मणना गळाना कांठलाने आश्चर्य जेवुं जाणीने जोवा लाग्यो ॥ ७ ॥ केटलोक उपदेश दीधा बाद ब्राह्मणे ते बाळकने कह्युं के, तें कंइ तत्व जाण्युं? त्यारे ते बाळके जवाब आप्यो के, में जाण्युं छे. ब्राह्मणे पूछ्युं शुं जाण्युं त्यारे बाळके कह्युं के, तमारा गळानो कांठलो जरा पण थोभ्याविना चालतो रह्यो हतो, ए में जाण्युं? ॥ ८ ॥ ब्राह्मणे कह्युं के, अरे! मूर्ख! तेनुं तारे शुं प्रयोजन हतुं? कंइक तत्व जोवुं जोइए; बाळके कह्युं के, हवे हुं तेम करीश. वळी ब्राह्मणे फरीर केटलोक उपदेश देइने पुछ्युं के हवे केम कंइ तत्व जाण्युं? बाळके कह्युं हवे जाण्युं, ब्राह्मणे पुछ्युं शुं जाण्युं? ॥ ९ ॥

बटुः—यावत्त्वया किंचिद् भणितं, तावदितो दरात् कीटिकाः सप्तशतानि सप्तोत्तराणि निर्गतानीति; द्विजः—रे मूर्ख किं तवैनाभिः, यदहं व्याख्यामि तत्रैव किंचिच्चिंतय ॥ १० ॥ बटुः—करिष्याम्येवं, द्विजः कियदुपदिश्य पुनरभ्यधात् रे किं चिंतितं, बटुः—कदा त्वमित उत्थास्यसीति चिंतितं; ततस्त्यक्तः स द्विजेनेति एवं काकसौकरिसौकरिकादयोऽकादयोऽप्यत्रोदाहरणानीति ॥ ११ ॥ प्रणालिकेति पर्वतस्यैव पाषाणमयं नदीनिर्झरोत्तरणमार्गात्मकं जिह्वकादिरूपं, प्रासादादीनां वा जलनिर्गमाध्वरूपं प्रणालं ॥ १२ ॥

त्यारे बाळके कह्युं के, ज्यहांसुधीमां तमे कंइक कह्युं, त्यहांसुधीमां आ दरमांथी सातसो सात कीडीओ निकळी हती. ब्राह्मणे कह्युं के, अरे! मूर्ख! तेनुं तारे शुं प्रयोजन हतुं? हुं तने जे कंइ कहुं छुं, तेमांज कंइ तत्त्व विचार? ॥ १० ॥ बाळके कह्युं के ठीक हवे तेम करीश; पछी ब्राह्मणे केटलोक उपदेश दीधा बाद कह्युं के, अरे! हवे कंइ विचार्युं? त्यारे ते बाळके जवाब आप्यो के, हवे तमे अहींथी क्यारे उठशो? एम में विचार्युं छे; पछी ते ब्राह्मणे तेने तजी दीधो; एवी रीते अहीं काक सौकरिक आदिकनां उदाहरणो पण जाणवां. ॥ ११ ॥ प्रणालिका एटले पर्वतनोज पथ्थरनो जीभादि आकाररूप मार्ग, के ज्यांथी नदीनुं झरणुं उतरे छे; अथवा महेल आदिकोनो पाणीने जवाना मार्गरूप खाळ जाणवो ॥ १२ ॥

तत्र हि जलदजलं खलहलकारि दृश्यते जलदे स्थितेऽपि कियत्समयं वहति, परं न क्वापि जलपरिणतिः, जलव्यपगमे मार्दवहरितत्वांकुरोत्पत्त्याद्यविजननात् ॥ १३ ॥ एवं केचिज्जीवा गुरूक्तं कथागाथाश्लोकादि परोपदेशनार्थं स्वपांडित्यख्यापनार्थं वाऽवधारयंत्यधीयते च, न तु तेषां हृदयेषु किमपि परिणमति ॥ १४ ॥ कषायमिथ्यात्वादितितिक्षात्मकमार्दवपुण्यमनोरथाद्यभावात्, बहुविधकथकनटपुस्तकवृंताकवादिव्यासांगारमर्दकाचार्यादिवत् ॥ १५ ॥ इति ॥

तेवी प्रणालिकामां मेघनुं वरसादनुं खळहळ करतुं पाणी देखाय छे; वरसाद रही गया बाद पण केटलीक वार सुधी ते वह्या करे छे; परन्तु तेमां जळ ठरी शकतुं नथी; अने एवी रीते जळ निकळी गया बाद तेमां कोमळता, लीलास के अंकुराओनी उत्पत्ति आदिक होइ शकतुं नथी ॥ १३ ॥ एवी रीते केटलाक जीवो गुरुए कहेलां कथा, गाथा तथा श्लोक आदिक परने उपदेश देवा माटे अथवा तो पोतानी पंडिताइ जणाववा माटे धारी राखे छे, तथा भणे छे, परंतु तेओना हृदयमां कंइ पण परिणमतुं नथी ॥ १४ ॥ केमके तेओने कषाय, तथा मिथ्यात्व आदिकने तजवानी इच्छारूप कोमळता तथा पवित्र मनोरथ आदिकनो अभाव होय छे; कोनी पेठे? तो के विविध प्रकारनी कथा कहेनार नट, पोथी मांहेलां रींगणांनी जेवुं वांचनार व्यास, तथा अंगार मर्दक आचार्यनी पेठे जाणवा ॥ १५ ॥ इति ॥

मरुस्थलीति. मारवस्थलेषु स्वल्पा वृष्टिः सिकतास्वेव विलीयते, न तु ज्ञायतेऽपि. बहुतरादिवृष्टौ सामान्यतृणानां करीरशमीबब्बूलादीनां तरूणां चणकमुद्गादीनां धान्यानां च प्रायो नीरसानामेवोद्गमः ॥ १६ ॥ न च दूर्वादीनामाम्रराजादनकदलीनालिकेरीपूगनागवल्लीद्राक्षादितरुवीरुधां शालिगोधूमादिधान्यानां, गुडखंडशर्करादिहेतुकेक्षुवाटिकादीनां वा प्रायः सरसानां समुत्पत्तिः ॥ १७ ॥ एवं केषुचिज्जीवेषु स्वल्पे गुरूपदेशे न काचित्परिणतिः १८ ॥

मरुस्थळ एटले मारवाडनी भूमि, के जेमां थयेली स्वल्प वृष्टि रेतीमांज समाइ जाय छे, अने जणाती पण नथी; अने कदाच त्यां जो वधारे वृष्टि थाय तो, सामान्य प्रकारनुं घास, केर, खीजडा आदिक वृक्षो तथा चोळा मग आदिक धान्यो, एम प्राये करीने रस रहित पदार्थोनी उत्पत्ति थाय छे; ॥ १६ ॥ परंतु प्राये करीने रसवाळा एवां दुर्वा (धो) आदिक घासनी, आंबा, रायण, केळ, नाळीयेरी, सोपारी, नागरवेल तथा द्राक्ष आदिक वृक्षो तथा वेलडीओनी, चोखा, घउं आदिक धान्योनी, अथवा गोळ, खांड तथा साकर आदिकना हेतुरूप एवा सेलडीना वाड आदिकनी उत्पत्ति थती नथी. ॥ १७ ॥ एवी रीते केटलाक जीवोने स्वल्प गुरूपदेश मळ्ये छते, कंइ पण धर्म परिणमतो नथी, ॥ १८ ॥

बहूपदेशे तु किंचिद् जावोत्पत्त्या दाक्षिण्यादिना वा जिनगुरुनामनाऽनंतकायाऽजक्ष्यादिलक्षणस्थूलहिंसादिनियमनमस्कारगुणनसामायिकावश्यकादीनां स्वल्पजावचित्तैकाग्र्याजावसम्यगविध्यनादरादिनाऽल्पफलत्वेन नीरसानां क्रियतां प्रतिपत्तिरनुष्ठितिश्च स्यात् ॥१९॥ न तु दृढजावादिजिर्महाफलत्वेन सरसानां शुद्धदर्शनदेशविरतिसचित्तपरिहारब्रह्मव्रतसर्वविरत्यादीनां ॥ २० ॥ ते च क्रियारुचा पुद्गलपरावर्त्तेन, मुहूर्त्तमपि सम्यक्त्वपरिणत्याऽर्धपुद्गलपरावर्त्तेन, क्रियाज्यासादिना जवांतरे, कदाचित् सम्यग्ज्ञानक्रियालाजादिना स्वल्पैरपि वा जवैर्मुक्तौ गामिन एव, तत्कालमनुजव्यंतरादिजवांश्च प्राप्नुवंति, श्यामलवणिग्वत्, तथाहि—॥ २१ ॥

वळी तेने जो घणो उपदेश देवामां आवे, तो पछी कंइक जाव उत्पन्न थवाथी अथवा दाक्षिणता आदिकवडे करीने जिनने तथा गुरुने नमस्कार करवामां तथा अनंतकाय अने अजक्ष आदिक रूप स्थूलहिंसा आदिकना नियममां, नमस्कार गणवामां, तथा सामायिक अने आवश्यक आदिकमां थोडो जाव, चित्तना एकाग्रपणानो अजाव तथा सम्यगविधिना अनादर आदिकपणाथी करीने अल्प फळरूप केटलीक नीरस क्रियाओनो स्वीकार तथा तेओनुं अनुष्ठान थाय छे; ॥ १९ ॥ परंतु दृढ जाव आदिकवडे करीने महान् फळरूप एवी सरसाळी एवी शुद्ध समकीत, देश विरति, सचित्तनो त्याग, ब्रह्मचर्य व्रत, तथा सर्व विरति आदिक रूप क्रियाओनो स्वीकार तथा अनुष्ठान तेओ करी शकता नथी ॥ २० ॥ वळी तेओ क्रियानी रुचिवडे करीने पुद्गलपरावर्त्ते, तेमज मुहूर्त्तमात्र समकीतनी प्राप्तिथी अर्धपुद्गलपरावर्त्ते, तथा क्रियाना अभ्यास आदिकवडे करीने जवांतरमां, तेमज कदाच सम्यग् ज्ञान अने क्रियाना लाज आदिकवडे करीने थोडा जवोमां पण मोक्षगामीज होय छे; तथा तत्काळज मनुष्य तथा व्यंतर आदिकना जवोने श्यामल वणिकनी पेठे प्राप्त थाय छे; ते श्यामलवणिकनुं उदाहरण कहे छे—॥ २१ ॥

कमलापुर्यां कुलधरश्यामलवणिजौ बहुधनौ. अन्यदोद्याने क्रीडितुं गतौ, तत्राक्रंदं श्रुत्वाऽग्रतो गच्छंतौ धनेश्वरेभ्यसुतं मलयचंद्रं षोडशनारीभिः सह क्रीडंतं सर्पदष्टं ददृशतुः ॥ २२ ॥ तावत्तत्र चारणश्रमणः प्राप, विद्याधरवृंदं च; तत्र धनेश्वरेण पुत्रभिक्षां देहीत्यभ्यर्थितः कोऽपि विद्याधरः, तेन च मुनिपदरजसोज्जीवितो मलयचंद्रः ॥ २३ ॥ स च कस्मान्मेलापकोऽयमित्यादि प्रश्नयन् पित्रा निवेदिताऽशेषवृत्तांतो मुनिं ननाम, मुनिरभाणीत् भोः कुमार एकाहिविषनाशेऽपि मोहाहिविषविधुरोऽसि ॥ २४ ॥

कमळापुरीमां घणा धनवाळा कुळधर अने श्यामल नामना बे व्यापारीओ हता. एक समये तेओ क्रीडा करवाने उद्यानमां गया; एटलामां त्यां आक्रंद थतो सांभळीने जेवा तेओ आगळ जाय छे, तो सोळ स्त्रीओ साथे क्रीडा करता एवा धनेश्वर शेठना पुत्रने तेओए जोयो, के जेने सर्प करड्यो हतो ॥ २२ ॥ एटलामां त्यां कोइ चारण मुनि तथा विद्याधरोनो समूह आव्यो, त्यां धनेश्वर शेठे कोइक विद्याधरने प्रार्थना करी के, मने पुत्रभिक्षा आपो! त्यारे ते विद्याधरे मुनिना चरणनी रजथी मलयचंद्रने जीवतो कर्यो ॥ २३ ॥ त्यारे ते मलयचंद्रे पुछ्युं के, आ मेळावडो शा माटे थयो छे? त्यारे तेना पिताए तेने सघळुं वृत्तांत जणाव्युं. तेणे मुनिने नमस्कार कर्यो; त्यारे मुनिए तेने कह्युं के, हे कुमार! तारा एक सर्पना झेरनो नाश तो थयो छे, परंतु हजु मोहरूपी सर्पना झेरथी तुं व्याकुल थयेलो छुं ॥ २४ ॥

अष्टमदस्थानफणो रत्यरतिरौद्ररसनो हास्यभयभीमदंष्ट्रो मोहमहाविषधरो रौद्रः, एतेन दष्टं जगदप्यज्ञानगरलाहतं न किंचिद्धिताऽहिते चिंतयति गुरुमांत्रिक एवापनयति तन्मोहविषं ॥ २५ ॥ ततस्तद्विनाशे यतस्वेति. युष्मत्प्रसादात्तदपि नंक्ष्यति विधिमुपदिशतेति कुमारेणोक्ते पुनर्मुनिरुवाच. सम्यक्त्वमंडले द्विविधशिक्षादानपूर्वं यतिधर्ममंत्रो देय इति ॥ २६ ॥

ते मोहरूपी महान भयंकर सर्प आठ मदना स्थानोरूपी फणावाळो, रति अरतिरूपी भयंकर जिह्वावाळो, हास्य तथा भयरूपी भयंकर दाढावाळो छे तेणे डंसेलुं जगत अज्ञानरूपी झेरथी हणायुं थकुं कंइ पण हित अहित विचारी शकतुं नथी; ते मोहरूपी सर्पना झेरने गुरुरूपी मंत्रवादीज फक्त दूर करी शके छे ॥ २५ ॥ माटे ते मोहरूपी सर्पना झेरनो नाश करवा माटे तुं प्रयत्न कर? त्यारे ते कुमारे कह्युं के, आप साहेबनी कृपाथी ते पण नाश पामशे. माटे ते झेर दूर करवानी विधि आप साहेब बतावो? त्यारे फरीने मुनिए कह्युं के, सम्यक्त्वरूपी मंडळमां बे प्रकारनी * शिक्षाना आदानपूर्वक साधुधर्मरूपी मंत्रनो प्रयोग करवो, ए तेनी विधि छे ॥ २६

* ग्रहण शिक्षा अने आसेवन शिक्षा.

ततः स षोडशनार्याभिः सह प्रवव्राज, तत्साहसं दृष्ट्वानेके प्राव्रजन्, कुलधरोऽपि श्राद्धधर्मं प्रपन्नः, श्यामलस्तु न प्राबुध्यत, कुलधरो मैत्रीसफलतायै धर्मं प्रतिपिपादयिषुः श्यामलं गुरुपार्श्वे पुनःपुनर्नयति, धर्मं श्रावयति ॥ २१ ॥ क्रमात् किंयन्नियमप्रतिपत्तिं चक्रे सः, सामायिकमेकं यत्नात् करोति, सामायिकावसरे च क्रमाद्विकथादिप्रमादपरः कुलधरेण शिक्षितोऽयं मद्छिद्रप्रेक्षीति दूयते हृदि ॥ २८ ॥ तद् ज्ञात्वा तेनोपेक्षितः क्रमान्मृतो दिव्यरूपर्द्धिः सुरो जज्ञे, त्र्यवं भ्रांत्वा शिवं गमी ॥२९॥ कुलधरस्तु शुद्धधर्मपरः शक्रसामानिको भूत्वा विदेहेषु सेत्स्यतीति ॥३०॥

पछी तेणे पोतानी सोळ स्त्रीओ सहित दीक्षा लीधी; वळी तेनुं साहस जोइने त्यां अनेक मनुष्योए दीक्षा लीधी, कुलधरे पण श्रावक धर्म अंगीकार कर्यो; परंतु श्यामलने बोध लाग्यो नहीं; तेथी कुलधर पोतानी मित्राइ सफल करवा माटे श्यामलने धर्म पमाडवाने अर्थे वारंवार गुरु पासे लेइ जाय छे, तथा धर्म संभळावे छे ॥२१॥ अनुक्रमे केटलांक नियमो स्वीकारवानुं तेणे कर्युं, यत्नथी सामायिक करे छे; पछी अनुक्रमे सामायिक समये ते विकथा आदिक प्रमादमां पडवा लाग्यो, त्यारे कुलधरे तेने (तेम नहीं करवा माटे) शिखामण आपी परंतु आ मारां छिद्रो जुए छे; एम विचारी मनमां दुःखावा लाग्यो ॥ २८ ॥ ते जाणीने कुलधरे तेनी उपेक्षा करी; अनुक्रमे मृत्यु पामीने ते स्वरूप ऋद्धिवाळो देवलोकमां देवरूपे उत्पन्न थयो; त्रण भवोने ते मोक्षे जशे ॥ २९ ॥ कुलधर तो शुद्ध धर्ममां तत्पर थयो, अने छेवटे शक्रसामानिक देव थइने महाविदेहक्षेत्रमां मोक्षे जशे ॥ ३० ॥

कसिणावणित्ति, कृष्णावन्यामुपलक्षणादुर्वरारूपायां कुंकणसुराष्ट्रमालवकादिसंबन्धिन्यां यथा स्वल्पायामपि वृष्टौ किंचित् किंचित्, बहुवृष्टौ तु बहुदूर्वादितृणानां मदकारादितरूणां द्राक्षेक्षुवाटादीनां शालिगोधूमादीनां धान्यानां च प्रायः सरसानामेवोत्पत्तिः ॥ ३१ ॥ तथा केषुचिज्जीवेषु स्वल्पेऽपि गुरूपदेशे श्रुते बोधिपरिणतिः स्यात्, ततश्च शुद्धदर्शनदेशविरतिसचित्तपरिहारब्रह्मव्रतादीन् दावदात्र्यादिनिर्महाफलत्वेन सरसानेव प्रतिपद्यन्तेऽनुतिष्ठन्ति च ॥ ३२ ॥

कृष्णभूमी पदवडे उपलक्षणार्थी जेमां सारी रीते उत्तम प्रकारनुं धान्य आदिक पाकी शके, एवी कुंकण, सुराष्ट्र तथा मालवा आदिकनी उद्वरारूप भूमी जाणवी; के जेमां जेम थोडी वृष्टि होते छते पण कंइक कंइक निपजे छे; अने घणी वृष्टि होते छते तो दुर्वा (धो) आदिक घासनी, आंबा आदिक वृक्षोनी, द्राक्ष तथा सेलडीना वाडा आदिकनी तथा चावल अने घउं आदिक धान्योनी, एम प्राये करीने रसयुक्त पदार्थोनीज उत्पत्ति थाय छे ॥ ३१ ॥ तेम केटलाक जीवो प्रते थोडो पण गुरुनो उपदेश सांभळवाथी बोधि बीजनी प्राप्ति थाय छे; अने तेथी तेओ रसयुक्त एवा शुद्ध सम्यक्त्व, देशविरति, सचित्तनो परिहार तथा ब्रह्मचर्यव्रतआदिकोने, दातनी इच्छा आदिकवडे करीने अंगीकार करे छे, तथा तेओनुं अनुष्ठान पण करे छे ॥ ३२ ॥

ते चासन्नसिद्धिकाः सप्ताष्टादिभवैस्तृतीयभवे वा मुक्तिगामिन एव श्रीऋषभशांति नेमिपार्श्वश्रीमहावीरजिनाद्यभवधनसार्थवाहश्रीषेणनृपधनधनवतीमरुभूतिनयसारादिवत् ॥ ३३ ॥ आनंदकामदेवादिदशश्रावकवत्. आनंदादीनां स्वरूपं चेदं ॥ ३४ ॥ वाणिअगामपुरंमी । आणंदो नाम गिहवई आसी ॥ सिवनंदा से भज्जा । द-ससहसगोउला चउरो ॥ ३५ ॥ निहिववहारकलंतर । ठाणेसु कणयकोडिबार-सगं ॥ सो सिरिवीरजिणेसर—पयमूले सावओ जाओ ॥ ३६ ॥

अने तेओ श्रीऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, तथा श्रीमहावीर प्रभुना (अनुक्रमे) पहेला भवना धन सार्थवाह, श्रीषेणराजा, धनधनवती, मरुभूति तथा नयसार आदिकोनी पेठे नजदीक सिद्धिवाळा, अथवा सात, आठ भवे, अथवा त्रीजे भवे मोक्षगामी थाय छे; ॥ ३३ ॥ अथवा आनंद तथा कामदेव आदिक दश श्रावकोनी पेठे जाणवा, ते आनंद आदिकोनुं स्वरूप नीचे मुजब छे ॥ ३४ ॥ वाणिज्य गाम नामना नगरमां आणंद नामे एक गृहपति हतो, तेने शिवनंदा नामे स्त्री हती; तथा तेने दश हजार गायोनां चार गोकुळो हतां ॥ ३५ ॥ निधान, व्यापार तथा व्याज मळीने तेनी पासे बारक्रोड सोना मोहोरो हती; अने ते श्रीवीर प्रभुना चरण कमळमां श्रावक थयो ॥ ३६ ॥

चंपाइ कामदेवो । भद्दा भज्जो सुसावगो जाओ ॥ छग्गोउल अट्ठरस—कंचणको-
डीण जो सामी ॥ ३७ ॥ कासीए चुलणिपिआ सामा भज्जा य गोउला
अट्ठ ॥ चउवीसकणयकोडी । सड्ढाणसिरोमणी जाओ ॥ ३८ ॥ कासीइ
सुरादेवो । धन्ना भज्जा य गोउला छच्च ॥ कणयट्ठारसकोडी । गहिअवओ सा-
वओ जाओ ॥ ३९ ॥ आलभिआणयरीए । नामेणं चुल्लसयगओ सड्ढो ॥ बहुला
नामेण पिया । रिद्धि से कामदेवसमा ॥ ४० ॥

चंपानगरीमां कामदेव नामनो उत्तम श्रावक हतो, के जेने भद्रा नामे स्त्री हती; तथा छ गोकुलो हतां, अने ते अढार क्रोड सोना मोहोरोनो स्वामी हतो ॥ ३७ ॥ काशीनगरीमां चुलनी पिता नामे श्रावक हतो. तेने श्यामा नामे स्त्री हती, तथा आठ गोकुलो हतां. अने चोवीस क्रोड सोना मोहोरो तेनी पासे हती, तथा ते श्रावकोमां शिरोमणि हतो. ॥ ३८ ॥ वळी काशीनगरीमां सुरादेव नामे श्रावक हतो, तेने धन्ना नामे स्त्री हती, तथा छ गोकुलो हतां, अढार क्रोड सोना मोहोरो तेनी पासे हती, तथा ते व्रतधारी श्रावक हतो ३९ ॥ आलंभिका नगरीमां चुल्लशतक नामे श्रावक हतो, तेने बहुला नामे स्त्री हती, तथा तेनी कामदेव जेटली ऋद्धि हती ॥ ४० ॥

कंपिल्लपुरम्मि । सड्ढो नामेण कुंडकोलिअओ ॥ पुस्सा पुण तस्स पिआ । रिद्धि सिरिकामदेवसमा ॥ ४१ ॥ सद्दालपुत्तनामा । पोलासम्मी कुलाल जाइओ ॥ जज्जा य अग्गिमित्ता । कंचणकोडी अ से तिन्नि ॥ ४२ ॥ चउवीसकणयकोडी. गोउल अट्ठेव राजगिहनयरे ॥ सयगो जज्जा तेरस । रेवइ अट्ठसकोडी-ओ॥ ४३ ॥ सावत्थीनयरीए नंदणीपिअ नाम सड्ढओ जाओ ॥ अस्सिणि नामा जज्जा । आणंदसमो अ रिद्धिए ॥ ४४ ॥

कंपिल्लपुर पाटणमां कुंडकोलिक नामे श्रावक हतो, तेने पुष्या नामे स्त्री हती, तथा तेनी रिद्धि पण कामदेव श्रावक जेटली हती ॥ ४१ ॥ पोलासपुरमां सद्दालपुत्र नामे श्रावक हतो, ते जातनो कुंभार हतो; तेने अग्निमित्रा नामे स्त्री हती, तथा तेनी पासे त्रण क्रोड सोना मोहोरो हती. ॥ ४२ ॥ वळी राजग्रही नगरीमां चोवीस क्रोड सोना मोहोरोवाळो तथा आठ गोकुळवाळो शतक नामे श्रावक हतो; तेने तेर स्त्रीओ हती,* तेमांथी रेवतीनी पण आठ क्रोड सोना मोहोरो हती ॥ ४३ ॥ श्रावस्ती नगरीमां नंदनीपिता नामे श्रावक थयो. तेने अश्विनी नामे स्त्री हती; तथा ते रिद्धिवडे करीने आनंद श्रावक सरखो हतो ॥ ४४ ॥

* तेमां रेवतने आठ क्रोड अने बाकीनी स्त्रीओने एक एक क्रोड सोना मोहोरो हती. (जुओ उपासगदशांग)

सावत्थीवत्थव्वो । सालिहिपिअ नाम सड्ढओपवरो ॥ फग्गुणिनामकलत्तो आणंदसमो अ रिद्धिए ॥४५॥ एते दशापि समवसरणे प्राप्ताः प्रथमत एव श्रीवर्धमानस्य देशनां श्रुत्वा प्रतिबुद्धाः सम्यक्त्वमूलां द्वादशव्रतीं प्रपेदिरे ॥ ४६ ॥ तत्र पंचमव्रते सर्वेषामपि प्राग्विद्यमानाधिकपरिग्रहनियमः सप्तमव्रते त्वानंदस्य अभ्यंगे शतपाकसहस्रपाक-तैलं, स्नाने जलकुंभाष्टकं, दंतशोधने ज्येष्टमधू, वस्त्रे क्षौमयुगं, विलेपने घुसृण-श्रीखंडं, आभरणे मुद्रिका, कुसुमे पुंडरीकं मालतीदाम च, धूपेऽगुरु, सूपे कला-यमुद्गमाषाः भक्ते कलमशालिः घृते गोघृतं, खाद्ये घृतपूरखंडखाद्यादि शाके सौव-स्तिकं, धान्यशाके वटकादि, तांबूले कर्पूरैलालवंगादि, फले क्षीरामलकं, नीरे गगनोदकमित्यादिः एवमन्येषामिति नियमप्रतिपत्तिः ॥ ४७ ॥

वळी सावत्थी नगरीनो रहेवासी सालिहिपिता नामे उत्तम श्रावक हतो; तेने फाल्गुनी नामे स्त्री हती, तथा ते पण ऋद्धिवडे करीने आनंद श्रावक सरखो हतो ॥ ४५ ॥ ए दशे श्रावको समवसरणमां आव्या; अने प्रथमज श्रीवर्धमान प्रभुनी देशना सांभळीने तेओ प्रतिबोध पाम्या; तथा सम्यक्त्व मूळ बार व्रतो तेओए अंगी कर्यां ॥ ४६ ॥ तेमां पांचमा व्रतमां ते सघळाओए प्रथमथी जेटलो परिग्रह हतो, तेथी अधिकनो नियम कर्यो; सातमा व्रतमां आनंदश्रावकने मर्दनमां शतपाक अने सहस्रपाक तेल, स्नानमां आठ घडा पाणी, दातणमां जेठी मध, वस्त्रमां बे रेशमी कपडां, विलेपनमां केशर चंदन, आभूषणमां वींटी, पुष्पमां कमळ अने मालतीनी माळा, धूपमां अगर, दाळमां कलाय, मग, अडद, भोजनमां कमोदना चावल, घीमां गायनुं घी, खाद्यमां घेबर खाजां आदिक, शाकमां सोवस्ति (वनस्पति विशेष) धान्यना शाकमां वडां आदिक तांबूलमां कपूर, एलची तथा लवींग आदिक, एवी रीते बीजाओनो पण नियमनो स्वीकार जाणवो ॥ ४७ ॥

दशभिरपि विंशतिवर्षाण्येवं धर्म आराधितः; तत्र चतुर्दशवर्षानंतरं षट् वर्षाणि सर्वगृहचिंताव्यापारपरिहारः कृतः ॥ ४८ ॥ एकादशप्रतिमाराधनादिबहुदुष्करतपस्क्रिया निर्ममिरे, मासिकसंलेखनापूर्वमनशनं प्रपेदे ॥ ४९ ॥ प्रांतेऽवधिज्ञानमुत्पादि. आनंदवर्ज्जमन्येषां देवपरीक्षा बभूव, एवं दृढतया धर्ममाराध्य सौधर्मे पृथक् पृथक् विमानेषु चतुष्पल्यायुषो दशापि देवा अभवन् ॥ ५० ॥ ततश्च्युत्वा महाविदेहेषु राजानो भूत्वाऽवसरे दीक्षामादाय केवलं मोक्षं च प्राप्स्यंतीति ॥ ५१ ॥

एवी रीते ते दश श्रावकोए वीस वर्ष पर्यंत धर्म आराध्यो; तेमां पण चौद वर्षो पछी छ वर्ष सुधी सघळी घरनी चिंतानो तेओए त्याग कर्यो हतो ॥ ४८ ॥ वळी तेओए अगीयार प्रतिमाओने आराधन करवा आदिक घणी आकरी तप क्रिया करी हती; तथा एक मासनी संलेखना पूर्वक तेओए अनशन कर्युं हतुं ॥ ४९ ॥ छेवट तेओने अवधिज्ञान उत्पन्न थयुं हतुं, आनंद शिवाय बीजाओनी देवोए परीक्षा पण करी हती; एवी रीते दृढतार्थी धर्म आराधीने ते दश सौधर्म देवलोकमां जुदां जुदां विमानोमां चार पल्योपमना आयुष्यवाळा देवो थया ॥ ५० ॥ त्यांथी चवीने महाविदेह क्षेत्रमां राजाओ थइने, तथा अवसरे दीक्षा लेइने केवळज्ञान अने मोक्षपद पामसे ॥ ५१ ॥

जलहिसुत्तित्ति, जलधिशुक्तिकासु सजीवासु, जलदे गर्जति वर्षति च स्वभावादूर्ध्वं मुखं विकास्य स्थितासु स्वातिनक्षत्रे यावंतो यादृशा अणवः स्थूला वा जलदजलबिंदवः पतंति, तादृशानि तदुदरेषु मौक्तिकानि भवंति ॥ ५२ एवं केषुचिदुत्तमेषु जीवेषु गुरवो यादृशानि यानि वचनान्युपदिशंति, तानि तथैव परिणमंति, तदनुष्ठानफलानि च भवंति ॥ ५३ ॥ 'उवसमविवेगसंवरेति' पदत्रयश्रोत्रनुष्ठातृचिलातीपुत्रवत्, 'मिठ्ठं भुंजेअव्वं, सुहं सुयअव्वं, लोगप्पिओ अप्पा कायव्वो, इति पदत्रयं पित्रोक्तं श्रुत्वा त्रिलोचनमंत्रिपार्श्वात्तदर्थमवगम्य च तथैवानुष्ठातृसोमवसुब्राह्मणवद्वा, एते चासन्नसिद्धिकाः, तृतीयादिसप्ताष्टांतर्भवैर्मुक्तिगामिनस्तद्भवमुक्तिगामिन एव वा संभवंति ॥५४॥

जलहिसुत्ति एटले समुद्रनी छीपो, के जेओ जीववाळी होय छे, तथा जेओ स्वभावथीज वरसाद गाजते तथा वरसते छते ऊंचां मुख फाडीने रहेली होय छे; तेओ स्वाति नक्षत्रमां जेटलां अने जेवां नानां अथवा मोटां वरसादना जळ बिंदु पडे छे, तेवां तेओना पेटमां मोतीओ थाय छे ॥ ५२ ॥ एवी रीते केटलाक उत्तम जीवो प्रते गुरुओ जेवां जे वचनो उपदेशे छे, ते तेवांज परिणमे छे, अने ते प्रमाणे अनुष्ठानना फळोवाळां थाय छे ॥ ५३ ॥ (कोनी पेठे? तोके) उपशम, विवेक अने संवर ए त्रण पदोने सांभळनार तथा ते प्रमाणे अनुष्ठान करनार चिलातीपुत्रनी पेठे, अथवा 'मीठुं करीने खावुं, सुखे सुवुं तथा लोकप्रिय आत्मा करवो' एवी रीतना पिताए कहेलां त्रण वचनो सांभळीने, तथा त्रिलोचन मंत्री पासेथी तेनो अर्थ जाणीने तेज प्रमाणे अनुष्ठान करनार सोमवसु ब्राह्मणनी पेठे; एवी रीतना मनुष्यो नजदीक सिद्धिवाळा, अथवा त्रीजाथी मांडी सात आठ भवसुधिमां मोक्षे जनारा अथवा तेज भवे मोक्षे जनारा संभवे छे ॥५४॥

मणिखाणित्ति, मणिखानिषु यथा लघवोऽल्पतेजसोऽपि जलदजलबिंदवः पतिता बृहत्तरमहातेजस्कचिंतामणिप्रमुखरत्नोत्पत्तिवृद्धिहेतवो भवंति ॥ ५५ ॥ तथा केषुचिज्जीवेषु स्वल्पान्यपि पंक्तिस्योपदेशवचनानि महाज्ञानदर्शनचारित्ररूपबोधेः समुत्पत्तये वृद्धये च महाशुभानुष्ठानाय च भवंति ॥ ५६ ॥ यथा श्रीवर्धमानजिनेन वेदार्थमात्रकथनं गौतमादिषु, यथा च श्रीजिनैस्त्रिपदीमात्रार्पणं सर्वगणधरेषु, यथा वा भो अणेगपिंलिआ एगपिंछिओ इहु मिच्छइ, इति वचनमिंद्रनागे. तत्स्वरूपं यथा ॥ ५७ ॥ वसंतपुरे धनश्रेष्ठिनो गृहं मार्योच्छिन्नममानुषं कृतं, इंद्रनागो नाम दारकः, स उद्रितः, स च क्षुधितो ग्लानः पानीयादि मार्गयति ॥ ५८ ॥

मणिखाणि, एटले मणिनी खाणोमां जेम नाना अने अल्प तेजवाळां, एवां पण जळबिंदुओ पडते छते, मोटा अने महा तेजवाळां चिंतामणि प्रमुख रत्नोनी उत्पत्ति तथा वृद्धिना हेतुरूप थाय छे ॥ ५५ ॥ तेम केटलाक जीवो प्रत्ये अल्प एवां पण पंडिताइ भरेलां उपदेशनां वचनो महाज्ञान, दर्शन तथा चारित्ररूप बोधिबीजनी उत्पत्ति तथा वृद्धि माटे अने महा शुभ अनुष्ठान माटे थाय छे ॥ ५६ ॥ जेम श्रीवर्धमान प्रभुए गौतम आदिकोने कहेलो वेदनो अर्थ मात्र, तथा सर्व गणधरो प्रत्ये जिनेश्वरोनुं मात्र त्रिपदीनुं आपवुं, अथवा 'हे अनेक पिंडवाळा ! एक पिंडवाळो तने जोवाने इच्छे छे,' एवी रीतनुं इंद्रनाग प्रत्ये कहेलुं वचन जाणवुं. ते इंद्रनागनुं वृत्तांत नीचे मुजब छे ॥ ५७ ॥ वसंतपुरमां मरकीए धनश्रेष्ठिनुं घर मनुष्य रहित सूनुं कर्युं; त्यां इंद्रनाग नामनो छोकरो बची गयो; ते भूख्यो थको ग्लानी पामीने पाणी आदिक मागवा लाग्यो ॥ ५८ ॥

यावत्सर्वान् मृतान् पश्यति द्वारमपि लोकैन कंटकैः पिहितं, ततः शुनश्छिद्रेण निर्गत्य पुरमध्ये कर्परेण भिक्षां हिंडते, लोकस्तस्य दत्ते, एवं स संवर्धते ॥ ५९ ॥ इतश्चैकः सार्थवाहो राजगृहं गन्तुकामो घोषणां कारयति; तां श्रुत्वा स सार्थेन समं प्रस्थितः, तत्र तेन सार्थे कूरो लब्धः, स भुक्तो न जीर्णः, द्वितीयदिनेऽजीर्णतो न भिक्षामटितः ॥६०॥ सार्थवाहेनाऽचिंति नूनमुपोषितोऽयं, तृतीयदिवसे सार्थवाहेन तस्य बहुस्निग्धं च दत्तं, स तदजीर्णाद् द्वौ दिवसौ स्थितः ॥ ६१ ॥

एटलामां मरकीओने मरेला जाणीने लोकोए तेनुं द्वार कांटाओथी ढांकी दीधुं; तेथी कुतरानी पेठे तेमांथी मार्ग करीने ते इंद्रनाग बहार निकळ्यो, तथा हाथमां खप्पर लेइने नगरमां ते भिक्षा मागवा लाग्यो; लोको तेने देवा लाग्या; अने एवी रीते ते वृद्धि पामवा लाग्यो ॥ ५९ ॥ एटलामां एक सार्थवाहे राजगृही जवा माटे घोषणा करावी; ते सांभळीने ते इंद्रनाग ते सार्थनी साथे चालतो थयो. ते सार्थमां तेने कूर खावा मळ्या, ते तेणे खाधा, पण पच्या नहीं; अने तेथी अजीर्णने लीधे बीजे दिवसे ते भिक्षा करवा गयो नहीं ॥ ६० ॥ त्यारे सार्थवाहे विचार्युं के, खरेखर तेने उपवास हशे; पछी त्रीजे दिवसे सार्थवाहे तेने घणा घी आदिकवाळुं भोजन दीधुं; अने तेना अजीर्णथी ते बे दिवसो सुधी भुख्यो रह्यो ॥ ६१ ॥

सार्थवाहो वेत्ति एष षष्ठकृत्, ततोऽस्य श्रद्धा जाता, अपरदिवसे भ्रमन् सार्थवाहे-नाज्ञापितः, गतदिनयोः किं नागतः, तुष्णीके तस्मिन् ज्ञातं नूनमेष षष्ठभोजीति ॥ ६२ ॥ ततस्तस्य बहु दत्तं तेन, पुनर्द्वौ दिवसावजीर्णेन स्थितः, षष्ठभोजीति लोकोऽप्यादरवानभूत्, ततो निमंत्र्यमाणस्याप्यन्यस्य पिंडं न गृह्णाति, लोको जानात्येष एकपिंडिक इति ॥ ६३ ॥ सार्थवाहेनाऽज्ञापि अन्यस्य मा ग्रहीर्यावन्न-गरं गम्यते तावदहमेव दास्ये; प्राप्तो नगरं, सार्थवाहेन निजगृहे तस्य मठः कारि-तः, ततः स शिरो मुंडयित्वा काषायिकवस्त्राणि परिधत्ते ॥ ६४ ॥

त्यारे सार्थवाहे जाण्युं के, एणे छठ कर्यो हशे, तेथी तेने (तेनापर) श्रद्धा थइ; बीजे दिवसे (भिक्षा माटे) ज्यारे ते जमवा लाग्यो, त्यारे सार्थवाहे तेने बोलावीने पुछ्युं के, गया बे दिवसमां तुं केम न आव्यो; त्यारे ते मौन रहेवाथी तेणे जाण्युं के, खरेखर आ छठ करनारो छे ॥ ६२ ॥ तेथी तेने तेणे घणुं आप्युं; वळी अजीर्ण थवाथी ते बे दिवस थोभी गयो, अने त्यारथी आ छठछठनुं पारणुं करनारो छे, एम जाणवाथी लोको तेनो आदर सत्कार करवा लाग्या; पछी बीजा लोको तेने निमंत्रण करे, तोपण ते बीजानो पिंड ग्रहण करे नहीं; त्यारे लोको कहेवा लाग्या के, आ एक पिंडी छे ॥ ६३ ॥ पछी सार्थवाहे तेने कह्युं के, हवे ज्यां-सुधी आपणे नगरमां जइयें, त्यां सुधी तारे बीजानो पिंड लेवो नहीं; हुंज तने आप्या करीश; पछी ते नगरमां पहोंच्यो, त्यां सार्थवाहे पोताना घरमां तेने मठ करावी आप्यो, अने त्यारथी ते मस्तक मुंडावीने भगवां वस्त्रो पहेरवा लाग्यो ॥ ६४ ॥

॥५१॥

लोके ख्यातो जातः, शनैः शनैः सार्थवाहस्यापि पिंडं नेच्छति, अन्यस्य गृहे न याति, ततः पारणदिने तस्य लोकः स्वयं भक्तमानयति ॥ ६५ ॥ एकस्य प्रतीच्छति, ततो लोको न वेत्ति, कस्य प्रतीष्टमिति; ततस्तज्ज्ञातुं भेरी कृता यस्यात्तं तत्ताडितायां भेर्यां शेषा वलंते ॥ ६६ ॥ एवं याति काले राजगृहे नगरे श्रीवर्धमानः समवसृतः साधवो भिक्षार्थं संदेशयंतो भगवता भणिताः, मुहूर्तं तिष्ठत, यतोऽनेषणाऽधुना, तस्मिन् भुक्ते भणिता गच्छत ॥ ६७ ॥

पछी तो ते दुनियामां प्रसिद्ध थयो, अने सार्थवाहना पिंडने पण न इच्छवा लाग्यो; बीजाने घेर जाय नहीं, तेथी पारणाने दिवसे लोको पोतेज तेने माटे भोजन लाववा लाग्या ॥ ६५ ॥ तेओमांथी एकनुं ते ग्रहण करवा लाग्यो, तेथी लोकोने जाणवामां न आव्युं के, तेणे कोनुं भोजन ग्रहण कर्युं; पछी ते जाणवा माटे तेओए एक भेरी बनावी, पछी जेनुं भोजन ते ग्रहण करे, ते माणस त्यारे ते भेरी वजावे, त्यारे बाकीना लोको पाछा वळी जाय ॥ ६६ ॥ एवी रीते केटलोक काळ गया बाद राजगृही नगरीमां श्रीवर्धमान प्रभु समोसर्या; त्यारे साधुओ भिक्षा माटे ज्यारे आदेश मागवा लाग्या, त्यारे भगवाने तेओने कह्युं के, एक मुहूर्तवार सबुर करो? केमके हमणा अनेषणा छे, एटले असुजतो आहार मळे तेम छे; पछी ज्यारे ते इंद्रनागे भोजन करी लीधुं, त्यारे भगवाने साधुओने कह्युं के, हवे गोचरी जाओ ॥ ६७ ॥

गौतमश्चोक्तो मम वचनेन त्वं भण, भो, अनेकपिंडिक एकपिंडिकस्त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ ६८ ॥ ततो गौतमेन तथा भणितो रुष्टः, यूयमनेकानि पिंडशतानि आहारयत, अहमेकं पिंडं भुंजे, ततोऽहमेवैकपिंडिकः ॥ ६९ ॥ मुहूर्त्तांतराडुपशांतश्चिंतयति, नैते मृषाभाषिणः, कथं नु भवेदेवं, हुं ज्ञातोऽर्थः, भवाम्यनेकपिंडिकः, यतो यद्दिने मम पारणकं तद्दिनमनेकानि पिंडशतानि क्रियंते ॥ ७० ॥ एते त्वकृतमकारितं भुंजते, तत्सत्यमुक्तमिति चिंतयन् जातिं स्मृत्वा प्रत्येकबुद्धो जातः, अध्ययनं भाषित्वा सिद्ध इति; एते च तद्भवसिद्धिका एवेति ॥ ७१ ॥

वळी भगवाने गौतम स्वामीने कह्युं के, मारां वचनथी ते इंद्रनागने जइने कहे के हे! अनेक पिंड ग्रहण करनारा एक पिंड ग्रहण करनारो तने जोवाने इच्छे छे ॥ ६८ ॥ पछी गौतम स्वामीए तेने तेम कहेवाथी ते क्रोधायमान थयो, अने कहेवा लाग्यो के, तमो तो सेंकडो गमे अनेक पिंडोनुं भोजन करो छो, अने हुं तो एक पिंडनुं भोजन करुं छुं, माटे हुंज एक पिंडवाळो तो छुं ॥ ६९ ॥ पछी मुहूर्त्त बाद शांत थवाथी ते विचारवा लाग्यो के, आ साधुजी जूठुंतो बोले नहीं, अने एमतो केम थाय? अरे! हवे मने मालुम पड्युं, हुंज अनेक पिंडवाळो थइ शकुं छुं, केमके जे दिवसे मने पारणुं होय छे, ते दिवसे सेंकडो गमे पिंडो (मारे माटे) करवामां आवे छे ॥ ७० ॥ एओतो कोइए नहीं करेल तथा नहीं करावेल पिंड जमे छे. तेथी तेमणे सत्य कह्युं छे. आ प्रमाणे चिंतवतो ते इंद्रनाग जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त करीने प्रत्येकबुद्ध थयो अने अध्ययनने भाखिने ते सिद्ध थइ गयो. एओ तद्भव सिद्धवाळाज छे ॥ ७१

एतेषु षड्भेदेषु जंतुषु प्रथमे द्वये त्याज्याः, मरुस्थलादिसदृशे युग्मतुर्ये चोपदेष्टव्यमिति ॥ ११ ॥ बोदेति विदित्वा नरभिदोऽभिमाग्रिमसमैर्बुद्धैर्जाव्यं ॥ जत्र रिपुजयश्रिया स्या—द्दासन्नमव्ययसुखं यत् ॥ १२ ॥

॥ इति षष्टस्तरंगः ॥

अने आ साधुओ तो नहीं करेलुं अने नहीं करावेलुं भोजन करे छे; माटे गौतमस्वामीए मने सत्य कह्युं छे; एम विचारतां तेने जातिस्मरणज्ञान थवाथी ते प्रत्येक बुद्ध थयो अने अध्ययन रचीने सिद्ध थयो ॥ ११ ॥

एवी रीते छ प्रकारना मनुष्यना भेदो जाणीने विद्वानोए, ऊंच ऊंच भेदो जेवा थवुं; के जेथी संसार-रूपी शत्रुने जीतवाथी अव्ययविके करीने मोक्षसुख नजदीक आवे ॥ १२ ॥

॥ एवी रीते छठ्ठो तरंग समाप्त थयो ॥

इति षष्टस्तरंगः समाप्तः

अथ सप्तमस्तरंगः

पुनर्घटदृष्टांतेन योग्याऽयोग्यानेवाह—मूलम्— सुद्ध असुद्ध दव्ववासिअ ॥ वम्मा-ऽवम्मा अ वासिआ य घडा ॥ सुद्धअसुद्ध धम्मवासं । पडुच्च जीवाण दि-ट्ठंता ॥ १ ॥

वळी पण घडाना दृष्टांते करीने योग्य तथा अयोग्यानुं स्वरूप कहे छे:—मूळनो अर्थ–शुद्ध द्रव्यथी वासित थयेला, तथा अशुद्ध द्रव्यथी वासित थयेला, तेमज वासी करी शकाय तेवा अने वासी न करी शकाय तेवा तथा नहीं वासित थयेला. एम पांच प्रकारना घडाओ जाणवा; ते प्रमाणे शुद्ध अने अशुद्ध एवी धर्मनी वासनाने अपेक्षीने जीवोनां दृष्टांतो जाणवां ॥ १ ॥

इह घटा द्विधा, वासिता अवासिताश्च, वासिता अपि द्विधा शुभद्रव्यवासिता अशुभद्रव्यवासिताश्च ॥ २ ॥ तत्र ये कर्पूरागुरुचंदनादिभिर्द्रव्यैर्वासितास्ते शुभद्रव्यवासिताः, ये पुनः पलांडुलशुनसुरातैलादिभिर्वासितास्तेऽशुभद्रव्यवासिताः, शुभयेऽपिपुनर्द्विधाः, वाम्या अवाम्याश्च ॥ ३ ॥ तत्र ये द्रव्यांतरसंबंधे पूर्ववासं त्यजंति ते वाम्याः, इतरे अवाम्याः, अवासिता नाम ये केनापि द्रव्येण न वासिताः, एते पंचघटाः ॥ ४ ॥ सुहअसुहधम्मेत्ति, शुभः सम्यग् जीवदयादिमूलत्वेनोभयलोकहितो जैनो धर्मः ॥ ५ ॥

अहीं घडा बे प्रकारना छे, एक वासित थयेला अने बीजा नहीं वासित थयेला; वासित थयेला पण बे प्रकारना जाणवा, शुभ द्रव्यथी वासित थयेला अने अशुभ द्रव्यथी वासित थयेला; ॥ २ ॥ तेमां जे कपूर, अगुरु, तथा चंदन आदिक द्रव्योथी वासित थयेला छे, ते अशुभद्रव्यवासित कहेवाय, तथा जे डुंगळी, लसण, मदिरा तथा तेल आदिकथी वासित थयेला छे, ते अशुभद्रव्यथी वासित कहेवाय; वळी तेओ वळी पाछा बे प्रकारना छे, खाली करी शकाय तेवा अने खाली न करी शकाय तेवा. ॥ ३ ॥ तेमां जे बीजा द्रव्यना संबंधथी पूर्वनी वासने तजे छे, ते खाली करी शकाय तेवा, कहेवाय, अने तेथी उलटा न खाली करी शकाय तेवा कहेवाय; तथा अवासित एटले जे कोइ पण द्रव्यथी वासित थयेला नथी. ए पांचे जातना घडाओ ॥ ४ ॥ शुभ धर्म एटले सम्यक्त्व तथा जीवदया आदिकना मूळपणाये करीने बन्ने लोकमां हितकारी एवो जैन धर्म जाणवो ॥ ५ ॥

तद्विपरीतः पुनरशुभः, तयोर्वासं वासनां प्रतीत्य जीवानां दृष्टांता भवंति, तथाहि—जीवा अपि द्विधा वासिता अवासिताश्च ॥ ६ ॥ तत्राऽवासिता ये केनापि दर्शनेन न वासिताः, तत्काल एव च बोधयितुमारब्धाः, श्रीवर्धमानदेशनाप्रतिबुद्धातिमुक्तकमेघकुमारादिवत् ॥ ७ ॥ वासिता अपि द्विधा, सम्यग्धर्मेण मिथ्यात्वादिना च, तद्द्वयेऽपि च द्विधा, वाम्या अवाम्याश्च, तत्र ये सुगुर्वादिसामग्र्यां मिथ्यात्वादिवासनां वमंति, तेऽशुभधर्मवासनां प्रतीत्य वाम्याः ॥ ८ ॥ श्रीइंद्रभूत्याद्येकादशगणधरश्रीप्रभवशय्यंभवसिद्धसेनगोविंदवाचकश्रीहरिभद्रसूरिधनपालपंडितादिवत् ॥ ९ ॥

अने तथी विपरीत ते अशुभ धर्म जाणवो ते बन्नेनी वासनाने आश्रीने जीवोना दृष्टांतरूप थाय छे, ते कहे छे.—जीवो पण बे प्रकारना छे; एक वासित ने बीजा अवासित ॥ ६ ॥ तेमां अवासित एटले कोइ पण दर्शनथी जे वासित थयेला नथी, अने तेज वखते जेओने प्रतिबोधवा मांडेला छे, एवा श्रीवर्धमानप्रभुनी देशनाथी प्रतिबोध पामेला अतिमुक्त तथा मेघकुमार आदिकनी पेठे जाणवा ॥ ७ ॥ वासित पण बे प्रकारना छे सम्यग् धर्मथी वासित थयेला अने, मिथ्यात्वआदिकथी वासित थयेला; वळी ते बन्ने पण बे प्रकारना छे. वमीशकाय एवा अने न वमीशकाय तेवा; तेमां जेओ सुगुरुआदिकनी सामग्री होते छते मिथ्यात्वआदिकनी वासनाने वमी नाखे छे, तेओ अशुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने वमी शकाय तेवा छे ॥ ८ ॥ अने तेवा श्रीइंद्रभूति आदिक अग्यार गणधरो श्रीप्रभवस्वामी, शय्यंभवस्वामी, सिद्धसेनदिवाकर, गोविंद वाचक, श्रीहरिभद्रसूरि तथा धनपालपंडितआदिक सरखा जाणवा ॥ ९ ॥

ये च सुगुर्वादिसामग्र्यामपि मिथ्यात्वाद्यशुभधर्मवासं न वमन्ति ते पुनरधमाख्याः, श्रीकालकसूरिवचनाऽप्रतिबुद्धतद्भागिनेयतुरुमिणीनगरीशदत्तनृपादिवत् ॥ १० ॥ * तुरुमिण्यां दत्तनामब्राह्मणमंत्रिणा राज्यं स्वायत्तीकृत्य जितशत्रुनृपं निष्कास्य स्वयं राज्यं कुर्वता पुण्यार्थं बहवो यागाः कृताः ॥ ११ ॥ तत्र मातुलकालकाचार्यागमनमातृप्रहिततत्पार्श्वदत्तनृपागमः, धर्मोक्तौ यागफलप्रश्ने नृपेण कृते, जीवदयाधर्मः, पुनः पृष्टे हिंसा दुर्गतिहेतुः ॥ १२ ॥

वळी जेओ सुगुरु आदिकनी सामग्री मळते छते पण मिथ्यात्व आदिक अशुद्ध धर्मनी वासनाने तजता नथी, तेओ न वामी शकाय तेवा कहेवाय छे; अने तेवा श्रीकालिक सूरिना वचनथी नहीं प्रतिबोध पामेला तेमना भाणेज एवा तुरुमिणी नगरीना स्वामी दत्तराजा आदिकनी पेठे जाणवा ॥ १० ॥ * तुरुमिणी नगरीमां दत्त नामना ब्राह्मण मंत्रिए राज्य स्वाधीन करीने, तथा जितशत्रु राजाने कहाडी मुकीने, पोते राज्य करवा मांड्युं, तथा पुण्य माटे तेणे घणा यज्ञो कर्या ॥ ११ ॥ ते नगरमां तेना मामा कालकाचार्य पधार्या, त्यारे दत्त राजानी माए मोकलवाथी, ते दत्त राजा तेमनी पासे आव्यो; धर्म संबंधि चर्चामां यज्ञना फळ माटे राजाए प्रश्न करवाथी आचार्यजीए जीवदयामय धर्म कह्यो; फरीने पूछवाथी आचार्यजीए कह्युं के, हिंसा ए दुर्गतिनो हेतु छे ॥ १२ ॥

* आ कथा एक प्रतिमां छे, अने बीजी प्रतिमां नथी आपी.

पुनर्दत्त आह, त्वं मा वदंतु, यागफलं किं, ततो मृत्युमाश्रित्योक्तं नरकगतिः, द-
त्तेनोक्तमहं नरके यास्यामि, गुरुः—कः संदेहः ॥ १३ ॥ कदा, सप्तमे दिने, कथं-
केनाभिज्ञानेन, मुखे विट्पातात्, दत्तेनोक्तं त्वं क्व यास्यसि, गुरुः—देवलोके ॥ १४ ॥
तेन रुष्टेन रक्षिताः, सप्तदिनानंतरं मारणादि चिंतयित्वा, ततः स्वं सर्वं पुरं संशो-
ध्यावासे स्थितोऽष्टमदिनभ्रमेण बहिरश्वारूढो गुरूणां मारणार्थं गच्छन्गाढवपुश्चिं-
तार्दितेन वृद्धमालिकेन पुरीषं कृत्वा कुसुमत्यागः ॥ १५ ॥ तदुपर्यश्वांह्रिघातोच्छल-
द्विट्मुखप्रवेशेन नरकगमनं निश्चित्य लोकैः कुंभिपाकेन मारितः, गुरवः स्वर्गं
गताः, इति दत्तनृपकथा ॥ १६ ॥

वळी दत्ते कह्युं के, तमो आरो जवाब नहीं आपो? यज्ञनुं फळ शुं छे? ते कहो? त्यारे मृत्युने आश्रीने आचार्यजीए कह्युं के, नरकगति छे; त्यारे दत्ते कह्युं के, शुं हुं नरकमां जइश? गुरुए कह्युं के, एमां शुं संदेह छे? ॥ १३ ॥ त्यारे दत्ते पुछ्युं के, क्यारे? गुरुए कह्युं सातमे दिवसे दत्ते कह्युं के केवी रीते अने शुं एंधाणथी? गुरुए कह्युं मुखमां विष्टा पडवाथी; त्यारे दत्ते फरीने पुछ्युं के, तुं क्यां जइश? त्यारे गुरुए कह्युं के, हुं देवलोकमां जइश ॥ १४ ॥ पछी तेणे क्रोधायमान थइ, सात दिवस बाद गुरुने मारवा आदिकनो विचार करीने त्यां राख्या; पछी ते पोते आखुं नगर साफ करावीने महेलमां रह्यो; तथा आठमा दिवसना भ्रमथी बहार निकळी घोडापर चडी गुरुने मारवा माटे जवा लाग्यो; एटलामां (मार्गमां) घणीज देह चिंताथी पीडायेला एक वृद्ध माळीये झाडो करीने उपर पुष्पोथी विष्टाने ढांकी दीधी ॥ १५ ॥ तेपर घोडानो पग लागवाथी तेमांथी विष्टा उछळीने ते दत्तना मुखमां पडी, अने तेथी तेना नरके जवानो निश्चय करीने लोकोए तेने रीबावी रीबावीने मारी नाख्यो; तथा गुरु महाराज स्वर्गे पधार्या; एवी रीते दत्त राजानी कथा जाणवी ॥ १६ ॥

ये पुनःकुगुर्वादिसंगत्या सम्यग्दर्शनचारित्रादि वमंति, ते शुभधर्मवासं प्रतीत्य वाम्याः, बौद्धसंगत्यैकविंशतिकृत्वोऽर्हद्धर्मत्यागिश्रीहरिभद्रसूरिशिष्यपश्चात्तदुपज्ञललितविस्तराप्रतिबुद्धश्रीसिद्धर्षिवत् ॥ १७ ॥ ये तु कुगुर्वादिकुसंगतावपि सम्यग्दर्शनचारित्रादि न वमंति, ते शुभधर्मवासं प्रतीत्याऽवाम्याः, श्रीथावच्चापुत्रगुरुप्रतिबोधितशुकपरिव्राजकशिष्यसुदर्शनश्रेष्ठिवत् ॥ १८ ॥ तेषु ये शुभधर्मवासं प्रतीत्य वाम्याः, अशुभधर्मवासं प्रतीत्याऽवाम्याश्चेते उभये अयोग्याः, शेषास्त्रयो योग्याइति ॥१९ ॥

वळी जेओ कुगुरु आदिकनी संगतिथी सम्यग दर्शन तथा चारित्र आदिकने वमी नाखे छे, तेओ शुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने वामी शकाय तेवा कहेवाय छे; अने तेवा बौद्धोनी संगतिथी एकवीसवार जैन धर्मनो त्याग करनार श्री हरिभद्रसूरिना शिष्य, तथा पाछळथी श्रीहरिभद्रसूरिए रचेली ललितविस्तराथी प्रतिबोध पामेला श्रीसिद्धर्षिनी पेठे जाणवा ॥ १७ ॥ वळी जेओ कुगुरुआदिकोनी कुसंगति होते छते पण सम्यग दर्शन तथा चारित्र आदिकने वमता नथी, तेओ शुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने न वामी शकाय तेवा कहेवाय छे; अने तेवा श्रीथावच्चापुत्रगुरुए प्रतिबोधेला शुकपरिव्राजकना शिष्य सुदर्शन शेठनी पेठे जाणवा ॥ १८ ॥ तेओमां जेओ शुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने वामी शकाय तेवा तथा अशुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने जेओ न वामी शकाय तेवा; एम बन्ने प्रकारना अयोग्य मनुष्यो छे, अने बाकीना त्रण प्रकारना योग्य मनुष्यो छे ॥ १९ ॥

इति निबुध्य घटोपमया स्फुटं ।तनुभृतो भुवि पंचविधान् बुधाः॥ सुकृतवासनवाम्य-
तयोत्तमं ॥ श्रयत दुर्जयकर्मजयश्रिये ॥ २० ॥

॥ इति सप्तमस्तरंगः ॥

एवी रीते घडानी उपमाथी जगतमां पांच प्रकारना मनुष्योने प्रगट रीते जाणीने हे विद्वानो नवमी शकाय एवी रीते धर्मनी उत्तम वासनानो, दुर्जय एवा कर्मोने जीतवानी लक्ष्मी माटे आश्रय करो ॥ २० ॥

॥ एवी रीते सातमो तरंग जाणवो ॥

इति सप्तमस्तरंगः समाप्तः

अथ अष्टमस्तरंगः

पुनरपि ग्रंथांतरेण योग्यायोग्यविचारमाह ॥—जह वरजलभरे अ सरे । वायस साणगयहंसमाईणं ॥ चायलिहणासिणयरइ । सुगुरुवएसे तह जिआणं ॥ १ ॥

फरीने पण जुदा प्रकारथी योग्य अयोग्यनो विचार कहे छे. मूळनो अर्थ—जेम उत्तम जळथी भरेला तळावमां कागडा, कुतरा, हाथी तथा हंस आदिको अनुक्रमे त्याग, चाटवानुं, तृप्ति तथा स्नेह बतावे छे. तेम सुगुरुना उपदेश प्रत्ये जीवोनुं स्वरूप जाणवुं ॥ १ ॥

व्याख्या—यथा वरं निर्मलं जलं तेन भृते सरसि वायसश्वानगजहंसादीनां (मकारः प्राकृतत्वादलाक्षणिकः, प्राप्तानामिति गम्यं) त्यागो लेहनमाशिततारतिश्च क्रमाद् जवंति (विजक्तिलोपः प्राकृतत्वात्) ॥ २ ॥ तथा सुगुरूपदेशेऽपि अधमादीनां जीवानां त्यागादयो जवंतीति पिंमार्थः ॥ ३॥ अथैतद् जाव्यते, यथा निर्मलजलपूर्णे महासरसि वायसस्तृषातुरोऽपि प्राप्तो न जलं पिबति, न च वपुर्गतमलतापादिव्यपगमार्थं स्नाति ॥ ४ ॥

व्याख्या—जेम उत्तम एटले निर्मळ जळथी जरेला तळावमां कागमा, कुतरा, हाथी तथा हंस आदिकोनो (अहीं प्राकृत जाषा होवाथी मकार अलाक्षणिक छे; प्राप्त थयेलाओने एटलुं अध्याहार जाणवुं.) अनुक्रमे त्याग, चाटवानुं, तृप्ति तथा स्नेह थाय छे, (प्राकृत जाषा होवाथी विजक्तिनो लोप थयो छे) ॥ २ ॥ तेम सुगुरुना उपदेशमां पण अधमआदिक जीवोनो त्याग आदिक थाय छे, एवी रीतनो समुदायार्थ जाणवो ॥ ३ ॥ हवे तेनुं वर्णन करे छे; जेम निर्मळ जळथी जरेला मोटां तळावमां गयेलो तृषातुर कागमो पण पाणी पीतो नथी, तेमज शरीरे रहेला मेल तथा ताप आदिकने दूर करवा माटे स्नान पण करतो नथी ॥ ४ ॥

किंतु तत्पश्चात् जनस्नानादिमलिनकियज्जलभृतेषु गोष्पदेषु कुड्यबिलादिषु आविलं जलं स्वल्पं पिबति, नारीशिरःस्थविमलजलभृतघटादिषु वाऽशुचिचंचुक्षेपेण जलं-विनाशयति. नतु स्वयं तृप्यति ॥ ५ ॥ तथा केचिदधमा जीवा अभिगृहीत-तीव्रमिथ्यात्ववासनावशाद् बहुलकर्मतादिहेतुकप्रमादादिवशाद्वा श्रीजिनधर्मं द्विषंतो दयादिगुणविशुद्धश्रीसर्वज्ञागमजलनिभृते महासरस्तुल्ये सुगुरूपदेशेऽपि हस्तिना मार-येन्नतु जिनभवनं प्रविशेदित्यादिकुशास्त्राण्युच्चारयंतोऽभिलाषमकुर्वाणास्त्यजंति. ओढरखुररौहिणेयपूर्वावस्थादिवत् ॥ ६ ॥

परंतु ते तरसो माणसना स्नान आदिकथी मलीन थयेला एवा केटलाक पाणीथी *भरेला नाना खाबोचीयामां अथवा खराब खाडा आदिकोमां रहेला गंदा पाणीने स्वल्प पीये छे, अथवा स्त्रीना मस्तकपर रहेला निर्मळ जळथी भरेला घडा आदिकोमां पोतानी गंदी चांच नाखीने ते जळने बगाडे छे; परंतु पोते तृप्त थतो नथी ॥ ५ ॥ तेम केटलाक अधम जीवो ग्रहण करेली एवी तीव्र मिथ्यात्वनी वासनाना वशथी, अथवा घोर कर्मीपणा आदिकना हेतुरूप प्रमाद आदिकना वशथी श्री जैनधर्म प्रत्ये द्वेष करता थका, दया आदिक गुणोथी शुद्ध एवा श्री सर्वज्ञ प्रभुना प्ररूपेला आगमोरूपी जळथी भरेला, अने महान तळाव सरखा सुगुरुना उपदेशने विषे 'हाथीथी मराइ जवुं सारुं परंतु जिनभुवनमां प्रवेश करवो नहीं' इत्यादि कुशास्त्रोने उच्चारता थका अभिलाष नहीं करीने ते सदुपदेशनो त्याग करे छे; (कोनी पेठे? तो के) ओढखुर तथा रौहिणेय चोरनी पूर्व अवस्थानी पेठे ॥ ६ ॥

* गोष्पद—गायनां पगलां प्रमाण, नानां.

कदाचिच्च परेभ्यः श्रीगुरूक्तकथाश्लोकवचनादिसारस्य प्रवादं श्रुत्वा गोष्पदादितुल्येभ्यस्तं श्रुतपूर्विभ्य[1]: शृण्वंति ॥ ७ ॥ काका इव जलघटं श्रोतृहृदयबोधमपि मिथ्याकुतर्कादिभिर्वितर्कयंति विनाशयंत्यपि, अथवा गोष्पदाभपार्श्वस्थादिषु रतिं कुर्वते, गच्छनिर्गतेषु नारीशिरःस्थघटजलसमेषु मरीच्यादिषु कपिलादिवद्रतिं दधतस्तद्धर्मं च विनाशयंति ॥ ८ ॥ तत्रकपिलोदाहरणं यथा—इहेव भरहे इमीसे उसप्पिणीए भरहचक्कवट्टिसुओ मरीइनामं भगवओ उसभसामिस्स देसणं सुच्चा पडिबुद्धो पव्वइओ ॥ ९ ॥

वळी कदाचित बीजा पासेथी श्री गुरुए कहेलां कथा, श्लोक तथा वचनो वगेरेना सारना प्रवाद (श्लोकवाद) ने सांभळीने जेमणे प्रथम श्रवण कर्युं छे एवा खाबोचियां जेवा पासथ्यादिक पासेथी ते वातने सांभळे छे ॥७॥ तेमज कागडाओ जेम जळना घडाने, तेम सांभळनाराओना हृदयना बोधने पण खोटा कुतर्क आदिक वडे करीने, वितर्क छे तथा नष्ट पण करे छे; अथवा नानां खाबोचीयां सरखा पासथ्यादिको प्रत्ये अभिलाष करे छे, अने गच्छथी निकळी गयेला एवा स्त्रीना मस्तकपर रहेला घडाना जळ सरखा मरीचि आदिको प्रत्ये कपिल आदिकनी पेठे रुचि धरता थका तेना धर्मने नष्ट करे छे ॥८॥ त्यां कपिलनुं उदाहरण नीचे मुजब छे.—आज भरतक्षेत्रमां आ उत्सर्पिणीमां भरत चक्रवर्तिनो पुत्र, के जेनुं मरीचि नाम हतुं, तेणे भगवान श्री ऋषभदेव स्वामिनी देशना सांभळीने प्रतिबोध पामी दीक्षा लीधी ॥ ९ ॥

१ श्रुतंपूर्वं यैस्ते श्रुतपूर्विणः तेभ्यः ।

जणि आणि एगारसंगाणि, कियंतमवि समयं पालिअं सामन्नं, कलिट्ठकम्मोदएणं जाओ से अन्नाणपरिसहो ॥ १० ॥ तक्कालोचिअसुहभावणयाए पवत्तिअं परिव्वायगलिंगं, तथा च श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ ॥ ११ ॥ समणा तिदंडविरया इत्यादिगाथाषट्कं तत्स्वरूपोपदर्शकं, विहरइ समं भगवया, देसेइ साहुधम्मं, पुच्छिओ किंतु ममेसोत्ति निंदइ अप्पाणं ॥ १२ ॥ उवसंते उवणेइ साहूणं; अन्नया धम्मकहाए अक्खित्तो कविलो उवणीओ साहुणं, न रुच्चइ से, जंपिअ मणेण अहंमे इमिणा. किमेत्थ चेव धम्मो न पुण तुहसासणे ॥ १३ ॥

अग्यारे अंगोनो तेणे अभ्यास कर्यो, तथा केटलोक काळ सुधि तेणे साधुपणुं पाळ्युं, परंतु क्लिष्ट कर्मोना उदयथी तेने अज्ञान परिसह थयो ॥ १० ॥ अने तेथी तेणे तत्काल उचित शुभ भावनावडे करीने परिव्राजकलिंग प्रवर्त्ताव्युं; तेमज श्री आवश्यक निर्युक्तिमां पण कह्युं छे के ॥ ११ ॥ साधुओ त्रण दंडोनी विरतिवाळा होय छे, इत्यादिक छ गाथामां तेनुं स्वरूप देखाड्युं छे पछी ते मरीचि प्रभुनी साथे विचरवा लाग्यो. साधुधर्मने उपदेशवा लाग्यो; वळी जो कोइ पूछे के, तमारो धर्म आवो केम छे? त्यारे ते पोताने निंदवा लागे ॥ १२ ॥ ज्यारे कोइ प्रतिबोध पामे त्यारे तेने साधु पासे लेइ जाय; एक दहाडो कपिल नामे मनुष्य तेनी धर्मकथाथी प्रतिबोध पाम्यो, अने तेथी तेने साधु पासे ते लेइ गयो; परंतु तेने ते साधुनो धर्म रुच्यो नहीं, तेथी तेणे (मरिचीने) कह्युं के, मारे आ साधुधर्मनी जरुर नथी; शुं अहींज धर्म छे? अने तमारा शासनमां धर्म नथी? ॥ १३ ॥

अणरिहोएसोत्तिजावं नाउण, ममाविकज्जं पडिचारगेणेति समालोचिउण जंपिअ-
माणेण कविला इत्थंति इहयंपि ॥ १४ ॥ दुब्भासिएण वड्ढिओ संसारो पव्वाविओ क-
विलो, साहिओ किरिआकलावोत्ति, एवमाइ गंथंतराओ नेअमित्ति ॥ १५ ॥
अत्र वायससदृशः कपिलः, महासरस्तुल्यं सुगुरूपदेशं परित्यज्य घटजलसमे मरी-
चिवचने रतिकारित्वात्, तथा स घटजलमिव निर्मलं स्वरूपं सम्यक्प्ररूपणादिकं मरी-
चेर्धर्मं कविला इत्थंपि इहयंपि इत्यादि दुरंतसंसारकारणवितथप्ररूपणादिहेतुभवना-
दिना विनाशितवांश्चेति ॥ १६ ॥

ते सांभळी मरीचिए जाण्युं के, आ साधुधर्मने अयोग्य छे, एम जाणीने, तथा मारे पण एक वैयावच्च करनारनी जरूर छे, एम पण विचारीने तेणे कपिलने कह्युं के, हे कपिल अहीं पण धर्म छे अने, मारे त्यां पण धर्म छे ॥ १४ ॥ एवी रीतना दुर्भाषितथी मरीचिनो संसार वध्यो; पछी कपिलने तेणे दीक्षा आपी, तथा क्रियानो समूह पण शिखव्यो, इत्यादिक विशेष वृत्तांत बीजा ग्रंथथी जाणी लेवुं ॥ १५ ॥ अहीं कागडा सरखो कपिल जाणवो, अने तेणे महान् तळाव सरखा सुगुरुना उपदेशने तजीने घडाना जळसरखा मरीचिना वचनमां अभिलाष कर्यो; अने तेम करीने घडाना जळसरखा निर्मळ अने स्वरूप सम्यक् प्ररूपणादिकरूप मरीचिना धर्मने, 'हे कपिल! त्यां पण धर्म छे अने अहीं पण छे,' इत्यादि दुरंत संसारना कारणरूप जे जुठुं प्ररूपण आदिक तेना हेतुरूप थवा वडे करीने, तेणे ते धर्मनो विनाश पण कर्यो ॥ १६ ॥

ते चाऽभव्या दूरभव्या विराधितधर्मत्वेन दुर्लभबोधिका दुर्गतिबद्धायुष्का वा भवंति ॥ १७ ॥ साणत्ति, यथा श्वानः तृषातुरोऽपि तादृशे सरसि प्राप्तो, यदि प्राप्नोति तदा गोष्पदादिषु, चेत्सरसि मुखमेवाग्रतःकृत्वा लेहनं करोति, न तु यथेष्टं घुंटघुंटैः पिबति ॥ १८ ॥ न च स्नानादि कुरुते, तथा केचिज्जीवा अनभिगृहितमिथ्यात्वा जिनधर्मे माध्यस्थ्यादिभाजस्तादृशे गुरूपदेशे सारत्वादिना किंचिदभिलाषं कुर्वाणा अपि अधिकविरतिदानमिथ्यात्विस्वजनलोकापवादादिभियाऽधिकं संपूर्णमुपदेशं न शृण्वंति ॥ १९ ॥

वळी तेवा मनुष्यो अभव्य, दूरभव्य तथा धर्मने विराधवाथी दुर्लभ बोधवाळा अथवा दुर्गतिमां बांधेलां आयुष्यवाळा थाय छे ॥ १७ ॥ श्वान एटले कुतरो जो के तृषातुर होय तोपण तेवां महान सरोवर प्रत्ये जतो नथी, अने कदाच जाय तो पण नानां खाबोचीयां आदिकमां जाय छे, अने तेम नहीं तो तळावमां मुखनेज आगळ करीने चाट्या करे छे, परंतु यथेष्ट रीते एटले इच्छा मुजब घुंटडे घुंटडे ते पाणी पीतो नथी ॥ १८ ॥ तेम स्नान आदिक पण करतो नथी; एवी रीते केटलाक जीवो मिथ्यात्वनो आग्रह नहीं करीने जिनधर्ममां मध्यस्थपणुं आदिकने भजता थका तेवी रीतना गुरुना उपदेशमां सारपणा आदिकवडे करीने कंइक अभिलाषने करता थका पण, अधिक विरति, दान, तथा मिथ्यात्वी एवां सगां वाहालोना अपवाद आदिकना भयथी अधिक तथा संपूर्ण उपदेश सांभळता नथी ॥ १९॥

किंत्वंतरांतरा सरसकथाश्लोकादि कियत् शृण्वंति अवधारयंति च, कियतीं बोधितृप्तिमाप्नुवंत्यनुतिष्ठंति च ॥ २० ॥ ते च धर्माभ्यासवशाद्विशिष्य दुर्गतिं नाप्नुवंति, तां प्राप्ता अपि पुनर्बोधिं भजंते, गोभूतिवसुभूतिविप्रद्वयवत् ॥ २१ ॥ हस्ति, यथा गजस्तृषातापाद्याक्रांतस्तादृशे सरसि प्राप्तो यथेष्टं जलपानेनाशिततां तृप्तिं करोति, स्वस्य स्नानजलक्रीडादिना मलतापापहारं च ॥ २२ ॥ परं स्नात्वा निर्गतो धूल्यात्मानं खरंटयति, पुनःपुनः स्नानखरंटनादि कुरुते; तथा केचिज्जीवा मध्यमज्ञाना गुरूपदेशं सम्यग् शृण्वंत्यवधारयंत्यनुतिष्ठंति साह्लादं तृप्यंति, मिथ्यात्वविषयतृष्णाकषायादितापमलापहारेण शुद्ध्यंति च ॥ २३ ॥

परंतु वच्चे वच्चे रसयुक्त कथा श्लोक आदिक केटलुंक सांभळे छे, तथा धारे छे, तथा केटलाक बोधरूपी तृप्तिने पामे छे, तथा ते मुजब अनुष्ठान पण करे छे ॥ २० ॥ अने तेवा मनुष्यो धर्माभ्यासना वशथी विशेष प्रकारे दुर्गति पामता नथी, तथा पामे तो पण फरीने बोध पामे छे, (कोनी पेठे? तो के) गोभूति तथा वसुभूति नामे बे ब्राह्मणोनी पेठे ॥ २१ ॥ हवे जेम एक हाथी, तृषा तथा ताप आदिकथी व्याकुळ थयो थको तेवा तळावमां जाय छे; तथा इच्छा मुजब जळपानवडे करीने तृप्ति करे छे; तेमज स्नान तथा जळक्रीडा आदिवडे करीने पोताना मेल तथा तापने दूर पण करे छे ॥ २२ ॥ परंतु स्नान कर्या बाद बहार निकळीने धुळथी पाछो पोताने खरडे छे; एम वारंवार स्नान तथा धूळथी खरडावापणुं करे छे; एवी रीते केटलाक जीवो मध्यम ज्ञानवाळा थया थका गुरुना उपदेशने सम्यग् प्रकारे सांभळे छे, अवधारे छे, ते मुजब अनुष्ठान करे छे, अने तेम करी हर्ष सहित तृप्ति पामे छे; तेमज मिथ्यात्व, विषय, तृष्णा तथा कषाय आदिकरूप ताप अने मेलना विनाशथी शुद्ध पण थाय छे ॥ २३ ॥

परमऽदृढचित्ततया पुनस्तादृग्सामग्र्यां कुतीर्थिकवचनश्रवणादिना तदनुष्ठानाऽनुरागादिना तत्तपोविद्याचमत्कारादिना विषयतृष्णाबह्वारंभादिना आत्मानं भूयोऽपि मलिनयंति ॥ २४ ॥ पुनर्गुरूपदेशस्नानोक्तरूपखरंटनादि च कुर्वाणा मनुष्यगतिहीनसुरगत्यादिप्रायोग्यं पुण्यकर्मोपार्जयंति. पूर्वगाथाग्रथितश्यामलवणिग्वत् ॥ २५ ॥ केचित्तु बहुस्नानाऽल्पखरंटनादि कुर्वाणा उत्तमसुरायुरपि बध्नंति आसन्नसिद्धिकाश्च भवंति ॥ २६ ॥

परंतु चित्तनुं दृढपणुं नहीं होवाथी फरीने तेवी सामग्री मळते छते कुतीर्थिओनां वचननां श्रवण आदिकवडे करीने, तथा तेओना अनुष्ठानना अनुराग आदिकवडे करीने, तेमज तेओना तप, विद्या तथा चमत्कार आदिकथी विषय, तृष्णा तथा घणा आरंभ आदिकवडे करीने, जाणे फरीथी होय नहीं, तेम पोताने मलिन करेछे॥ २४ ॥ वळी गुरुना उपदेशरूप स्नान करे छे, तथा वळी फरीथी खरडावा आदिकपणुं करे छे; अने तेम करता थका मनुष्य गति नीच देवगति आदिकने योग्य पुण्यकर्म उपार्जन करे छे; कोनी पेठे तो के, पूर्वनी गाथामां वर्णवेला श्यामलवणिकनी पेठे ॥ २५ ॥ वळी केटलाक तो घणुं स्नान अने अल्प खरडावापणुं करता थका उत्तम देवपणानु आयु पण बांधे छे, अने नदजीक मोक्ष पामवावाळा पण थायछे ॥ २६ ॥

हंसश्च, हंसो यथा तादृक् सरः संप्राप्य तत्रैव वसन् रतिं कुरुते, निर्मलजलपानस्नानमृणालभक्षणादिना सरस्येव तत्परिसरे वा तिष्ठन् शैत्यपावित्र्यसुखान्यनुभवन् रजोमलाऽपावित्र्यतापान्न विंदति ॥ २७ ॥ तथा केचिज्जीवाः सद्गुरूपदेशं श्रुत्वा तत्रैव रतिं कुर्वाणा मनोवाक्कायैस्तदनुध्यानतदनुगतसूत्रार्थोच्चारणतदनुष्ठित्यादिभिस्तदेव परिशीलयंतो मिथ्यात्विवचनश्रवणोद्भवधर्माऽस्थैर्यादिमालिन्यबह्वारंभादिपापभवक्लेशादितापान्नानुभवंति ॥ २८ ॥ उत्तरोत्तरज्ञानदर्शनदेशविरतिसर्वविरत्यनुष्ठानादिभिरासन्नसिद्धिका एव भवंति, तस्मिन्नेव भवे द्वितीये वा भवे सिध्यंति, आनंदादिश्रीवीरश्रावकदशवत् ॥ २९ ॥

वळी जेम हंस तेवुं तळाव पामीने त्यांज वसतो थको आनंद करे छे; तेमज निर्मळ जळनुं पान स्नान तथा कमळना भक्षण आदिक पूर्वक तळावमांज अथवा तेनी आसपासना प्रदेशमां रह्यो थको, तेमज शीतळता अने पवित्रताना सुखोने अनुभवतो थको रज, मेल तथा अपवित्रता अने तापने जाणतो नथी ॥ २७ ॥ तेम केटलाक जीवो सद्गुरुनो उपदेश सांभळीने तेमांज अभिलाष करता थका मन, वचन अने कायावडे करीने, ते मुजब ध्यान, ते मुजब सूत्रार्थ उच्चार, अभ्यास अने ते मुजब क्रिया आदिकथी तेनुंज परिशीलन करता थका मिथ्यात्विओना वचनोने सांभळवाथी उत्पन्न थयेला धर्मनी अस्थिरता आदिक मेल, घणा आरंभ आदिकनुं पाप, तथा संसारना क्लेश आदिक तापने अनुभवता नथी ॥ २८ ॥ तेमज उत्तरोत्तर ज्ञान, दर्शन, देशविरति तथा सर्वविरति आदिकना अनुष्ठान आदिक वडे करीने नजदीक सिद्धिवाळाज थाय छे; तथा तेज भवे अथवा बीजे भवे मोक्षे जाय छे, (कोनी पेठे? तोके) श्रीवीर प्रभुना आनंद आदिक दश श्रावकोनी पेठे ॥ २९ ॥

श्रीमदुदायनदशार्णभद्रशुकपरिव्राजकाऽक्षोभितसुदर्शनश्रेष्ठिकुमारपालनृपालादिवत् ॥ ३० ॥ आदिशब्दाद् दृष्टांतचतुष्टयेऽपि प्रत्येकं योजितादशुचितमपंकैकरुचिग्रामशूकर,स्नानाद्यरुचिबोकट,निर्मलपंकिलजलोभयसमानरुचिमहिष,सरोनद्येकपरिशीलनरुचिचक्रवाकादिदृष्टांता अपि ज्ञेयाः ॥ ३१ ॥ एवं दृष्टांतोपदेशमधिगम्य शिवार्थिभिरुत्तरोत्तरदृष्टांतसदृशैः सर्वशक्त्या भाव्यं भव्यजीवैर्येन शिवसुखसंपदः करतललुठिता इव सुप्रापा भवंतीति ॥ ३२ ॥

अथवा श्रीमान् उदायन, दशार्णभद्र, शुक परिव्राजकथी नहीं क्षोभेला सुदर्शन शेठ तथा कुमारपाळ राजा आदिकनी पेठे जाणवा ॥ ३० ॥ आदि शब्दथी ते चारे दृष्टांतोमां, अनुक्रमे दरेकनी साथे जोडवामां आवता अत्यंत गंदा कादवनी रुचिवाळा गामडाना सूअर (भूंड) स्नान आदिकनी अरुचिवाळो बोकडो, निर्मळ अने कादववाळां एम बन्ने जातना जळमां तुल्य रुचिवाळो पाडो, तळाव तथा नदीना जळनाज परिशीलननी रुचिवाळो चक्रवाक, इत्यादि दृष्टांतो पण जाणवां ॥ ३१ ॥ एवी रीते दृष्टांतोनां उपदेशने मेळवीने मोक्षना अर्थी भव्य माणसोए उत्तरोत्तर दृष्टांत सरखा सर्व शक्तिथी थवुं, के जेथी मोक्षसुखनी संपदाओ जाणे हथेळीमां लोटती होय नहीं, तेम सुलभ थाय ॥ ३२ ॥

इत्युत्तरोत्तरनिदर्शनसंनिभा भो । भव्योघमा भवत सद्गुरुवाक्तटाके ॥ येनाप्य संस्कृतिसुखानि जयश्रीयाऽष्ट—कर्मद्विषा विलसथाक्षयमोक्षलक्ष्म्या ॥ ३३ ॥

॥ इति तपाश्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते उपदेशरत्नाकरे अष्टमस्तरंगः ॥

एवी रीते हे उत्तम भव्य लोको! तमो सद्गुरुनी वाणीरूपी तळावमां उत्तरोत्तर (सारां) दृष्टांत सरखा थाओ? के जेथी संसारना सुखो पामीने, आठे कर्मोरूपी शत्रुओनी जयलक्ष्मीवडे करीने अक्षय एवी मोक्षरूपी लक्ष्मी साथे तमो विलास करो ॥ ३३ ॥ "एवी रीते तपगच्छवाळा श्रीमुनिसुंदर सूरिए रचेला उपदेश रत्नाकर नामना ग्रंथमां"

॥ आठमो तरंग समाप्त थयो ॥

इति अष्टमस्तंरंगः समाप्तः

अथ नवमस्तरंगः

पुनर्ग्रंथंतरेण योग्याऽयोग्यानेवाह—मूलम् सप्प जलूगा वंझा । वंझगवीसंनिहा चउह जीवा ॥ परिणमइ जेसु सव्वं । विसतारिसनासपयरूवं ॥ १ ॥

हवे प्रकारांतरें करीने योग्य तथा अयोग्यानुं स्वरूप कहे छे.—मूलनो अर्थः—सर्प, जळो, वंध्यागाय, तथा अवंध्य गाय सरखा चार प्रकारना जीवो होय छे. के जेओने आपेलुं सघळुं कंइ झेर, तद्रूप, नाश तथा दुग्धरूपे परिणामे छे ॥ १ ॥

सर्पो, जलौकाः, वंध्यागौः अवंध्या च एतत्संनिभाश्चतुर्धा शिष्या जीवा वा भवंति, सारूप्यनिरूपणार्थमुत्तरार्धमाह ॥ २ ॥ परिणामइत्यादि. येषु प्रदत्तं सर्वं क्रमाद् विषतादृशनाशपयोरूपं परिणमतीति पिंडार्थः ॥ ३ ॥ तत्र यथा विषभृतां सशर्करदुग्धादेरपि पानं विषायैव कल्पते, एवमनेकेषां जीवानां शिष्याणां वा सुगुरोर्हिताः सारा विविधा अप्युपदेशाः सर्वेऽपि दूरे गुणाः, प्रत्युताऽनर्थपरंपरायै भवंति ॥ ४ ॥ यथा श्रीपार्श्वजिनेशहितवचनानि पंचाग्नितापककमठस्य कमठस्य ॥ ५ ॥ आह च—मूर्खैरपक्वबोधैश्च । सहालापश्चतुःफलः ॥ वाचां व्ययो मनस्ताप— स्ताडनं दुष्प्रवादनं ॥ ६ ॥

सर्प, जळो, वंध्यागाय, तथा अवंध्यागाय; तेओ सरखा चार प्रकारना शिष्यो अथवा जीवो होयछे; हवे तेओनुं तुल्यपणुं देखाडवामाटे उत्तरार्द्ध कहे छे. ॥ २ ॥ जेओने आपेलुं सर्व कंइ अनुक्रमे झेर, तद्रूपपणुं, विनाश तथा दूधरूपे परिणमेछे, एवो समुदायार्थ जाणवो ॥ ३ ॥ तेमां जेम झेरी प्राणीओने आपेलुं साकर सहित दूध आदिकनुं पान पण झेररूपेज थाय छे, तेम केटलाक जीवोने अथवा शिष्योने आपेला सुगुरुना हितकारी अने उत्तम एवा नानाप्रकारना सर्व उपदेशो पण, गुणो तो दूर रह्या, परंतु उलटा दोषोनी श्रेणि उत्पन्न करनारा थाय छे ॥ ४ ॥ जेम श्रीपार्श्वप्रभुनां हितकारी वचनो पंचाग्नि तापनारा कमठ प्रत्ये थयां तेम ॥ ५ ॥ कह्युं छे के—काचा बोधवाळा अने मूर्खोनी साथे आलाप करवाथी वचनोनो व्यय, मनने खेद, ताडना तथा अवर्णवाद एम चार प्रकारनां फलो थाय छे ॥ ६ ॥

अन्यत्राप्युक्तं—नाऽनाम्यं नाम्यते दारु । न शस्त्रं क्रमतेऽश्मनि ॥ सूचीमुख्या इवाऽशिष्ये । नोपदेशः सुखावहः ॥ ७ ॥ तथाहि—क्वचिद्वने वानरयूथं शीतार्दितं खद्योतं गुंजां वाऽग्निधिया शुष्कतृणपर्णैराछाद्य प्रसार्य भुजाद्यंगानि तापमनोरथसुखमनुभवति ॥ ८ ॥ तत्रैकः शाखामृगो भृशं शीतार्त्तस्तन्मुहुर्मुहुर्धमति: सूचिमुखी पक्षिणी तत्रासन्ना प्राह ॥ ९ ॥ जड मा क्लिशय, नायं वह्निः, गुंजा ह्येतत्, पुनः पुनः कथने तेन वानरेण रुषा शिलायामास्फाल्य सा हतेति ॥ १० ॥ एवंविधाः शिष्या जीवा वा सर्पसदृशा इति ॥ ११ ॥

बीजी जगोए पण कह्युं छे केः न नमावी शकाय तेवुं लक्कड नमावी शकातुं नथी, तेमज पत्थरपर हथीयार चाली शकतुं नथी, तेवी रीते कुशिष्य प्रत्ये आपेलो उपदेश, सूचीमुखीपक्षिणीना उपदेशनी पेठे सुखकारी थतो नथी ॥ ७ ॥ ते सूचीमुखी पक्षिणीनुं उदाहरण नीचे कहे छे. कोइक वनमां टंडीथी पीडायेलुं वांदराओनुं टोळुं पतंगीआं अथवा चणोठीओने अग्निनी बुद्धिथी सूकां पांदडांओथी ढांकीने, तथा पोताना हाथ आदिक अवयवोने पसारीने तापना मनोरथ संबंधि सुखने अनुभवे छे ॥८॥ त्यां एक वांदरो टंडीथी अत्यंत पीडीत थयो थको तेने वारंवार धमे छे; एटलामां त्यां नजदीक रहेली सूचीमुखी पक्षिणी (सुघरी) तेने कहेवा लागी के ॥ ९ ॥ हे जड, वृथा प्रयत्न न कर ? आ कंइ अग्नि नथी, आ तो चणोठी आदिक छे; एवी रीते वारंवार कहेवाथी ते वांदरे गुस्से थइने, तेणीने पत्थरपर पछाडीने मारी नाखी ॥ १० ॥ माटे एवी रीतना शिष्यो अथवा जीवो सर्प सरखा छे, ॥ ११ ॥

तथा यद्वज्जलौकसो यादृशं रक्तादिकं पिबंति तादृशमेवोदरगतं धारयंति, न पुनः परिणामांतरं किमपि प्रापयंति ॥ ११ ॥ एवमेके जीवाः श्रीगुरूपदेशादि यथाश्रुतं धारयंति न पुनर्विशेषबोधजनकत्वापादनेन परिणामांतरं प्रापयंति, साधुर्जिनेंटो न विलोक्यत इत्युक्ते नटीविलोकिमुन्यादिवत् कुलपुत्रकवच्च ॥ १२ ॥ तथाहि एकस्मिन् पुरे एका स्त्री भर्त्तरि मृते लघुपुत्रं परगृहकर्मादिभिरजीवयत, स सुतो वर्धमानो मातरं पृच्छति. कथं मम पिता आजीविकां कृतवान् ॥ १४ ॥ माताह अवलगनेन, स आह अहमप्यवलगामि, साह न जानास्यवलगितुं, स आह कथमवलग्यते? ॥ १५ ॥

वळी जेम जळो जेवुं रुधिर आदिक पीये छे, तेवुंज पोताना पेटनी अंदर तेधारी राखे छे, परंतु तेमां कंइ पण जातनो ने फेरफार करी शकती नथी ॥ ११ ॥ एवी रीते केटलाक जीवो, जेम सांभळ्यो होय तेम श्री गुरुनो उपदेश आदिक धारी राखे छे, परंतु विशेष प्रकारना बोधने उत्पन्न करवा वडे करीने परिणामांतरने प्राप्त करी शकता नथी; (कोनी पेठे? तोके) साधुओए नट न जोवो एम कह्या छतां नटीने जोनार साधुओनी पेठे, तथा कुलपुत्रनी पेठे ॥ १३ ॥ ते कुलपुत्रनुं दृष्टांत कहे छे—एक नगरमां एक स्त्री, पोतानो स्वामी गुजरी जवाथी पोताना नाना पुत्रने बीजाना घरमां काम आदिक करीने उछेरवा लागी; पछी ज्यारे ते पुत्र महोटो थयो त्यारे तेणे पोतानी माने पुछयुं के, मारो पिता केवी रीते आजीविका करतो? ॥ १४ ॥ त्यारे माताए कह्युं के, कोइनी सेवा करीने ते आजीविका चलावतो हतो; त्यारे पुत्रे कह्युं के, हुं पण त्यारे कोइनी सेवा करुं, त्यारे माताए कह्युं के, तुं हजु सेवा करवानुं जाणतो नथी; पुत्रे कह्युं केम सेवा कराय? ॥ १५ ॥

साह विनयं कुर्वीथाः, कीदृशो विनय इत्युक्ते पुनः साह, योत्कारः कर्तव्यो, नीचं चंक्रमितव्यं, छंदोऽनुवर्तिना जाव्यमिति ॥ १६ ॥ ततः स नृपं कंचिदवलगितुं नगरं प्रति प्रतस्थे, अंतराले अनेन व्याधा मृगग्रहणाय रहःस्था दृष्टाः, गाढस्वरेण योत्कारो जणितः ॥ १७ ॥ तं श्रुत्वा मृगास्त्रस्ताः, तैः कुट्टितः, सद्भावे कथिते मुक्तः, जणितं च यदेदृशं प्रेक्षेथाः, तदा रहो नोच्चैर्गतव्यं ॥ १८ ॥ ततस्तेन रजका दृष्टाः, ततो रहः शनैःशनैर्याति, रजकानां च प्राग् वस्त्राणि ह्रियंते तैर्गूढपुरुषा नियुक्ताश्चौरप्रचारविलोकनाय ॥ १९ ॥ तैश्चौर इति कृत्वा बद्धः, सद्भावे कथिते मुक्तः, तैर्जणितं च, एवंविधे शुद्धं जवत्विति वाच्यं ॥ २० ॥

त्यारे माताए कर्युं के, तारे विनय करवो जोइये वळी पुत्रे पूछ्युं के, विनय केवो होय? त्यारे तेणीए कर्युं के, जुहार करवो, धीरे रहीने चालवुं, तथा (शेठनी) इच्छा मुजब वर्तवुं ॥ १६ ॥ पछी ते कोइक राजानी सेवा माटे नगर प्रत्ये चाल्यो; वच्चे मार्गमां तेणे हरिणोने पकडवा माटे गुप्त रीते रहेला पारधिओने दीठा; त्यारे मोटा अवाजथी तेणे जुहार कर्यो ॥ १७ ॥ ते सांभळीने हरिणो चमक्या; तेथी पारधिओए तेने मार्यो तथा खरी वात कहेवाथी छोड्यो; अने वळी कर्युं के, ज्यारे आवुं जो, त्यारे गुप्त रीते हळवेथी जावुं ॥ १८ ॥ पछी तेणे धोबीओने जोया, त्यारे गुप्त रीते ते धीरे धीरे जवा लाग्यो; हवे धोबीओना प्रथमथीज वस्त्रो चोराता हतां, तेथी तेओए चोरोनी तपास माटे गुप्त माणसो राख्यां हतां; ॥ १९ ॥ तेओए तेने चोर जाणीने बांध्यो खरी वात कह्या बाद छोड्यो, अने कर्युं के, ज्यारे आम होय त्यारे शुद्ध थाओ? एम कहेवुं ॥ २० ॥

ततोऽग्रे बीजान्युप्यंते, तेन तत्र भणितं शुद्धं भवतु, तैरपि हतः, सद्भावे कथिते मुक्तः, उक्तं च ॥ २१ ॥ ईदृशो बहु भवत्वित्युच्यते, अन्यत्र मृतकं नीयमानं दृष्ट्वा वदति, ईदृशं बहु भवतु ॥ २२ ॥ तत्रापि हतो मुक्तश्च, तथैव उक्तं च, ईदृशे उच्यते, एवंविधस्यात्यंत वियोगो भवतु, अन्यत्र विवाहे भणति अत्यंतं वियोगो भवतु ॥ २३ ॥ तत्रापि कुट्टितो मुक्तश्च, तथैव उक्तं च, ईदृशे भण्यते, नित्यमेवंविधानि प्रेक्षध्वं, शाश्वतं च भवत्वेतत् ॥ २४ ॥ अन्यत्र निगडबद्धं दंडिकं दृष्ट्वा भणति, नित्यमेवंविधानि प्रेक्षस्व, शाश्वतं च भवत्वेतत्, तत्रापि हतो मुक्तश्च, तथैव भणितं ॥ २५ ॥

पछी आगळ चालतां बीजो वाववामां आवतां हतां; त्यां तेणे कह्युं के, शुद्ध थाओ? तओए पण तेने मार्यो, खरी बीना कहायी छोड्यो, अने कह्युं के ॥ २१ ॥ आवे समये घणुं थाओ? एम कहेवाय; पछी बीजी जगोए मडदुं लेइ जतां जोइने तेणे कह्युं के, आवुं घणुं थाओ? ॥ २२ ॥ त्यां पण मार पड्यो अने छुट्यो, अने वळी तेने कह्युं के, आवुं होय त्यारे एम कहेवुं के, आवानो अत्यंत वियोग थाओ? वळी बीजी जगोए विवाह थतो हतो, त्यां जइ कह्युं के, अत्यंत वियोग थाओ? ॥ २३ ॥ त्यां पण मार पड्यो, अने छोड्यो; तेमज शीखव्युं के, ज्यारे आवुं होय, त्यारे एम कहेवुं के, आवां कार्यो हमेशां जुओ? तथा आवुं शाश्वतुं थाओ? ॥ २४ ॥ वळी बीजी जगोए बेडीथी बांधेला दंडीदारने जोइने कह्युं के, आवुं हमेशां तुं जो? तथा आवुं शाश्वतुं थाओ? त्यां पण मार पड्यो, अने छोड्यो, तथा कह्युं के ॥ २५ ॥

एवंविधे लघु मोक्षो भवत्वित्युच्यते; अन्ये मित्रसंघाटकं कुर्वंति तत्र भणति, लघुमोक्षो भवतु, तत्रापि हतो मुक्तश्च ॥ २६ ॥ तथैव क्रमादेकं ग्रामाधिपतिपुत्रमाश्रितस्तं सेवते, अन्यदा दुर्भिक्षे तस्य गृहे रब्बा सिद्धा, ग्रामाधिपभार्यया भणितः सः, याहि सभाजनमध्यात् शब्दायस्व स्वामिनं ॥ २७ ॥ यतो रब्बा शीतला अयोग्या भवति, तेन गत्वा तथैव गाढस्वरं भणितं, स, लज्जितः, गृहागतेन तेन ताडितो भणितश्च, ईदृशे कार्ये शनैः कर्णे कथ्यते ॥ २८ ॥ अन्यदा गृहं प्रदीप्तं, ततो गत्वा कर्णे शनैः कथयति यावत् तावत् गृहं सर्वं प्रज्वलितं, ताडितो भणितश्च ॥ २९ ॥

आवुं ज्यारे होय त्यारे एम कहेवुं के, जलदी छुटकारो थाओ? एटलामां कोइक लोको मित्रोने एकठा करवानुं करे छे; त्यां जइ कह्युं के, जलदी छुटापणुं थाओ? त्यां पण तेने मार पड्यो, अने छुट्यो ॥ २६ ॥ एवी रीते अनुक्रमे एक गामना स्वामिना पुत्रनो आश्रय करीने तेनी सेवा करवा लाग्यो; एक वखत दुकाळमां तेने घेर राब तैयार करी हती, तेथी गामना स्वामिनी स्त्रीए तेने कह्युं के, तुं जा! अने सभाना लोको मांहेथी तारा शेठने बोलावी लाव? ॥ २७ ॥ केमके राब ठंडी थवा अयोग्य थइ जाय छे; त्यारे तेणे त्यां जइने मोटा अवाजथी ते मुजब कह्युं ते सांभळी शेठने लाज आवी, तथा घेर आवीने तेने मार्यो, अने कह्युं के, आवां काममां धीरेथी कानमां कहेवुं ॥ २८ ॥ एक वखते घरमां आग लागी, तेथी जइने धीरेथी तेटलामां कानमां कहे छे, तेटलामां तो आखुं घर बळी गयुं; ते वखते पण तेने मार पड्यो, अने शिखाव्युं के ॥ २९ ॥

एवंविधे आत्मनैव नीरमादौ कृत्वा गोजलौकाद्यपि क्षिप्यते, यथाऽग्निर्विध्यायति ॥ ३० ॥ अन्यदा वेणीं धूपयतस्तस्य शिरसि गोजलौकं क्षिप्तमित्यादि ॥ ३१ ॥ यथैष कुलपुत्रो यथाश्रुतमेवाऽवधारयत् वचनं, न तु तदभिप्रायविषयविशेषाद्यवबुद्धवान् ॥ ३२ ॥ एवं श्रुतमात्रग्राहिणो वचनविषयतात्पर्याद्यनभिज्ञा जीवा जलौकःसदृशा इति, यथा च सा जलौकाः शूलप्रयोगादिना पीतं रुधिरं निश्चोत्यमाना परिणामे दुःखिनी भवति ॥ ३३ ॥ तथा तेऽपि इहापि दुःखिनः स्युः पदे पदे दृष्टांतीकृतकुलपुत्रकवदेव परत्रापि चेति ॥ ३४ ॥

ज्यारे आवुं थाय त्यारे पोतेज पाणीथी मांडीने गायना स्थाण सुधां पण उपर नाखवुं, के जेथी आग बुझी जाय ॥ ३० ॥ एक वखते शेठ पोते पोतानो चोटलो धूपता हता, ते वखते तेमना मस्तकपर तेणे गायनुं स्थाण फेंक्युं; इत्यादि ॥ ३१ ॥ एवी रीते जेम ते कुलपुत्रे जेवुं सांभळ्युं हतुं, तेवुंज वचन धारी राख्युं हतुं, परंतु तेना अभिप्रायना विषय संबंधि भेदने ते जाणी शक्यो नहीं ॥ ३२ ॥ एवी रीते फक्त सांभळेलुंज ग्रहण करनारा, तथा वचनोना विषयना भावार्थ आदिकने नहीं जाणनारा जीवो जळो सरखा जाणवा; वळी जेम ते जळो शूळ खेंचवा आदिकना प्रयोगवडे करीने पीधेलुं रुधिर नीचोवाती थकी परिणामे दुःखी थाय छे ॥ ३३ ॥ तेम ते जीवो पण उपर मुजब दृष्टांतरूपे कहेला कुलपुत्रनी पेठे आ लोक अने परलोकमां पण पगले पगले दुःखी थाय छे ॥ ३४ ॥

बंध्येति यथा वंध्याया गोर्दुग्धार्थिना बहुविधसरसघृतादिकचारिधान्यकार्पासिकादि बह्वपि दीयमानं निष्फलं दुग्धाद्यकारित्वात् ॥ ३५ ॥ तथा केषांचिज्जीवानां बहुविधा अपि सुगुरूपदेशा निष्फलीजवंति ब्रह्मदत्तचक्रयादीनामिव. तदुक्तं—॥ ३६ ॥ उवएससहस्सेहि वि । बोहिज्जंतो न बुज्जहाई कोई ॥ जह बंजदत्तराया । उदायनिव मारओ चेव ॥३७॥ इति ॥ तथा अवंध्याया धेनोः पुनर्यथा यत् किंचित् तृणाद्यपि दत्तं दुग्धादितया परिणमति, एवं केषांचित् स्वल्पमपि गुरूपदिष्टं महाफलाय कल्पते ॥ ३८ ॥ उपशमविवेकसंवरेति त्रिपद्यपि चिलातीपुत्रस्येव, बहुपिंछिआ एगपिंछिओ दट्टु मिच्छई. इति वचनमिंदनागस्येव. यावज्जीवमनाकुट्टिरस्माकमिति वचनं धर्मरुचेरिव चेति ॥ ३९ ॥

वंध्या एटले जेम वांजणी गायने दूधनो अर्थी मनुष्य घणा प्रकारना सरस घी आदिक चारो धान्य तथा कपास आदिक घणुं आपे छे, तोपण दूध नहीं करवाथी ते जेम निष्फळ जाय छे ॥ ३५ ॥ तेम केटलाक जीवोने घणा प्रकारना सुगुरुना उपदेशो पण ब्रह्मदत्त चक्री आदिकोनी पेठे निष्फळ थाय छे; ते माटे कह्युं छे के ॥ ३६ ॥ ब्रह्मदत्त राजा, तथा उदायीने मारनार मनुष्यनी, जेम हजारोगमे उपदेशोथी बोध दइये, तोपण केटलाकोने उपदेश लागतो नथी ॥३७॥ इति वळी अवंध्य गायने जेम जे कंइ घास आदिक देवामां आवे छे, अने ते दूधरूपे परिणमे छे, तेम केटलाक मनुष्योने अल्प एवो पण गुरुनो उपदेश महान फळदायक थाय छे ॥ ३८ ॥ जेम 'उपशम, विवेक अने संवर' ए त्रण पदो चिलाती पुत्रने, तथा 'हे बहु पिंछवाळा! एक पिंछवाळो तने जोवाने इच्छे छे' एवुं वचन जेम इंद्रनाग प्रत्ये, तथा छेक जीवीत पर्यंत अनाकुट्टिपणुं अमारे एवुं वचन धर्मरुचि प्रत्ये ॥ ३९ ॥

निजभूतानिनिदर्शनतो गुणा—ऽगुणजमंतरमित्युपदेशगं ॥ अभिनिबुध्य यतेत सुधी-
र्गुणा—द्यभिसमीह्य विमोहजयश्रिये ॥ ४० ॥

॥ इति तपाश्रीमुनिसुंदरसुरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे नवमस्तरंगः ॥

एवी रीते उपदेशनी अंदर रहेला गुण तथा अवगुणथी उत्पन्न थता अंतरने जणावला आदिकना उदा-
हरणथी जाणीने, उत्तम बुद्धिवान माणसे गुणो आदिकने जोइने मोहनो जय करवानी लक्ष्मी माटे यत्न करवो ॥ ४० ॥

॥ एवी रीते तपगच्छवाला श्रीमुनिसुंदरसूरिजीए रचेला श्रीउपदेशरत्नाकर नामे ग्रंथमां नवमो तरंग समाप्त थयो ॥

इति नवमस्कंधः समाप्तः

अथ दशमस्तरंगः

उभयलोकसुखावहस्य सम्यग्धर्मस्योपदेशः सर्वत्र गुणावह एवेति तदारंभे योग्याऽयोग्यस्वरूपनिरूपणं व्यर्थमित्याशंकानिरासाय आह ॥ १ ॥

बन्ने लोकमां सुखाकारी एवो सम्यग् धर्मनो उपदेश सर्व जगोए गुणकारीज छे, एटलामाटे तेना आरंभमां योग्य अयोग्यना स्वरूपनुं निरूपण करवुं व्यर्थ छे, एवी रीतनी आशंका दूर करवा माटे हवे कहे छे ॥ १ ॥

मूलम्—जिन्नाजिन्नजराइसु । होइ जहा इक्कमेव गोखीरं ॥ गुणदोसप्पवत्तिकरं सुहगुरुवयणं तह जीएसु ॥ १ ॥ जीर्णाऽजीर्णज्वरयोः, आदिशब्दात् पित्तश्लेष्मादिषु च, यथा एकमेव गोक्षीरं क्रमात् गुणदोषोत्पत्तिकरं भवति, जीर्णज्वरे पित्तादौ च गुणकरं, अजीर्णज्वरे श्लेष्मादौ च दोषकरं ॥ ३ ॥ तथा गोदुग्धवत् माधुर्यादिगुणमुभयलोकहितावहं, सम्यग् धर्मतत्त्वैकप्ररूपकं सुगुरुवचनं जीवेषु योग्याऽयोग्येषु क्रमात् गुणदोषोत्पत्तिकरं स्यात् ॥ ४ ॥ जीर्णमिथ्यात्वमोहनीयादिकर्मतया योग्येषु गुणकरं, श्रीवर्धमानजिनवचनं श्रीइंद्रभूत्यादिष्विव, श्रीथावच्चापुत्रसूरिवचनं सुदर्शनश्रेष्ठिशुकपरिव्राजकादिष्विव च ॥ ५ ॥

मूलनो अर्थः—जीर्ण तथा अजीर्ण ताव आदिकमां, एकज एवुं पण गायनुं दूध, जेम गुण अने दोषनी उत्पत्ति करनारुं छे, तेम जीवो प्रत्ये शुभ गुरुनुं वचन पण गुणदोष करनारुं छे ॥ १ ॥ जीर्ण तथा अजीर्ण ज्वरमां, आदि शब्दथी पित्त तथा श्लेष्म आदिकमां पण, जेम एकज एवुं गायनुं दूध, अनुक्रमे गुणदोषनी उत्पत्ति करनारुं थाय छे; अर्थात् जीर्णज्वर तथा पित्त आदिकमां जेम ते गुणकारी छे, तथा नवा तावमां अने श्लेष्म आदिकमां दोषकारी छे ॥ ३ ॥ तेम गायना दूधनी पेठे मधुरता आदिक गुणोवाळुं, बन्ने लोकमां हितकारी, तथा एक सम्यग् धर्मने प्ररूपनारुं एवुं सुगुरुनुं वचन, योग्य तथा अयोग्य जीवो प्रत्ये अनुक्रमे गुणदोषनी उत्पत्ति करनारुं थाय छे ॥ ४ ॥ अर्थात् जीर्ण थयेला एवा मिथ्यात्व मोहनीयादिक कर्मपणाये करीने योग्यो प्रत्ये गुणकारी थाय छे; (कोनी पेठे? तो के) श्री वर्धमान प्रभुनुं वचन जेम श्री इंद्रभूति आदिको प्रत्ये, तथा श्री थावच्चापुत्र आचार्यनुं वचन जेम सुदर्शन शेठ तथा शुकपरिव्राजक प्रत्ये ॥ ५ ॥

बहुलतत्कर्मतया योग्यतामनाप्तेषु च दोषोत्पत्तिकरं, यथा श्रीपार्श्वजिनस्य हितोपदेशः पंचाग्निसाधनादिकष्टानुष्ठानपरे कमठतापसे, ततो योग्याऽयोग्यपरीक्षा फलवतीति ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीतपागच्छे श्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे दशमस्तरंगः समाप्तः॥

वळी भारे कर्मीपणाथी योग्यपणे नहीं थाय, थयेला मनुष्यो प्रत्ये ते दोषनी उत्पत्ति करनारुं थाय छे; जेम श्रीपार्श्वप्रभुनो हितोपदेश, पंचाग्नि साधन आदिक कष्ट क्रियामां तत्पर थयेला कमठतापस प्रत्ये थयो; माटे योग्य अयोग्यनी परीक्षा फळवाळी छे ॥ ६ ॥

॥ एवी रीते श्री तपगच्छमां श्री मुनिसुंदरसूरिजीए रचेला श्री उपदेशरत्नाकरमां दशमो तरंग समाप्त थयो ॥

एकादशस्तरंगः

पुनरस्यैवार्थस्य दृढीकरणायाह—मूलम्—एकावि मेहवुट्ठी । मणिमुत्ताविविहधन्नफलहेउ ॥ रयणागराइसु जहा । सुहगुरुवयणं तह जीएसु ॥ १ ॥

वळी तेज अर्थने दृढ करवा माटे कहे छे.—मूळनो अर्थः—जेम एकज वारी मेघनी वृष्टि रत्नाकर आदिकोने विषे, मणि, मोती, विविध प्रकारनां धान्य तथा फळोना हेतुरूप थाय छे, तेम जीवो प्रत्ये शुभ गुरुनुं वचन जाणवुं ॥ १ ॥

यथा एकापि मेघवृष्टिः रत्नाकरे रोहणाचलादौ, आदिशब्दान्मुक्ताफलाकरे ताम्रपर्ण्यादौ विविधधान्यफलाकरादिषु च क्षेत्रविशेषेण, विविधानां उत्तममध्यमाधमादीनां मणीनां मुक्ताफलानां धान्यानां फलानामुपलक्षणादन्येषामपि विविधौषध्यादीनां च निष्पत्तिहेतुः ॥ २ ॥ तथा सद्गुरुवचनं जीवेषु उत्तमोत्तमादिषु स्वस्वयोग्यताद्यनुसारेण मणिमुक्ताफलादिसमधर्मादिफलसिद्धिहेतुर्भवति ॥ ३ ॥ तथा चोक्तं—आम्रे निम्बे सुतीर्थे कचवरनिचये शुक्तिमध्येऽहिवक्त्रे। औषध्यादौ विषद्रौ गुरुसरसि गिरौ पांडुकृष्णधरण्योः ॥ इक्षुक्षेत्रे कषायद्रुमवनगहने मेघमुक्तं यथाम्बु—स्तद्वत्पात्रेषु दत्तं गुरुवदनभवं वाक्यमायाति पाकं ॥ ४ ॥

जेम एक पण मेघनी वृष्टि, रत्नाकरमां, एटले रोहणाचल आदिकमां, आदि शब्दथी मोतीओनी ज्यां उत्पत्ति थाय छे, तेमां ताम्रपर्णी नदी आदिकमां तथा क्षेत्र विशेषकरीने ज्यां नाना प्रकारना धान्य तथा फळ आदिको उत्पन्न थाय छे त्यां, नाना प्रकारना उत्तम, मध्यम आदिक मणिओनी मोतीओनी धान्योनी, फळोनी तथा उपलक्षणथी विविधप्रकारनी औषधि आदिक अन्यप्रकारनी वस्तुओनी पण उत्पत्तिना हेतुरूप थाय छे ॥ २ ॥ तेम सद्गुरुनुं वचन पण उत्तमोत्तम आदिक जीवो प्रत्ये पोतपोताना योग्यताने अनुसारे, मणि तथा मोति आदिक सरखा धर्म आदिक फळोनी उत्पत्तिना हेतुरूप थाय छे ॥ ३ ॥ कह्युं छे के—आंबापर, लींबडापर उत्तमतीर्थमां, कचराना ढगमां, छीपमां, सर्पना मुखमां औषधी आदिकमां, झेरी वृक्षपर, मोटा तळावमां, पर्वतपर सफेद तथा श्याम भूमीपर, सेलडीना वाडमां तथा कषायलां वृक्षोवाळां गहन वनमां, वरसादनुं पाणी जेम विविध प्रकारनो पाक उपजावे छे, तेम गुरुना मुखथी निकळेलुं वाक्य पात्रो प्रत्ये देवाथी फळने प्राप्त थाय छे ॥ ४ ॥

ततो योग्यस्वरूपं सम्यगवधार्य योग्येभ्यएवोपदेश्यमिति॥ ९ ॥

॥ इति एकादशस्तरंगः समाप्तः ॥

माटे योग्य मनुष्यनुं स्वरूप सारी रीते जाणीने योग्यो प्रत्येज उपदेश देवो ॥ ९ ॥

॥ एवी रीते अग्यारमो तरंग समाप्त थयो ॥

एकादशस्तरंगः समाप्तः

अथ द्वादशमस्तरंगः

इदानीं प्रकारांतरेण योग्याऽयोग्यस्वरूपप्रकटनाय आगमगाथामेवाह—मूलम् ॥—

सेल घण कुडगचालणि । परिपूणग हंस महिस मेसे अ ॥ मसग जलुग बिराली जाहग गोभेरि आभीरी ॥ १ ॥

हवे बीजा प्रकारथी योग्य तथा अयोग्यनुं स्वरूप प्रगट करवा माटे आगमनी गाथाज कहे छे, मूळनो अर्थः—मगशेल पाषाण अने वरसाद, घडो, चाळणी, सुघरीनो माळो, हंस, पाडो, घेटो, मशक, जळो, बीलाडी, ढेरो, गाय, भेरी तथा आभीरी, (एटलां उदाहरणो जाणवां) ॥ १ ॥

एतानि शिष्ययोग्यायोग्यत्वप्रतिपादकान्युदाहरणानीति ॥ २ ॥ सेलत्ति. शैलः मुद्गप्रमाणः पाषाणविशेषः, घनो मेघः, शैलश्च घनश्च शैलघनः, तदुदाहरणं प्रथमं ॥ ३ ॥ कुटो घटः, चालणी प्रतीता परिपूणकः सुघरीचिटिकागृहं, हंसमहिषमेषमशककजलौकाविडालादयः प्रतीताः ॥ ४ ॥ जाहकः सेहुलकः, गौः भेरी आभीरी च प्रतीताः ॥ ५ ॥ उदाहरणं च द्विधा भवति, चरितं कल्पितं च, उक्तं च—चरियं व कप्पियं वा आहरणं दुविहमेव पन्नत्तं, अत्थस्स साहणट्ठा इंधणमिव ओयणट्ठाए ॥ ६ ॥

एवी रीते उपर वर्णवेलां उदाहरणो शिष्यना योग्य अयोग्यपणाने प्रतिपादन करनारां छे ॥ २ ॥ शैल एटले मग जेवडो पाषाणविशेष, तथा घन एटले मेघ, अर्थात् मगशेलीओ पाषाण अने मेघ, ए पेहेलुं उदाहरण जाणवुं ॥ ३ ॥ कुट एटले घडो, चालणी प्रसिद्ध छे, परिपूणक एटले सुघरी नामनी चकलीओनो माळो, हंस, पाडो, घेटो, मशक, जळो, तथा बिलाडी, ए प्रसिद्ध छे ॥ ४ ॥ जाहक एटले शेरो, गाय तथा आभीरी एटले भरवाडण ए प्रसिद्ध छे ॥ ५ ॥ हवे उदाहरण बे प्रकारनुं होय छे, एक चरित एटले साचुं बनेलुं तथा बीजुं कल्पित करेलुं छे के—जेम चावल माटे इंधन, तेम अर्थने साधवा माटे चरितरूप अने कल्पित एम बे प्रकारनुं उदाहरण कहेलुं छे ॥ ६ ॥

तत्थ इमं कप्पियं, तं जहा: मुग्गसेलो पुक्खलसंवट्टतो—य महामेहो जंबुद्दीवप-
माणो तत्थ य नारयत्थाणीतो कलहं आजोएइ मुग्गसेलं भणति ॥ ७ ॥ तु-
ज्झ नामग्गहणे कए पुक्खलसंवट्टतो भणइ जहा णं एगाए धाराए विराएमित्ति,
नह्वीति भावार्थः ॥ ८ ॥ सेलो उप्पासितो भणइ. जइमे तिलतुसतिभागंपि उल्लेइ
तो नामनवहामि ॥ ९ ॥ पत्तामेहस्स मूले भणइ मुग्गसेलवयणाइं. ततो सो कुवितो
सव्वायरेण जुगप्पमाणाहिं धाराहिं वरसिउमारद्धो ॥ १० ॥ सत्तरत्तेवुट्ठो चिंतेइ इ-
याणिं गतो सो वरागोत्ति भितो, इयरो मिसमिसंतो उज्जलतरो जातो दिप्पिउमारद्धो
भणइ जोहारोत्ति. मेहो लज्जितो गतो ॥ ११ ॥

तेमां आ कल्पित दृष्टांत छे ते कहे छे. मगशेलीओ पाषाण मग जेवडो हतो, तथा पुष्करावर्त्त महामेघ
जंबूद्वीप जेवडो हतो; तेने नारदे अहीं आवीने परस्पर कलह कराव्यो; पछे ते मगशेलीआने कहे छे के ॥ ७ ॥
तारुं नाम ग्रहण करवाथी पुष्करावर्त्त मेघ कहे छे के, हुं तेने मारी एक धाराथी गळावी नाखुं, अर्थात् नष्ट करुं
॥ ८ ॥ त्यारे मगशेलीओ गर्व लावीने कहे छे के, जो मारा तिलतुष मात्र भागने पण ते गळावे, तो हुं मारुं नाम
पण धारण करुं नहीं ॥ ९ ॥ पछी मेघ पासे जइने नारदे मगशेलीयानां वचनो कह्यां; तेथी ते कोपायमान थइने
धोसरा जेवडी धाराओथी सर्व प्रकारना आदरे करीने वरसवा लाग्यो ॥ १० ॥ सात रात सुधी वरस्या बाद ते
विचारवा लाग्यो के, हवे ते बराक एवो मगशेलीओ नष्ट थयो हशे, एम विचारी ते बंध पड्यो; एटलामां तो ते
मगशेलीयो चकचकाट करतो वधारे उज्ज्वल थयो, तथा दीपायमान थइने मेघने जुहार करवा लाग्यो; त्यारे मेघ
लज्जायमान थइ चालतो थयो ॥ ११ ॥

एवं कोइ सीसो मुग्गसेलसमाणो एगंपि पयं नावगाहइ, ततो अन्नो आयरिओ गज्जंतो आगतो ॥ १२ ॥ एहणं गाहेमि, पठति च गर्वाध्मातमानसः—आचार्यस्यैव तज्जाड्यं यच्छिष्यो नावबुध्यते ॥ १३ ॥ गावो गोपालकेनैव कुतीर्थेनावतारिताः, ततो पढावेउमारद्धो, न सक्कितो, लज्जितो ॥ १४ ॥ एरिस्स न दायव्वं, कस्मादिति चेत् उच्यते: इह यस्मान्न वंध्या गौः शिरःस्तनजघनपृष्ठपुच्छोदरादौ सस्नेहं स्पृष्टा सती दुग्धप्रदायिनी भवति ॥ १५ ॥ तथा स्वाभाव्यादेव मेघोऽपि सम्यक्पाठ्यमानोऽपि पदमप्येकं नावगाहति, ततो न तस्य नावदुपकारः ॥ १६ ॥

एवी रीते कोइक शिष्य के जे मगशेलीआ सरखो होय, ते एक पदनो पण अभ्यास करी शकतो नथी; त्यारे बीजो आचार्य गाजतो थको आवे छे ॥ १२ ॥ अने कहे छे के, हुं ते शिष्यने भणावी आपुं; तेमज वळी मनमां गर्व लावीने ते आचार्य कहे छे के, शिष्य जे भणी शकतो नथी, तेनुं कारण आचार्यनीज मूर्खाइ छे ॥ १३ ॥ गायोने गोवाळेज अवळे मार्गे चरावी छे, इत्यादिक बबडीने तेने भणाववा लागे छे; परंतु भणावी नहीं शकवाथी ते लज्जातुर थाय छे ॥ १४ ॥ माटे एवी रीतना शिष्यने धर्मोपदेशादिक नहीं देवुं; शामाटे ? एम जो कोइ शंका करे, तो ते माटे कहीये छीये के, वांझणी गायने मस्तक, स्तन, साथळ, पीठ, पुच्छ तथा उदर आदिक प्रत्ये स्नेहसहित स्पर्श करवाथी पण ते दूध देइ शकती नथी ॥ १५ ॥ तेम आ शिष्य पण, सारी रीते भणाव्या छतां पण स्वभावथीज एक पण पदने जाणी शकतो नथी; अने तेथी ते प्रत्ये उपकार थइ शकतो नथी ॥ १६ ॥

आस्तां तस्योपकाराऽभावः, प्रत्युताचार्ये सूत्रेवाऽपकीर्त्तिरुपजायते, यथा न सम्यक् कौशल्यमाचार्यस्यव्याख्यायां, इदं वाऽध्ययनं न समीचीनं, कथमयमन्यथा नावबुध्यते, इति ॥ १७ ॥ अपि च तथाविधकुशिष्यपाठने तस्याऽवधानाऽभावात् उत्तरोत्तर-सूत्राऽर्थाऽनवगाहनतः सूरेः सकलावपि शास्त्रांतरगतौ सूत्रार्थौ भ्रंशमाविशतोऽन्ये-षामपि च पटुश्रोतृणामुत्तरोत्तरसूत्रार्थावगाहनहानिप्रसंगः ॥ १८ ॥ उक्तंच—

आयरिए सुत्तंमिय । परिवाओ सुत्तअत्थपलिमंथो ॥ अन्नेसिं पिय हाणी पुट्ठाविन दुद्धया वंझा ॥ १९ ॥

वळी तेने उपकार न थाय, ए वात तो दूर रही, परंतु उलटी आचार्यनी तथा सूत्रनी पण अपकीर्त्ति थाय छे; जेमके, व्याख्यान आपवामां आचार्यनी हुशीयारी नथी, अथवा आ शास्त्र सारुं (सुगम) नथी, जो तेम न होय तो आने प्रतिबोध केम न लागे ? इति ॥ १७ ॥ वळी तेवा प्रकारना कुशिष्यने जणाववाथी अने तेने ते अभ्यास स्मरणमां नहीं रहेवाथी आचार्यने पण उत्तरोत्तर सूत्रार्थोनुं अवगाहन न थवाथी, शास्त्रांतरमां रहेला सघळां सूत्रार्थो नाशने प्राप्त थाय छे; अने तेथी बुद्धिवान् एवा बीजा श्रोताओने पण उत्तरोत्तर सूत्रार्थने जाणवानी हानिनो प्रसंग थाय छे ॥ १८ ॥ कह्युं छे के—(मुगशेलीया सरखा कुशिष्यने जणाववाथी) आचार्यनो तथा सूत्रनो अपवाद थाय छे; सूत्र अर्थने ओळववापणुं थाय छे; तथा अन्य श्रोताओने पण हानि थाय छे; केमके स्पर्श कर्याथी पण कंइ वांझणी गाय दुझती नथी ॥ १९ ॥

मुद्गशैलप्रतिपक्षभूते योग्यशिष्यविषये दृष्टांतः कृष्णभूमिप्रदेशः, तत्र हि प्रभूतमपि निपतितं जलं तत्रैवांतः परिणमति ॥ २० ॥ न पुनः किंचिदपि ततो बहिरपगच्छति, एवं यो विनेयः सकलसूत्रार्थग्रहणधारणे समर्थः स कृष्णभूमिप्रदेशतुल्यः, स च योग्यस्ततस्तस्मै दातव्यमिदमध्ययनमिति ॥ २१ ॥ उक्तं च वुट्ठे वि दोणमेहे । न कण्हभोमाउ लोट्टए उदयं ॥ गहणधारणासमत्थे । इयदेयमच्छित्तिकारिंमि ॥ २२ ॥ संप्रति कुटदृष्टांतभावना, कुटा घटास्ते द्विविधास्तद्यथा, नवीना जीर्णाश्च, नवीना ये संप्रत्येव पाकतः समानीताः, जीर्णा द्विविधा भाविता अभाविताश्च, भाविता द्विविधाः, प्रशस्तद्रव्यभाविताः अप्रशस्तद्रव्यभाविताश्च ॥ २३ ॥

मगशैलियाथी प्रतिपक्षरूप एवा योग्य शिष्यना विषयमां श्यामभूमीनो प्रदेश दृष्टांतरूपे जाणवो: केमके तेमां पडेलुं घणुं एवुं पण जल, तेमांज परिणामे छे, एटले समाइ जाय छे ॥ २० ॥ परंतु तेमांथी किंचित मात्र पण बहार निकळी जतुं नथी; एवी रीते जे शिष्य सघळा सूत्रार्थने ग्रहण करवामां तथा धारण करवामां समर्थ छे, ते कृष्णभूमीना प्रदेश सरखो छे, अने ते योग्य छे, माटे तेने आ शास्त्र जणाववुं ॥ २१ ॥ कह्युं छे के—द्रोणमेघ वरसते छते पण श्याम भूमिपरथी पाणी वही जतुं नथी; माटे (सूत्रार्थने) ग्रहण करवामां तथा धारण करवामां समर्थ, अने आदिथी अंत सुधी संपूर्ण अभ्यास करनारा शिष्य प्रत्ये शास्त्रोपदेश देवो ॥ २२ ॥ हवे घडाना दृष्टांतनी भावना कहे छे: कुट एटले घडा, अने ते बे प्रकारना छे; नवा अने जुना; नवा एटले पाकमांथी तुरत आणेला; जुना घडा बे प्रकारना छे; वासेला अने नहीं वासेला; वासेला बे प्रकारना; उत्तम पदार्थथी वासेला अने खराब पदार्थथी वासेला ॥ २३ ॥

तत्र ये कर्पूरागुरुचंदनादिभिः प्रशस्तद्रव्यैर्भावितास्ते प्रशस्तद्रव्यभाविताः, ये पुनः पलांडुलशुनसुरातैलादिभिर्भाविताऽस्तेऽप्रशस्तद्रव्यभाविताः ॥ २४ ॥ प्रशस्तद्रव्यवासिता अपि द्विधा वाम्या अवाम्याश्च, अभाविता नाम ये केनापि द्रव्येण न वासिताः ॥ २५ ॥ एवं शिष्या अपि प्रथमतो द्विधाः, नवीना जीर्णाश्च, तत्र ये बाल्यभावे वर्त्तमाना अज्ञानिनः, संप्रत्येवाऽवबोधयितुमारब्धास्ते नवीनाः ॥ २६ ॥ जीर्णा द्विविधा भाविता अभाविताश्च, तत्राऽभाविता ये केनापि दर्शनेन न वासिताः, भाविता द्विविधाः कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिभिः संविग्नैश्च ॥ २७ ॥

तेमां कपुर, अगर तथा चंदन आदिकथी जे वासेला छे, ते शुभ पदार्थोथी वासेला कहेवाय, अने जे ढुंगळी (प्याज) लसण, मदिरा तथा तेल आदिकोथी वासेला छे, ते अशुभ पदार्थोथी वासेला कहेवाय ॥ २४ ॥ शुभ पदार्थोथी वासेला घडाओ पण बे प्रकारना छे, एक खाली करी शकाय तेवा, अने बीजा खाली न करी शकाय तेवा; हवे नहीं वासेला एटले जे कोइ पण पदार्थथी वासित थयेला नथी ते ॥ २५ ॥ एवी रीते शिष्यो पण प्रथम बे प्रकारना होय छे; नवा अने जुना; तेमां जेओ बाल्य अवस्थामां वर्त्तनारा अज्ञानीओ छे, तथा जेओने हमणाज बोध आपवा मांडेलो छे, तेओ नवा शिष्यो कहेवाय छे ॥ २६ ॥ हवे जुना शिष्यो बे प्रकारना छे, वासित थयेला अने नहीं वासित थयेला; तेमां नहीं वासित थयेला एटले जेओ कोइ पण दर्शनथी वासित थयेला नथी; वासित थयेला शिष्यो बे प्रकारना छे, कुशास्त्रने मरूपनारा पासत्था आदिकोथी वासित थयेला, अने बीजा संवेगीओथी वासित थयेला ॥ २७ ॥

कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिभिरपि भाविता द्विधाः, वाम्या अवाम्याश्च, संविग्नैरपि भाविता द्विधाः, वाम्या अवाम्याश्च ॥ २८ ॥ तत्र ये नवीना ये जीर्णा अभाविता ये च कुप्रावचनिकादिभाविता अपि वाम्याः, ये च संविग्नभाविता अवाम्यास्ते सर्वेपि योग्याः, शेषा अयोग्याः ॥ २९ ॥ अथवाऽन्यथाकुटदृष्टांतभावना. इह चत्वारः कुटास्तद्यथा, छिद्रकुटः, कंठहीनकुटः, खंडकुटः, संपूर्णकुटश्च ॥ ३० ॥ यस्याधोबुध्ने छिद्रं स छिद्रकुटः, यस्य पुनरोष्टपरिमंडलाऽभावः स कंठहीनकुटः, यस्य पुनरेकपार्श्वे खंडेन हीनता स खंडकुटः, एवं शिष्या अपि चत्वारो वेदितव्याः ॥ ३१ ॥

कुशास्त्रने प्ररूपनारा पासत्था आदिकोवडे करीने वासित थयेला शिष्यो पण बे प्रकारना छे; वामी शकाय तेवा, अने न वामी शकाय तेवा; संवेगीओथी वासित थयेलाओ पण बे प्रकारना छे; वामी शकाय तेवा, अने न वामी शकाय तेवा ॥ २८ ॥ तेओमां जेओ नवा, जेओ जुना अने नहीं वासेला, जेओ कुप्रावचनिकादिकोथी वासित छतां वामी शकाय तेवा, जेओ संवेगीओथी वासित अने न वामी शकाय तेवा, एटला सर्वे योग्य शिष्यो छे, अने बाकीना अयोग्य शिष्यो छे ॥ २९ ॥ अथवा ते घडाना दृष्टांतनी भावना बीजी रीते पण (नीचे मुजब) जाणवी; अहीं चार प्रकारना घडाओ छे, अने ते नीचे मुजब छे, छिद्रवाळो घडो, कांठा विनानो घडो, टुकडा थयेलो घडो, अने संपूर्ण घडो ॥ ३० ॥ जे घडामां नीचेना भागमां छिद्र होय, ते छिद्रवाळो घडो कहेवाय; जे घडाना गळांपर कांठो न होय, ते कांठाविनानो घडो कहेवाय; तेमज जे घडामां एक बाजुनो टुकडो न होय, ते भांगेलो घडो कहेवाय; एवी रीते शिष्यो पण चार प्रकारना जाणवा ॥ ३१ ॥

तत्र यो व्याख्यानमंडल्यामुपविष्टः सर्वमर्थमवबुध्यते, व्याख्यानादुत्थितश्च न किमपि स्मरति स छिद्रकुटसमानः ॥ ३१ ॥ यथाहि छिद्रकुटो यावत्तदवस्थ एव गाढमवनितलसंलग्नोऽवतिष्ठते तावन्न किमपि जलं ततः श्रवति, स्तोकं वा किंचिदिति ॥ ३२ ॥ एवमेषोऽपि यावदाचार्यः पूर्वापरानुसंधानेन सूत्रार्थमुपदिशति तदवबुध्यते, उत्थितश्चेद्व्याख्यानमंडल्याः, तर्हि स्वयं पूर्वापरानुसंधानविकलत्वान्न किमप्यनुस्मरति ॥ ३४ ॥ यस्तु व्याख्यानमंडल्यामप्युपविष्टोऽर्धमात्रं त्रिभागचतुर्थकं वा हीनं वा सूत्रार्थमवधारयति, यथावधारितं च स्मरति स खंडकुटसमः ॥ ३५ ॥

तेमां जे शिष्य व्याख्यान मंडळीमां बेठो थको सर्व अर्थने जाणे छे, तथा व्याख्यानथी उठ्या बाद जे कंइ पण याद राखी शकतो नथी, ते शिष्य छिद्रवाळा घडा समान छे ॥ ३२ ॥ जेम छिद्रवाळो घडो ज्यांसुधि एवीज रीते गाढपणे पृथ्वीपर लागेलोज रहे छे, त्यांसुधि तेमांथी जरा पण पाणी निकळतुं नथी, अने निकळे छे, तोपण थोडुं अथवा किंचित निकळे छे ॥ ३३ ॥ एवीरीते ज्यांसुधि आ आचार्य पण पूर्वापरना अनुसंधानवडे करीने सूत्रार्थने उपदेशे छे, त्यांसुधि तेटलुं ते जाणे छे, अने व्याख्यान मंडळीमांथी जो उठी जाय तो पछी पोते पूर्वापरना अनुसंधानना विकलपणथी कंइ पण याद राखी शकतो नथी ॥ ३४ ॥ वळी जे शिष्य व्याख्यान मंडळीमां बेसीने पण अरधो अथवा चोथो भाग अथवा तेथी पण ओछो सूत्रार्थ जाणे छे, तथा जाण्या मुजब जे धारी राखे छे, ते भांगेला घडा सरखो छे ॥ ३५ ॥

यस्तु किंचिदूनं सूत्रार्थमवधारयति, पश्चादपि च तथैव स्मरति स कंठहीनकुटसमानः ॥ ३६ ॥ यस्तु सकलमपि सूत्रार्थमाचार्योक्तं यथावदवधारयति, पश्चादपि च तथैव स्मृतिपथमवतारयति स संपूर्णकुटसमानः ॥ ३७ ॥ अत्र छिद्रकुटसमान एकांतेनाऽयोग्यः, शेषा यथोत्तरं प्रधानाः प्रधानतराः ॥ ३८ ॥ संप्रति चालनी दृष्टांतभावना, चालनी लोकप्रसिद्धा यया कणिक्कादि चाल्यते, तत्र यथा चालन्यामुदकं प्रक्षिप्यमाणं तत्क्षणादेव गच्छति, न पुनः कियंतमपि कालमवतिष्टते ॥ ३९ ॥ तथा यस्य सूत्रार्थः प्रदीयमानो यदैव कर्णे प्रविशति तदैव विस्मृतिपथमुपैति, स चालनीसमानः ॥ ४० ॥

परंतु जे कंइंक ओछा एवा सूत्रार्थने धारी राखे छे, अने पाछळथी पण तेज मुजब जे याद राखे छे, ते कांठा विनाना घडा सरखो छे, ॥ ३६ ॥ वळी जे शिष्य आचार्ये कहेला सघळा सूत्रार्थने यथार्थ रीते धारी राखे छे, तथा पाछळथी पण तेवीज रीते याद राखे छे, ते संपूर्ण घडा सरखो छे ॥ ३७ ॥ अहीं छिद्रवाळा घडा सरखो एकांते अयोग्य छे, अने बाकीना उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तथा वधारे श्रेष्ठ छे ॥ ३८ ॥ हवे चाळणीना दृष्टांतनी भावना कहे छे; चाळणी ए दुनियामां प्रसिद्ध छे, के जेवडे करीने कणकी (आटो) आदिक चाळवामां आवे छे; ते चाळणीमां रेडातुं पाणी जेम तुरतज निकळी जाय छे, परंतु थोडो वखत पण टकी शकतुं नथी ॥ ३९ ॥ तेम जेने उपदेशातो सूत्रार्थ ज्यारे कर्णमां प्रवेश करे छे, त्यारेज भूली जवामां आवे छे, ते शिष्य चाळणी सरखो छे ॥ ४० ॥

तथा च मुद्गशैलछिद्रकुटचालनीसमानशिष्यभेदप्रदर्शनार्थमुक्तं भाष्यकृता—सेलय-छिद्दुचालणिमिहो कहा सोउ उट्ठियाणं तु ॥ छिद्दुआह तत्थ विट्ठो ॥ ४१ ॥ सुमरिंसु-सरामि नेयाणिं ॥ एगेण विसइ बीएणनीइ कण्णेण चालणी आह ॥ धन्नोत्थ आहसेलो, जं पविसइ नीइ वा तुज्झं ॥ ४२ ॥ तत एषोऽपि चालणीसमानो न योग्यः, चालनी-प्रतिपक्षभूतं च वंशदलनिर्मापिततापसभाजनं, ततो हि बिंदुमात्रमपि जलं न स्रवति ॥ ४३ ॥ उक्तंच—तावसखउरकढिणयं, चालणिपडिवक्खु न सवइ दवंपि । तत्तस्समानो योग्यः ॥ ४४ ॥

वळी मगशेळीयो पाषाण, छिद्रवाळो घडो तथा चाळणी समान शिष्योना भेदो देखाडवा माटे भाष्यकारे पण कह्युं छे के — मगशेळीयो पाषाण, छिद्रवाळो घडो तथा चाळणी कथा सांभळवाने उठ्या; छिद्रयुक्त घडाए कह्युं के ॥ ४१ ॥ हुं त्यां बेसीने कथा सारी रीते स्मरण करुं छुं, अने बीजा एवा तमो तेम करी शकता नथी; त्यारे चाळणीए कह्युं के, हुं तो एवी छुं के, मारे तो एक बाजुथी पेसे के, तुरत बीजी बाजुएथी निकळी जाय छे. माटे तुं धन्य छे; त्यारे मगशेळीओ बोल्यो के, हे छिद्र घडा! तारा मध्ये पण जेवुं प्रवेश थाय छे, तेवुंज निकळे छे ॥ ४२ ॥ माटे ते छिद्र घट पण चाळणी सरखो छे, अने तेथी योग्य नथी; चाळणीनुं प्रतिपक्षरूप वांसदळनुं बनावेलुं तापसनुं भाजन जाणवुं; केमके तेमांथी बिंदुमात्र पण जळ निकळी शकतुं नथी ॥ ४३ ॥ कह्युं छे के—चाळणीना प्रतिपक्षी दृष्टांतरूप तापसनुं खप्पर छे, के जेमांथी एक बिंदु जेटलुं जळ पण झरतुं नथी; माटे ते सरखो शिष्य योग्य छे ॥ ४४ ॥

संप्रति परिपूणकदृष्टांतो भाव्यते, परिपूणको नाम घृतक्षीरगालनं, सुगृहालिधचटकाकुलायो वा, तेन ह्याभीर्यो घृतं गालयंति ॥ ४५ ॥ ततो यथा स परिपूणकः कचवरं धारयति, घृतमुज्झति, तथा शिष्योऽपि यो व्याख्यावाचनादौ दोषानिगृह्णाति, गुणांस्तु मुंचति, स परिपूणकसमानः, स चाऽयोग्यः ॥ ४६ ॥ आह चूर्णिकृत्—वक्खाणाइसु दोसे । हिययंमि ठवेइ मुयइ गुणजालं ॥ सो सीसो उअजोग्गो । भणियो परिपूणगसमाणो ॥ ४७ ॥ आह, सर्वज्ञमतेऽपि दोषाः संभवंतीत्यश्रद्धेयमेतत्, सत्यमुक्तमत्र भाष्यकृता ॥ ४८ ॥

हवे परिपूणकनुं दृष्टांत भावे छे; परिपूणक एटले घी तथा दूध गाळवानी गळणी, अथवा सुघरी नामनी चीडीनो माळो जाणवो; ते गळणीथी भरवाडणो घी गाळे छे ॥ ४५ ॥ माटे जेम ते गळणी कचरो धारी राखे छे, अने घीने छोडी दे छे, तेम शिष्य पण जे, व्याख्या तथा वाचना आदिकमां दोषोने ग्रहण करे छे, तथा गुणोने छोडी दे छे, ते शिष्य गळणी अथवा सुघरीना माळा सरखो छे; अने ते अयोग्य छे ॥ ४६ ॥ चूर्णिकार पण कहे छे के,–जे शिष्य व्याख्यान आदिकमां दोषोने तो हृदयमां धारण करे छे, अने गुणोना समूहने तजे छे, ते गळणी सरखा शिष्यने पण अयोग्य कह्यो छे ॥ ४७ ॥ अहीं कोइ शंका करे छे के, सर्वज्ञना मतमां पण दोषो संभवे छे, माटे ते बाबत श्रद्धा करवा लायक नथी; त्यारे तेने उत्तर आपे छे के; ते माटे अहीं भाष्यकारे कह्युं छे के ॥ ४८ ॥

सव्वन्नुप्पामन्ना । दोसा हु न संति जिणमए केवि ॥ जं अणुवउत्तकहणं । अपत्तमासज्ज व हवंति ॥ ४९ ॥ संप्रति हंसदृष्टांतभावना: यथा हंसः क्षीरमुदकमिश्रितमपि उदकमपहाय क्षीरमापिबति, तथा शिष्योऽपि यो गुरोरनुपयोगसंभवान् दोषान् अवधूय गुणानेव केवलानादत्ते, स हंससमानः ॥ ५० ॥ स चैकांतेन योग्यः, ननु हंसः क्षीरमुदकमिश्रितमपि कथं विभक्तीकरोति, येन क्षीरमेव केवलमापिबति, नतूदकमिति ॥ ५१ ॥ उच्यते, जिह्वाया अम्लत्वेन कूर्चकीभूय पृथग्भवनात्, उक्तंच—अंबत्तणेण जीहाए । कूचिया होइ खीरमुदगंमि ॥ हंसो मुत्तूण जलं आवियइ पयं तह सुसीसो ॥ ५२ ॥

सर्वज्ञ प्रभुए कहेला एवा जिनमतनी अंदर कांइ पण दोषो नथी; एवी रीतना सर्वज्ञ प्रभुना मतमां जे अनुपयोगपणुं कहेवुं ते कुपात्रने आश्रीने जाणवुं; अर्थात् कुपात्र मनुष्य तेम कहे छे ॥ ४९ ॥ हवे हंसना दृष्टांतनी भावना कहे छे; जेम हंस पासे दूध अने जळ मिश्रित करीने मूक्यां होय, परंतु तेमांथी जळने तजीने ते दूध पीये छे, तेम शिष्य पण के जे, गुरुना अनुपयोगथी उत्पन्न थयेला दोषोने छोडीने केवळ गुणोनेज ग्रहण करे छे, ते हंस सरखो छे ॥ ५० ॥ अने ते एकांत योग्य छे; अहीं शंका करे छे के जळथी मिश्रित थयेला दूधने पण हंस केम जुदुं करी शके छे? के जेथी ते केवळ दूधज पीये छे, अने पाणी पीतो नथी ॥ ५१ ॥ ते माटे कहे छे के, तेनी जीभमां खटाश होवाथी ते कुचो थइने जुदुं पडे छे, तेथी;—कह्युं छे के—जीभनी खटाशथी जळमां रहेलुं दूध पण कुचारूप थाय छे; अने तेथी हंस जळ छोडीने दूध पीये छे माटे सुशिष्य पण ते हंस सरखो होय छे ॥ ५२ ॥

मोत्तूण हदं दोसे । गुरुणोणुवत्तणासियाईए ॥ गिण्हइ गुणे उ जो सो । जोग्गो समयत्थसारस्स ॥ ५३ ॥ इदानीं महिषदृष्टांतभावना, यथा महिषो निपानस्थानमवाप्तः सन् उदकमध्ये तदुदकं मुहुर्मुहुः शृंगाभ्यां ताडयन्नवगाहमानश्च सकलमपि कलुषीकरोति, ततो न स्वयं पातुं शक्नोति, नापि यूथं ॥ ५४ ॥ तद्वच्छिष्योऽपि यो व्याख्यानप्रबंधावसरेऽकांड एव कुत्सितप्रश्नैः कलहविकथादिभिर्वा आत्मनः परेषां चानुयोगश्रवणविघातमाधत्ते, स महिषसमानः ॥ ५५ ॥ स चैकांतेनाऽयोग्यः उक्तं च—
सयमवि न पियइ महिसो । न य जूहं पिवइ डोलियं उदयं ॥ विग्गह विकहाहिं तहा । अथक्कपुच्छाहिं य कुसीसो ॥ ५६ ॥

गुरुए अनुपयोगपणाथी कहेला हद दोषोने पण छांडीने जे गुणोने ग्रहण करे छे, ते शिष्य सूत्रार्थना सारने योग्य छे ॥ ५३ ॥ हवे पाडाना दृष्टांतनी भावना कहे छे; जेम पाडो जळाशय मध्ये प्राप्त थयो थको तेमां रहेला पाणीने वारंवार शिंगडाओथी उछाळतो थको तथा अंदर अवगाहना करतो थको सघळुं जळ मेलुं करे छे; अने तेथी पोते पी शकतो नथी, तेम पोताना टोळाने पण पीवा देतो नथी ॥ ५४ ॥ तेनी पेठे शिष्य पण के जे, व्याख्यान वंचाती वखते विना अवसरे नकामा सवालोथी अथवा कजीआनी विकथा आदिकवडे करीने पोताने अने परने अनुयोगना श्रवणनो विघात करे छे, ते शिष्य पाडा सरखो छे ॥ ५५ ॥ अने ते एकांते अयोग्य छे. कह्युं छे के, पाडो पोते पण पाणी पीतो नथी, तेम ते डोळी नाखीने पोताना टोळाने पण पीवा देतो नथी; तेम कुशिष्य पण विग्रह कथाओथी तथा निरर्थक प्रश्नोथी व्याख्यानने डोळी नाखे छे ५६ ॥

मेषोदाहरणभावना, यथा मेषो वदनस्य लघुत्वात् स्वयं च निभृततया गोष्पदमात्रस्थितमपि जलमकलुषीकुर्वन् पिबति ॥ ५७ ॥ तथा यः शिष्योऽपि पदमात्रमपि विनयपुरःसरमाचार्यचित्तं प्रसादयन् पृच्छति स मेषसमानः, स चैकांतेन योग्यः ॥ ५८ ॥ मशकदृष्टांतभावना, यः शिष्यो मशक इव जात्यादिकमुद्घट्टयन् गुरोर्मनसि व्यथामुत्पादयति स मशकसमानः, स चाऽयोग्यः ॥ ५९ ॥ जलौकादृष्टांतभावना, यथा जलौका शरीरमदुन्वती रुधिरमाकर्षति, तथा शिष्योऽपि योऽदुन्वन् श्रुतज्ञानमापिबति स जलूकासमानः ॥ ६० ॥ उक्तंच—जलूगावमदूमिंतो । पियइ सुसीसोवि सुयनाणं ॥ ६१ ॥

हवे मेषना दृष्टांतनी भावना कहे छे; जेम मेष पोतानुं मुख सूक्ष्म होवाथी पोते गायना पगलां जेटलां पण स्थळमां रहेला पाणीने नहीं मलीन करतो थको धराइने पीये छे ॥ ५७ ॥ तेम जे शिष्य पण एक पद मात्र पण विनयपूर्वक आचार्यना चित्तने खुशी करतो थको पूछे छे, ते मेष सरखो छे, अने ते एकांते योग्य छे ॥ ५८ ॥ हवे मशकना दृष्टांतनी भावना कहे छे; जे शिष्य मशकनी पेठे जाति आदिक खुल्ली करीने गुरुना मनमां खेद उपजावे छे, तेने मशक समान जाणवो; अने ते अयोग्य छे ॥ ५९ ॥ हवे जळोना दृष्टांतनी भावना कहे छे; जेम जळो शरीरने दुःखाव्या विना रुधिर खेंचे छे तेम शिष्य पण जे गुरुने दुःखाव्या विना श्रुतज्ञानरूप रसने पीये छे, ते जळो सरखो छे ॥ ६० ॥ कह्युं छे के—जळोनी पेठे दुःखाव्या विना उत्तम शिष्य पण श्रुतज्ञाननो रस पीये छे ॥ ६१ ॥

बिडालीदृष्टांतभावना, यथा बिडाली भाजनसंस्थं क्षीरं भूमौ विनिपात्य पिबति, तथाऽदुष्टस्वभावत्वात् शिष्योऽपि यो विनयकरणादिभीततया न साक्षाद्गुरुसमीपे गत्वा शृणोति ॥ ६२ ॥ किंतु व्याख्यानादुत्थितेभ्यः केभ्यश्चित्स बिडालीसमानः, स चाऽयोग्यः ॥ ६३ ॥ तथा जाहकस्तिर्यग्विशेषस्तदुदाहरणभावना, यथा जाहकः स्तोकं स्तोकं क्षीरं पीत्वा पार्श्वाणि लेढि तथा शिष्योऽपि यः पूर्वगृहीतं सूत्रमर्थं वा अतिपरिचितं कृत्वा अन्यं पृच्छति स जाहकसमानः स च योग्यः ॥ ६४ ॥ संप्रति गोदृष्टांतभावना, यथा केनापि कौटुंबिकेन कस्मिंश्चित्पर्वणि चतुर्भ्यश्चतुर्वेदपारगामिभ्यो विप्रेभ्यो गौर्दत्ता, ततस्ते परस्परं चिंतयामासुर्यदियमेका गौश्चतुर्णामस्माकं ॥ ६५ ॥

हवे बिलाडीना दृष्टांतनी भावना कहे छे; जेम बिलाडी भाजनमां रहेलुं दूध भूमीपर पाडीने पीये छे, तेम शिष्य पण के जे दुष्ट स्वभाववाळो होवाथी विनय करवा आदिकथी डरीने साक्षात् गुरु पासे जइ सांभळतो नथी ॥ ६२ ॥ परंतु व्याख्यान सांभळीने उठेला एवा केटलाक मनुष्यो पासेथी सांभळे छे, ते बिलाडी समान छे, तथा अयोग्य छे ॥ ६३ ॥ वळी जाहक एटले एक जातनुं तिर्यंच, तेना उदाहरणनी भावना कहे छे, जेम जाहक (शेरो) थोडुं थोडुं दूध पीने पडखां चाटे छे, तेम शिष्य पण जे पूर्वे ग्रहण करेला सूत्र अथवा अर्थने अतिपरिचयवाळां करीने बीजाने पूछे छे, ते जाहक सरखो छे, तथा ते योग्य छे ॥ ६४ ॥ हवे गायना दृष्टांतनी भावना कहे छे; जेम कोइक कुटुंबीए कोइक पर्वने विषे चार वेदोने जाणनारा एवा चार ब्राह्मणोने एक गाय आपी; तेथी तेओ परस्पर चिंतववा लाग्या के, आ एक गाय आपणा चारेनी छे ॥ ६५ ॥

ततः कथं कर्त्तव्या, तत्रैकेनोक्तं, परिपाट्या दुह्यतामिति. तच्च समीचीनं प्रतिज्ञातमिति सर्वैः प्रतिपन्नं ॥ ६६ ॥ ततो यस्य प्रथमदिवसे गौरागता तेन चिंतितं, यथाहमद्यैव धोक्ष्यामि, कल्ये पुनरन्यो धोक्ष्यति. किं निरर्थिकामस्याश्चारिं वहामि ॥ ६७ ॥ ततो न किंचिदपि तस्यै तेन दत्तं, एवं शेषैरपि. ततः सा श्वपाककुलनिपतितेव तृणसलिलादिविरहिता गतासुरभूत् ॥ ६८ ॥ ततः समुत्थितस्तेषां धिग्जातीयानामवर्णवादो लोके, शेषगोदानादिलाभव्यवच्छेदश्च ॥ ६९ ॥ एवं शिष्या अपि चिंतयंति न खलु केवलमस्माकमाचार्यो व्याख्यानयति, किंतु प्रतीच्छकानामपि॥७०॥

माटे हवे तेनुं शुं करवुं? त्यां एके कह्युं के, वारा फरती आपणे ते दोहवी; एम करवुं सारुं छे, एम विचारी सघळाओए ते अंगीकार कर्युं ॥ ६६ ॥ पछी पेहेला दिवसे जेनी पासे गाय आवी, तेणे विचार्युं के, हुं तो आजेज फकत दोहशे, अने काले तो बीजो दोहशे, माटे आ गायने हुं फोकट चारो शामाटे नाखुं? ॥ ६७ ॥ एम विचारी तेणे तेने कंइ पण चारो आप्यो नहीं, अने एवी रीते बीजाओए पण चारो आप्यो नहीं; अने तेथी ते गाय जाणे कसाइखानामां पडी होय नहीं, तेम घास पाणी विना मृत्यु पामी ॥ ६८ ॥ अने तेथी ते नीच ब्राह्मणोनो जगतमां अवर्णवाद थयो, अने त्यारथी तेओए बीजी गायो मळवा आदिकनो लाभ पण गुमाव्यो ॥ ६९ ॥ एवी रीते शिष्यो पण के जेओ एम विचारे छे के, आचार्य महाराज केवळ अमारे माटेज कंइ व्याख्यान आपता नथी, परंतु *प्रतीच्छक साधुओ माटे पण व्याख्यान आपे छे ॥ ७० ॥

*अन्य गच्छादिकमांथी शास्त्र अभ्यासादिक माटे आवेला साधुओ, महेमान साधुओ, प्रातीच्छिको (आवश्यक निर्युक्ति टीका वगेरे जुओ).

ततस्तएव विनयादिकं करिष्यंति किमस्माकमिति प्रातीच्छिका अप्येवं चिंतयंति निज-
शिष्याः सर्वं करिष्यंति किमस्माकं कियत्कालावस्थायिनामिति ॥ ११ ॥ ततस्ते-
षामेवं चिंतयतामवांतराल एवाचार्यो विषीदति, लोके च तेषामवर्णवादो जायते
॥ १२ ॥ अन्यत्रापिगच्छांतरे दुर्लभौ तेषां सूत्रार्थौ, ततस्ते गोप्रतिग्राहकचतुर्द्विजातय
इवाऽयोग्या द्रष्टव्याः ॥ १३ ॥ उक्तं च—अन्नो दुज्झइ कल्लं । निरत्थयं से वहामि
किं चारिं ॥ चउचरणगवीउमया । अवन्नहाणी उबडुयाणं ॥ १४ ॥ सीसा पडि-
च्छगाणं । भरोत्ति तेवि य हु सीमगभरोत्ति ॥ नकरंति सुत्तहाणी । अन्नत्थ वि-
दुल्लहं तेसिं ॥ १५ ॥

माटे तेओज तेमनो विनय आदिक करशे, अमारे शी जरुर छे? वळी बीजा प्रातीच्छको पण एमज विचारे छे के, तेना पोताना शिष्यो सघळुं करशे. अने थोडो वखत रहेनारा एवा अमारे ते विनय आदिक करवानी शी जरुर छे? ॥ ११ ॥ एवी रीते तेओना एवा विचारथी आचार्यजी महाराज तो वच्चेज सीदाया करे छे, अने दुनीयामां ते शिष्योनो अवर्णवाद थाय छे ॥ १२ ॥ वळी तेम करवाथी बीजा गच्छमां पण तेओने सूत्रार्थ मळवो मुश्केल थाय छे; माटे तेवा शिष्योने, गायने ग्रहण करनारा ते चार ब्राह्मणोनी पेठे अयोग्य जाणवा ॥ १३ ॥ कह्युं छे के—काल तो बीजो दोहसे, माटे फोकट शा माटे हुं चारो नाखुं? एवा विचार करवाथी ते ब्राह्मणोए गाय गुमावी, अन्य लाजनी तेओने हानि थइ, तेमज तेओनो अवर्णवाद पण थयो, (एवो भावार्थ छे) ॥ १४ ॥ शिष्यो गुरुनो विनय बीजा साधुओने भळावे छे; अने ते बीजा साधुओ वळी शिष्योने भळावे छे; अने एवी रीते गुरुनो विनय आदिक न थवाथी सूत्रनी हाणी थाय छे; अने बीजा गच्छमां पण तेओने वाचना दुर्लभ थाय छे ॥ १५ ॥

एष एव गोदृष्टांतः प्रतिपक्षेऽपि योजनीयः यथा कश्चित्कौटुंबिको धर्मश्रद्धया चतुर्भ्यश्चतुर्वेदपारगामिभ्यो गां दत्तवान् ॥ ७६ ॥ तेऽपि पूर्ववत्परिपाट्या दोग्धुमारब्धास्तत्र यस्य प्रथमदिवसे सा गौरागता स चिंतितवान् ॥ ७७ ॥ यद्यहमस्याश्चारिं न दास्यामि ततः क्षुधा धातुक्षयात्प्राणानपहास्यति, ततो मे लोकेषु एते गोहत्याकारका इत्यवर्णवादो भविष्यति, पुनरपि चाऽस्मभ्यं न कोऽपि गवादिकं दास्यति ॥ ७८ ॥ अपि च यदि मदीयचारिचरणेन पुष्टा सती शेषैरपि ब्राह्मणैर्धोक्ष्यते ततो मे महानऽनुग्रहो भविष्यति, अहमपि च परिपाट्या पुनरप्येनां धोक्ष्यामि ॥ ७९ ॥

वळी एवी रीतनुं आ गायनुं दृष्टांत तेथी प्रतिपक्ष दृष्टांतरूपे पण नीचे मुजब जोडी लेवुं; जेम कोइक कुटुंबीए धर्मनी श्रद्धाथी चार वेदोने जाणनारा चार ब्राह्मणोने एक गाय आपी ॥ ७६ ॥ अने ते ब्राह्मणो पण पूर्वनी पेठे वारा फरती दोवा लाग्या; तेओमां जेने त्यां प्रथम दिवसे गाय आवी, तेणे विचार्युं के ॥ ७७ ॥ जो हुं आ गायने चारो नहीं आपुं, तो ते क्षुधाथी धातुक्षय थवाथी प्राणोने छोडी देशे, अने तेथी आ ब्राह्मणो तो गौहत्या करनारा छे, एवी रीतनो दुनीयामां अवर्णवाद थशे. अने तेथी फरीने अमोने कोइ पण गाय आदिक आपशे नहीं ॥ ७८ ॥ वळी जो आ गाय मारो चारो खाइने पुष्ट थशे, तो बीजा ब्राह्मणो पण तेने दोइ शकशे. अने तेथी *मारे तेओना उपर महोटो अनुग्रह थशे; अने वळी मारा वारो आव्येथी हुं पण तेने दोइ शकीश ॥ ७९ ॥

* मारो मोटो उपगार थाशे.

ततोऽवश्यमस्यै दातव्या चारिरिति दत्तौ चारिं, एवं शेषा अपि दद्युः, ततः सर्वेऽपि चिरकालं दुग्धाऽभ्यवहारभाजिनो जाताः, लोकेच समुच्छलितः साधुवादः, अन्तेन च प्रचूनमन्यदपि गवाधिकं ॥ ८० ॥ एवं येऽपि विनेयाश्चिंतयंति यदि वयमाचार्यस्य न किमपि विनयादिकं विधातारस्तत एषोऽवसीदन्नवश्यमपगतासुर्भविष्यति लोके च कुशिष्या इमे इत्यवर्णवादः ॥ ८१ ॥ ततो गच्छांतरेऽपि न वयमवकाशं लप्स्यामहे, अपि चास्माकमेष प्रव्रज्याशिक्षाव्रतारोपणादिकरणतो महोपकारी, संप्रति च जगति दुर्लभं श्रुतरत्नमुपयच्छन् वर्त्तते ॥ ८२ ॥ ततोऽवश्यमेतस्य विनयादिकमस्माभिः कर्त्तव्यं, अन्यच्च यदस्मदीयविनयादिना साहायकबलेन प्रातीच्छिकानामप्याचार्येण उपकारः ॥८३॥

माटे आ गायने मारे जरूर चारो देवो जोइये, एम विचारी तेणे गायने चारो आप्यो; अने एवी रीते बीजाओए पण आप्यो; अने तेथी सघळाओ घणा काळसुधि दुधनुं भोजन करनारा थया; लोकोमां पण तेओनो यश फेलायो; अने तेथी गाय आदिक बीजुं पण तेओने घणुं दान मळ्युं ॥ ८० ॥ एवी रीते शिष्यो पण, के जेओ एम विचारे के, जो अमो आचार्यनो विनय आदिक कंइ नहीं करीये, तो आ आचार्य खरेखर सीदाइ सीदाइने मृत्यु पामशे; अने लोकमां पण अपवाद थशे के, आ कुशिष्यो थया ॥ ८१ ॥ वळी बीजा गच्छमां पण अमोने स्थान नहीं मळे; तेमज वळी आ आचार्य अमोने दीक्षा, शिखामण तथा व्रत आदिक आपवाथी अमारा मोटा उपकारी छे; वळी हमणा पण जगतमां दुर्लभ एवुं ज्ञानरत्न अमोने ते आपे छे ॥ ८२ ॥ माटे अमारे अवश्य तेनो विनय आदिक करवो जोइये; वळी अमारा विनय आदिकरूप सहायकारी बळवडे करीने जो बीजा साधुओने पण आचार्यथी उपकार थशे ॥ ८३ ॥

किमस्माभिर्न लब्धं, द्विगुणतरपुण्यलाभस्याऽस्माकं भावात् ॥ ८४ ॥ प्रातीच्छिका अपि ये चिंतयंति, अनुपकृतोपकारी भगवानाचार्योऽस्माकं, को नामान्यो महांतमेवं व्याख्याप्रयासमस्मन्निमित्तं विदधाति ॥ ८५ ॥ ततः किमेतेषां वयं प्रत्युपकर्तुं शक्ताः, तथापि यत्कुर्मः सोऽस्माकं महान् लाभ इति परनिरपेक्षं विनयादिकमादधते ॥ ८६ ॥ तेषां नावसीदत्याचार्योऽव्यवच्छिन्ना च सूत्रार्थप्रवृत्तिः, समुच्छलति च सर्वत्र साधुवादः, गच्छांतरे च तेषां सुलभं श्रुतज्ञानं, परलोके च सुगत्यादिलाभः ॥ ८७ ॥ भेर्युदाहरणं यथा, 'बारवइए वासुदेवस्स तिन्नि भेरीओ' तं जहा, संगामिया अब्भुइया कोमुइया ॥ ८८ ॥

तो तेमां अमारुं शुं जशे? तेथी तो उलटो अमाने बेवडो पुण्यनो लाभ थशे ॥ ८४ ॥ वळी ते अन्य साधुओ पण एम चिंतवे के, आचार्यजी महाराज तो अमारा, विना उपकार कर्ये पण उपकारी छे; केमके अमारे माटे आवो म्होटो व्याख्याननो प्रयास बीजो कोण करशे ॥ ८५ ॥ वळी शुं अमो तेमनाथी प्रत्युपकार करवाने शक्तिवंत छीये? तोपण अमो जे कंइ करीए छीए, ते अमोने म्होटा लाभरूप छे; एम विचारी परनी अपेक्षा राख्या विना जेओ विनय आदिक करे छे ॥ ८६ ॥ तेओना आचार्य सीदाता नथी, तेम सूत्रार्थनी प्रवृत्तिनो पण विच्छेद थतो नथी; सघळी जगोए यशवाद फेलाय छे, तथा बीजा गच्छमां पण तेओने श्रुतज्ञान सुलभ थाय छे; अने परलोकमां सुगति आदिकनो लाभ मळे छे ॥ ८७ ॥ हवे भेरीनुं दृष्टांत नीचे मुजब छेः द्वारमती (द्वारिका) नगरीमां वासुदेवने त्रण भेरीओ हती; ते नीचे मुजब—संग्रामनी भेरी, मंगलिकनी भेरी, तथा कौमुदी महोत्सवनी भेरी ॥ ८८ ॥

तत्र प्रथमा संग्रामकाले समुपस्थिते सामंतादीनां ज्ञापनार्थं वाद्यते, द्वितीया पुनरागंतुके कस्मिंश्चित्प्रयोजने समुद्भूते लोकानां सामंतादीनां परिज्ञापनाय ॥ ७९ ॥ तृतीया कौमुदीमहोत्सवाद्युत्सवज्ञापनार्थं, ततो ॥ तिन्निवि गोसीसचंदणमईओ देवतापरिग्गहिया ॥ ८० ॥ तो तस्स चउत्थी भेरी असिवप्पसमणी, तीसे उप्पत्ती कहिज्जइ ॥ ८१ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्को देविंदो सो तत्थ देवलोगे सुरसज्झे वासुदेवस्स गुणकित्तणं करेइ ॥ ८२ ॥ अहो उत्तमपुरिसा एए अवगुणं न गिण्हंति, नीएण य जुद्धेण न जुज्झंति; तत्थ एगो देवो असद्दहंतो आगओ ॥ ८३ ॥

तेमां पहेली भेरी संग्राम संबंधि वखत आव्येथी सामंत आदिकोने जाण थवा माटे वगाडवामां आवे छे, बीजी भेरी कोइ परोणो आव्येथी, अथवा कंइक प्रयोजन पड्येथी लोको तथा सामंत आदिकोने जाण थवा माटे वगाडाय छे ॥ ७९ ॥ तथा त्रीजी कौमुदी महोत्सव आदिक उत्सव जणाववा माटे वगाडाय छे; ते त्रणे भेरीओ देवताधिष्ठित तथा गोशीर्षचंदननी बनावेली हती ॥ ८० ॥ वळी तेनी पासे उपद्रवो नाश करनारी चोथी भेरी हती, तेनी उत्पत्ति कहे छे ॥ ८१ ॥ ते काळे तथा ते समयने विषे देवोनो स्वामी इंद्र त्यां देवलोकमां देवोनी मांहे वासुदेवना गुणोनुं वर्णन करवा लाग्यो ॥ ८२ ॥ के, अहो! उत्तम पुरुषो अवगुण ग्रहण करता नथी, * तेम नीच युद्धथी युद्ध करता नथी; एटलामां त्यां एक देवने ते वचनपर श्रद्धा नहीं आववाथी ते वासुदेव पासे आव्यो ॥ ८३ ॥

* फक्त न्याय युक्त युद्धथीज युद्ध करे छे.

॥ वासुदेवोवि जिणसगासं वंदणोपत्थिओ, सो अंतरा कालसुणयरूवं मययंविउव्वइ+
दुब्भिगंधं ॥ ८४ ॥ तस्स गंधेण सव्वो लोगो पराहुत्तो, वासुदेवेण दिट्ठो ज-
णियं वयणं, अहो इमस्स कालसुणयस्स पंडुरा दंता मरगयभायणनिहित्तमुत्ता-
वलिव्व रेहंति ॥ ८५ ॥ देवो चिंतेइ, सच्चं गुणग्गाही, ततो वासुदेवस्स आस-
रयणं गहाय पहाविओ, सो [1]मंदुरापालएण नातो, तेणं कूवियं, जाहा आसो-
हीरइ ॥ ८६ ॥ ततो कुमारा रायाणो य निग्गया, ते देवेण हयविहयाकाऊण ताडिया,
वासुदेवो निग्गओ जाणइ, कीस मम आसरयणं हरसि ॥ ८७ ॥

वासुदेव पण जिनेश्वर प्रभुने वांदवा माटे जतो हतो; वच्चे ते देवताए मरेला तथा दुर्गंधवाळा काळा कुतरानुं रूप विकुर्व्युं ॥ ८४ ॥ तेनी गंधथी सघळा लोको दूर जाता; परंतु वासुदेवे ते कुतराने जोइने तेनुं वर्णन कर्युं के, अहो! आ काळा कुतराना सफेद दांतो जाणे मरकतमणिना वासणमां राखेली मोतीओनी माळा होय नहीं, तेवा शोभे छे ॥ ८५ ॥ त्यारे देवे विचार्युं के, खरेखर वासुदेव गुणग्राही छे; पछी ते देव वासुदेवनो अश्वरत्न (उत्तम घोडो) ग्रहण करीने नाठो; तेनी अश्वपालने खबर पडवाथी तेणे पोकार कर्यो के, घोडो हरी जाय छे ॥ ८६ ॥ ते सांभळी राजाओ अने कुमारो तेनी पाछळ जवाने निकळ्या; तेमने पण ते देवे हतप्रहत करीने मार्या; त्यारे वासुदेवे निकळीने तेने कह्युं के, मारो घोडो तुं शामाटे हरी जाय छे? ॥ ८७ ॥

[1] मंदुरा—अश्वशाळा (घोडाहार, तबेलो) तस्याः पालकः रक्षकस्तेन.

एसो मम आसो. तुज्झ न होइ. देवो भणति. इमं जुज्झे पराजिऊण गिण्हाहि, वासुदेवेण भणियं. वाढं किह जुज्झामो. तुमं भूमीए अहं च रहेणं. तो रहं गेण्ह ॥ ९८ ॥ देवो भणइ, अलं मे रहेण. एवं आसो हत्थी पडिसिद्धो, वायाजुद्धाइयाइं सव्वाइं पडिसेहेइ ॥ ९९ ॥ तेरवायं केण जुज्झेण जुज्झियव्वं, देवो भणइ अहिट्ठाणजुद्धेण. वासुदेवेण भणिअं पराजितोऽहं, नेहि आसरयणं, नाहं नीयजुद्धेण जुज्झामि ॥ १०० ॥ तो देवो तुट्ठो समाणो भणाति. वरेहि वरं किं ते देमि. वासुदेवेण भणियं, असिवोवसमणिं भेरिं देही, तेण दिन्ना. एसा तीसे भेरीए उप्पत्ती ॥ १०१ ॥

आ मारो घोडो छे, तारो नथी; त्यारे देवे कह्युं के, तमे युद्ध करो ? अने पराजय करी घोडो ग्रहण करो; त्यारे वासुदेवे कह्युं के, युद्ध केवी रीते कराय; तमे भूमिपर छो, अने हुं रथपर छुं; माटे तमो पण रथ ग्रहण करो ? ॥ ९८ ॥ त्यारे देवे कह्युं के, मारे रथनी जरूर नथी; एवी रीते घोडा तथा हाथीनो पण निषेध कर्यो; छेवटे वचन युद्ध आदिक सर्व युद्धोनो तेणे निषेध कर्यो ॥ ९९ ॥ त्यारे वळी वासुदेवे कह्युं के, कया युद्धथी युद्ध करवुं ? देवे कह्युं के, अधिष्ठान युद्धथी युद्ध करवुं; ते सांभळी वासुदेवे कह्युं के, हुं हार्यो, माटे अश्वरत्न लेइ जा ? हुं नीच युद्धथी लडतो नथी ॥ १०० ॥ त्यारे देवता तुष्टमान थइने मानसहित कहेवा लाग्यो के, तुं वरदान माग ? हुं तने शुं आपुं ? त्यारे वासुदेवे कह्युं के, उपद्रव उपशमावनारी भेरी आप ? तेथी तेणे आपी एवी रीते ते भेरीनी उत्पत्ति जाणवी ॥ १०१ ॥

ताहे सा छण्हं छण्हं मासाणंते वाइज्जइ, तत्थ जो सद्दं सुणेइ तस्स पुव्वुप्पन्ना रोगा उवसमंति, नवगावि छम्मासे न उप्पज्जंति ॥ १०२ ॥ तत्थन्नया कयाइ आगंतुको वाणियगो आयातो, सो य अतीवदाहज्जरेणाभिभूतो तं भेरीपालगं भणइ, गिण्ह तुमं सयसहस्सं ॥ १०३ ॥ मम पत्तोपल्लमित्तं देहि, तेण लोभेण दिन्ना, तत्थन्ना चंदणथिग्गलिया दिन्ना, एवमन्नेणवि अन्नेणवि मग्गितो दिन्नं च ॥ १०४ ॥ सा सव्वा चंदणकंथा जाता, सा अन्नया कयाइ असिवे वासुदेवेण ताडाविया, जावंतं चेव सत्तं पूरेइ तेण भणियं. जोएह मा भेरी विणासिया होज्जा ॥ १०५ ॥

पछी ते भेरी छ छ मासने अंते वगाडवामां आवती हती, तेनो शब्द जे कोइ सांभळे तेना पूर्वे उत्पन्न थयेला रोगो शांत थाय, तथा छ माससुधी नवा रोगो पण उपजे नहीं ॥ १०२ ॥ एकदामां एक वखते त्यां कोइ मुसाफर वाणीयो आवी चड्यो; ते अत्यंत दाहज्वरथी पीडित थयेलो हतो. अने तेथी तेणे ते भेरीपालकने कह्युं के, तुं सो हजार द्रव्य ग्रहण कर ! ॥ १०३ ॥ अने मने ते भेरीमांथी एक कमलपत्र जेवडो टुकडो आप ! त्यारे ते भेरीपालके पण लोभने वश थइ तेमांथी टुकडो कापी आप्यो, तथा त्यां चंदनना काष्ठनी थीगडी आपी; एवी रीते बीजाए त्रीजाए विगेरेए मागवाथी ते टुकडा कापी कापीने देवा लाग्यो ॥ १०४ ॥ अने एवी रीते ते आखी भेरी चंदननी कंथारूप (थीगडथागडवाळी) थइ; त्यारबाद कोइक समये उपद्रव थवाथी वासुदेव ते भेरी वगडावी; अने पछी * ज्यारे तेनो अवाज ते सभा सुधीज पहोंच्यो त्यारे तेणे कह्युं के, जोओ जोइये, भेरीमां कंइ नुकशान तो नथी थयुं ? ॥ १०५ ॥

*उपर जणावेलो अर्थ सोवसा साचो पडशे एम धार्युं.

ताहे जोइया, दिन्ना कंथीकया, हाजेरी लद्धा विणासिया, तओ सो जेरीपालो ववरोविओ, अन्ना जेरी अट्ठमभत्तेण आराहइत्ता लद्धा ॥ १०६ ॥ अन्नो जेरीपालो कओ, सो आयरेण रक्खइ, सो पूइओ ॥ १०७ ॥ एवं यः शिष्यः सूत्रमर्थं वा परमतेन स्वकीयग्रंथांतरेण वा मिश्रयित्वा कंथाकरोति ॥ १०८ ॥ अथवा विस्मृतं सूत्रमर्थं वा सुशिक्षितः स्वयमेवाहं नान्यं किंचित् कदाचित् किमपि पृच्छामीत्यहंकारेण परमतादिभिरपि मिश्रयित्वा संपूर्णं विदधाति सोऽनुयोगश्रवणस्य न योग्यः ॥ १०९ ॥ एवं कंथीकृतसूत्रार्थो गुरुरपि नानुयोगभाषणस्य योग्यः. उक्तंच—जो सीसो सुत्तत्थं । चंदणकंथं व परमयाईहिं ॥ मीसेइ गलियमहवा । सिक्खियमाणेण स न जोग्गो॥११०॥

पछी जोइ तो थीगळ्याळ कंथा जेवी दीठी; अने कह्युं के, भेरी खोई, आवी भेरी नष्ट करी छे; पछी ते भेरीपालकने मारी नखाव्यो; तथा पछी अट्ठमनो तप करीने बीजी भेरी तेणे मेळवी. ॥ १०६ ॥ तथा बीजो भेरीपालक कर्यो, पछी ते आदरपूर्वक तेनुं रक्षण करवा लाग्यो; अने तेथी ते सन्मानित थयो ॥ १०७ ॥ एवी रीते जे शिष्य सूत्र अथवा अर्थने परमते करीने अथवा पोताना ग्रंथांतरवडे करीने मिश्रित करी कंथारूप करे छे ॥ १०८ ॥ अथवा भूली गयेला सूत्रार्थने, हुं पोते सारी रीते जाणुं छुं, बीजा कोइने कदापि कंइ पण पूछुं नहीं, एवी रीतना अहंकारे करीने परमत आदिकथी मिश्रित करीने जे संपूर्ण करे छे, ते अनुयोग सांभळवाने लायक नथी ॥ १०९ ॥ एवी रीते कंथारूप करेलो छे ते सूत्रार्थ जेणे एवो गुरु (आचार्य) पण अनुयोग व्याख्यानने लायक नथी; कह्युं छे के—जे शिष्य सूत्रार्थने चंदननी कंथानी पेठे परमत आदिकवडे करीने मिश्रित करे छे, अथवा हुं पोतेज जाणुं छुं, बीजाने नहि पूछुं, एवी रीतना अहंकारवडे करीने जे विस्मृत वातने संपूर्ण करे छे, ते शिष्य योग्य नथी ॥ ११० ॥

कर्थीकयसुत्तत्थो । गुरुविजोग्गो न नासियव्वस्स ॥ अविणासियसुत्तत्था । सी-
सायरिया विणिद्दिठ्ठा ॥ १११ ॥ अत्र सिक्खियमाणेण इति सुशिक्षितोऽहं स्व-
यमेव, नान्यं पृच्छामीति मानेन गलितं विस्मृतं संपूर्णं करोतीत्यर्थः, शेषं सुगमं ॥११२॥
संप्रत्याभीरीदृष्टांतभावना, कश्चिदाभीरो निजभार्यया सह विक्रयाय घृतं गंत्र्या
गृहीत्वा पत्तनमवतीर्णश्चतुःपथे च समागत्य वणिगापणेषु पणायितुं प्रवृत्तो ॥ ११३ ॥
घटितश्च पणायागसंटंकस्ततःसमारब्धे घृतमापे गंत्र्या अधस्तादवस्थिता आभीरी.
घृतं भर्त्रा वारकेण समर्प्यमाणं प्रतीच्छति ॥ ११४ ॥ ततः कथमप्यर्पणे ग्रहणे वाऽनुप-
योगतोऽपांतराले वारको लघुघटरूपो निपत्य खंडशो भग्नः ॥ ११५ ॥

गुरुपण (तेमज) कंथारूप करेला छे सूत्रार्थ जेणे एवा व्याख्यान करवा लायक नथी; तेओए सूत्रार्थनो विनाश नथी कर्यो, एवा शिष्यो तथा आचार्योने (योग्य) कह्या छे ॥ १११ ॥ अहीं 'शिक्षितमाने करीने' ए वाक्यनो एवो अर्थ करवो के हुं तो मारी रीते पोतानीमेळेज शीखेलो छुं ? बीजाकोइने पूछीश नहीं. इत्यादि अहंकारे करीने भूली गयेलुं जे संपूर्ण करे छे, एवो अर्थ जाणवो; बाकीनुं सुगम छे ॥ ११२ ॥ हवे आभीरी एटले ग्वालणना दृष्टांतनी भावना कहे छेः कोइक ग्वाल पोतानी स्त्री साथे, वेचवामाटे गाडीमां घी भरीने शहेरमां आव्योः तथा पछी चउटामां आवीने वणिकोनी दुकानोमां भावताल पूछवा लाग्यो ॥ ११३ ॥ पछी ज्यारे सोदो थयो, त्यारे घीनुं मापुं करवा मांड्युं; त्यारे गाडीनी नीचे बेठीः तथा तेनो स्वामी गाडीपरथी घीना घडा जे आपतो हतो. ते लेती हती ॥ ११४ ॥ एटलामां लेतां देतां अचानक वच्चे एक नानो घीनो घडो नीचे पडीने टुकडे टुकडा थइ गयो ॥ ११५ ॥

ततो घृतहानिदूनमनाः पतिरुल्लपितुं खरपरुषवाक्यानि प्रावर्त्तयत् ॥ ११६ ॥ हा-पापीयसि दुःशीले कामविडंबितमानसा तरुणिमाऽतिरमणीयं पुरुषांतरमवलोकसे, न सम्यग्वारकमभिरक्षसि ॥ ११७ ॥ ततः सा खरपरुषवाक्यश्रवणतः समुद्भूतकोपावेशवशोच्छलितकंपितपीनपयोधरा, स्फुरदधरबिंबोष्ठी ॥ ११८ ॥ दूरोत्पाटितभ्रूरेखाधनुर्व्यंजनो नाराचश्रेणिमिव कृष्णकटाक्षसंततिमविरतं प्रतिक्षिपंती प्रत्युवाच ॥ ११९ ॥ हा ग्रामेयकाधम घृतघटमप्यवगणय्य विदग्धमत्तकामिनीनां मुखारविंदान्यवलोकसे, न चैतावताऽवतिष्ठसे ॥ १२० ॥ खरपरुषवाक्यैर्मामप्यधिक्षिपसि, ततः स एवं प्रत्युक्तोऽतीवज्वलितकोपानलो यत् किमप्यसंबद्धं जल्पितुं लग्नः, साप्येवं ॥१२१॥

एवी रीते घीनुं नुकशान थवाथी स्वामीनुं मन दुभावा लाग्युं, अने तेथी ते स्त्रीने आकरां वचनो बोलवा लाग्यो के, ॥ ११६ ॥ अरे! पापणी! छिनाळ! कामदेवथी पीडित मनवाळी! जुवानीथी मनोहर लागता बीजा पुरुषने जोया करे छे? अने घीना घडाने बराबर झालती नथी ॥ ११७ ॥ एवी रीतनां आकरां वचनो सांभळवाथी ते स्त्रीना उत्पन्न थयेला क्रोधना आवेशना वशथी जेणीना पुष्ट स्तनो उछळवा तथा कंपवा लाग्या छे. एवी, तथा जेणीना होठ स्फुरायमान थइ रह्या छे, एवी ॥ ११८ ॥ उंची करेली भ्रकुटीनी रेखारूपी धनुष्यना आधारथी बाणोनी श्रेणिनी पेठे श्याम कटाक्षोनी श्रेणिने एकदम फेंकती थकी बोलवा लागी के ॥ ११९ ॥ अरे! नीच गामडीया! घीना घडाने पण अवगणना करीने चालाकीवाळी मदोन्मत्त कामी स्त्रीओना मुख-कमळोने तुं जोया करे छे? वळी एटलेथी पण संतोष नहीं पामीने ॥ १२० ॥ आकरां वचनोथी मने पण तरछोडे छे? पछी एवी रीतना सामां वचनो कहेवाथी अत्यंत सळगेल छे क्रोधरूपी अग्नि जेनो एवो ते स्वामी जेम तेम गाळो आदिक तेणीने देवा लाग्यो; अने ते स्त्री पण एवीज रीते तेने गाळो देवा लागी ॥ १२१ ॥

ततः समभूत्तयोः केशाकेशि युद्धं, ततो विसंस्थुलपदादिन्यासतः सकलमपि प्रायो गंत्रीघृतं भूमौ निपतितं, ततः किंचित् शोषमुपगतं. अवशेषं चाक्षीढं श्वभिः ॥ १२२ ॥ गंत्रीघृतमपि शेषीभूतमपहृतं पश्यतोहरैः, सार्थिका अपि स्वं स्वं घृतं विक्रीय स्वग्रामगमनं प्रपन्नाः ॥ १२३ ॥ ततः प्रभूतदिवसभागातिक्रमेणापसृते युद्धे स्वास्थ्ये च लब्धे यत्किंचित् प्रथमतो विक्रीतं घृतं, तद्द्रव्यमादाय तयोः स्वग्रामं गच्छतोः ॥ १२४ ॥ अत्रांतरालेऽस्तंगते सहस्रभानौ, सर्वतःप्रसरमभिरहृति तमोवितानै परास्कंदिनः समागत्य वासांसि द्रव्यं बलीवर्दौ चापहृतवंतः ॥ १२५ ॥

पछी तेओ वच्चे एक बीजाना केशो खेंचवा पर्यंत लडाइ चाली; अने तेथी आडाअवळा पगो पडवाथी घणुं करी गाडीमां रहेलुं सघळुं घी पृथ्वीपर ढोळाइ गयुं, अने तेथी थोडुंक तो जमीनमां सोसाइ गयुं, अने बाकी रह्युं ते कुतरा चाटी गया ॥ १२२ ॥ गाडीमां जे कंइथी बाकी रही गयुं हतुं ते हाथ चालाकीवाळा चोरोए चोरी लीधुं; सथवारावाळाओ पण पोतपोतानुं घी वेचीने पोताने गाम चाल्या गया ॥ १२३ ॥ पछी दिवसनो घणो खरो भाग व्यतीत थया बाद तेओनी लडाइ बंध पडी, तथा ज्यारे तेओ ठंडा पड्या त्यारे पहेलेथी जे कंइ घी वेचायुं हतुं, तेनुं द्रव्य लेइने, तेओ बन्ने पोताने गाम तरफ चाल्या ॥ १२४ ॥ एटलामां वच्चे सूर्य अस्त थवाथी चोतरफथी अंधकारनो समूह विस्तार पाम्यो; अने तेथी चोरोए आवीने तेओना कपडां, द्रव्य तथा बळदो पण लुंटी लीधा ॥ १२५ ॥

तत एवं तौ महतो दुःखस्य भाजनमजायेतां, एष दृष्टांतोऽयमर्थोपनयः ॥ १२६ ॥ यो विनेयोऽन्यथा प्ररूपयन्नधीयानो वा खरपरुषवाक्यैराचार्येण शिक्षितोऽधिक्षेपपुरःसरं प्रतिवदति, यथा त्वयैवेत्थमहं शिक्षितः, किमिदानीं निह्नुषे, इत्यादि ॥ १२७ ॥ स न केवलमात्मानं संसारे पातयति, किंत्वाचार्यमपि खरपरुषप्रत्युच्चारणादिना तीव्रतीव्रतरकोपानलज्वालनात् ॥ १२८ ॥ भवंति कुविनेया मृदोरपि गुरोः खरपरुषप्रत्युच्चारणादिना प्रकोपकाः, उक्तं चोत्तराध्ययनेषु ॥ १२९ ॥ अणासवा थूलवया कुसीला । मिउंपि चंडं पकरंति सीसा इति ॥ १३० ॥

अने एवी रीते तेओ बन्ने महान्दुःखने पात्र थया; ए उपर मुजबनुं तो दृष्टांत छे, परंतु तेना अर्थनो उपनय तो नीचे मुजब छे ॥ १२६ ॥ शिष्य के जे, उलटी रीते प्ररूपणा करतो होय, अथवा अभ्यास करतो होय, तेने आकरां वचनोथी आचार्य शिखामण आपे, अने ते सामे थइने प्रतिवचनो कहे के, तेंज मने एवी रीते शीखाव्युं छे, हवे शामाटे गोपवे छे ? इत्यादि ॥ १२७ ॥ एवी रीतनो ते शिष्य केवळ पोतानेज संसारमां पाडतो नथी, परंतु आकरां वचनो सामा बोलवा आदिकथी तथा वधारे वधारे क्रोधरूपी अग्निने प्रदीप्त कराववाथी आचार्यमहाराजने पण संसारमां पाडे छे ॥ १२८ ॥ वळी एवी रीते कुशिष्यो कोमळतावाळा गुरुने पण आकरां वचनो बोलवा आदिकथी क्रोध उत्पन्न करनारा थाय छे; उत्तराध्ययनमां कह्युं छे के ॥ १२९ ॥ आश्रवविनाना, स्थूल व्रतवाळा तथा कुशीलीया एवा शिष्यो कोमळ गुरुने पण क्रोधित करे छे. ॥ १३० ॥

अपि च गुणगुरवो गुरवस्ततस्ते यदि कथमपि दुष्टशैक्षशिक्षापनेन कोपमुपागमंस्तथापि तेषां भगवदाज्ञावर्त्तित्वादल्पमल्पभाजां मिथ्यादुष्कृतादिमात्रेणापि विशुद्धिरुपजायते ॥ १३१ ॥ शिष्यस्तु भगवदाज्ञाविलोपतो गुर्वाशातनायाश्चोपचिताऽशुभगुरुकर्मा दीर्घभवभाजी ॥ १३२ ॥ किंचैवं स वर्त्तमानो मतिमानपि श्रुतरत्नबहिर्भवति. अन्यत्राऽपि तस्य दुर्लभश्रुतत्वात् ॥ १३३ ॥ को हि नाम सचेतनो दीर्घतरजीविताऽभिलाषी सर्प्पमुखे स्वहस्तेन पयोबिंदून् प्रक्षिपतीति ॥ १३४ ॥ स एकांतेनाऽयोग्यः. प्रतिपक्षभावनायामपीदमेव कथानकं परिभावनीयं ॥ १३५ ॥

वळी पण गुरुओ गुणोथी मोहोटा छे, अने तेओ कदाच कोइ कारणथी दुष्ट शिष्यने शिखामण आपवाथी क्रोध पामे, तोपण तेओ प्रभुनी आज्ञामां वर्त्तता होवाथी तेओने स्वल्प पाप लागे छे. अने ते फक्त मिथ्या दुष्कृत आपवाथीज शुद्ध थइ जाय छे; ॥ १३१ ॥ अने शिष्य तो प्रभुनी आज्ञाने लोपवाथी तथा गुरुनी आसातनाथी अशुभ कर्मोने उपार्जन करवाथी भारेकर्मी थयो थको दीर्घ संसारने भजनारो थाय छे ॥ १३२ ॥ वळी एवी रीते वर्त्तनारो शिष्य बुद्धिवान होय तोपण ज्ञानरत्नथी बाह्य थाय छे, तेम बीजा गच्छांतर आदिकमां पण तेने ज्ञान मळवुं दुर्लभ थाय छे ॥ १३३ ॥ वळी घणा काळ सुधी जीविततो अभिलाषी चतुर एवो कयो माणस एवो होय के जे पोताने हाथे सर्पना मुखमां दूधना बिंदुओ रेडे? ॥ १३४ ॥ माटे एवा प्रकारनो शिष्य एकांते अयोग्य छे; वळी उपर वर्णवेलुं आभीरीनुं दृष्टांत प्रतिपक्ष भावनामां पण नीचे मुजब जाणी लेवुं॥ १३५॥

केवलमिह घृतघटे भग्ने सति द्वावपि तौ दंपती त्वरितं त्वरितं कर्परैर्यथाशक्ति घृतं गृहीतवंतौ. स्तोकमेव विननाश ॥ १३६ ॥ निंदति चात्मानमाभीरी यथा हा मया न घृतघटस्ते सम्यक्समर्पितः, आभीरोऽपि वदति समर्पितस्त्वया सम्यक्, न मया सम्यग् गृहीतस्ततत एवं तयोर्न कोपावेशदुःखं ॥ १३७ ॥ नापि घृतहानिर्नापि सकाल एवान्यसार्थिकैः सह ग्राममभिसर्पतामपांतराले तस्करावस्कंदः, ततस्तौ सुखभाजनं जातौ ॥ १३८ ॥ एवमिहापि कथंचिदनुपयोगादिनाऽन्यथारूपे व्याख्याने कृते सति, पश्चादनुस्मृतयथावस्थितव्याख्यानेन सूरिणा शिष्यं पूर्वमुक्तं व्याख्यानं वितथं प्रति एवं वक्तव्यं ॥ १३९ ॥

फक्त अहीं घीनो घडो ज्यारे भांगी गयो त्यारे, ते बन्ने स्त्री भरतार मळीने तुरत तुरत ते घीने जेटलुं लेवाय तेटलुं कावलीओवडे लेइ लेवुं गेनु हतुं अने तेम करवाथी फक्त थोडोज बगाड थात ॥ १३६ ॥ वळी ते रबारीण पण पोतानेज ठपको आपवा लागी हती के, अरे! में ते घीनो घडो तने जाळवीने न आप्यो, तेम रबारणे पण एम कहेवुं जोइतुं हतुं के, तमोए तो मने ते घडो जाळवीने आप्यो, परंतु में ते जाळवीने लीधो नहीं; एम जो तेओ बोलते, तो तेओने क्रोधना आवेशनुं दुःख थते नहीं ॥ १३७ तेम घीनी हानि पण न थात, तथा वहेला वहेलाज बीजा साथीओनी साथे गाम जवात, अने तेथी वच्चे चोरोनो उपद्रव पण न थात, अने एवी रीते तेओ सुखना पात्ररूप थात ॥ १३८ ॥ एवी रीते अहीं पण कोइ रीते उपयोग आदिक विना आचार्य महाराजथी जो कंइं उलटी रीते व्याख्यान करांइ गयुं होय अने पाछळथी ते व्याख्याननुं ज्यारे यथास्थित स्वरूप याद आव्युं होय, तो आचार्यजी महाराजे, शिष्य ज्यारे एवं कहेलुं व्याख्यान विचारतो होय त्यारे एम कहेवुं जोइये के ॥ १३९ ॥

वत्स मैवं व्याख्यः, मया तदानीमनुपयुक्तेन व्याख्यातं, तत एवं व्याख्याहि ॥ १४० ॥ तत एवमुक्ते सति यो विनेयः कुलीनो विनीतात्मा, स एवं प्रतिवदति. यथा भगवंतः किमन्यथा प्ररूपयंति. केवलमहं मतिदौर्बल्यादन्यथाऽवगतवानिति, स एकांतेन योग्यः ॥ १४१ ॥

हे वत्स ! तुं एवी रीते तेनो अर्थ नहीं करजे. में ते वखते मारो उपयोग बरोबर नहीं होवाथी तने एम शिखावेलुं छे, माटे तेनो आवी रीते अर्थ कर ? ॥ १४० ॥ एवी रीते गुरु महाराज कहे ते छते, जे शिष्य कुलीन अने विनयी होय ते गुरु महाराजने एवो प्रत्युत्तर आपे के, आप साहेब मने उलटी रीते शामाटे समजावो. केवळ मारी बुद्धि शून्य होवाथी हुं उलटी रीते समज्यो छुं; एम कहेनारा शिष्यने एकांते योग्य जाणवो ॥ १४१ ॥

इति द्वादशस्तरंगः समाप्तः

अथ त्रयोदशस्तरंगः

एवं बहुधा श्रोतृविषयं योग्याऽयोग्यस्वरूपं निरुप्येदानीं योग्यानेव कतिचिदाह—मूलम्—अत्थी समत्थ मज्झत्थ । परिक्खगधारगावि से सन्नू ॥ अपमत्त थिर जिइंदीअ । धम्मस्स पसाहगा पायं ॥ १ ॥

एवी रीते घणे प्रकारे श्रोताओ संबंधि योग्य अयोग्यनुं स्वरूप निरूपण करीने, हवे केटलाक योग्योनुंज वर्णन करे छे—मूळनो अर्थः—अर्थी, समर्थ, मध्यस्थ, परीक्षक, धारक, विशेषज्ञ, प्रमादविनानो, स्थिरचित्तवाळो तथा जितेंद्रिय, एटला प्राये करीने धर्मना प्रसाधक एटले योग्य छे ॥ १ ॥

पदघटना स्पष्टा, तत्रार्थिस्वरूपमाह, अत्थी पुण जो धम्मं । निहिमिव नट्टं गवेसए सम्मं ॥ तज्जाणगे अ पुच्छइ । सुविआरो तुसए हविइं ॥ १ ॥ अन्यत्रापि. अत्थी एत्थं सो पुण । जो संसारिअजयं परिवहंतो ॥ एसो च्चिअ परमत्थो । सेसोणत्थोत्तिमन्नंतो ॥ २॥ पुच्छइ गुरुणो तद्भेय । विसयववहारनिच्छयाइगयं ॥ तस्स सरूवं अणुदिण । मज्झ हिअं कयसमुट्ठाणो ॥ ४ ॥ धम्मिअजणेणुरज्जइ । सज्जइ अ ससत्तिओ अणुट्ठाणे ॥ वज्जइ अ तव्विरुद्ध—पवित्तिपवणं जणं दूरे ॥ ५ ॥ तक्कहनिसामणेण वि । हरिसिज्जइ खिज्जइ असुहकिच्चे ॥ धम्माणत्थीण इमे । दूरविरुद्धासमायारा ॥ ६॥

आ गाथानी पदरचना स्पष्ट छे; तेमां अर्थीनुं स्वरूप कहे छे; जे माणस नष्ट थयेला निधाधनने जेम, तेम धर्मने सम्यक प्रकारे गवेषे छे, तथा धर्मना जाणकारने पूछ्याकरे छे, तेमज धर्मने मेळवीने जे मनुष्य थाय छे, तेने उत्तम विचारवाळो अर्थी जाणवो ॥ १ ॥ बीजी जगोए पण कह्युं छे के, अहीं अर्थी तेने जाणवो, के जे, संसारसंबंधि व्ययने धारण करतो होय, तथा तेम करवुं तेज परमार्थ छे, अने बाकीनुं निरर्थक छे, एम जे माने छे, ते अर्थी छे; ॥ ३ ॥ वळी जे गुरुपासे धर्मना भेद तथा विषयने पूछे छे, तथा संसारथी वैराग्ययुक्त थइने हमेशा हृदयनी अंदर निश्चय व्यवहारपूर्वक ते धर्मनुं स्वरूप चिंतवे छे, तेने अर्थी जाणवो ॥ ४ ॥ वळी जे धर्मी मनुष्यपर अनुराग धारण करे छे, तेम समर्थ थयोथको धर्मक्रियामां जे तत्पर थाय छे; तेमज जे धर्मविरुद्ध प्रवृत्ति करनारा मनुष्यने दूर तजे छे ॥ ५ ॥ वळी धर्मकथा सांभळवामां पण जे हर्षित थाय छे, तथा अशुभ कार्यमां जे अनादरपणुं धारे छे, तथा जेणे विरुद्ध आचरणो दूर कर्यां छे तेओने धर्मना अर्थी मनुष्यो जाणवा ॥६॥

इअलक्खणो अ नेओ । अत्थी जोग्गो विसेसधम्मस्स ॥ एअविलक्खण-
क्खो य । जाणियव्वो अजुग्गोत्ति ॥ ७ ॥ अपिच, जह भोअणंमि इच्छा जओ-
वइआए जहव अणुरागो ॥ तह अत्थित्तं सारं । परलोअपहाणचिट्ठासु ॥ ८ ॥
न य विज्जोवि हु विज्जंत । गुरुअरोगंपि रोगिणं दट्ठुं ॥ अणिच्छिमयतिगिच्छिं अ ।
तिगिच्छिउं वंछई कहवि ॥ ९ ॥ किंच, संधुक्ष्यमाण इव भस्मनि वह्निशून्ये,
संज्ञाप्यमाण इव वा बधिरे मनुष्ये, अर्थित्ववर्जितहृदि प्रविधीयमानः संपद्यते हि वि-
फलः सुधियां प्रयासः, ततोऽर्थी धर्मस्य योग्यः सोमवसुविप्रवत् ॥ १० ॥ कौशांब्यां
सोमवसुर्विप्रोऽन्यदा कथकपार्श्वे धर्मं श्रुत्वाऽप्राक्षीत्, भोः कस्य पार्श्वे सम्यग् धर्मोऽस्ति
॥ ११ ॥

एवी रीतनां उपर वर्णवेलां लक्षणोवाळो मनुष्यने अर्थी जाणवो अने ते विशेष धर्मने योग्य छे; तथा तेथी उलटां लक्षणवाळाने अयोग्य जाणवो ॥ ७ ॥ वळी पण, भोजनमां जेम इच्छा थाय छे, तथा जेम स्त्री-पर अनुराग थाय छे तेम परलोक संबंधी उत्तम चेष्टाओमां जे अर्थिपणुं धारण करवुं, ते सारभूत छे ॥ ८ ॥ जेने पोताने माटे औषध करवानी इच्छा नथी, एवा महोटा रोगवाळा रोगीने जोइने पण तेनी दवा करवाने वैद्य कोइ पण रीते इच्छा करतो नथी ॥ ९ ॥ वळी अग्निरहित राखमां संधुक्षण मूकवानी पेठे, तथा बहेरा मनुष्यने ज्ञापन करवानी पेठे, अर्थीपणाथी रहित हृदयवाळा मनुष्य प्रते उत्तम बुद्धिवानोनो (धर्मोपदेश आदिकनो) प्रयास निष्फळ थाय छे; माटे सोमवसु ब्राह्मणनी पेठे अर्थी मनुष्य धर्मने योग्य छे ॥ १० ॥ कौशांबी नगरीमां सोमवसु नामनो ब्राह्मण एक वखत कथा कहेनार पासेथी धर्म सांभळीने तेने पूछ्युं के, उत्तम धर्म कोनी पासे छे ॥ ११ ॥

कथकः प्रोचे, 'मिट्ठं भुंजेअव्वं, सुहं सुएअव्वं, लोगप्पिओ अप्पा कायव्वो' एतत्पदत्रयस्यार्थं यः सम्यगवगच्छति पालयति च, तत्पार्श्वे सम्यग्धर्मः ॥ १२ ॥ ततः स विविधान् दर्शनिनस्तदर्थं पृच्छन् क्वचिद्ग्रामे तापसमठे प्रापत्, तापसपार्श्वेऽर्थं पृच्छति ॥ १३ ॥ सोऽप्याह, अस्मद्गुरुणाप्येवमेवादिष्टं, परमर्थो नाऽख्यायि, ततो मया स्वधियेत्थं क्रियते ॥ १४ ॥ मंत्रौषधादिविधिभिर्लोकप्रिय आत्मा कृतः, तेनाहं मिष्टं भोजनं भुञ्जे, इह मठे निश्चिंतः सुखेन स्वपिमीति ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा दध्यौ द्विजः, नायमर्थः संगच्छते, यतः—मंतोसहिपमुहेहिं । जायइ जीवाण घायणं नूणं ॥ ता लोगपिओ अप्पा । कह परमत्थेण इअ होई ॥ १६ ॥

कथा करनारे कह्युं के, 'मिष्टान्न खावुं, सुखे सुवुं, तथा लोकप्रिय आत्मा करवो' ए त्रण पदोनो अर्थ जे सम्यक् प्रकारे जाणे छे, अने पाळे छे तेनी पासे उत्तम धर्म छे ॥ १२ ॥ पछी ते ब्राह्मण जुदा जुदा दर्शनोवाळाने तेनो अर्थ पूछतो थको कोइक गामना तापसना मठमां पहोंच्यो, तथा तापसने तेनो अर्थ पूछवा लाग्यो ॥ १३ ॥ त्यारे ते तापसे पण कह्युं के, अमारा गुरुए पण एमज कह्युं छे, परंतु तेनो अर्थ कह्यो नथी, अने तेथी हुं मारा बुद्धिपूर्वक तेने मुजब करुं छुं ॥ १४ ॥ मंत्र तथा औषधी आदिकनी विधिथी में लोकप्रिय आत्मा कर्यो छे; अने तेथी मने मिष्टान्न भोजन मळे छे, अने आ मठमां निश्चिंत थइ सुखे सुतो रहुं छुं ॥ १५ ॥ ते सांभळीने ब्राह्मणे विचार्युं के, आ अर्थ लागु पडी शकतो नथी; केमके—मंत्र, औषधी आदिकथी खरेखर जीवोनो विघात थाय छे; माटे परमार्थथी लोकप्रिय आत्मा शी रीते थाय? ॥ १६ ॥

पाएण मिच्छत्तं । जणेइ जीवाण गाढरसगिद्धिं तत्तो भवपरिवुड्ढी । ता परमत्थेण कडुअमिणं ॥ १७ ॥ सुखशय्यापि धर्मार्थिनां निषिद्धा, यदुक्तं—सुखशय्यासनं स्नानं तांबूलं वस्त्रमंडनं ॥ दंतकाष्ठं सुगंधं च । ब्रह्मचर्यस्य दूषणं ॥ १८ ॥ ततस्तं पृष्ट्वा तत्सतीर्थ्यपार्श्वे गतोऽर्थं पृच्छति, स प्राह, एकांतरोपवासकरणेन मिष्टं भुंजे, अध्ययनध्यानपरः सुखं स्वपिमि, निरीहत्वेन लोकप्रियोऽस्मीति ॥ १९ ॥ एतदाकर्ण्य पुनरचिंतयद्विप्रः, एषः वरीयान्, परमेषोऽपि यत्र भुंक्ते तत्रैतदर्थं भोजने निष्पाद्यमाने महती जीवविराधनेति कथं लोकप्रियत्वं, ततः पाटलीपुत्रे प्राप्तः ॥२०॥ सुलोचनमंत्रिपुत्रीं नरवाहनारूढां महोत्सवादागच्छंतीं दृष्ट्वा कंचिदप्राक्षीत्, केयमित्यादि ॥ २१ ॥

मिष्टान्न भोजन प्राये करीने जीवोनुं अत्यंत रसलोलुपपणुं उत्पन्न करे छे, अने तेथी संसारनी वृद्धि थाय छे, तथा तेथी परमार्थे करीने ते भोजन कडवुं छे ॥ १७ ॥ वळी धर्मना अर्थिओ माटे सुख शय्या पण निषेधेली छे, कह्युंछे के—सुख शय्यापर बेठक, स्नान, तांबुल वस्त्र, आभूषण, दातण, तथा सुगंधी, एटलांवानां ब्रह्मचर्य प्रत्ये दूषणवाळां छे ॥ १८ ॥ पछी एवी रीते तेने पूछीने तेना सोबती पासे जइने ते पूछवा लाग्यो; त्यारे तेणे कह्युं के, हुं तो एकांतर उपवास करीने मिष्ट भोजन करुं छुं, तथा शास्त्राभ्यासना ध्यानमां तत्पर थइ सुखे सुउं छुं, तेमज निस्पृहपणाथी हुं लोक प्रिय थइ पड्यो छुं ॥ १९ ॥ ते सांभळीने फरीने ब्राह्मणे विचार्युं के, आ कंइक ठीक छे, परंतु ते पण ज्यां भोजन करे छे, त्यां तेने माटे भोजन तैयार करातुं होवाथी मोटी जीवोनी विराधना थवी जोइये, माटे तेमां पण लोकप्रियपणुं शी रीते घटी शके? पछी ते पाटलीपुत्र नगरमां गयो ॥ २० ॥ त्यां मनुष्योए उंचकेली पालखीमां बेसीने महोत्सवपूर्वक आवती एवी सुलोचनमंत्रिनी पुत्रीने जोइने, तेणे कोइन पूछयुं के, आ कोण छे? इत्यादि ॥ २१ ॥

सोऽन्यथात्. इयं मंत्रिपुत्री नृपसभायां पूरितसमस्या लब्धनृपप्रसादाऽस्येति, समस्या चेयं ॥ २२ ॥ तेन शुद्धेन शुध्यति. पूरिता चैवं, यत्सर्वव्यापकं चित्तं । मलिनं दोषरेणुभिः ॥ सद्विवेकांबुसंपर्कात्—तेन शुद्धेन शुध्यति ॥ २३ ॥ तद्वचनकौशलं श्रुत्वा चमत्कृतस्तज्जनकमंत्रिणः पार्श्वे पदत्रयार्थं पृच्छति ॥ २४ ॥ मंत्र्याह, अकृतमकारितं शुद्धं मधुकरवृत्त्या लब्धं रागद्वेषविमुक्तं मंत्रादिप्रयोगवर्जितमाहारं यो भुंक्ते स मिष्टभोजी. अशुद्धं मोदकाद्यपि कटुकमेव ॥२५॥ यदुक्तं—'अजयं भुंजमाणो अ' यश्च सर्वजीवहितः सुवर्णाद्यर्थनिःस्पृहश्च स लोकप्रियः, यः पुनः स्वाध्यायध्यानपरोऽवसरे शेते स सुखशायीति ॥ २६ ॥

त्यारे ते मनुष्ये तेने कह्युं के, आ मंत्रीनी पुत्री राजसभामां समस्या पूरीने, तथा राजानी कृपा मेळवीने आवि छे; अने ते समस्या नीचे मुजब छे ॥ २२ ॥ 'ते शुद्धथी शुद्ध थाय छे' एवी रीतनी समस्याने नीचे मुजब पूरेली छे; सर्व व्यापक एवुं जे चित्त दोषोरूपी रजथी मलिन थयेलुं छे, ते सद्विवेकरूपी जलना संगथी जो शुद्ध थाय, तो तेथी आत्मा शुद्ध थाय छे ॥ २३ ॥ एवी रीते तेणीना वचननी कुशलता जोइने आश्चर्य पामेलो ते ब्राह्मण तेणीना पिता मंत्री पासे ते त्रणे पदोनो अर्थ पुछवा लाग्यो ॥ २४ ॥ त्यारे मंत्रीए कह्युं के, (पोता माटे) नहीं करेलुं, नहीं करावेलुं, शुद्ध, मधुकरवृत्तिथी मेळवेलुं, रागद्वेष विनानुं तथा मंत्र आदिकना प्रयोग विनानुं जे भोजन करे छे, ते मिष्टभोजन करनारो छे; तथा अशुद्ध एवुं लाडु आदिकनुं भोजन पण कडवुंज छे ॥ २५ ॥ कह्युं छे के—जयणा रहित भोजन करनार अनेक जीवोनो संहार करवाथी पापकर्म बांधे छे अने तेनुं कटुक फळ भोगवे छे, वळी, जे मनुष्य सर्व जीवोनो हितकारी छे, तथा सुवर्ण आदिक धननो निस्पृही छे, ते लोकप्रिय छे; तथा जे सज्झाय ध्यानमां तत्पर थया थको अवसरे सुए छे, ते सुखे सुनारो छे ॥ २६ ॥

तन्निशम्य विप्रः स्माह, कोऽपि किमीदृशोऽप्यस्ति, मंत्र्युचे जैनमुनयः संत्येव ॥ १७ ॥ ततः स तत्र गतो विहरणादौ मिष्टभोजनं, प्रतिलेखनादौ रात्रौ च तृतीययामे वैश्रमणोपपाताध्ययनगुणनाकृष्टधनदेन वरदानेऽपि निरीहत्वाल्लोकप्रियत्वं, ध्यानपरत्वेन सुखशय्यां च परीक्ष्य तद्धर्मं प्रपद्य स्वर्गं क्रमान्मोक्षं च प्राप्तवानिति ॥ १८ ॥ तथा समर्थो धर्मस्य योग्यः, समर्थलक्षणं च,—होइ समत्थो धम्मं । कुणमाणो जो न बीहइ परेसिं ॥ माइपिइसामिगुरु—माइआण धम्माउ भिन्नाण ॥ १९ ॥

ते सांभळीने ब्राह्मणे कह्युं के, शुं कोइ एवो पण छे? मंत्रीए कह्युं के, जैनमुनिओ एवाज छे ॥ १७ ॥ पछी ते जैनमुनि पासे गयो, त्यां वहोरवा आदिकमां मिष्ट भोजन पडिलेहण आदिकमां तथा रात्रिए त्रीजे पहोरे वैश्रमणोपपात नामना अध्ययनना गणवाथी आकर्षायेला कुबेरे वरदान देवा मांडतां पण मुनिओने निस्पृही जोइने तेमनुं लोकप्रियपणुं जाण्युं तथा ध्यानमां तत्पर पणाथी करीने सुखशय्या जाणी; एवी रीतनी तेमनी परीक्षा करीने, तथा ते धर्म स्वीकारीने स्वर्गे अने अनुक्रमे ते मोक्षे गयो ॥ १८ ॥ वळी समर्थ माणस पण धर्मने योग्य छे; समर्थनुं लक्षण नीचे मुजब छे. धर्म करतो थको जे माणस परथी डरतो नथी तेम माता, पिता, स्वामी, गुरु तथा भाइ, के जे भिन्न धर्मवाळा छे, तेओथी पण डरतो नथी, ते माणस समर्थ छे ॥ १९ ॥

(जुओ दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ४ थुं)

तह जो पुव्वच्चिअ देवयाइ तक्कारपूअणाविरहे ॥ कीरइ नेव तक्कय—विग्घुवसग्गाइएहिंपि ॥ ३० ॥ हुंतीह केइ पुरिसा । सरलसमुक्खित्तधम्मभारं ॥ पच्छा विग्घोवहया । हयव्व उज्झंति दुद्दंता ॥ ३१ ॥ अपि च. सो धम्मे पडिबुद्धो । विग्घोवहओवि जो समुज्जमइ ॥ तयभावे सव्वोविहु । धम्मद्दिगारी नवे इहरा ॥ ३२ ॥ गोत्रदेवीकृतविविधोपसर्गोऽप्याजितस्वधर्मदृढिमश्रीकुमारपालनृपारामनंदनशुकपरिव्राजकाचार्याऽक्षोभितसुदर्शनश्रेष्ठिमातापित्रादिस्वजनाद्यप्याजितधर्मोऽमरदत्तादयश्चात्र दृष्टांता ज्ञेयानीति ॥ ३३ ॥

तेम वळी जे माणसे पूर्वे जे देव आदिकोने पूजेला होय, अने तेओनी ते वखते पूजानो विरह थवाथी, ते देवोए करेला विघ्न तथा उपसर्ग आदिकथी पण जे बीतो नथी. ते पण समर्थ छे ॥ ३० ॥ आ जगतमां एवा पण केटलाक पुरुषो छे, के जेओ सहसा धर्मनो भार धारण करीने पाछळथी विघ्नोथी हणाया थका अवळी चालना घोडानी पेठे तेने छोडी आपे छे ॥ ३१ ॥ वळी पण, तेने धर्ममां प्रतिबोध पामेलो जाणवो, के जे, विघ्नोथी हणाया छतां पण ते धर्म प्रत्ये उद्यमवंत थइ रहे छे; अने विघ्नो जो न नडे, तो तो बीजा पण सघळा धर्मना अधिकारी थइ शके छे ॥ ३२ ॥ अहीं गोत्रदेवीए करेला नाना प्रकारना उपसर्गोथी पण जेणे पोताना धर्मनी दृढता तजी नथी, एवा कुमारपाळ राजा, आरामनंदन, शुक परिव्राजकाचार्यथी नहीं क्षोभ पामेला सुदर्शन शेठ, माता पिता आदिक तथा स्वजन आदिके पण नथी तजावेला धर्म जेने एवा अमरदत्त आदिकनां दृष्टांतो अहीं जाणवां छे ॥ ३३ ॥

तथा मध्यस्थो धर्मग्रहणेऽधिकारी, तल्लक्षणं च, न हु कुग्गहग्गहिअमई । सुविआरी जो सुदक्खयाइगुणो ॥ नकहिं विसत्तचित्तो । मज्झत्थो सो सुए भणिओ ॥ ३४ ॥ स एव हि यथास्थितं धर्माधर्मादिवस्तुतत्वं परिछिनत्ति, यदुक्तं—विमलंमि दप्पणे जह । पडिबिंबइ पासवत्तिवत्थुगणो ॥ मज्झत्थंमि तहा नणु । संकमई समग्गधम्मगुणो ॥ ३५ ॥ अपिच, अशास्त्रजं संस्करणं हि बुद्धेः—रलोचनं वस्तुविलोकनं च ॥ आचार्यशिक्षाव्यतिरिक्तमेव । माध्यस्थ्यमाहुः परमं पटुत्वं ॥ ३६ ॥ दृष्टांताश्चात्र प्रागुक्तसोमवसुविप्रादयः, तथा परीक्षको योग्यः सारेतरवस्तुपरीक्षैकपरत्वात् कुरुचंद्रनृपादिवत् ॥ ३७ ॥

वळी मध्यस्थ मनुष्य पण धर्म ग्रहण करवामां अधिकारी छे; अने तेनुं लक्षण नीचे मुजब छे: जेनी कदाग्रहयुक्त बुद्धि नथी, जे उत्तम विचारवाळो छे, तथा जे दक्षपणा आदिक उत्तम गुणवाळो छे, तेमज जे क्यांय पण रागी के द्वेषी नथी, तेने सिद्धांतमां मध्यस्थ कहेलो छे ॥ ३४ ॥ अने तेवो मध्यस्थ मनुष्यज धर्माधर्मादिवस्तुतत्त्वने यथार्थ रीते जाणी शके छे, कह्युं छे के—जेम निर्मल दर्पणमां पासे रहेली वस्तुओनां समूहनुं प्रतिबिंब पडे छे, तेम मध्यस्थ मनुष्यमां खरेखर धर्मना सघळा गुणो संक्रमे छे ॥ ३५ ॥ शास्त्रनी सहाय विनाज बुद्धिने मांजनार अने चक्षुनी सहाय विनाज वस्तु स्वरूपने विलोकन करनार एवुं आचार्यनी शिक्षा (शीखामण, —केळवणी) विनाज प्राप्त थयेलुं मध्यस्थपणुं परम पटुताभर्युं छे अर्थात् मध्यस्थता एज खरेखरी पटुता—कुशळता छे. ॥ ३६ ॥ अहीं पूर्वे कहेला सोमवसु विप्र आदिकनां दृष्टांतो जाणी लेवां; वळी परीक्षा करनार मनुष्य पण योग्य छे. केमके ते कुरुचंद्र राजा आदिकनी पेठे सार असार वस्तुनी परीक्षा करी शके छे; ॥ ३७ ॥

अपरीक्षकः पुनर्मोदकादिग्रहणतो रत्नादित्यागिशिश्वादिवत् सारत्यागेनाऽसारग्राही स्यात् ॥ ३८ ॥ तदुक्तं—परीक्षका यत्र न संति देशे । नार्घंति रत्नानि समुद्रजानि ॥ आभीरदेशे किल चंद्रकांतं । त्रिभिर्वराटैः प्रवदंति गोपाः ॥ ३९ ॥ ततः सम्यग्धर्मवस्तुनोऽपरिच्छेदकत्वादयोग्यः सः, कुरुचंद्रनृपकथा त्वियं ॥ ४० ॥ कांचनपुरे कुरुचंद्रनृपतिः कुरुते राज्यं, मंत्री गेहकः, स जैनो राज्ञोऽग्रे जिनधर्मं श्लाघते, राजाह कथं ज्ञायते सत्यमेष धर्म इति ॥ ४१ ॥ मंत्र्यूचे, परीक्षया सारेतरवस्तुनिर्धारः,यदुक्तं—मणिर्लुठतु पादाग्रे । काचः शिरसि धार्यताम् ॥ परीक्षककरप्राप्तः काचः काचो मणिर्मणिः ॥ ४२ ॥

अने जे परीक्षा नथी करी शकतो, ते तो मोदक आदिकने लइ रत्न आदिकनो त्याग करनारा बालक आदिनी पेठे, सार वस्तुने छोडी असार वस्तुने ग्रहण करनारोज थाय ॥ ३८ ॥ कह्युं छे के— जे देशमां परीक्षको नथी, त्यां समुद्रमां उत्पन्न थतां रत्नोनी मागणी थती नथी; केमके आहीरोना देशमां गोवालीआओ चंद्रकांत मणिने त्रण कोडीनो कहे छे ॥ ३९ ॥ माटे धर्मना तत्त्वने जे सम्यक् प्रकारे जाणतो नथी, ते अयोग्य छे. कुरुचंद्र राजानी कथा नीचे मुजब छे ॥ ४० ॥ कांचनपुर नामना नगरमां कुरुचंद्र नामे राजा राज्य करे छे; तेने गेहक नामे मंत्री छे; ते जैन होवाथी राजा पासे जिनधर्मना वखाण करे छे; त्यारे राजाए कह्युं के, ते धर्म सारो छे. ए वात केम जणाय? ॥ ४१ ॥ मंत्रीए कह्युं के, परीक्षा करवाथी सार असार वस्तुनो निर्धार थाय छे. कह्युं छे के, मणि कदाच पगे रखडातो होय, अने काचने मस्तकपर धारण करातो होय, परंतु ज्यारे तेओ परीक्षकना हाथमां आवे, त्यारे काच ते काचज परखाय अने मणि ते मणिज परखाय ॥ ४२ ॥

अपि च, आगमेन च युक्त्या च । योऽर्थः समभिगम्यते ॥ परीक्ष्य हेमवद् ग्राह्यः । पक्षपातग्रहेण किं ॥ ४३ ॥ न च,—पुराणं मानवो धर्मः । सांगो वेदश्चिकित्सितं ॥ आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः ॥ इत्यादिकग्रहविलसितं मनस्यवधार्यं ॥ ४४ ॥ यदुक्तं—वस्त्वेव तन्नहि भवेत् क्रियतेऽन्यथा यत् कश्छादयेद्दिनमणिं करसंपुटेन ॥ सारेतरेतरविचारपरः परोऽर्थेस्तेनाहमेव खलु दुर्जनचक्रवर्ती ॥ ४५ ॥ इत्यादि, ततो नृपः सर्वदर्शनिनां हृद्गतवैराग्यपरीक्षार्थं 'सकुंडलं वा वदनं न वेति' इति समस्यापदमार्पिपत् ॥ ४६ ॥

वळी पण, आगमथी तथा युक्तिथी जे अर्थ मळी शके तेने परीक्षा करीने सुवर्णनी पेठे ग्रहण करवो. पक्षपात ग्रहण करवाथी शुं छे ॥ ४३ ॥ वळी पुराण, मनुस्मृति (मानवशास्त्र) अंगोसहित वेद तथा वैद्यक ए चारे आज्ञाथीज सिद्ध छे. माटे तेओने हेतुओथी हणवां नहीं' इत्यादिक कदाग्रहयुक्त बाबत मनमां धरवी न जोइये ॥ ४४ ॥ कह्युं छे के—'जे वस्तुज न होइ शके के जे अन्यथा कराय, जेमके सूर्यने हस्तसंपुटथी कोण आच्छादी शके छे? माटे सार तथा असार वस्तुना तफावतनो विचारकरनार मनुष्य ईर्षा करनारो पण हुंज अने र! दुर्जनोनो सरदार छुं ॥ ४५ ॥ इत्यादि, पछी राजाए सर्व दर्शनोवाळाना हृदयमां रहेला वैराग्यनी परीक्षामाटे 'मुख कुंडलवाळुं हतुं के नहीं' एवी रीतनुं समस्यानुं पद आप्युं ॥ ४६ ॥

ततः प्रथमं बौद्धः प्राह, मालाविहारंमिगएण दिट्ठा । उवासिआ कंचणभूसिअंगी ॥ वक्खित्तचित्तेणमए न नायं । स कुंडलं वा वयणं नवत्ति ॥ ४७ ॥ इत्यादिप्रकारैः सर्वैरप्यपरदर्शनिभिः शृंगाररसेनैव पूरिता सा समस्या विसंवदति धर्मे ॥ ४८ ॥ मंत्र्याकारितो जैनमुनिस्तु—खंतस्स दंतस्स जिइंदिअस्स । अज्झप्पजोगे गयमाणसस्स ॥ किंमज्झएएण विचिंतिएण । सकुंडलं वा वयणं न वत्ति ॥ ४९ ॥ इति नामपूरयत्, तच्छ्रुत्वा चमच्चक्रे पृथ्वीशक्रः, यतः,—क्षणादसारं सारं वा वस्तु सूक्ष्मं परीक्षते ॥ निश्चिनोति महत्पूर्णां । तूलोच्चयशिलोच्चयौ ॥ ५० ॥ ततः प्रतिबुद्धः प्रपन्नवान् जिनधर्मं क्रमात्त्रिदिवपदमपीति ॥ ५१ ॥

त्यारे प्रथम बौद्धदर्शनवाळो बोल्यो के, हुं ज्यारे माळा, विहारमां गयो हतो, त्यारे सुवर्णथी भूषित थयेलां शरीरवाळी स्त्री त्यां बेठेली में जोइ; परंतु मारुं चित्त विक्षिप्त थवाथी में जाण्युं नहीं के, मुख कुंडलसहित हतुं के नहीं ॥ ४७ ॥ एवी रीते बीजा सघळा अन्य दर्शनीओए पण ते समस्या शृंगार रसथीज पूर्ण करी, अने तेथी ते धर्म साथे विसंवाद करनारी थइ ॥ ४८ पछी मंत्रीए बोलावेला जैन मुनिए तो (नीचे मुजब ते समस्या पूरी) क्षांत, दांत, जितेंद्रिय, तथा जेनुं मन अध्यात्म योगमां गयुं छे, एवा मारे तेनुं मुख कुंडलवाळुं छे के नहीं ? ते संबंधमां विचार करवानीज शी जरुर छे ? ॥ ४९ ॥ एवी रीते जैन मुनिए ते समस्या पूरी; ते सांभळीने राजा तो आश्चर्य पाम्यो; केमके सार अथवा असार वस्तुनी परीक्षा क्षणवारमांज निपुणमति करेछे; कारणके त्राजु रुना पुंबडांओना समूहनो तथा पत्थरोना समूहनो तुरत निश्चय करी दे छे ॥ ५० ॥ एवी रीते राजाए प्रतिबोध पामीने जैन धर्म अंगीकार कर्यो; अने अनुक्रमे ते मोक्षे पण गयो ॥ ५१ ॥

तथा धारयति यथोक्तं धर्माऽधर्मादिवस्तुतत्त्वमिति धारकः, स धर्मस्य योग्यः. अणि-मिसनयणा मण—कज्जसाहणा पुप्फदाममब्भिलाणा ॥ चउरंगुलेण भूमिं न छिवंति सुरा जिणा बिंति ॥ ५२ ॥ इति गाथाधारकरौहिणेयवत्, उपशमविवेकसंवरेति त्रिप-दीधारकचिलातीपुत्रवत् ॥ ५३ ॥ सर्वत्र ध्यातसमता—हचिर्मुच्येत पातकात् ॥ क्रूरक-र्मापि तिमिरैः । कृतदीप इवालयः ॥ इति श्लोकधारककेसरिचोरवत् ॥ ५४ ॥ श्री-वर्धमानजिनसमवसरणागततद्देशनाधारकाराधकैकचित्तेतिप्रसिद्धाभिधानकुमारद्वयवच्च त-त्संबंधश्च 'बोहीए तणनाणेणेति' दिनकृत्यगाथावृत्तेर्ज्ञेयः. ततश्चाऽधारकोऽयोग्य इति निदर्शितं ॥ ५५ ॥

वळी जे धर्म अधर्म आदिक वस्तुतत्त्वने यथोक्त रीते धारे छे, ते धारक कहेवाय अने ते धर्मने योग्य छे; निमेषरहित आंखोवाळा, मनमां चिंतवेला कार्यने साधनारा, जेओनी पुष्पमाळा करमाती नथी, तथा जे पृथ्वीथी चार आंगुल अधर रहे छे, तेने देवो जाणवा एम जिनेश्वरो कहे छे ॥ ५२ ॥ एवी रीतनी गाथाने धारण करनार रौहिणेयक चोरनी पेठे योग्य जाणवा; तेमज 'उपशम, विवेक, अने संवर' एवी रीतना त्रण पदोने धारण करनारा चिलातीपुत्रनी पेठे पण योग्य जाणवा ॥ ५३ ॥ ज्यां दीपक करेलो छे, एवुं मकान जेम अंधकारथी मुकाय छे, तेम क्रूर कर्मोवाळो मनुष्य पण जो सर्व बाबतमां समतावाळुं ध्यान धरे, तो ते पापथी मुकाय छे, एवी रीतना श्लोकने धारनारा केसरि चोरनी पेठे पण योग्य जाणवा ॥ ५४ ॥ श्री वर्द्धमान प्रभुना समवसरणमां आवेला तथा तेमनी देशनाने धारनारा एवा आराधक अने एकचित्त एवां प्रसिद्ध नामवाळा बन्ने कुमारोनी पेठे योग्य जाणवा. ते बन्नेनुं वृत्तांत 'बोहिए तेणनाणेण' एवी रीतनी दिनकृत्यनी गाथानी वृत्तिथी जाणवुं माटे नहीं धारण करनारा अयोग्य छे, एम जणाव्युं ॥ ५५ ॥

तथा वस्त्ववस्तुनोः कृत्याकृत्ययोः स्वपरयोर्वा विशेषं जानातीति विशेषज्ञः, स धर्मस्यार्हः तदुक्तं--- वत्थूणं गुणदोसे । लक्खेइ अपक्खवायभावेणं ॥ पाएण विसेसन्नू । उत्तमधम्मारिहो तेण ॥ ७६ ॥ अथवा विशेषमात्मन एव गुणदोषाधिरोहलक्षणं जानातीति विशेषज्ञः, यदुक्तं—प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत । नरश्चरितमात्मनः ॥ किं नु मे पशुभिस्तुल्यं । किं नु सत्पुरुषैरिति ॥ ७७ ॥ श्रीधर्मदासगणिभिरपि, जो नवि दिणे दिणे संकलेइ के अज्ज अज्जिआमि गुणा ॥ अगुणेसु अ न हु खलिओ । कह सो उ करिज्ज अप्पहिअं ॥ ७८ ॥

वळी वस्तु अवस्तुना, कृत्य अकृत्यना, तथा स्वपरना तफावतने जे जाणे छे, ते विशेषज्ञ एटले विशेष जाणनारो कहेवाय, अने ते धर्मने योग्य छे. कह्युं छे के—विशेषज्ञ माणस प्राये करीने अपक्षपातपणाथी वस्तुना गुण दोषोने जाणे छे, अने तेथी ते उत्तम धर्मने योग्य छे ॥ ७६ ॥ अथवा विशेषज्ञ एटले पोतानाज गुण दोषरूप चडवाना लक्षणरूप विशेषने जे जाणे छे, ते विशेषज्ञ कहेवाय. कह्युं छे के—मनुष्ये हमेशां पोतानुं चरित्र जोवुं के शुं मारुं चरित्र पशु समान छे? के उत्तम पुरुषो समान छे? ॥ ७७ ॥ श्रीधर्मदास गणीजी महाराजे पण कह्युं छे के, जे मनुष्य दिन दिन प्रत्ये एवुं चिंतवतो नथी, के आजे में कया गुणो मेळव्या? तथा जे अवगुणोमांथी अटक्यो नथी, एवो मनुष्य आत्मानुं हित क्यांथी करे? ॥ ७८ ॥

यद्वा विशेषमात्मनो गत्यादिलक्षणं जानातीति विशेषज्ञः. तथा चाह,—इहोपपत्तिर्मम केन कर्मणा । कुतः प्रयातव्यमितो भवादिति ॥ विचारणा यस्य न जायते हृदि । कथं स धर्मप्रवणो भविष्यति ॥ ५९ ॥ अथवा विशेषं कालाद्युचितांगीकारादिलक्षणं, यद्यत्र कालादौ हातुमुपादातुं वा युक्तं तदादिस्वरूपमित्यर्थः, तं वेत्ति, तथा प्रवर्त्तते च यः स विशेषज्ञः ॥ ६० ॥ प्रदीपपात्रे रजस्तरतैलक्षेपादनुगतेन तैलेनोपानद्दर्दनकस्य श्वसुरस्यौदार्यादिपरीक्षार्थं तीव्रोदरव्यथावादिवधूजल्पीकोपशमनिमित्तमामलकप्रमाणमौक्तिकप्रवालादिचूर्णरोट्टककारकश्रेष्ठिवत् ॥ ६१ ॥

अथवा विशेष एटले आत्माना गति आदिक लक्षणरूप विशेषने जे जाणे छे, ते विशेषज्ञ कहेवाय; वळी कह्युं छे के, कया कर्मथी मारी अहीं उत्पत्ति थइ? तथा आ भवथी हवे मारे क्यां जवुं छे? एवी रीतनो विचार जेना हृदयमां थतो नथी, ते मनुष्य धर्ममां शी रीते तत्पर थशे ॥ ५९ ॥ अथवा विशेष एटले काल आदिक उचित अंगीकार आदिक लक्षणवाळा विशेषने, अर्थात् जे काल आदिकने विषे जे कंइ छोडवुं अथवा ग्रहण करवुं युक्त छे, ते आदिक स्वरूपने जे जाणे छे, तथा ते प्रमाणे जे प्रवर्ते छे, ते विशेषज्ञ कहेवाय ॥ ६० ॥ दीवाना पात्रमां उतावळथी पुरतां पडतां धूळवाळा पडेला तेलवडे करीने पगरखां चोपडनारा ससरानी उदारता आदिकनी परीक्षा माटे पेटमां घणो थयो दुखावो एवानुं कहेनारी वहुना पेटनी पीडा दूर करवा माटे आंबळां जवडां मोती तथा प्रवाळा आदिकना चूर्णनो रोटलो करनार शेठनी पेठे विशेषज्ञ जाणवो ॥ ६१ ॥

तथा च वधूं प्रति तच्छ्रेष्ठिवचः,—यः काकिणीमप्यपथप्रपन्ना—मन्वेषते निष्कसहस्रतुल्यां ॥ कालेन कोटिष्वपि मुक्तहस्त—स्तस्याऽनुबंधं न जहाति लक्ष्मीः॥ ६२ ॥ एवं धर्माधिकारेऽपि विशेषज्ञो योग्यः, यदागमः—सव्वत्थ संजमं । संजमओ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ॥ मुच्चइ अइवायाओ । पुणो विसोही नयाविरई ॥ ६३ ॥ विशेषज्ञविषया दृष्टांताश्चात्र श्रीअभयकुमारमंत्रिश्रीवज्रस्वामिश्रीमदार्यरक्षितसूर्यादयोऽवगंतव्याः ॥ ६४ ॥ तथा अप्रमत्तो निद्राविषयविकथामद्यादिप्रमादरहितः, स धर्मस्य योग्यः सूरप्रभनृपादिवत्, प्रमादिनो धर्मश्रद्धानादेरप्यनुत्पत्तेः, शशिनृपादेरिव, तदुक्तं—॥ ६५ ॥ ॥

वळी ते वखते ते शेठे पोताना पुत्रनी वहुने नीचे मुजब वचन कह्युं हतुं; जे कुमार्गे वपराती एक कोडीने पण जे हजार सोनामोहोरो सरखी जाणे छे, तथा वखत पडये क्रोडोगमेथी पण जे हाथ छुटावी दे छे, तेनो संग लक्ष्मी छोडती नथी ॥ ६२ ॥ एवी रीते धर्मसंबंधी अधिकारमां पण विशेषज्ञ योग्य छे; आगममां पण कह्युं छे के, सर्व अर्थथी पण संयमनी रक्षा करवी; तथा संयमथी पण आत्मानी रक्षा करवी; केमके (जो आत्मा हयात होशे तो) ते पापथी मुक्त थइ फरीने पण शुद्ध थइ शकशे, अने अविरतिपणुं रहेशे नहीं ॥ ६३ ॥ अहीं विशेषज्ञना संबंधमां श्री अभयकुमार मंत्री, श्री वज्रस्वामी तथा श्रीमान आर्यरक्षितसूरि आदिको दृष्टांतरूप जाणवा ॥ ६४ ॥ वळी अप्रमादी एटले निद्रा, विषय, विकथा तथा मद्य आदिक प्रमाद विनानो, अने तेवो मनुष्य सूरप्रभराजा आदिकनी पेठे धर्मने योग्य छे. प्रमादिने धर्मनी श्रद्धा आदिकनी पण शशी नृप आदिकनी पेठे प्राप्ति थती नथी कह्युं छे के—॥ ६५ ॥

पापासक्के चेतसि । धर्मकथाः स्थानमेव न लभंते ॥ नीलीरक्ते वाससि । कुंकुमरागो दुराधेयः ॥ इति ॥ ६६ ॥ स्थिरो नामैकाग्रचित्तः, स धर्मस्य योग्यः, अस्थिरचित्तानां क्षीरास्रवादिलब्धिभिरपिबोधयितुमशक्यत्वात्, एकचित्ताभिधकुमारद्वयमध्यात् श्रीवीरवचनाऽप्रतिबुद्धकुमारवत् ॥ ६७ ॥ जितान्यत्यासक्तिपरिहारेण वशीकृतानींद्रियाणि स्पर्शनादीनि येन, स जितेंद्रियो धर्मोपदेशानां योग्यः ॥ ६८ ॥ अजितेंद्रियो हि विषयतृष्णया बाध्यते, तद्बाधितश्च न श्रद्धत्ते हितोपदेशाद्यैहिकमपि, दूरे धर्मस्य तथापि सीतारूपाक्षिप्तरावणनृपवत् ॥ ६९ ॥

पापोथी आसक्त थयेला चित्तमां धर्मकथाने तो स्थानज मळतुं नथी. केमके गळीथी रंगेलां वस्त्रपर केसरनो रंग चडी शकतो नथी इति ॥ ६६ ॥ स्थिर एटले एकाग्र चित्तवाळो मनुष्य जाणवो, अने ते धर्मने योग्य छे; वळी जेओनुं मन अस्थिर छे, तेओने क्षीराम्रवादिलब्धिवाळाओ पण प्रतिबोधि शकता नथी; (कोनी पेठे? तो के) एक चित्त नामना बन्ने कुमारोमांथी श्री वीरप्रभुना वचनथी नहीं प्रतिबोध पामेला कुमारनी पेठे ॥ ६७ ॥ अत्यंत आसक्ति तजवावडे करीने जितेल छे, अर्थात् वश करेल छे स्पर्श आदिक इंद्रिओ जेणे ते जितेंद्रिय कहेवाय, अने ते धर्मोपदेशने योग्य छे ॥ ६८ ॥ वळी जेणे इंद्रियो जितेली नथी एवो मनुष्य विषयनी तृष्णाथी दुःखी थाय छे, अने तेथी दुःखी थयो थको आ लोक संबंधी हितोपदेश पर पण ते श्रद्धा करतो नथी; धर्म कथा तो त्यारे दूरज रही; (कोनी पेठे तो के) सीताना रूपथी व्याकुळ थयेला रावण नृपनी पेठे ॥ ६९ ॥

सरस्वतीसाध्वीरूपाक्षिप्तगर्दभिल्लनृपादिवत्, सुकुमालिकाराज्ञीस्पर्शासक्तजितशत्रुनृपवच्च, तत्संबंधसंग्राहकः श्लोकश्च, यथा ॥ १० ॥ बाह्वोर्यां शोणितं पीत—मूरुमांसं च भक्षितं ॥ जर्ता च निहितः कूपे साधु साधु पतिव्रते ॥ ११ ॥ इति, ततो जितेंद्रिय एव धर्मस्य योग्यः, एते अर्थिप्रभृतयो धर्मस्य साधका भवंति प्राय इति संटंकः ॥ १२ ॥ प्रायोग्रहणाच्च तादृक्क्षेत्रादिसामग्रीवशात् क्वचिद्ग्रामधर्मेण केनचिद्व्यभिचारो नाशंकनीयः, धर्मसाधकत्वोक्त्या च धर्मोपदेशानां योग्यत्वमाक्षिप्तमेवेति ॥ १३ ॥ योग्यान् स्वरूपादवगम्य सम्यगित्युल्लसद्देशनया बुधास्तान् ॥ सदानुगृह्णीध्वमिहोजयेषां स्फुरंति जावारिजयश्रियो यत् ॥ १४ ॥

तेमज सरस्वती साध्वीना रूपथी मोहित थयेला गर्दभिल्लराजा आदिकनी पेठे तथा सुकुमालिका राणीना स्पर्शमां आसक्त थयेला जितशत्रुराजानी पेठे तेना संबंधने संग्रह करनारो श्लोक नीचे मुजब छे ॥ १० ॥ बन्ने हाथोमांथी रुधिर पीधुं, तथा साथळनुं मांस खाधुं, तेमज जर्तारने कूवामां नांख्यो माटे पतिव्रता तो घणी सारी नीवडी! ॥११॥ इति ॥ माटे जितेंद्रिय मनुष्यज धर्मने योग्य छे; एवी रीते उपर वर्णवेला अर्थी आदिक मनुष्यो मायें करीने धर्मना साधक थाय छे; एवो संबंध छे ॥ १२ ॥ अहीं माय शब्दना ग्रहणथी तेवी रीतनी क्षेत्र आदिकनी सामग्रीना वशथी, नथी ग्राम थयेल धर्म जेने एवा कोइकनी साथे क्यांक व्यभिचार संबंधी शंका करवी नहीं; वळी धर्मनुं साधकपणुं कहेवाथी धर्मोपदेश प्रत्ये योग्यपणुं पण कहेलुंज छे एम जाणी लेवुं ॥ १३ ॥ एवी रीते हे पंडितो! उल्लासायमान थती देशनावडे करीने सम्यग् रीते वखेना स्वरूपथी योग्य मनुष्योने जाणीने, तेओ-पर हमेशां अनुग्रह करो के जेथी जावशत्रुओने जीतवानी लक्ष्मीओ स्फुरणायमान थाय ॥ १४ ॥

॥ इतिश्रीतपागच्छे श्रीदेवसुंदरसूरिश्रीज्ञानसागरसूरिशिष्यश्रीसोमसुंदरसूरिपट्टालंकारश्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे श्रोतृविषययोग्यायोग्यत्वस्वरूपनिरूपणः प्रथमोंशः, तरंगाः १३, ॥ ग्रंथाग्रं १००४ अक्षर ॥ ३२ ॥

॥ इति श्री तपगच्छे श्री देवसुंदरसूरि, श्री ज्ञानसागरसूरि, शिष्य श्री सोमसुंदरसूरिनी पाटे अलंकाररूप श्री मुनिसुंदरसूरिए रचेला श्री उपदेशरत्नाकर नामना ग्रंथमां जामनगर निवासि श्राद्धवर्य हंसराजात्मज श्रावक हीरालाले करेलां तेना गुजराती भाषांतरमां श्रोताओ संबंधि योग्य अयोग्यना स्वरूपने निरूपण करनारो प्रथम अंश समाप्त थयो; तेमां तेर तरंगो समाप्त थया. ग्रंथाग्रंथना श्लोको १००४ तथा अक्षरो ३२ ॥ श्री रस्तु ॥

इति त्रयोदशस्तरंगः समाप्तः

अथ चतुर्दशस्तरंगः

—जुग्गेहि जुग्गपासे । सो पुण जुग्गो गहिज्जए विहिणा ॥ संपुन्नसुहफलो जं ।
एवं चिअ अन्नहा इअरं ॥ १ ॥

योग्य मनुष्योए योग्यनी पासे, अने ते पण पाछो योग्य एवो धर्म विधिपूर्वक ग्रहण करवो, के जेथी ते संपूर्ण सुखरूपी फळवाळो थाय छे; अने जो तेथी उलटी रीते ग्रहण कराय तो ते विपरीत फळवाळो थाय छे ॥ १ ॥

इति द्वारगाथायां जुग्गेद्ध्यति गतं, अथजुग्गपासेत्ति द्वितीयं द्वारं विवरितुं श्रीगुरुगतं योग्याऽयोग्यत्वस्वरूपं निरूपयति, प्रस्तावागतं श्राद्धादिगतमपि ॥ २ ॥ मूलम्—जह चास कुंच महुर । मोर पिगा हंस कीर करटमुहा ॥ अठ्ठ खगा तह गुरुणो । रूवुवए-साइ किरिआहिं ॥ ३ ॥ व्याख्या—चापक्रौंचमधुकरमयूरपिकहंसकीरा प्रसिद्धाः, क-रटो ध्वांक्षः, मुखशब्दः प्रमुखार्थः, स च प्रत्येकं योज्यः, ततश्च यथा चापप्रमु-खाश्चापप्रकाराः पक्षिण इत्यर्थः ॥ ४ ॥ एवं क्रौंचप्रमुखाः मधुकरप्रमुखा इत्यादि ज्ञेयं, रूवुवएसा इत्यादि, रूपोपदेशक्रियाभिरष्टेत्यष्टप्रकाराः खगाः पक्षिणः स्युः, ए-वं गुरवोऽप्यष्टप्रकारा जवंतीति पिंडार्थः ॥ ५ ॥

एवी रीतनी द्वार गाथामां 'योग्य ए' पदनुं वर्णन कर्युं; हवे 'योग्य पासे' एवी रीतना बीजा द्वारनुं विवरण करवा माटे, श्रीगुरु संबंधि योग्य अयोग्यनुं स्वरूप, तेमज प्रस्तावे आवतुं श्रावक आदिक संबंधि पण योग्य अयोग्यनुं स्वरूप निरूपण करे छे ॥ २ ॥ मूळनो अर्थः जेम चाष, क्रौंच, भ्रमर, मयूर, कोयल, हंस, पोपट तथा कागडा आदिक आठ पक्षिओ छे, तेम गुरुओ पण रूप उपदेश तथा क्रियाथी आठ प्रकारना छे ॥ ३ ॥ व्याख्या—चाष क्रौंच, भ्रमर, मयूर कोयल, हंस अने पोपट ए प्रसिद्ध छे. करट एटले कागडो; ते मुखशब्द अहीं प्रमुखने अर्थे छे; अने ते दरेकनी साथे जोडी देवो; अने तेथी चाष आदिक नाना प्रकारवाळा पक्षिओ जाणवा ॥ ४ ॥ एवी रीते क्रौंच आदिक भ्रमर आदिक, एम जाणवुं; एटले रूप उपदेश अने क्रियाए करीने आठ प्रकारना पक्षिओ होय छे, अने एवी रीते गुरुओ पण आठ प्रकारना होय छे, एवो समुदायार्थ जाणवो ॥ ५ ॥

तत्र रूपोपदेशक्रियाभिरिति सामान्योक्तावपि वचनस्य विशेषविषयत्वात् तद्विशेषा ग्राह्याः ६ ॥ तथाहि खगपक्षे रूपं विशिष्टवर्णाकारादिस्वरूपं, उपदेशः श्रोतृजनाह्लादिवचनं, क्रिया पुनः शुच्याहारादिरूपा, गुरुपक्षे तु रूपं जिनप्रणीतस्ताहक्प्रमाणाद्युपेतो वेषः ॥ ७ ॥ उपदेशः शुद्धमार्गप्ररूपणा क्रिया च सम्यग्मोक्षमार्गानुष्ठानरूपेति, अपि च रूपोपदेशक्रियारूपैस्त्रिभिः पदैरष्टौ भंगाः, तथाहि—एकैकभंगास्त्रयः, रूपं, उपदेशः, क्रिया च ; द्विकयोगास्त्रयः, रूपोपदेशौ, उपदेशक्रिये, रूपक्रिये च; त्रिकयोग एकः, त्रयाऽभावपक्षश्चैक इति ॥ ८ ॥ एतैश्चाष्टभिर्भंगैर्यथाऽष्टधा चाषादयः पक्षिणः, तथाऽष्टधा गुरवोऽपि; एतदेव भाव्यते ॥ ९ ॥

त्यां रूप, उपदेश अने क्रियावडे करीने, एम सामान्य प्रकारे कहेले छते पण वचननो विशेष प्रकारनो विषय होवाथी ते संबंधि विशेषो पण ग्रहण करवा ॥ ६ ॥ ते कहे छे.—पक्षि संबंधि पक्षमां उत्तम वर्ण, आकार आदिकना स्वरूपवालुं रूप जाणवुं; उपदेश एटले श्रोताओने हर्ष करनारुं वचन जाणवुं; तथा क्रिया एटले पवित्र आहार आदिक रूप जाणवी; गुरुना पक्षमां रूप एटले जिनेश्वर प्रभुए कहेलो तेवी रीतना प्रमाण आदिकवालो वेष जाणवो ॥ ७ ॥ उपदेश एटले शुद्ध मार्गनी प्ररूपणा; तथा क्रिया एटले सम्यक् प्रकारे मोक्षमार्गना अनुष्ठान रूप क्रिया जाणवी; वळी ते रूप उपदेश अने क्रियारूप त्रण पदोवडे करीने आठ भांगाओ थाय छे; ते कहे छे.—एकेकना त्रण भांगा, रूप, उपदेश अने क्रिया; द्विकयोगी त्रण भांगा, रूप अने उपदेश, उपदेश अने क्रिया, तथा रूप अने क्रिया; त्रिकयोगी एक भांगो; तथा त्रणेना अभावना पक्षवाळो एक भांगो ॥ ८ ॥ एवी रीते उपर वर्णवेला आठ भांगाओवडे करीने जेम आठ प्रकारना चाष आदिक पक्षिओ होय छे, तेम गुरुओ पण आठ प्रकारना होय छे; तेज स्वरूप हवे कहे छे ॥ ९ ॥

यथा चाषपक्षिणि रूपमस्ति पंचवर्णसुंदरत्वात्, शकुनतया दर्शनीयत्वाच्च, नतूपदेशः, वाक्सौंदर्याऽभावात्, नापि क्रिया, कीटाद्याहारित्वात् ॥ १० ॥ तथा केषुचित् गुरुषु रूपमस्ति सुविहितवेषत्वात्; न पुनरुपदेशः, शुद्धमार्गाऽप्ररूपकत्वात्; नापि क्रिया निरवद्याहारादिस्वरूपा, प्रमादादिभिस्तदसमाचरणात् ॥ ११ ॥ तदुक्तं—दगपाणं पुप्फफलं । अणेसणिज्जं गिहत्थकिच्चाइं ॥ अजया पडिसेवंती । जइवेसविडंबगा नवरं ॥ इत्यादि ॥ १२ ॥ एवंविधाश्च बहवोऽपि, संप्रति तु दुःषमानुभावतो विशिष्येति न निदर्शनापेक्षेति, मागधिकागणिकावशीकृताऽवस्थयतिवेषधारिकुलवालुकऋष्यादयो वा यथासंभवं दृष्टांता अन्यत्र निरीक्ष्याः ॥ १३ ॥

जेम चाष पक्षीमां रूप छे, केमके ते पंचरंगीपणाथी सुंदर छे, तथा ते शुकनरूप ते दर्शन करवा लायक छे; परंतु तेनामां उपदेशनो गुण नथी; केमके तेनी वाणीमां सुंदरपणुं नथी. तेम तेमां क्रिया पण (शुभ) नथी. केमके ते कीडा आदिकनो आहार करनार छे ॥ १० ॥ एवी रीते केटलाक गुरुओमां रूप होय छे, केमके तेमनो वेष सुविहित होय छे; परंतु उपदेश होतो नथी. केमके ते शुद्ध मार्ग प्ररूपता नथी; तेम निरवद्य आहार आदिरूप क्रिया पण होती नथी, केमके प्रमाद आदिकवडे करीने तेवी क्रियानुं तेओ आचरण करी शकता नथी ॥ ११ ॥ कह्युं छे के—पाणी. माटी, पुष्प, फळ अनेषणीय आहार, गृहस्थनुं कार्य तथा जतना न राखवी ते, [illegible] साधुना वेषने वगोवनारा छे, तेमां संदेह नथी; इत्यादि ॥ १२ ॥ एवा प्रकारना यतिओ तो हालमां आ पंचम आराना प्रभावथी घणा छे, माटे तेनुं विशेष प्रकारे दृष्टांत आपवानी कंइ जरूर नथी; तोपण मागधिका नामे गणिकाथी वश करायेली अवस्थामां रहेला यतिवेषधारी कुलवालक ऋषि आदिकोनां दृष्टांतो पण अहीं यथासंभव जाणी लेवां ॥ १३ ॥

कुलवालके हि यतिवेषोऽस्ति, नतु क्रिया, मागधिकागणिकाप्रसक्तेः, विशालाभं-गादिमहारंभादिप्रवर्त्तकत्वाच्च; नाऽप्युपदेशः, सामान्यसाधुत्वेन तदऽनधिकारित्वात्, तादृगुन्मार्गगामिबुद्ध्या गुरुकुलवासत्यागिनस्तस्य शुद्धमार्गप्ररूपकत्वाऽसंभवाच्चेति प्रथमो भंगः ॥ १४ ॥ क्रौंचपक्षिणि यथा रूपं नास्ति, दर्शनीयवर्णाकाराद्यभावात्; क्रियापि न, कीटाद्याहारित्वात्; केवलमुपदेशोऽस्ति मधुरगंभीरभाषित्वात् ॥१५॥ तथाच श्रीसमवायांगे वसुदेववर्णके 'सारयनवथणिअमहुरगंभीरकुंचनिग्घोसदुंदुहि-सरा' इतिः तद्वृत्तिलेशः. शरदि भवः शारदः, स चासौ नवं स्तनितमस्मिन्नि-घोषे, स चेति समासः ॥ १६ ॥

केमके कुळवालक ऋषिमां यतिनो वेष तो हतो, परंतु (शुभ) क्रिया नहोती; केमके तेमने मागधिका नाम गणिकानो प्रसंग थयो हतो; तथा विशालानगरीने भांगवा आदिकना महान् आरंभनी तेमणे प्रवृत्ति करावी हती; वळी तेमनी पासे उपदेश पण नहोतो. केमके सामान्य साधुपणुं होवाथी ते संबंधि तेमने अधिकार नहोतो; वळी तेवी रीतनी कुमार्गगामी बुद्धिवडे करीने गुरुकुळमां नहीं रहेनारा एवा तेमने शुद्ध मार्गनी प्ररूपणा करवापणानो असंभव छे; एवी रीते पहेलो भांगो जाणवो ॥ १४ ॥ वळी क्रौंच पक्षिमां जेम रूप नथी, केमके तेनो वर्ण तथा आकार आदिक देखावडा नथी; तेम तेनामां क्रिया पण (शुभ) नथी, केमके ते कीडा आदि-कोनुं भक्षण करनार छे; केवळ तेनामां उपदेशनो गुण छे; केमके ते मधुर अने गंभीर स्वर बोलनारो छे ॥ १५ ॥ श्री समवायांगसूत्रमां वासुदेवना वर्णनमां कह्युं छे के, 'शरद ऋतुना नवा गर्जना करता वरसाद सरखा मधुर अने गंभीर एवा क्रौंच पक्षीना स्वर सरखा तथा दुंदुभिना स्वर सरखा स्वरवाळा वासुदेव' तेनी टीकानो लेश कहे छे; शरद ऋतुमां उत्पन्न थयेलो ते शारद कहेवाय; एवो तथा नवो छे गर्जारव जेना शब्दमां ते, एवो समास थयो ॥ १६ ॥

स चासौ मधुरो गंभीरश्च यः क्रौंचनिर्घोषः पक्षिविशेषनिनादः, तद्वत् दुंदुभिस्वरवच्च स्वरो येषां ते वासुदेवा इत्यादि ॥ १७ ॥ एवं केषुचिद्गुरुषु न रूपं, चारित्रवेषाऽभावात्; नापि क्रिया, प्रमादपतितत्वात्; उपदेशः पुनरस्ति शुद्धमार्गप्ररूपणात्मकः, प्रमादपतितपरिव्राजकवेषभृत् शुद्धमार्गप्ररूपणावस्थश्रीप्रथमतीर्थपतिपौत्रमरीच्यादिवत् ॥ १८ ॥ पार्श्वस्थादिवच्च, पार्श्वस्थेषु क्रियारहितत्वादत्र प्रस्तुतनामप्रवृत्तेः, वेषस्यापि प्रायेणाऽभावाच्च ॥ १९ ॥ यदुक्तं—वत्थं दुप्पडिलेहिअमपमाणं सकन्निअं दुकूलाइ, इत्यादि; शुद्धप्ररूपकत्वं तु भवति यथाछंदवर्जितानां ॥ २० ॥

एवो मधुर अने गंभीर जे क्रौंच पक्षीनो शब्द, तेनी पेठे तथा दुंदुभिना स्वरनी पेठे छे स्वर जेमनो एवा ते वासुदेवो; इत्यादि ॥ १७ ॥ एवी रीते केटलाक गुरुओमां चारित्रनो वेष न होवाथी रूप नथी होतुं; तेम प्रमादमां पडवाथी क्रिया पण नथी होती; परंतु शुद्ध मार्गनी प्ररूपणा करवारूप उपदेशनो गुण तेओमां होय छे, (कोनी पेठे ? तो के) प्रमादमां पडीने परिव्राजकनो वेष धरनारा तथा शुद्ध मार्गनी प्ररूपणानी अवस्थामां रहेला श्री प्रथम तीर्थंकरना पौत्र मरीचि आदिकनी पेठे ॥ १८ ॥ तेमज पासत्था आदिकोनी पेठे; पासत्थाओमां क्रिया नहीं होवाथीज तेओना ते नामनी प्रवृत्ति थयेली छे, तेम तेओने वेषनो पण प्राये करीने अभाव छे ॥ १९ ॥ कह्युं छे के—तेओनां वस्त्रो सारी रीते पडिलेहण कर्या विनानां, प्रमाण विनानां तथा किनारीवाळां रेशम आदिकनां होय छे; इत्यादिक; वळी जेओए स्वच्छंदाचारीपणुं तजेलुं छे, एवा तेओमां शुद्ध प्ररूपणानो गुण तो होय छे ॥ २० ॥

तदुक्तं—इत्थ य पासत्थाईहिं । संगयं चरणनासयं पायं ॥ सम्मत्तहरं अहछंदए-
—हिंतल्लक्खणं चेयं ॥ २१ ॥ उस्सुत्तमायरंतो, उस्सुत्तंचेव पन्नवेमाणो ॥ एसो
उ अहाछंदो । इच्छाछंदुत्तिएगट्ठा ॥ २२ ॥ सच्छंदमइविगप्पिय । किंचि सुहसायवि-
गइपडिबद्धो ॥ तिहिं गारवेहिं मज्जइ । तं जाणाही अहाछंदं ॥ २३ ॥ एवमाइ बहु-
विगप्पं । उस्सुत्तं आयरंति सयमेव ॥ अन्नेसिं पन्नविंति य । मिच्छाए जे अहाछंद
॥ २४ ॥ इत्यादि, प्रतिदिनदशदशप्रतिबोधितृनंदिषेणसदृशास्तु श्राद्धलिंगत्वान्न
गुरुपंक्तिमर्हन्तीति द्वितीयो भंगः ॥ २५ ॥

कह्युं छे के—पासत्था आदिकनी संगति अहीं प्राये करीने चारित्रनो नाश करनारी छे, तथा स्वेच्छाचारीनी संगति सम्यक्त्वने हरनारी छे, तेनुं लक्षण नीचे मुजब छे ॥ २१ ॥ उत्सूत्रने आचरतो तथा उत्सूत्रने प्ररूपतो एवो यति स्वेच्छाचारी कहेवाय; 'यथाछंद, इच्छाछंद' ए शब्दो एकार्थवाची छे ॥ २२ ॥ स्वेच्छाचारी मतिना विकल्पोथी किंचित् सुखशीलीओ थइने (घृत, गोळ आदिक) विगयोनो लालचु थयो थको ऋद्धिगर्व आदिकमां जे मग्न थाय छे, तेने स्वेच्छाचारी जाणवो ॥ २३ ॥ इत्यादिक घणा विकल्पोपूर्वक ते पोतेज उत्सूत्रनुं आचरण करे छे, तेमज बीजाओने पण उत्सूत्र प्ररूपे छे, तथा शिखामण देतां पण तेओ स्वेच्छाचारी थाय छे ॥ २४ ॥ इत्यादि, हमेशां दश दशने प्रतिबोधनार नंदिषेण सरखा तो श्रावकना लिंगवाळा होवाथी गुरुपंक्तिने लायक थइ शकता नथी; एवी रीते बीजो भांगो जाणवो ॥ २५ ॥

मधुकरो भ्रमरस्तस्यापि खगमनशीलत्वात् खगत्वं न विरुद्धं, यथा भ्रमरखगे न रूपं, कृष्ण-वर्णत्वात्; नाप्युपदेशः, तत्स्वरस्य तादृगुदात्तत्वमाधुर्याद्ययोगात् ॥ २६ ॥ केवलं क्रि-याऽस्ति, उत्पलकुसुमेषु यथा तदम्लानिपरिमलैकपायित्वात्; तथा केषुचिद् गुरुषु न रूपं यतिवेषाऽधारित्वात्; नाप्युपदेशः कुतश्चिद्धेतोस्तदनासेवकत्वात् ॥ २७ ॥ क्रिया पुनर-स्ति, यथाविहिता, यथा प्रत्येकबुद्धादिषु, प्रत्येकबुद्धस्वयंबुद्धतीर्थंकरादयो हि साधर्मि-का इत्यतस्तेषु यतिवेषधारित्वेऽपि तीर्थगतसाधूनां प्रवचनलिंगाभ्यां न साधर्मिका इत्यत-स्तेषु न यतिवेषधारित्वं ॥ २८ ॥

मधुकर एटले भमरो, अने ते पण आकाशमां गमन करनारो होवाथी, तेने पक्षी कहेवामां विरोध नथी; हवे जेम भ्रमर पक्षिमां, ते काळा रंगनो होवाथी रूप नथी, तेम तेमां उपदेशनो गुण पण नथी, केमके तेना स्वरमां तेवा प्रकारनुं गंभीरपणुं के मीठाश नथी ॥ २६ ॥ केवळ तेमां क्रियानो गुण छे, कारणके ते पुष्पोने ग्लानि उपजाव्या विना, तेमांथी मकरंद पीये छे; एवी रीते केटलाक गुरुओमां रूप होतुं नथी, केमके तेओ साधुना वेषने धारण करता नथी; तेम कोइक कारणथी उपदेशने नहीं सेवता होवाथी. तेओमां उपदेशनो गुण पण होतो नथी ॥ २७ ॥ परंतु तेओमां प्रत्येक बुद्धादिकोनी माफक यथा विहित एटले शुद्ध क्रिया होय छे; प्रत्येक बुद्धो, स्वयंबुद्धो तथा तीर्थंकर आदिको साधर्मिक एटले एक सरखा छे; अने तेथी तेओमां जोके साधु वेषने धरवापणुं छे, तोपण शासनमां वर्तता एवा साधुओना प्रवचन अने लिंग साथे तेओनुं सरखापणुं थरतुं नथी, माटे तेओमां साधु वेषने धरवापणुं नथी ॥ २८ ॥

नाप्युपदेशः, देशनाऽनासेवकः, प्रत्येकबुद्धादिरित्यागमात् क्रिया त्वस्ति, तद्भवे एव मुक्तिफलेति तृतीयो भंगः ॥ २९ ॥ यथा च मयूरे रूपं समस्ति पंचवर्णमनोहरं; उपदेशश्च मधुरकेकारूपः; परं क्रिया नास्ति सर्पादेरप्याहारकत्वेन निस्त्रिंशत्वात् ॥ ३० ॥ तथा गुरुष्वपि केषुचित् द्वयमस्ति, नतु क्रिया, मथुरामंग्वाचार्यादिवदिति चतुर्थो भंगः ॥ ३१ ॥ तत्र मंग्वाचार्यसंबंधो यथा, मंगुनामाचार्योऽन्यदा मथुरां पावयामास—श्रुतस्य शांतिस्तपसां निधानं । युगप्रधानं तु तदा तमाहुः ॥ विहाय कार्यांतरमंतराया—नन्याननादृत्य मुनीनशेषान् । भक्त्या वशीभूत इवातिभूरिः । सूरिं सिषेवेऽत्र जनस्तमेव ॥ ३२ ॥

तेम तेओमां उपदेश गुण पण होइ शकतो नथी केमके प्रत्येक बुद्धादिकोने देशनाना नहीं सेवनारा आगममां कह्या छे; वळी तेओने तेज भवे मोक्ष मळवाना फळरूप क्रिया छे; एवी रीते त्रीजो भांगो जाणवो ॥ २९ ॥ वळी जेम मयूरमां मनोहर पचरंगीरूप छे, तेम मधुरवाणीरूप उपदेश पण छे; परंतु हिंसक होवाथी करीने सर्प आदिकनो आहार करवाथी तेनामां क्रियारूपी गुण नथी ॥ ३० ॥ तेम केटलाक गुरुओमां पण वेष अने उपदेशरूप बे गुणो तो होय छे, परंतु मथुरावासी मंगु आचार्य आदिकनी पेठे क्रिया होती नथी; एवी रीते चोथो भांगो जाणवो ॥ ३१ ॥ त्यां मंगु आचार्यनुं वृत्तांत नीचे मुजब छे; एक वखते मंगु आचार्ये मथुरा नगरीने पवित्र करी, अर्थात् त्यां आव्या; ते वखते मंगु आचार्यने लोको सिद्धांतना, शांतिना तथा तपना निधानरूप अने युग प्रधान कहेता हता; तथा तेथी घणा लोको बीजुं कार्य छोडीने, तथा वळी बीजा सघळा मुनिओनो पण अनादर करीने जाणे भक्तिथी वश थइ गया होय नहीं, तेम तेनेज सेववा लाग्या ॥ ३२ ॥

न वंदकमज्जकपालकेभ्यः । प्रवारयामोऽङ्गणिकाः सदैव ॥ इत्यार्यमंगौ वदति प्रदर्पा—जयादिशेत्येव जना जगुस्ते ॥ ३३ ॥ निष्ठागरिष्ठश्च तपोनिधिश्च । चारित्रवांश्चेति जनैः स्तुवानैः॥ मुनिः स मानाख्यमहाद्रितिष्ठ—प्रोत्तुंगशृंगं परिरोप्यते स्म ॥ ३४ ॥ वर्धिष्णु ऋद्ध्युत्तरगौरवाख्यं शृंगांतरं तत्र चरन्नवाप ॥ अहो अहं पूजितपूजितांघ्रि—रित्येष मेने त्रिजगत तृणाय ॥ ३५ ॥ एवं रसगौरवसातागौरवरूपे अपि शृंगे प्राप, तत उद्यतविहारं त्यक्त्वा नित्यवासं प्रपन्नः, जैनकुलादिषु ममत्वमंगीचकार ॥३६॥ ततः, आत्मस्तुतिं श्राद्धकृतामथाऽन्य—निंदाविमिश्रामनुमोदमानः ॥ मिथ्याभिमानाऽभिनिविष्टबुद्धि—र्मिथ्यात्वमूरीकृतवानहंयुः ॥ ३७ ॥

वंदना करनारा, पूजनारा तथा जमणनाराओथी अमारे तो आरो आवतो नथी, अने एवी रीते अमोने हमेशां क्षणवार पण फुरसद मळती नथी; एवी रीते अहंकारथी मंगु आचार्य बोलते छते लोको तेओने 'तमो जय पामो ! हुकम फरमावो !' एम कहेवा लाग्या ॥ ३३ ॥ वळी तमो निष्ठामां गरिष्ठ छो, तपना भंडार छो, तथा चारित्रयुक्त छो, एवी रीते स्तुति करता लोकोए ते मुनिने मान नामना महान पर्वतना ऊंचा शिखरपर चडाव्या ॥ ३४ ॥ वळी एवी रीते ते मानरूपी शिखरपर चडता थका, वृद्धि पामता एवा ऋद्धिगारव नामना बीजा शिखरपर ते चड्या; तथा अहो ! पूजनीको पण मारा चरणो पूजे छे, एम विचारीने ते त्रणे जगतने तृण समान मानवा लाग्या ॥ ३५ ॥ तथा एवी रीते अनुक्रमे ते मंगु आचार्य रस गारव तथा साता गारवरूपी शिखरपर पण चड्या; तथा पछी उद्यत विहार तजीने एकज जगोए रहेवा लाग्या; तथा जैनकुळ× आदिकमां ममता करवा लाग्या ॥ ३६ ॥ पछी बीजाओए करेली निंदाथी मिश्रित थयेली एवी श्रावकोए करेली पोतानी स्तुतिने अनुमोदता थका, तथा मिथ्याऽभिमानना आग्रहवाळी बुद्धियुक्त थया थका अभिमान लावीने मिथ्यात्वपणुं भजवा लाग्या ॥ ३७ ॥

× गोचरी प्रमुख माटे जैन कुळमां के अन्य अमुक कुळमांज जवुं वगेरे बाबतमां ममत्व धरवा लाग्या एवो अर्थ संभवे छे.

अर्थार्थिष्वसुविपरीतनीतिः । कामी परस्त्रीष्विव बद्धरागः ॥ धर्मास्वपंगुर्गुरुरार्यमंगु—र्मूर्छाकृतिं प्राप विशेषलिप्सुः ॥ ३८ ॥ सद्दर्शनालोकलसद्विशेष—श्रुतं तपः संयम इत्यशेषं ॥ स्वरूपमस्याहो नकलं ! हहा ! महामोहमयोऽन्धकारः ॥ ३९ ॥ ततो मृत्वा तत्रैव प्रणालायतनवासी यक्षोऽभूत्, स विभंगात् प्राग्भवप्रमादं भृशं शुशोच, तथा चाह, 'पुरनिद्धमणे जक्खो' इतिमथुरामंगुकथा ॥ ४० ॥ पिकः कोकिलः, तस्मिन् गुणोपदेशोऽस्ति पंचमगायित्वात्: क्रिया च सहकारमंजर्यादिशुच्याहारत्वात, तथा चाहुः ॥ ४१ ॥

अनीतिवाळो मनुष्य जेम धनने इच्छे, तथा कामी पुरुष जेम परस्त्रीमां अभिलाष करे, तेम धर्ममार्गमां चालवामां पांगळा एवा मंगु आचार्य विशेष इच्छा करता थका मूर्छाने पण खोड बेठा ॥ ३८ ॥ अहो ! ते मंगु आचार्ये सन् एवां पण सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, तथा प्रकाशमान थतुं विशेष प्रकारनुं श्रुत, तप, संयम विगेरे सर्व अफल कर्युं; माटे अरेरे ! मोहरूपी महान् अंधकारनुं एवुं स्वरूप छे ॥ ३९ ॥ पछी त्यांथी मृत्यु पामी ते मंगु आचार्यनो जीव तेज नगरनी गटरमां रहेनारा यक्षरूपे उत्पन्न थयो; तथा त्यां विभंग ज्ञानथी पूर्वभवे करेलो प्रमाद जाणीने घणो शोच करवा लाग्यो; कह्युं छे के— 'नगरनी गटरनो यक्ष,' एवी रीते मथुरावासी मंगु आचार्यनी कथा जाणवी ॥ ४० ॥ हवे पिक एटले कोयल, ते पंचम राग गानार होवाथी तेमां उपदेशरूपी गुण छे; तेमज आंबानी मांजर आदिकना शुद्ध भक्षणथी तेमां क्रिया संबंधि गुण पण रहेलो छे; कह्युं छे के ॥ ४१ ॥

आहारे शुचिता स्वरे मधुरता नीडे निरारंभता । बंधौ निर्ममता वने रसिकता वाचालता माधवे ॥ त्यक्त्वा तं द्विजकोकिलं मुनिवरं दूरात्पुनर्दांभिकं वंदंते बत खंजनं कृमिभुजं चित्रा गतिः कर्मणां ॥ ४२ ॥ इति. नतु रूपं काकादितोऽपि निकृष्टरूपत्वात्, तथा केषुचिद् गुरुषु सम्यक् क्रियोपदेशौ स्तः, न तु रूपं, कुतश्चिद्धेतोर्यतिलिंगाऽधारित्वात्, सरस्वतीवालनाहेतुकयतिवेषत्यागिश्रीकालिकसूरिवत् ॥ ४३ ॥ इति पंचमो भंगः ॥ हंसः प्रसिद्धः, यथा तस्मिन् रूपं प्रसिद्धं क्रिया च कमलनालाद्याहारादिरूपा; न तूपदेशः, पिकशुकादिवत् हंसपक्षिणि तदप्रसिद्धः ॥ ४४ ॥

जेना आहारमां पवित्रता छे, स्वरमां माधुर्य छे, माळो बांधवामां निरारंभिपणुं छे, बंधुमां निर्ममपणुं छे, वनवासमां रसिकपणुं छे तथा वसंतमां जेने वाचालपणुं छे, एवा कोकिल पक्षी रूपी मुनिवरने दूर छोडीने, कीडा खानारा खंजन पक्षी सरखा कपटी यतिने अरेरे! लोको वंदन करे छे, माटे कर्मोनी विचित्र गति छे ॥ ४२ ॥ इति वळी ते कोकिलमां रूप होतुं नथी, केमके ते तो कागडाथी पण खराब रूपवाळी छे; एवी रीते केटलाक गुरुओमां सम्यक् प्रकारनां क्रिया अने उपदेश तो होय छे, परंतु वेषरूपी रूप होतुं नथी; केमके कोइक कारणे करीने, सरस्वती साध्वीने वाळवा माटे मुनिनो वेष तजनारा श्री कालिकसूरिनी पेठे मुनिना वेषने ते धारण करता नथी ॥ ४३ ॥ एवी रीते पांचमो भांगो जाणवो ॥ हंस ए प्रसिद्ध छे; जेम तेमां रूप प्रसिद्ध छे, तेम क्रिया पण कमळ नाळना आहार आदिक रूपी छे; परंतु तेनामां कोयल तथा पोपट आदिकनी पेठे उपदेशनो गुण नथी; केमके हंस पक्षीना नादनी प्रसिद्धि नथी ॥ ४४ ॥

तथा केषुचिद्गुरुषु साधुमात्ररूपेषु द्वयमस्ति, न पुनरुपदेशः, गुर्वननुज्ञातत्वादिना तदनधिकारित्वात्, धन्यशालिभद्रादिमहर्षिवत्, इति षष्ठो भंगः ॥ ४५ ॥ कीरः शुकः, स च बहुविधशास्त्रसूक्तकथादिपरिज्ञानप्रागल्भ्यवानिह गृह्यते, स च रूपेण रमणीयः, क्रियया सहकारकदलीदाडिमीफलादिशुच्याहारादिमान्; उपदेशपटुश्च चेतोहरवचनत्वात् ॥ ४६ ॥ कस्यचित्तथाविधावसरोचितहितोपदेशकत्वादपि; श्रूयते च शुकद्वासप्तत्यादौ, शुकेन द्वासप्तत्या कथानकैः प्रोषितपतिकायाः श्रेष्ठिपत्न्याः परसंगनिवारणेन शीलरक्षाकरणादि ॥ ४७ ॥

एवी रीते केटलाक साधु मात्ररूप गुरुओमां वेष अने क्रिया ए बन्ने तो होय छे, परंतु उपदेश होतो नथी; केमके गुरुए तेम करवानी अनुज्ञा नहीं आपवा आदिकवडे करीने धन्ना शालिभद्र आदिकनी पेठे उपदेश देवामां तेओने अधिकार होतो नथी. एवी रीते छठ्ठो भांगो जाणवो ॥ ४५ ॥ कीर एटले पोपट, अहीं एवा पोपटनुं ग्रहण करवुं के, जे घणा प्रकारना शास्त्रोना उत्तम श्लोको तथा कथा आदिकनी ज्ञाननी चतुराइवाळो होय; ते पोपट रूपें मनोहर होय छे, तेम क्रियावडे करीने पण आंबा, केळ, दाडिम, आदिकना पवित्र आहारवाळो होय छे, तेम मनोहर वचनवाळो होवाथी उपदेशमां पण प्रवीण कहेवाय छे ॥ ४६ ॥ केमके तेवो पोपट कोइने अवसरोचित हितोपदेश पण आपे छे; शुकबहोंतेरी आदिकमां संभळाय छे के पोपटे बहोंतेर कथाओवडे करीने परदेश गयेला पतिवाळी शेठनी स्त्रीने परनो संग निवारण करवा वडे करीने तेणीना शीलनुं रक्षण आदिकनुं कार्य कर्युं छे ॥ ४७ ॥

रत्नसारश्रेष्ठिकथादिषु स्थाने स्थाने हितोपदेशादि च; तथा केचित् श्रीगुरवस्त्रयमपि बिभ्रति श्रीजंबूश्रीवज्रस्वाम्यादिवत् ॥ ४८ ॥ इति सप्तमो भंगः ॥ तथा च करटः काकस्तस्मिन् न रूपं, लोचनाऽप्रियदर्शनत्वात्; नोपदेशः कटुरटनशीलत्वात्; नापि क्रिया, रोगिबलीवर्दगवादिपश्वादिजीवलोचनोत्पाटनकृतचंचुघट्टनादिकारित्वात् ॥ ४९ ॥ तदस्रमांसमलाद्यशुच्याहारित्वाच्च, एवं केषुचिद्गुरुषु रूपं, उपदेशः, क्रिया चेति त्रयमपि नास्ति; भावना प्राग्वत्, निदर्शनं च अशुद्धप्ररूपकाः पार्श्वस्थादय एव, परतीर्थिका लिंगिनो वा ॥ ५० इत्यष्टमो भंगः ॥

वळी रत्नसार शेठनी कथा आदिकोमां ठेकाणे ठेकाणे (पगले पगले) हितोपदेश आदिक छे; एवी रीते केटलाक गुरु महाराजो रूप, क्रिया अने उपदेश, ए त्रणे गुणोने धारण करे छे (कोनी पेठे? तो के) श्री जंबूस्वामी तथा श्री वज्रस्वामी आदिकनी पेठे ॥ ४८ ॥ एवी रीते सातमो भांगो जाणवो ॥ हवे करट एटले कागडो, तेमां रूप नथी, केमके तेनुं जोवुं मनुष्योनी आंखोने अप्रिय थइ पडे छे; तेम कटुक स्वरवाळो होवाथी तेमां उपदेशनो गुण पण नथी; तेम तेनामां क्रिया पण शुद्ध नथी; कारणके ते रोगी बळद गाय आदिक पशु आदिक जीवोनी आंखो उखेडवी, तथा तेओना पडेलां चांदापर चांचो घोंचवी इत्यादिक अशुभ क्रियानो करनार छे ॥ ४९ ॥ तेमज ते पशु आदिकोनां रुधिर, मांस तथा मळ आदिक अपवित्र पदार्थोनो भक्षण करनार छे एवी रीते केटलाक गुरुओमां रूप, उपदेश के क्रिया ए त्रणे होतां नथी; तेनी विशेष भावना (समजण) पूर्वनी पेठे जाणवी. अहीं दृष्टांत तरीके अशुद्ध उपदेश प्ररूपनारा पासत्था आदिकोनेज जाणवा; अथवा परतीर्थी लिंग धारीओने जाणवा ॥ ५० ॥ एवी रीते आठमो भांगो जाणवो ॥

॥ प्रमुखवचनाच्च तज्जातीया अपरेऽपि पक्षिणो दृष्टांतीकार्याः, यथासंभवमिति; एषु चाष्टसु भंगेषु क्रियाविकलपक्षाः सर्वेऽप्ययोग्या एव, क्रियासहितपक्षास्तु योग्याः ॥ ५१ ॥ परं तत्राप्युपदेशविकलाः स्वतारकत्वेऽपि न परांस्तारयितुं समर्थाः; अशुद्धोपदेशकास्तु स्वपरांश्च भवाब्धौ निमज्जयंतीति शुद्धोपदेशक्रियायुक्तपक्षः पिकदृष्टांतसूचितः स्वीकारार्हः ॥ ५२ ॥ त्रिकयोगपक्षश्च कीरदृष्टांतेन प्रकटितः सर्वोत्तम एवेति;—खगाष्टकस्पष्टनिदर्शनैरिति । श्रीमद्गुरूनष्टविधान् विभावयन् ॥ सम्यक्क्रियासारगुणान् परीक्ष्य तान् । भजेत भावारिजयश्रिये बुधः ॥५३॥

॥ इति श्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे चतुर्दशस्तरंगः ॥

अहीं प्रमुख शब्दथी ते जातिवाळा बीजा पक्षिओने पण योग्यता पूर्वक दृष्टांतरूप करवा हवे ते आठे भांगाओमां क्रिया विनाना सर्वे पक्षो अयोग्यज छे; अने क्रिया सहित पक्षो योग्य छे ॥ ॥ ५१ ॥ वळी त्यां पण उपदेश विनाना तो जो के पोताने तारे छे, परंतु परने तारवाने समर्थ नथी; वळी अशुद्ध उपदेश देनाराओ तो पोताने अने परने पण संसार समुद्रमां डुबावे छे; माटे कोयलना दृष्टांतथी सूचन करेलो एवो शुद्ध उपदेश तथा शुद्ध क्रियावाळो पक्ष स्वीकारवा लायक छे ॥ ५२ ॥ वळी पोपटनां दृष्टांतथी सूचवेलो त्रिकयोगी पक्ष सर्वथी उत्तमज छे; एवी रीते आठे पक्षिओनां स्पष्ट दृष्टांतोवडे करीने आठ प्रकारना गुरुओने जाणीने तेओमांथी उत्तम क्रिया तथा उत्तम गुणोवाळानी परीक्षा करीने तेमने, भाव शत्रुओने जीतवानी लक्ष्मी माटे पंडितोने भजवा ॥ ५३ ॥

॥ एवी रीते श्री मुनिसुंदर सूरिजीए रचेला श्री उपदेशरत्नाकरमां चौदमो तरंग समाप्त थयो ॥

इति चतुर्दशस्तरंगः समाप्तः

अथ पंचदशास्तरंगः

पुनर्निदर्शनांतरैर्गुरुस्वरूपं प्रस्तावागतं श्राद्धादिस्वरूपं चाह—मूलम् सोवाग वेस गिहवइ । रायाहरणं व मज्झवहिसारा ॥ चउगुरुगिहि धम्मजिया । सुअकिरिया सुद्धि धम्मेहिं ॥ १ ॥

वळी बीजां दृष्टांतो वडे करीने गुरुनुं स्वरूप तथा प्रस्तावथी आवेलुं श्रावक आदिकनुं स्वरूप पण कहे छे.—मूलनो अर्थः—चांडाल, वेश्या, गृहपति तथा राजानां आभरणनी पेठे मध्ये तथा बहारथी सारहीन एवा चार प्रकारना गुरुओ तथा गृहस्थिओ, श्रुत, क्रिया, शुद्धि अने धर्मवडे करीने धर्मरूपी आजीविकावाळा थाय छे ॥ १ ॥

अस्या व्याख्या, श्वपाकवेश्यागृहपतिराज्ञामाभरणानीव मध्ये बहिश्च सारा असाराश्चत्वार इति चतुःप्रकाराः, श्रुतेन, क्रियया, शुद्ध्या, धर्मेण च क्रमाद् गुरवो. गृहीति सामान्योक्तावपि श्रावकरूपा गृहिणो धर्माजीवाश्च भवंतीति पिंडार्थः ॥ २ ॥ अथ विस्तारार्थःतत्र मध्यबहिःसारा इत्युक्त्वा आभरणानां चतुर्भंगी सूचिता. तथाहि ॥ ३ ॥ कानिचिदाभरणानि मध्येंऽतरऽसाराणि, बहिरप्यसाराणि (१) अंतरसाराणि बहिश्च साराणि (२) अंतःसाराणि बहिरसाराणि (३) मध्ये बहिश्च साराणीनि (४) ॥ ४ ॥

हवे ते गाथानी व्याख्या कहे छे; चांडाल वेश्या गृहस्थी तथा राजाना आभूषणोनी पेठे मध्ये तथा बहारथी सार अने असारपणे, ज्ञान, क्रिया, शुद्धि अने धर्मथी अनुक्रमे गुरुओ चार प्रकारना छे; तथा गृहस्थी एम सामान्यपणे कह्या छतां पण श्रावकरूपी गृहस्थिओ जाणवा; अने तेवा श्रावकरूपी गृहस्थिओ पण चार प्रकारे धर्मरूपी आजीविकावाळा थाय छे एवो समुदायार्थ जाणवो ॥ २ ॥ हवे विस्तारवाळो अर्थ कहे छे त्यां मध्ये अने बहारथी सार, एम कहीने आभूषणोनी चतुर्भंगी सूचन करी; ते कहे छे ॥ ३ ॥ केटलांक आभूषणो अंदरथी पण सारविनाना अने बहारथी पण सार विनाना छे (१) केटलांक अंदरथी असार अने बहारथी सारवाळां छे (२) केटलांक अंदरथी सार अने बहारथी असार छे. (३) अने केटलांक तो अंदरथी अने बहारथी बन्नेथी सारवाळां (४) छे ॥ ४ ॥

तत्र चंडालानामुपलक्षणादन्येषामप्याभीरादीनां नीचजातीनां आभरणानि कथीरादिमयत्वेनांतःशुषिरत्वात्, कर्करादिभृतत्वादिना चांतरसाराणि, तादृक्तेजःशोभाद्यभावाद् बहिश्चाऽसाराणि ॥ ५ ॥ केवलं नूपुरकुंडलाद्याकारमात्रधारित्वादाभरणानीत्युच्यंते, तैश्च परिहितैर्मया नूपुरादीनि परिहितानीत्यभिमानमात्रसुखं परिधातुः ॥ ६ ॥ तथा तैरखंडैर्ग्रहणकादौ मुक्तैरपि न किमपि विशिष्य द्रव्यादि लभ्यते, भग्नैरपि च न काचिद् द्रव्योत्पत्तिरिति प्रथम आभरणभेदः ॥ ७ ॥ तथा वेश्यानां आभरणान्यंतःशुषिरत्वात् लाक्षादिभृतत्वाच्चाऽसाराणि, बहिश्च ताम्रादिमयत्वेऽपि स्वर्णेन रसितत्वान्मुग्धानां स्वर्णमयत्वबुद्धिहेतुत्वेन साराणीव प्रतिभासंते, इति साराणि ॥ ८ ॥

त्यां चंडालोनां तथा उपलक्षणथी बीजा पण आभीर आदिक नीच जातिओनां आभूषणो कथिर आदिकनां तथा अंदरथी पोलां होवाथी तथा अंदर कांकरा आदिक भरेला होवाथी अंदरथी सार विनाना छे, तेमज तेमां तेवी रीतनां तेज शोभा आदिक न होवाथी बहारथी पण सारविनाना छे ॥ ५ ॥ केवळ झांझर तथा कुंडळ आदिकनो मात्र आकार धरतां होवाथी आभूषणो कहेवाय छे; अने तेवां आभूषणो पहेरवाथी में झांझर आदिक पहेर्यां छे, एटलुं फक्त अभिमानरूप सुख पहेरनारने जणाय छे ॥ ६ ॥ वळी ते अखंड आभूषणोने घरेणे आदिक मुकवाथी पण, तेथी कंइ विशेष रीते द्रव्य आदिकनो लाभ थतो नथी; तेम ते आभूषणो भांग्याथी पण कंइ द्रव्यनी उत्पत्ति थती नथी, एवी रीते आभूषण संबंधि पहेलो भेद जाणवो ॥ ७ ॥ हवे वेश्याना आभूषणो अंदर पोलां होवाथी अने लाख आदिकथी भरेलां होवाथी सार विनाना छे, अने बहारथी तांबानां होवा छतां पण उपर सोनानो ढोळ चडाववाथी मुग्ध लोकोने ते सोनानां छे, एवी बुद्धि थवा वडे करीने जाणे सारवाळां होय नहीं तेवां लागे छे, माटे सारभूत छे ॥ ८ ॥

यद्वा बहिःसारत्वं प्रकारांतरेण भाव्यते, तथाहि—यथाऽऽभरणानि कुलस्त्रियो वस्त्राच्छादनेन गुप्तानि परिदधति, न तथा गणिकाः, तान्निरनाच्छादनेन स्फुटवृत्त्यैवांगदकुंडलादीनां परिधानात् ॥ ९ ॥ तेन बहिर्द्योतमानताप्रतिभासात्तानि बहिःसाराणीति, तैश्चाऽऽभरणैः शुद्धाभरणवत् शोभादि स्यात्, ग्रहणकादौ मुक्तैश्च तत्स्वरूपाऽनभिज्ञा मुग्धा द्रव्याद्यर्पयंति, भग्नैस्तु न कोऽप्यर्थः सिद्ध्यतीति द्वितीयः ॥ १० ॥ तथा गृहिणां व्यवहारिणामाभरणानि सर्वस्वर्णमयत्वादंतर्निर्घटत्वात्साराणि; बहिश्च तादृक्प्रौढरत्नादिजटितत्वाऽभावात् ॥ ११ ॥ तद्योषिदादिभिर्वस्त्राच्छादनादिना गुप्तवृत्त्या परिधानेन वा राजाभरणापेक्षया अनुदरा कन्येत्यादिवत् अल्पसारत्वादसाराणि ॥ १२ ॥

अर्थः— ते बहारनुं सारपणुं बीजी रीते बतावे छे, ते कहे छे—जेम कुलीन स्त्रीओ वस्त्रआदिकथी ढांकीने गुप्त रीते आभूषणो पहेरे छे, तेम वेश्याओ गुप्त पहेरती नथी, तेओ तो वस्त्रआदिक ढांक्या विना प्रगट रीतेज बाजुबंध तथा कुंडल आदिक पहेरे छे ॥ ९ ॥ अने तेथी बहारथी चळकतां देखावाथी तेओ बाह्यसारवाळां छे; वळी ज्यांसुधी ते अखंड होय त्यांसुधी तो साचां आभूषणनी पेठे शोभा आदिक थाय, तेम घरेणे मूकवाथी पण तेना स्वरूपने नहीं जाणनारा मुग्ध लोको ते साटे द्रव्यआदिक आपे छे; परंतु ते आभूषणो भांग्याथी तेथी कंइ पण स्वार्थ सरतो नथी; एवी रीते बीजो भेद जाणवो ॥ १० ॥ वळी गृहस्थीना एटले व्यापारीओनां आभूषणो सर्व सोनानां होवाथी तथा अंदर नक्कर होवाथी सारभूत छे; तथा बहारथी तेमां तेवां उमदां रत्नआदिक जडेलां न होवाथी ॥ ११ ॥ तेमज तेओनी स्त्री आदिको पण वस्त्रो ढांकवा आदिकथी गुप्त रीते पहेरे छे, अने तेथी राजाना आभूषणोनी अपेक्षाये 'आ कन्या उदर विनानी छे' इत्यादिकनी पेठे ते आभूषणो स्वल्प सारवाळां होवाथी असारभूत छे ॥ १२ ॥

तानि चाऽखंडानि जग्नानि वाऽर्थलाभादिकार्यकारीण्येवेति तृतीयः ॥ १३ ॥ तथा राज्ञामाभरणानि प्राग्वदंतःसाराणि, बहिरपि च लक्षकोट्यादिमूल्यरत्नादिजटितत्वान्निर्भयत्वेन पुंभिर्नृपयोषिद्भिश्च स्फुटतरयैव परिधानादिना वा रविकिरणादिवद् द्योतमानत्वेन साराण्येव ॥ १४ ॥ तैश्चाऽखंडैः सुखमातिरेकोत्पत्तेः, जग्नैरपि च स्वर्णमाणिक्यादिमूल्योत्पत्तेश्चाऽभीष्टसिद्धिरेवेति चतुर्थः ॥ १५ ॥ एवं गुरवोंऽतर्बहिश्च श्रुतेन सताऽसता च चतुष्प्रकारा ज्ञेयाः, अंतर्बहिश्चाऽसाराः, अंतरसारा बहिःसाराः, अंतःसारा बहिरसाराः, अंतर्बहिश्च साराः ॥ १६ ॥

वळी ते आभूषणो अखंड होय या भांगेलां होय, तोपण द्रव्यना लाभ आदिक कार्यने करनारांज छे; एवी रीते त्रीजो भेद जाणवो ॥ १३ ॥ वळी राजानां आभूषणो पूर्वनी पेठे अंदरथी सारवाळां, तेम बहारथी पण लाखो क्रोडोनी किंमतवाळां रत्नो आदिकथी जडेलां होवाथी, अथवा निर्भयपणे पुरुषो तथा राजानी स्त्रीओ वडे प्रगट रीतेज पहेरवा आदिकथी अथवा सूर्यना किरण आदिकोनी पेठे चळकतां होवाथी साररूपज छे ॥ १४ ॥ वळी तेओ ज्यांसुधी अखंडित होय त्यांसुधी पहेरवाथी अत्यंत सुखनी प्राप्ति थाय छे अने भांग्याथी पण सुवर्ण तथा माणिक्य आदिकोनुं मूल्य उपजवाथी इच्छित सिद्धि थायज छे; एवी रीते चोथो भेद जाणवो ॥ १५ ॥ एवी रीते गुरुओ पण अंदर अने बहार छता अने अछता एवा ज्ञाने करीने नीचे मुजब चार प्रकारना जाणवा. अंदरथी अने बहारथी सार विनाना; अंदर सारविनाना अने बहारथी सारवाळा; अंदरथी सारवाळा अने बहारथी सार विनाना; तथा अंदरथी पण सारवाळा अने बहारथी पण सारवाळा ॥ १६ ॥

तत्र केषांचित् पार्श्वस्थादीनामंतर्हृदये न श्रुतं सम्यक्श्रीजिनागमरूपं, तदश्रद्धानात्-लेशतोऽपि तद्भावनाद्यभावाच्च ॥ १७ ॥ अश्रद्धानादि च तल्लिंगस्य, महाव्रता-राधनावश्यकादिसम्यक्क्रियाषड्जीवरक्षापरिणामपालनप्रयत्नादिसंवेगकषायोपशमतत्त्व-भावनादेरदर्शनात् ॥ १८ ॥ प्रत्युत 'दगपाणं पुष्फफलं । अणेसणिज्जं गिहत्थ-किच्चाइं' इत्यादिप्रमादानां स्फुटवृत्त्यैवासेवनोपलंभात्; पार्श्वस्थादिषु ह्येतेऽनाचाराः स्फुटमेवोपलभ्यंते ॥ १९ ॥ तथाहि—संनिहिमहाकम्मं । जलफलकुसुमाइसव्वस-च्चित्तं निच्चदुतिवारभोअण—विगइलवंगाइतंबोलं ॥ २० ॥ वत्थं दुप्पडिले-हिअ—मपमाणसकन्निअं दुकूलाइं ॥ सिज्जोवाणहवाहण—आउहतंबाइपत्ताइं ॥२१॥

त्यां केटलाक पासत्था आदिकोना हृदयनी अंदर श्री जिनागम रूप सम्यक् प्रकारनुं श्रुत होतुं नथी, केमके तेओने ते पर श्रद्धा होती नथी, अथवा लेश मात्र पण तेनी भावना आदिकनो तेओने अभाव होय छे ॥ १७ ॥ वळी तेओना लिंगनी पण श्रद्धा आदिक थती नथी केमके तेओमां महाव्रतोनी आराधना, आवश्यक आदिक उत्तम क्रिया, छकाय जीवोनी रक्षानो विचार, तथा ते पाळवामां प्रयत्न आदिक, वैराग्य कषायोनी शांति तथा तत्वोनी भावना आदिक देखातुं नथी ॥ १८ ॥ परंतु उलटुं जळ, माटी, पुष्प, फळनो संग्रह, अने पणीय आहार आदिकनुं सेवन, तथा गृहस्थोनां कार्य करवा पणुं, इत्यादि प्रमादोने प्रगट रीतेज सेवता देखाय छे; केमके पासत्था आदिकोने विषे ए अनाचारो प्रगटज रीते देखाय छे ॥ १९ ॥ ते कहे छे.—संनिधि, आधाकर्मि, जळ, फळ, तथा पुष्प आदिक सर्व सचित्तोनुं सेवन, हमेशां बे, त्रणवार भोजन विगय तथा लवंग आदिक तंबोलनुं सेवन ॥ २० ॥ सारी रीते नहीं पडिलेहन करेलां, प्रमाण विनानां, तथा किनारीवाळां रेशमी वस्त्र आदिकनुं पहेरवापणुं, शय्या, पगरखां, वाहन, हथीयार, त्रांबा आदिकनां पात्रोनुं राखवुं ॥ २१ ॥

सिरतुंडं खुरमुंडं । रयहरमुहपत्ति धारणं कज्जे ॥ एगागित्तममणं । सच्छंदं चिट्ठिअं गीअं ॥ २२ ॥ चेइअमढाइवासं । पूआरंभाइ निच्चवासित्तं ॥ देवाइ दव्वभोगं । जिणहरसालाइकारवणं ॥ २३ ॥ न्हाणंवट्टणभूसं । ववहारं गंथसंगहंकीड्ं ॥ गामकुलाइममत्तं । ×थीनट्टं थीपसंगं च ॥ २४ ॥ निरयगइहेउ—जोइस । निमित्तेगिच्छमंतजोगाइ ॥ मिच्छाइ रायसेवं । नीयाणवि पावसाहिज्जं ॥ २५ ॥ सुविहिअसाहुपओसं । तप्पासे धम्मकम्मपडिसेहं ॥ सासणपभावणाए । मच्छर-भंडाइकलिकरणं ॥ २६ ॥

अर्थः— मस्तक दाढी मुंडाववी, काम पडये रजोहरण तथा मुहपत्ति धारवां, तथा एकाकी जमवुं, ए मपर्छु स्वच्छंद चेष्टित कहुं छे ॥ २२ ॥ पूजा आरंभ आदिक, नित्यवास, देवद्रव्यादिकनुं भोगववुं, जिनमंदिर अने जिनशाळा आदिक बनाववां ॥ २३ ॥ स्नान करवुं, मर्दन करवुं, आभूषण पहेरवां, व्यापार करवो, ग्रंथ संग्रह करवो, क्रीडा करवी, गाम कुळ आदिकनी ममता करवी, स्त्रीनो नाच जोवो, तथा स्त्रीनो प्रसंग करवो ॥ २४ ॥ वळी नरकगतिना हेतुरूप एवां ज्योतिष, निमित्त, वैद्यक, मंत्र, जोग आदिक साधवां, मिथ्यात्वि राजानी सेवा करवी, नीच प्राणीओने पण पापकार्यमां सहाय आपवी ॥ २५ ॥ उत्तम क्रिया पाळनारा साधुओपर द्वेष करवो, तेमनी पासे धर्मकार्यनो प्रतिषेध करवो, शासननी उन्नतिमां मत्सर करवो, भांडणां आदिवडे करीने कजीओ करवो ॥ २६ ॥

× 'थी परिग्गहो वावि' इति द्वितीयपुस्तकपाठः

सीसोदराइफोमण । उच्चाटणं च मोहणं गिहियुणणं ॥ जिणपडिमाकयविक्कय । उच्चाटणखुद्दकरणाइं ॥ २७ ॥ थीकरफास बंभे । संदेह कलंतरेण धणदाणं ॥ चह्रुयसीसगहणं नीचकुलस्सावि दव्वेणं ॥ २८ ॥ सव्वावज्जपवत्तण—मुहुत्तदाणाइ सव्वलोयाणं ॥ सलाइगिहिघरे वा । खज्जगपागाइकरणाइं ॥ २९ ॥ जक्खाइगुत्तदेवय—पूयणपूयावणाइमिच्छत्तं ॥ सम्मत्ताइनिसेहं । तेसिं मुल्लेण दाणं ॥ ३० ॥ इय बहुहासावज्जं । जिणपडिकुट्ठं च गरहियं लोए ॥ जे सेवंति कुकम्मं । करंति एवं हि निक्कम्मा ॥ ३१ ॥

मस्तक फेड आदिक फोडवां, उच्चाटणपणुं आचरवुं, लोकोने माटे गृहस्थीनी स्तुति करवी, जिन प्रतिमानो क्रयविक्रय करवो, उच्चाटन, कामणप्रमुख नीच कार्य करवां ॥ २७ ॥ स्त्रीना हाथनो स्पर्श करवो, ब्रह्मचर्यमां संदेह धरवो, व्याजे धन आपवुं, नीच कुळना पण चाहुकिया शिष्योने द्रव्य आपी ग्रहण करवा ॥२८॥ सर्व पापोमां प्रवृत्ति करवी, सर्व लोकोने मुहूर्त आदिक जोइ देवां, धर्मशाळामां अथवा गृहस्थीने घेर खाजां पकवान आदिक करवां ॥ २९ ॥ यक्ष आदिक गोत्रदेवनानी पूजा करवी करावची आदिक मिथ्यात्वने स्वीकारवुं, सम्यक्त्व आदिकनो निषेध करवो, अथवा किमत लेइ सम्यक्त्व आदिक देवुं ॥ ३० ॥ एवी रीते घणा प्रकारनुं सावद्य एटले पापवाळुं कार्य जिनेश्वर प्रभुए निषेधेलुं, तथा निंदेलुं छे, माटे आ लोकमां जे प्राणीओ कुकर्म सेवे छे, तथा करे छे, तेओ खरेखर धर्म विनाना छे ॥ ३१ ॥

॥ ११२ ॥ इह परलोअहयाणं । सासणजसघाइणं कुदिट्टीणं ॥ कह जिणदंसणमेसिं । कोवेसो किं च नमणाई ॥ ३२ ॥ इत्यादि, अतो न तेषामंतःश्रुतं, नापि बहिः, पाठे व्याख्यादौ च श्रुतस्याऽश्रवणात्, प्रायः षट्प्रज्ञकादीनां चाणाक्यपंचाख्यानकसिंहासनद्वात्रिंशिकाविनोदकथाप्रायाणामन्येषामपि लोकाक्षेपकाणां तत् तदाधुनिकादिनृपमंत्रिकविप्रभृतिप्रबंधकल्पितसंबंधविशेषोपदेशानां च पाठाद् व्याख्यादौ च प्रयोजनाच्च ॥ ३३ ॥ ततोऽतर्बहिश्च श्रुताज्ञानेन क्रियाभ्यासाभावः पार्श्वस्थादयो लोकोत्तराः कुगुरवः प्रथमभंगपातिनो ज्ञेयाः ॥ ३४ ॥

वळी एवी रीते आलोक अने परलोकनो नाश करनारा, शासनना जशनो घात करनारा, तथा कुदृष्टिवाळा एवा तेओने जिनदर्शन क्यांथी मात्र थाय? तेम उत्तम वेष तथा नमन आदिक पण क्यांथी होय? ॥ ३२ ॥ इत्यादि, माटे तेओने अंतरथी पण श्रुत एटले ज्ञान नथी होतुं, तेम बहारथी पण नथी होतुं? केमके पाठ तथा व्याख्यान आदिकमां तेओने श्रुत होय, एम सांभळातुं नथी; केमके तेओ प्राये करीने छ प्रज्ञकादिकोनो तेमज चाणाक्य नीति, पंचाख्यान, सिंहासन बत्रीसी आदिक विनोद कथाओनो, तेमज बीजां पण जेथी लोकोनां मन रंजन थाय तेवां शास्त्रोनो, तथा ते ते हमणाना राजा, मंत्रि कवि आदिकोनो प्रबंधोना कल्पित एवा संबंध विशेष उपदेशोना पाठथी व्याख्यान आदिक वांचे छे ॥ ३३ ॥ माटे एवी रीतना पासत्था आदिको श्रुतना अभावथी अंदरथी अने बहारथी पण भाव विनाना छे; तथा ते लोकोत्तर कुगुरुओने पहेला भांगामां रहेला गणवा ॥ ३४ ॥

एवं लौकिका अपि विप्रादयो बौद्धयोगितापसादयश्च बहिरंतश्च श्रुताऽज्ञानेन प्रथमभंगानुपातिन एव, श्रुताऽज्ञानाश्च तेषां द्विधापि जिनवचनबाह्यत्वात् ॥ ३५ ॥ जिनवचनव्यतिरिक्तशास्त्राणां च श्रुतत्वाऽज्ञानात्, तेषां श्रुतत्वाऽज्ञानश्च गर्दभशृंगवत् क्षोदाऽक्षमत्वात्, जीववधाऽसत्यस्तैन्याऽब्रह्मादीनामपि धर्मत्वेन प्ररूपकत्वाच्च ॥ ३६ ॥ तदुक्तं धनपालपंडितेन,—स्पर्शोऽमेध्यभुजां गवामघहरो वंद्या विसंज्ञा द्रुमाः । स्वर्गश्छागवधाद्धिनोति च पितॄन् विप्रोपभुक्ताशनं ॥ आप्ताश्छद्मपराः सुराः शिखिहुतं प्रीणाति देवान् हविः । स्फीतं फल्गु च वल्गु च श्रुतिगिरां को वेत्ति लीलायितं ॥ ३७ ॥

एवी रीते लौकिक एवा ब्राह्मण आदिको, बौद्ध, योगी तथा तापस आदिको बहारथी अने अंदरथी पण श्रुतना अज्ञाने करीने पहेला भांगामां वर्तनारा छे; वळी तेओ जिन वचनथी बाह्य होवाथी तेओने बन्ने रीते श्रुतनो अज्ञान छे ॥ ३५ ॥ तेम जिन वचन शिवायनां शास्त्रोनो श्रुतपणानो अज्ञानज छे, अने ते शास्त्रोनो श्रुतपणानो अज्ञान गधेडानां शींगडानी पेठे कुंदावुं खमी शकतो नथी; केमके तेओमां जीवहिंसा, असत्य, चोरी, तथा अब्रह्म आदिकोने पण धर्मरूपे प्ररूपेला छे ॥ ३६ ॥ ते माटे धनपाळ पंडिते कह्युं छे के, जे श्रुतिनी वाणीमां विष्ठा खानारी गायोना स्पर्शने पापोने हरनारो कह्यो छे, संज्ञारहित वृक्षोने वंदनीक कह्या छे, बकराओनी हिंसाथी स्वर्गप्राप्ति कहेली छे, ब्राह्मणोनुं खाधेलुं अन्न पितृओने पुष्ट करनारुं कह्युं छे, कपटी देवोने आप्त तरीके कहेला छे, अग्निमां होमेलुं बलिदान देवोने खुश करनारुं कहेलुं छे, एवी रीतनी श्रुतिनी वाणीनुं विशाळ अने मनोहर छतां निरर्थक चेष्टित कोण जाणी शके तेम छे? ॥ ३७ ॥

योगशास्त्रांतरश्लोकेष्वपि,—अयं दशविधो धर्मो । मिथ्यादृग्भिर्न वीक्षितः ॥ योऽपि कश्चित् क्वचित् प्रोचे । सोऽपि वाङ्मात्रनर्त्तनं ॥ ३८ ॥ तत्त्वार्थो वाचि सर्वेषां । केषांचन मनस्यपि ॥ क्रिययापि नरीनर्त्ति । नित्यं जिनमतस्पृशां ॥ ३९ ॥ वेदशास्त्रपराधीनबुद्धयः सूत्रकंठकाः ॥ न लेशमपि जानंति । धर्मरत्नस्य तत्त्वतः ॥ ४० ॥ गोमेधनरमेधाश्वमेधाद्यध्वरकारिणां ॥ याज्ञिकानां कुतो धर्मः । प्राणिघातविधायिनां ॥ ४१ ॥ अश्रद्धेयमसद्भूतं । परस्परविरोधि च ॥ वस्तु प्रज्ञपतां धर्मः । कः पुराणविधायिनां ॥ ४२ ॥

योगशास्त्रमां रहेला श्लोकोमां पण कह्युं छे के, आ दश प्रकारनो धर्म मिथ्यात्विओए जोयेलो नथी, अने कदाच कोइ कंइक कहे, ते पण फक्त वचन मात्रनुं नाटक छे ॥ ३८ ॥ जैन मतने माननारा एवा सर्व लोकोना वचनमां तत्त्वनो अर्थ रहेलो छे, तथा केटलाकोना मनमां रहेलो छे, अने क्रियारूपे पण हमेशांज नाची रहेलो छे ॥३९॥ फक्त सूत्र मात्रने कंठे करनारा तथा वेदशास्त्रने आधीन बुद्धिवाळा मनुष्यो धर्मरूपी रत्नना लेश मात्रने पण तत्वथी जाणता नथी ॥४०॥ गोमेध नरमेध तथा अश्वमेध आदिक यज्ञ करनारा एवा जीवहिंसा करनाराओने धर्म ते क्यांथी होय ? ॥ ४१ ॥ वळी न श्रद्धा करवा लायक, असत् तथा परस्पर विरोधवाळुं वचन बोलनारा एवा पुराणीओने पण शी रीते धर्म होय ? ॥ ४२ ॥

असद्भूतव्यवस्थाभिः । परात् द्रव्यं जिघृक्षतां ॥ मृत्पानीयादिभिः शौचं । स्मार्तादीनां कुतो ननु ॥ ४३ ॥ ऋतुकाले व्यतिक्रांते । भ्रूणहत्याभिधायिनां ॥ ब्राह्मणानां कुतो ब्रह्म ब्रह्मचर्यप्रज्ञापिनां ॥ ४४ ॥ अदित्सतोऽपि सर्वस्वं । यजमानाज्जिघृक्षतां ॥ अर्थार्थं त्यजतां प्राणान् । क्वाकिंचन्यं द्विजन्मनां ॥ ४५ ॥ दिवसे च रजन्यां च । मुहुर्मापूर्णमय खादतां ॥ भक्ष्याऽभक्ष्याऽविवेकानां । सौगतानां कुतस्तपः ॥ ४६ ॥ मृद्वी शय्या प्रातः पेया । मध्ये भक्तं सायं पानं ॥ द्राक्षाखंडं रात्रेर्मध्ये । शाक्योपज्ञः साधोर्धर्मः ॥ ४७ ॥ स्वल्पेष्वप्यपराधेषु । क्षणाच्छापं प्रयच्छतां ॥ लौकिकानामृषीणां न । क्षमालेशोऽपि दृश्यते ॥ ४८ ॥

जूठी व्यवस्थाओथी पर पासेथी द्रव्य ग्रहण करवानी इच्छा करनारा एवा स्मृतिने अनुसरनारा आदिकोने माटी तथा पाणी आदिकथी पवित्रता (धर्म) क्यांथी होय? ॥ ४३ ॥ ऋतुकाल गये छते बाळहत्या कहेनारा, तथा ब्रह्मचर्यनो फक्त बकबकाट करनारा ब्राह्मणोने ब्रह्मचर्य (धर्म) क्यांथी होय ? ॥ ४४ ॥ देवानी इच्छा नहीं करनारा एवा पण यजमान पासेथी तेनुं सर्वस्व लेवाने इच्छता तथा धनने माटे प्राणने तजनारा एवा ब्राह्मणोने अकिंचनपणुं क्यांथी होय ? ॥ ४५ ॥ दिवसे अने रात्रिए पण मुखने पुरीने खानारा, तेमज भक्ष्य अभक्ष्यनो विवेक नहीं करनारा एवा बौद्धोने तप क्यांथी होय? ॥ ४६ ॥ कोमळ शय्या, प्रभाते राब के कांजी पीवी, मध्यान्हे भोजन करवुं, सांजे दूध आदिक पीवुं, मध्यरात्रिए द्राक्ष खंड खावां, एवो शाक्यमुनिए साधुधर्म कह्यो छे ॥ ४७ ॥ स्वल्प अपराध होते छते पण क्षणवारमां श्राप आपनारा एवा लौकिक ऋषिओने क्षमानो लेश मात्र पण देखातो नथी ॥ ४८ ॥

जात्यादिमददुर्वृत्त—नर्त्तितचेतसां ॥ क्व मार्दवं द्विजातीनां । चतुराश्रमवर्तिनां ॥ ४९ ॥ दंभसंरंभगर्भाणां । बकवृत्तिजुषां बहिः ॥ भवेदार्जवलेशोऽपि । पाखंडव्रतिनां कथं ॥ ५० ॥ गृहिणीगृहपुत्रादि—परिग्रहवतां सदा ॥ द्विजन्मनां कथं मुक्ते—र्भोजनैककुलवेश्मनां ॥ ५१ ॥ अरक्तद्विष्टमूढानां । केवलज्ञानशालिनां ॥ ततो भगवतामेषां । धर्मस्वाख्याततार्हतां ॥ ५२ ॥ रागाद् द्वेषात्तथा मोहात् । भवेद् वितथवादिता ॥ तदभावे कथं नामा—र्हतां वितथवादिता ॥ ५३ ॥ ये तु रागादिभिर्दोषैः । कलुषीकृतचेतसः ॥ न तेषां सूनृता वाचः । प्रसरंति कदाचन ॥ ५४ ॥

जाति आदिकनो मद तथा दुराचरणोथी जेओनुं मन नाची रहेलुं छे, तथा चार आश्रमोमां जेओ वर्त्ती रहेला छे, एवा ब्राह्मणोने कोमलता क्यांथी होय? ॥ ४९ ॥ हृदयमां कपटवाला, तथा बहारथी बगलाजेवी वृत्तिवाला एवा पाखंडी व्रतधारीओने सरलपणानो लेश पण क्यांथी होय? ॥ ५० ॥ हमेशां स्त्री, घर तथा पुत्र आदिकना परिग्रहवाला तथा भोजनना तो एक कुलगृह सरखा एवा ब्राह्मणोने त्यागभाव क्यांथी होय? ॥ ५१ ॥ माटे राग द्वेष विनाना अने केवलज्ञानवडे करीने मनोहर तथा उत्तम व्याख्यानने लायक एवा श्री अरिहंत प्रभु ओनो कहेलो धर्म श्रेष्ठ छे ॥ ५२ ॥ राग, द्वेष अने मोहथी वितथवादीपणुं थाय छे, अने श्री अरिहंत प्रभुओने तो तेओनो अभाव होवाथी तेओमां वितथवादीपणुं क्यांथी संभवे? ॥ ५३ ॥ वळी जेओनां मन राग आदिक दोषोथी मलिन थयेलां छे, तेओनां सत्य वचनो कदापि पण होइ शकतां नथी ॥ ५४ ॥

तथाहि—यागहोमादि—कर्माणीष्टानि कुर्वतां ॥ वापीकूपतडागादी—न्यपि पूर्त्ता-
न्यनेकशः ॥ ५५ ॥ पशूपघाततः स्वर्ग—लोकसौख्यं च मार्गतां ॥ द्विजेभ्यो भो-
जनैर्दत्तैः । पितृतृप्तिं चिकीर्षतां ॥ ५६ ॥ घृतयोन्यादिकरणैः । प्रायश्चित्तविधायिनां
॥ पंचस्वापत्सु नारीणां । पुनरुद्वाहकारिणां ॥ ५७ ॥ अपत्याऽसंभवे स्त्रीषु । क्षे-
त्रजापत्यवादिनां ॥ सदोषाणामपि स्त्रीणां । रजसा शुद्धिवादिनां ॥ ५८ ॥ श्रेयो-
बुद्ध्याध्वरहत—छागशिश्नोपजीविनां ॥ सौत्रामण्यां सप्ततंतौ । सीधुपानविधायिनां
॥ ५९ ॥

वळी यज्ञ, हवन आदिक इष्ट कर्मोने करनारा, तथा अनेक एवां वाव कुवा तथा तळाव आदिक पूर्तने पण करनारा× ॥ ५५ ॥ वळी पशुओनी हिंसाथी स्वर्ग लोकना सुखनी मागणी करनारा, ब्राह्मणो मले भोजन देइने पितृओनी तृप्ति करवानी इच्छा करनारा ॥ ५६ ॥ घृतनी योनि आदिक करीने प्रायश्चित्त करनारा, पांच प्रकारनी आपदाओ पडते छते पुनर्विवाह करनारा ॥ ५७ ॥* स्त्रीने संतान न होते छते क्षेत्रजथी (गोत्रीथी) पुत्र उत्पन्न करवानुं कहेनारा, दोषयुक्त स्त्रीओनी पण रजथी शुद्धि कहेनारा ॥ ५८ ॥ श्रेयनी बुद्धिथी यज्ञ करनारे हणेला बकराना लिंगथी आजीविका चलावनारा, सुत्रामणी तथा सप्ततंतु यज्ञमां मदिरापान करनारा ॥ ५९ ॥

× उक्त कार्योने तेओ इष्टापूर्त कहे छे.

* पोतानी आज्ञाथी पोतानी स्त्री साथे गोत्रज अथवा परपुरुषना संजोगथी उत्पन्न थयेलो पुत्र 'क्षेत्रज' कहेवाय छे. (आवी आज्ञा देनारां शास्त्र केवां प्रमाणिक होय तेज विचारवा योग्य छे) ए संबंधी मनुस्मृतिमां विवेचन छे.

गूथाशिनीनां च गवां । स्पर्शनात्पूतमानिनां ॥ जलादिस्नानमात्रेण । पापशुद्धिवि-धायिनां ॥ ६० ॥ वटाश्वत्थामलक्यादि—द्रुमपूजाविधायिनां ॥ वन्हौ हुतेन हव्येन । देवप्रीणनमानिनां ॥ ६१ ॥ भुवि गोदोहकरणा—द्विघ्नशांतिकमानिनां ॥ योषिद्भिर्व-वनाप्राय—व्रतधर्मोपदेशिनां ॥ ६२ ॥ तथा, जटावल्कलभस्मांग—रागकौपीनधारिणां अर्कधत्तूरमालूर—देवपूजाविधायिनां ॥ ६३ ॥ कुर्वतां गीतनृत्यादि । पुतौ वादयतां मुहुः ॥ मुहुर्वदननादेना—तोद्यनादविधायिनां ॥ ६४ ॥ असत्यजल्पापूर्वं च । मुनीन् देवान् जनान् घ्नतां ॥ विधाय व्रतभंगं च । दासीदासत्वमिच्छतां ॥ ६५ ॥

विष्ठा खानारी गायोना स्पर्शथी पवित्रपणुं माननारा, फक्त जळ आदिकना स्नानथी पापोनी शुद्धि कहेनारा ॥ ६० ॥ वड, पीपळा तथा आंबळी आदिक वृक्षोनी पुजा करनारा, अग्निमां होमेलां पदार्थवडे करीने देवोनी खुशी माननारा ॥ ६१ ॥ भूमी उपर गायने दोवाथी विघ्नोनी शांति माननारा, मैथुन करीने जेथी स्त्रीने दुःख उपजे एवां व्रतोवाळा धर्म थवानो उपदेश देनारा ॥ ६२ ॥ वळी, जटा, वल्कल, भस्म चोळेलुं शरीर तथा लंगोटीने धरनारा, आकडो, धंतुरा तथा बिल्लीथी देव पुजा करनारा ॥ ६३ ॥ गीत, नाच आदिक करनारा, वारंवार हाथनी ताळीओ वगाडनारा, तेमज वारंवार मुखना स्वरथी वाजित्रनो नाद करनारा ॥ ६४ ॥ असत्य वचनपूर्वक मुनि, देवो तथा मनुष्योने हणनारा, व्रतभंग करीने दासी दासपणुं इच्छनारा ॥ ६५ ॥

गृह्णतां मुंचतां भूयो। भूयः पाशुपतं व्रतं ॥ भेषजादिप्रयोगेण। यूकालक्षं प्रणिघ्नतां ॥ ६६ ॥ नरास्थिभूषणभृतां। शूलखट्वांगवाहिनां ॥ कपालभाजनभुजां। घंटानूपुरधारिणां ॥ ६७ ॥ मद्यमांसांगनाभोग—प्रसक्तानां निरंतरं ॥ धृतानुबद्धघंटानां। प्रत्यहं गायतां मुहुः ॥ ६८ ॥ तथा, अनंतकायकंदादि—फलमूलदलाशिनां ॥ कलत्रपुत्रयुक्तानां। वनवासजुषामपि ॥ ६९ ॥ तथाहि—भक्ष्याऽभक्ष्ये पेयाऽपेये। गम्याऽगम्ये समात्मनां ॥ योगिनाम्ना प्रसिद्धानां। कौलाचार्यांतवासिनां ॥ ७० ॥ अन्येषामपि जैनेंद्रशासनाऽस्पृष्टचेतसां ॥ क्व धर्मः क्व फलं तस्य। तस्य स्वाख्यातता कथं ॥ ७१ ॥ इति ॥

वळी वारंवार पाशुपत व्रतने ग्रहण करता तथा मूकता, औषध आदिक प्रयोगे करीने लाखो गमे जूंओने मारनारा ॥ ६६ ॥ मनुष्योना हाडकांनां आभूषणोने धारण करनारा, शूलोवाळा (खीला जडेला) खाटपर बेसनारा, तुंबडीरूपी भाजनमां भोजन करनारा, घंटा तथा झांझर पहेरनारा ॥ ६७ ॥ हमेशां मद्य, मांस तथा स्त्रीना भोगोमां आसक्त थयेला, साथे घंट बांधीने फरनारा, तथा हमेशां वारंवार गायन गानारा ॥ ६८ ॥ वळी, अनंतकाय, कंदमूळ आदिक फळ, मूळ तथा पत्र खानारा, वनवासमां रहीने पण स्त्री तथा पुत्रोने साथे राखनारा ॥ ६९ ॥ वळी—भक्ष्य तथा अभक्ष्य, पेय तथा अपेय, गम्य तथा अगम्य ए सघळामां तुल्य अवस्थावाळा, तेमज (बहारथी) योगीना नामथी प्रसिद्ध, अने *कौलाचार्यनी पासे रहेनारा ॥ ७० ॥ तेमज एवा बीजाओ के जेओनां चित्ते श्रीजिनेश्वर प्रभुना शासनने स्पर्श करेलो नथी एवाओने धर्म, तथा धर्मनुं फळ, अने तेमनुं उपदेशपणुं क्यांथी होय ? ॥ ७१ ॥ इति ॥

* कौलाचार्य एटले वाममार्गी मिथ्यात्विओ.

इत्युक्ता बहिरंतरसाराः प्रथमभंगानुसारिणः कुगुरवः, एते च प्रथमभंगाभरणवद् गुर्वाकारधारिणोऽपि वाह्यीकमुग्धमिथ्यादृग्मोहाऽज्ञानांधितचेतस्कजनमान्या अपि च स्फुटारंभाऽधर्मप्रवृत्तदेवद्रव्यपरिभोगपरोपतापिवाक्कुकर्मादिभिर्विज्ञजनाऽवज्ञास्पदत्वेनेह लोकेऽपि न तथा पूजासुखादिभाजः ॥ १२ ॥ नित्यजीविकाऽपत्योद्वाहनादिचिंताकृषिराजसेवादिभिः प्रायो दुःखिता एव च; प्रेत्य च नृपाधिकारनिमित्तज्योतिषकथनादिमहारंभप्रवर्त्तनादिपापैः प्रायो निरयादिदुर्गतिगामिन एवेति ॥ १३ ॥ तदुक्तं 'नरिंदनेमित्तिआयजोइसिआ' इति पद्मचरित्रे नरकगामिजीवाधिकारे; लौकिकैरप्युक्तं—॥ १४ ॥

एवी रीते बहारथी अने अंदरथी सारविनाना एवा पेहेला भांगाने अनुसरनारा कुगुरुओनुं स्वरूप कह्युं; अने तेओ पेहेला भांगवाळा आभूषणनी पेठे गुरुना आकारने जो के धारण करे छे, तोपण, तेमज मजुर, भोळा, मिथ्या दृष्टि तथा मोह अने अज्ञानथी अंध चित्तवाळा लोकोथी माननीक छतां पण प्रगट रीते आरंभ, अधर्ममां प्रवर्त्तन, देवद्रव्यनो उपभोग, परने पीडा उपजावनारी वाणी, तथा कुकर्म आदिकोवडे करीने विद्वानोनी अवज्ञाना स्थानरूप होवाथी आ लोकमां पण एवी रीते मान तथा सुख आदिकने भजनारा थइ शकता नथी ॥ १२ ॥ हमेशां जीविका एवां संतान, विवाह आदिकनी चिंता, खेती, तथा राजसेवा आदिके करीने प्राये करीने दुःखीज रहे छे; तेम परलोकमां पण राज्याधिकार, निमित्त तथा ज्योतिष कथन आदिक मोटा आरंभना प्रवर्त्तन आदिक पापोये करीने प्राये करी नरक आदिक दुर्गतिमां जनाराज थाय छे ॥ १३ ॥ कह्युं छे के 'राजा, निमित्तिआ, ज्योतिषी' एम पद्मचरित्रमां नरकगामी जीवोना अधिकारमां कह्युं छे; अन्यदर्शनीओए पण कह्युं छे के ॥ १४ ॥

अधिकारात्त्रिभिर्मासै—र्माठपत्यात्त्रिभिर्दिनैः ॥ शीघ्रं नरकवाञ्छा चेद् दिनमेकं पुरोहितः ॥ १५ ॥ लोकोत्तरगुरूनप्याश्रित्यागमेऽपि,—पुल्लेव मुट्ठी जह से असारे । अयंतिए कूडकहावणे वा ॥ राढामणी वेरुलिअप्पगासे । अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥ १६ ॥ तमंतमेणेव उ से असीले । सया दुही विप्परिआमुवेई ॥ संधावइ नरगतिरिक्खजोणिं । मोणं विराहित्तु असाहुरूवे ॥ १७ ॥ इत्यादि विंशे श्रीउत्तराध्ययने ॥ तथा गणिकाभरणवत्केचिदंतरसाराः प्रागुक्तयुक्त्या बहिस्तुसाराः ॥ १८ ॥ पाठतो नवपूर्व्यवधिश्रीजिनवचनाध्ययनाध्यापनोपदेशाद्याडंबरभृत्तया स्युः, अंगारमर्दकाचार्यादिवत् ॥ १९ ॥ तथाहि

अधिकारथी त्रण मासे नरक मळे छे, मठपतिपणुं धारण करवाथी त्रण दिवसे नरक मळे छे, तथा जो तुरतज नरकनी इच्छा होय, तो एक दिवस सुधि पुरोहितपणुं अंगीकार करवुं ॥ १५ ॥ वळी लोकोत्तर गुरुओने आश्रीने पण आगममां पण कह्युं छे के, जेम पोली मुठी सारविनानी छे, अथवा जेम नियमित करेलो खोटो सिक्को सारविनानो छे, (तेम ते द्रव्यसाधु पण उपेक्षा करवा लायक छे) केमके काचनो टुकडो वैडूर्य रत्ननी पेठे कदाच प्रकाश युक्त होय, तोपण तेना परीक्षको आगळ ते किमत विनानोज थइ पडे छे. अर्थात् अज्ञानीओज तेने किमती गणे छे. ॥ १६ ॥ वळी अंधकाररूप करीने अर्थात् मिथ्यात्वरूप अज्ञाने करीने हणाएलो एवो ते द्रव्ययति हमेशां दुःखी थयो थको तत्त्वआदिकोने विषे विपरीतपणुं पामे छे, तथा मुनिपणुं विराधीने असाधुरूप थयो थको नरक तथा तिर्यंचनी योनि पामे छे ॥ १७ ॥ इत्यादिक वर्णन श्री उत्तराध्ययन सूत्रना वीसमा अध्ययनमां करेलुं छे. वळी केटलाक साधुओ वेश्याना आभूषणनी पेठे पूर्वे कहेली रीति मुजब अंदरथी सार विनाना अने बहारथी सारवाळा छे ॥ १८ ॥ अने तेवाओ अंगारमर्दक आचार्य आदिकनी पेठे, पाठथी ठेक नव पूर्व सुधी श्री जिन वचन भणवा, भणाववा तथा उपदेशना आदिकना आडंबरवाळा होय छे ॥ १९ ॥ ते कहे छे—

—श्रीविजयसेनसूरेः शिष्यैः स्वप्ने सूकरो गजकलभशतपंचकेन परिवृतो ददृशे, कथितं गुरोः, सोऽवोचदभव्यः कश्चित्सुपरिकरः समायास्यति ॥ ८० ॥ तद्दिन एवाऽऽगतो रुद्रदेवनामाचार्यः शतपंचकेन साधूनां, कृतोचिता प्रतिपत्तिः ॥ ८१ ॥ निशि परीक्षणार्थं गुरुनिदेशैः स्थंडिलमार्गे विकीर्णाः साधुभिरंगाराः, ततस्ते आगंतुकाः साधवस्तेषु पादपातात् किशिकिशिकाशब्दमाकर्ण्य सानुक्रोशं मिथ्यादुष्कृतस्थितिं वदंतो निवर्त्तंते स्म ॥ ८२ ॥ रुद्रदेवस्तु श्रीविजयसेनगुरुकृतसंकेतवशादागंतुकसाधुषु निद्राणेषु स्वयं प्रस्रावव्युत्सर्जनार्थं गच्छंस्तथैवांगारेषु किशिकिशिकाशब्दं श्रुत्वा हृष्यन् गाढतरं तान् संमर्द्य प्रावोचत् ॥ ८३ ॥

શ્રી વિજયસેનસૂરિના શિષ્યોએ પાંચસો હાથીઓનાં બચ્ચાંઓથી ઘેરાયેલો સૂવર સ્વપ્નમાં જોયો; તે વાત તેઓએ ગુરુને કહી; ત્યારે ગુરુએ કહ્યું કે, ઉત્તમ પરિવારવાળો કોઇક અભવ્ય મનુષ્ય અહીં આવશે ॥ ૮૦ ॥ એટલામાં ત્યાં તેજ દિવસે રુદ્રદેવ નામે આચાર્ય, પાંચસો સાધુઓ સહિત આવ્યા, તેમની ઉચિત આગતા સ્વાગતા કરી ॥ ૮૧ ॥ રાત્રિએ પરીક્ષા માટે ગુરુની આજ્ઞાથી શિષ્યોએ સ્થંડિલ જવાના માર્ગમાં અંગારા વિખેર્યા, અને તેથી તે નવા આવેલા સાધુઓ, તે અંગારાઓપર પગ પડવાથી 'કિશિકિશિ' થતો શબ્દ સાંભળીને અનુક્રોશસહિત મિથ્યાદુષ્કૃત દેતા થકા પાછા વળવા લાગ્યા ॥ ૮૨ ॥ પછી શ્રીવિજયસેન ગુરુએ કરેલા સંકેતને વશે નવા આવેલા સાધુઓ જ્યારે (કૃત્રિમ) નિદ્રા લેવા લાગ્યા, ત્યારે રુદ્રદેવ પોતે માત્રુ પરઠવવાને બહાર ગયા. ત્યાં તેવીજ રીતે અંગારાઓ કચરાવાથી થતો 'કિશિકિશિ' શબ્દ સાંભળીને ખુશી થયા થકા તે અંગારાઓને ખૂબ જોરથી કચરીને બોલવા લાગ્યા કે ॥ ૮૩ ॥

अहो अर्हद्भिरेतेऽपि जीवा इत्युक्ताः, दृष्टं तत्प्रतिजागरद्भिर्मुनिभिः. प्रभाते गुरुस्तच्छिष्यानुपपत्तिभिः प्रत्याययन्नभव्योऽयमिति तं बहिश्चकार ॥ ८४ ॥ तच्छिष्याः पुनः सर्वे कृत्वा तपो गता दिवं. ततश्च्युत्वा ते सर्वे राजकुलेषूत्पन्ना राजानोऽभूवन् ॥ ८५ ॥ अन्यदा ते सर्वेऽपि वसंतपुरे कनकध्वजनृपतिकन्यास्वयंवरमंडपे जग्मुः, स च रुद्रदेवस्तदा नानाविधासु योनिषु भ्रमन् करभो बभूव ॥ ८६ ॥ तं चारोपितबृहद्भारं जराजीर्णशरीरं महाकायं कृतार्त्तनादं तत्र ते ददृशुः, तं पश्यतां चातिरभूत्तेषां तस्योपरि करुणा, संजातं जातिस्मरणं ॥ ८७ ॥

अहो ! अरिहंतोए आने पण जीव कह्या छे ! हवे आ वृत्तांत जागता एवा दरेक साधुओए जोयुं; पछी प्रभाते गुरुमहाराजे ते रुद्रदेवना शिष्योने सिद्धांतना वचनोपूर्वक खातरी करावी के, ते रुद्रदेव अभव्य छे, एम विचारी तेने गच्छ बहार कर्यो ॥ ८४ ॥ अने तेना सघळा शिष्यो तप करीने देवलोके गया, त्यांथी चवीने तेओ सघळा राजकुळमां उत्पन्न थइ राजाओ थया ॥ ८५ ॥ एक दहाडो ते सघळा राजकुमारो वसंतपुरमां कनकध्वज राजानी पुत्रीना स्वयंवर मंडपमां गया; वळी ते रुद्रदेवनो जीव ते वखते विविध प्रकारनी योनिओमां भमतो थको उंटरूप थयो हतो ॥ ८६ ॥ ते उंटपर महोटो भार भरेलो हतो, तेनुं शरीर वृद्धावस्थाथी जीर्ण थयुं हतुं, तथा मोटुं थयुं हतुं, अने तेथी ते दुःख भरेलो स्वर करी रह्यो हतो, एवी हालतमां ते उंटने तेओए जोयो; अने जोतांज ते राजकुमारोने तेनापर दया उत्पन्न थइ, तथा तेओने जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयुं ॥ ८७ ॥

तदनुसारेण विज्ञातं तैरेष सोऽस्मद्गुरुः, अहो विचित्रः संसारः, यत्तादृशीं ज्ञानलक्ष्मीमवाप्य हृदयभावतोऽश्रद्दधानो वराकोऽयमिमामवस्थां लेभे ॥ ८८ ॥ अनंतं च भवं लप्स्यत इति कृपया । मोच्य तं सर्वेपि निष्क्रांताः ॥ ८९ ॥ इति, एते चाऽभव्या दूरभव्या वा बहिर्गुर्वाकारधारिणोऽप्यंतः श्रीअर्हद्वचनश्रद्धानादिरहितत्वेनाऽनंतभवजलधिपातिन इत्यंतरसारा बहिश्च साराः, इत्युक्ता द्वितीयभंगपातिनः कुगुरवः ॥ ९० ॥ तथा केचिद्व्यवहार्याभरणवदंतः सारा बहिश्चाऽसाराः, तथाहि—केषांचिदंतर्हृदये श्रुतमस्ति, श्रीजिनवचनसम्यक्श्रद्धानादिरूपं ॥ ९१ ॥

अने तेने अनुसारे तेओए जाण्युं के, आ अमारा गुरु छे; अहो! संसार विचित्र छे, केमके तेवी रीतनी ज्ञानलक्ष्मी पामीने पण अंतःकरणना भावथी तेपर श्रद्धा नहीं राखवाथी ते बिचारो आ हालत पाम्यो छे!! ॥ ८८ ॥ तथा वळी पण अनंता भवो पामशे, एवी रीते तेपर दया लावीने, तथा तेने छोडावीने ते सघळा राजकुमारो त्यांथी चाल्या गया ॥ ८९ ॥ इति, एवी रीतना उपर वर्णवेला गुरुओने अभवी अथवा दूरभवी जाणवा; तेओ बहारथी जो के गुरुनो आकार धारण करे छे, परंतु अंदरथी श्री अरिहंत प्रभुनां वचनोपर श्रद्धा आदिक नहीं होवाथी तेओ अनंत एवा संसाररूपी समुद्रमां पडे छे; एवी रीते अंदरथी सार विनाना तथा बहारथी सारभूत एवा बीजा भांगाने अनुसरनारा कुगुरुओनुं स्वरुप कह्युं ॥ ९० ॥ वळी केटलाक गुरुओ व्यापारीना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारवाळा अने बहारथी सार विनाना होय छे; ते कहे छे:—केटलाक गुरुओना हृदयमां श्री जिनेश्वर प्रभुना वचनोमां सम्यक प्रकारनी श्रद्धा आदिकरूप ज्ञान होय छे ॥ ९१ ॥

तल्लिंगस्य षड्जीवरक्षापरिणामनिश्छद्मसद्वृत्तितत्पालनप्रयत्नादेर्दर्शनात् ॥ ९२ ॥ न पुनर्बहिः, तादृग्ज्ञानावरणकर्मोदयादिना पाठादौ श्रुतस्याऽनुल्लासात्, माषतुषसाध्वादीनामिव, प्रमादतो वा तदपाठात् यवराजर्ष्यादीनामिव ॥ ९३ ॥ तथाहि—विशालायां यवो नाम राजा, तस्यांगजो गर्दभिल्लः, सुता अणुल्लिका, अमात्यो दीर्घपृष्ठश्च ॥ ९४ ॥ नृपोऽन्यदा निशांत्ययामे प्रबुद्धोऽचिंतयत्, नूनं प्राग्भवे किमप्यद्भुतं सुकृतं कृतं मया, तस्य प्रभावादब्धिमेखलां भुवमखंडिताज्ञः शास्मि ॥९५॥ एषा गजादिसंपन्मे, मद्देशे न दुर्भिक्षाद्यपि तत्पुनः सुकृतं कुर्वे, यतः आगामी भवोऽपि सुंदरः स्यादित्यादि ॥ ९६ ॥

केमके तेना चिन्हरूप छकाय जीवोनी रक्षानो परिणाम, निष्कपट आचरण, तथा ते पाळवामां प्रयत्न आदिक तेओमां देखाय छे ॥ ९२ ॥ परंतु तेमनो बहारथी ज्ञानलाभ देखातो नथी, केमके तेवा प्रकारना ज्ञानावरणी कर्मना उदय आदिकवडे करीने सिद्धांतना पाठ आदिकमां, 'माषतुष' साधु आदिकनी पेठे उल्लास तेओने थतो नथी; अथवा तो यवराज ऋषि आदिकनी पेठे प्रमादथी तेओ शास्त्राध्ययन करता नथी. ते यवराज ऋषिनुं उदाहरण कहे छे ॥९३॥ विशाला नगरीमां यव नामे राजा हतो, तेने गर्दभिल्ल नामे पुत्र, अणुल्लिका नामे पुत्री, तथा दीर्घपृष्ठ नामे प्रधान हतो ॥९४॥ एक वखते रात्रिना छेल्ला पहोरे जागेलो राजा चिंतववा लाग्यो के, पूर्व भवे खरेखर में कंइक पण अद्भुत पुण्य करेलुं छे, अने तेना प्रभावथी समुद्रनी मेखलावाळी आ पृथ्वीनुं अखंडित आज्ञापूर्वक हुं राज्य करुं छुं ॥ ९५ ॥ तेमज तेथी आ हाथी आदिकनी संपदा मने मळेली छे, तेम मारा देशमां दुकाळ आदिक पण पडतो नथी, माटे फरीने पण हुं पुण्य करुं के जेथी मारो आगामी भव पण सुधरे, इत्यादि ॥ ९६ ॥

ततः प्रातः सुतं राज्ये न्यस्य हितमनुशिष्य च वनप्राप्तान् गुरून्नत्वा तदुपांतेऽग्रहीद्व्रतं, तीव्रं तपस्तप्यते, वैयावृत्यरसतः सह गुरुभिर्विहरति, परं गुरुभिर्बहूक्तेऽपि श्रुतं न पठति ॥ ९७ वृद्धोऽहं मम नायाति पाठ इत्यादि ब्रूते; अन्यदा ज्ञानं दृष्ट्वा श्रीगुरुभिःसुतं प्रतिबोधयितुं विशालायां प्रहितः, गुरुवचः शिरसा प्रपद्य चलितः ॥९८॥ पथ्यचिंतयत् मम पाठः स्वल्पोऽपि नायाति, किं पुत्रस्याऽन्येषां चोपदेक्ष्यते, इति ॥ ९९ ॥ अत्रांतरे क्वचित् क्षेत्रे यवधान्यं भक्षयितुकामं भिया चपलदृशं खरंप्रति क्षेत्रपालेन गाथैका प्रोचे॥१००॥उहावसी पहावसी। ममं चेव निरिक्खिसी॥ *लक्खिओ ते अभिप्पाओ जवं पत्थेसि गद्दहा ॥ १०१ ॥

पछी प्रभाते पुत्रने राज्यपर बेसाडीने तथा तेने हितशिक्षा आपीने, वनमां आवेला गुरुने नमीने तेमनी पासे तेणे दीक्षा लीधी; पछी आकरो तप तपवा लाग्या, तथा वैयावच्च करवाना रसथी गुरु साथे विहार करवा लाग्या; परंतु गुरुए घणुं कह्या छतां पण ते शास्त्रोनो अभ्यास करे नहीं ॥ ९७ ॥ अने कहे के, हुं तो हवे बुढो छुं, मने पाठ चडतो नथी; पछी एक वखते गुरुए ज्ञान जोइने तेना पुत्रने प्रतिबोधवाने तेने विशाला नगरीए मोकल्या; ते पण गुरुनुं वचन मस्तके चडावी त्यांथी चाल्या॥ ९८ ॥ मार्गमां विचारवा लाग्या के, मने पाठ तो जरा पण आवडतो नथी, तो पछी पुत्रने तथा बीजाओने हुं शुं उपदेश आपीश ? ॥ ९९॥ एटलामां कोइक क्षेत्रमां यव नामनुं धान्य भक्षण करवानी इच्छावाळा तथा भयथी चपळ दृष्टिवाळा एवा एक गधेडा प्रत्ये ते क्षेत्रना रक्षके एक नीचे प्रमाणे गाथा कही॥१००॥ हे गधेडा ! तुं आम दोडे छे, तेम दोडे छे, तेम मने पण तुं जुए छे; तारो अभिप्राय में जाण्यो छे, के तुं यवने भक्षण करवाने इच्छे छे ॥१०१॥

* जाणी लमी तुम्ह भावो । जवं भक्खसी गद्दहा ॥ इति द्वितीयपुस्तकपाठः ॥

तां श्रुत्वाऽमोघायुधं प्राप्तमिवाऽमन्यत राजर्षिः विद्यावत्तां स्मरन्नग्रे समया ग्रामं रममाणेषु शिशुषु एकेन काष्ठखंडरूपाऽणुल्लिकोत्क्षिप्ता ॥ १०२ ॥ साऽन्यैः शिशुभिर्गवेषयद्भिर्न दृष्टा, तावदेकेन शिशुना गाथोक्ता ॥ १०३ इओगया तओगया । जोइज्जंती न दीसइ ॥ अम्हे न दिट्ठा तुम्हे न दिट्ठा । अगडे छुढा अणुल्लिया ॥ १०४ ॥ तामपि हर्षात् पठन् कियद्भिर्दिनैर्विशालां प्राप्तः, कुंभकारगृहे निश्रयस्थात् ॥ १०५ ॥ तत्रैनस्ततो भ्रमंतमुंदरं प्रत्यूचे कुंभकृत्,—सुकुमालय सुकोमलय । रत्तिंहिंडणसीलया ॥ अम्ह पसाओ नत्थी भयं । दीहपिट्ठाओ ते भयं ॥ १०६ ॥

ते गाथा सांभळीने ते राजऋषि जाणे अमोघ हथियार मळ्युं होय नहीं तेम मानवा लाग्या; तथा ते गाथाने विद्यानी पेठे स्मरण करता थका आगळ चाल्या, एटलामां एक गामनी पासे केटलाक छोकराओ रमता हता, तेमांना एके काष्ठना टुकडारूप अणुल्लिका (मोइ–गीली) उछाळी ॥ १०२ ॥ तेने बीजा बाळको शोधवा लाग्या, परंतु तेओए तेने दीठी नहीं; त्यारे तेमांना एक छोकराए नीचे मुजब एक गाथा कही ॥१०३॥ आम गइ, तेम गइ, अने जोवाथी पण देखाती नथी, अमोए पण न दीठी, तमोए पण न दीठी माटे ते अणुल्लिका (मोइ–गीली) कोइ खाडामां छुपाइ रही छे ॥ १०४ ॥ पछी ते गाथाने पण हर्षथी जपता थका ते यवराजर्षि केटलेक दिवसे विशाला नगरीमां गया, अने रात्रिए त्यां एक कुंभारने घेर रह्या ॥ १०५ ॥ त्यां आम तेम भमता उंदर प्रत्ये कुंभारे नीचे प्रमाणे एक गाथा कही; हे सुकुमाल तथा कोमळ अने रात्रिए भटक परिणामे फरनारा एवा हे उंदर! अमारा तरफथी तने कंइपण भय नथी, परंतु दीर्घ पृष्ठथी (सर्पथी) तने भय छे ॥ १०६ ॥

रत्नां गाथापंक्तीं कल्पद्रुचिंतामणिकामधेनुत्रयीमिव प्राप्तं मेने स मुनिः पुनः पुनः परावर्त्तयते ॥ १०७ ॥ अत्रांतरे तत्र पुरे दीर्घपृष्ठनामा ऽमात्यो राज्ञः स्वसाऽऽणुह्निका स्वगृहांतर्भूगृहे गोपितास्ति, नृपं केनाप्युपायेन निहत्य स्वसुतं राज्ये निवेश्यैनां पाणौ कारयिष्यामीति ॥ १०८ ॥ राज्ञा भटैः शोधितापि स्वसा न लब्धा, तावन्मंत्री यवराजर्षिमागतं श्रुत्वा, तपसा प्राप्तज्ञानोऽयं यात्री, ज्ञानेन च ज्ञात्वा मत्स्वरूपं राज्ञे निवेदयिष्यति चेत् तदा नृपः सकुटुंबं मां निग्रहीष्यतीति किमप्यनागतमुपायं करोमीति ध्यात्वा निश्चयेनोपनृपं प्राप्तः॥१०९॥ पृष्टोऽनवसरागमहेतुं, वक्तुं मार्गयित्वा स्मात्, वत्साद् गजनस्ते पिताऽत्रागत्य कुंभकारगृहे स्थितः, प्रातस्त्वद्राज्यं गृहीतेति॥११०॥

पछी रीतनी ते त्रणे गाथाओने ते मुनि कल्पवृक्ष, चिंतामणिरत्न तथा कामधेनु सरखी मानवा लाग्या तथा वारंवार तेने याद करवा लाग्या ॥ १०७ ॥ हवे एटलामां ते नगरमां दीर्घपृष्ठ नामना मंत्रिए राजानी बहेन आणुह्निकाने पोताना घरमां भोंयरामां पूरी राखी छे, एम विचारथी के कोइक उपायवडे राजाने मारीने तथा पोताना पुत्रने राज्यपर बेसाडीने तेणीने हुं हाथ करुं ॥ १०८ ॥ राजाए सुभटो मारफते बहेनने शोधावी, परंतु मळी नहीं; एटलामां यवराजर्षिने आवेला सांभळीने मंत्रिए विचार्युं के आ ऋषिने तपथी ज्ञान प्राप्त थयुं हशे, अने ते ज्ञानथी मारुं वृत्तांत जाणीने जो ते राजाने कहेशे, तो राजा मने कुटुंब सहित मारी नाखशे माटे हवे कंइक हुं पहेलेथी उपाय करुं, एम विचारी ते मंत्रिएज राजा पासे आव्यो ॥१०९॥ त्यारे राजाए तेने अकाळे आववानुं कारण पूछ्युं; पछी लाग जोइने तेणे राजाने कहुं के तमारो पिता दीक्षाथी पतित थयो छे तथा अहिं आवीने कुंभारने घेर उतर्यो छे, अने प्रभाते तारुं राज्य लइ लेशे ॥ ११० ॥

तदाकर्ण्य नृपः प्रोचे, पिता चेद्राज्यं लाति तर्हि भाग्यं मे, तत्पादौ सेविष्ये; मंत्री प्रोचे नैवं युक्तं, स्वं राज्यं नार्प्यते, वध्यः पितापि ॥ १११ ॥ विविधयुक्तिभिस्तेन कैतवभृता तदपि प्रतिपादितो नृपः पितुर्वधाय निशीथे खड्गहस्तः कुंभकृद्गेहं गतः, छिद्रेण पितरं वीक्षते ॥ ११२ ॥ तावद्यवर्षिणा आद्या गाथा गुणिता, तां श्रुत्वा चिंतितं मत्पित्रा ज्ञानेन ज्ञातोऽहमितस्ततः पश्यन्; अपि च यद्ययं ज्ञानी तन्मे स्वसुः शुद्धिं वक्तु ॥ ११३ ॥ तावद् द्वितीया गाथा गुणिता तेन, तां श्रुत्वा जातः प्रत्ययः, गुणप्रशंसादि चक्रे, पुनरचिंति मत्स्वसा येन गोपिता, तन्नाम प्रकाशयतु पिता ॥ ११४ ॥

ते सांभळी राजाए कह्युं के, जो पिता राज्य लेशे, तो मारुं भाग्य जाणवुं, हुं तेना चरणो सेवीश; त्यारे मंत्रिए कह्युं के, तेम तो योग्य नथी, पोतानुं राज्य कंइ अपाय नहीं, पिताने पण मारवो जोइए ॥१११॥ पछी ते कपटी मंत्रिए नाना प्रकारनी युक्तिओथी पिताने मारी नाखवानो पण तेनी पासे स्वीकार कराव्यो; अने तेथी राजा मध्यरात्रिए हाथमां खड्ग लइने पिताने मारवा माटे कुंभारने घेर गयो; तथा त्यां छिद्रमांथी पिताने जोवा लाग्यो ॥ ११२ ॥ एटलामां यवऋषिए पहेली गाथा गणी; ते सांभळी राजाए विचार्युं के मारा पिताए ज्ञानथी मने आम तेम जोतो जाणी लीधो छे; वळी पण जो ते ज्ञानी होशे तो मारी बहेननी हकीकत पण ते कहेशे ॥ ११३ ॥ एटलामां ते ऋषिए बीजी गाथा गणी, ते सांभळीने तेने खातरी थइ; तथा तेना गुणोनी प्रशंसा आदिक ते करवा लाग्यो; वळी तेणे विचार्युं के मारी बहेनने जेणे संताडेली छे, तेनुं नाम पण हवे मारा पिता कहे तो ठीक ॥११४॥

तावत् तृतीया गाथा परावर्त्तिता, ततो जन्मसंदेहो हृष्टो द्वारमुद्घाट्यांतर्गतः ॥ ११५ ॥ पितरं ज्ञानिनं जिघांसुं स्वं निंदन् मुदश्रुर्मुनिं नत्वा स्वापराधप्रकटनपरः क्षमितवान्, मुनिर्मौनमेवाकरोत्, तदेव हि सर्वार्थसाधनमिति ॥ ११६ ॥ ततो नृपः स्वगृहागतो रात्रिशेषमतिवाह्य प्रातर्मंत्रिगृहं जनैः शोधयित्वा भूमिगृहे भगिनीं लब्ध्वा, मंत्रिणं देशान्निरकासयत ॥ ११७ ॥ ततो ज्ञानिनं मुनिं प्रशशंस, तं च नत्वा तदुक्तं धर्मं प्रत्यपद्यत मंत्र्यादिभिः पौरैश्च सह; ततः स यवराजर्षि-र्बंधुवर्गं प्रतिबोध्य गुरुपार्श्वे गतः, प्रमादं त्यक्त्वा श्रुतं पपाठ, तपस्तप्त्वा दिवं ययौ ॥ ११८ ॥ इति यवराजर्षिकथा ॥

एटलामां ते मुनिए त्रीजी गाथा गणी; ते सांभळी तेनो संदेह दूर थवाथी ते खुशी थइने बारणुं उघाडी अंदर गयो ॥ ११५ ॥ तथा ज्ञानी एवा पिताने मारवानी इच्छा करनारा पोताना आत्माने निंदतो थको हर्षना अश्रुओ लावी मुनिने नमी तथा पोतानो अपराध प्रगट करी खमाववा लाग्यो; मुनिए तो मौनज कर्युं, केमके तेज सर्व अर्थोने साधनारुं छे ॥ ११६ ॥ पछी राजा पोताने घेर आवीने तथा बाकीनी रात्रि गाळीने प्रभाते सुभटो मारफते मंत्रीनुं घर तपासाव्युं, तो भोंयरामांथी पोतानी बहेन मळी; अने तेथी मंत्रिने देशनिकाल कर्यो ॥ ११७ ॥ पछी ते ज्ञानी मुनिनी प्रशंसा करवा लाग्यो, तथा तेने नमीने तेणे कहेलो धर्म तेणे स्विकार्यो, तेमज मंत्रि आदिकोए तथा नगरना लोकोए पण ते धर्म स्विकार्यो; पछी ते यवराज ऋषि बंधु वर्गने प्रतिबोधीने गुरु पासे गया, तथा प्रमाद तजीने शास्त्राभ्यास करवा लाग्या; तथा छेवट तप तपी देवलोके गया ॥ ११८ ॥ एवी रीते यवराज ऋषिनी कथा जाणवी ॥

एवमल्पश्रुतस्यापि अनुदरा कन्येत्यादिवदविवक्षया तदध्येतारोऽन्येपि सम्यक्क्रियापरा गुरुवरा बहिः श्रुतसारत्वाऽभावेऽप्यंतःसारत्वेनाश्रितवतां शिवसीमशुभफलदायिनो भवंतीति ॥ ११९ ॥ आह परः, ननु अल्पश्रुतस्य कथं स्वपरतारकत्वं, यदागमः—अबहुस्सुओ तवस्सी । विहरिउकामो अजाणिउणपहं ॥ अवराहपयसयाइं । काउण वि जो न याणेइ ॥ १२० ॥ इत्यादि. उच्यते, बहुश्रुतगुरुपरतंत्रतया सम्यग्धर्मानुष्ठाने स्वयं प्रवर्त्तमानानां परांश्च प्रवर्त्तयतामल्पश्रुतानामपि स्वपरतारकत्वमविरुद्धं ॥ १२१ ॥ तदुक्तं—गुरुपारतंतनाणं । सद्दहणं एअ संगयं चेव ॥ इत्तो उ चरित्तीणं । मासतुसाईण निद्दिट्ठं ॥ १२२ ॥

एवी रीते 'उदर विनानी कन्या' इत्यादिकनी पेठे अल्पश्रुतनी पण अविवक्षायें करीने ते भणनारा बीजाओ पण, के जेओ उत्तम क्रियामां तत्पर होय छे, एवा उत्तम गुरुओने बहारथी जो के श्रुत सारपणानो अभाव होय छे, तोपण अंदरथी सारपणाये करीने आश्रित एवा श्रावक आदिकोने छेक मोक्ष पर्यंतना शुभ फळने देनाराओ थाय छे ॥ ११९ ॥ अहीं वादी शंका करे छे के, अल्प श्रुतवाळाने पोताने तथा परने तारवापणुं केम संभवे ? केमके आगममां कह्युं छे के, अबहुश्रुत एवो तपस्वी मुनि जिनमार्गने जाण्या विना विहार करवानी इच्छा करतो थको सेंकडो गमे अपराध करीने पण तेओने जाणी शकतो नथी ॥ १२० ॥ इत्यादि, हवे ते वादीने उत्तर आपे छे के, बहुश्रुत एवा गुरुना ताबामां रहीने पोते उत्तम प्रकारनी धर्म क्रियामां प्रवर्त्ते छे, तेमज अन्योने पण प्रवर्त्तावे छे, माटे एवी रीतना अल्प श्रुतोने पण पोताने अने परने पण तारवापणुं विरोध विनानुं छे, अर्थात् तेओ पोताने अने परने पण तारी शके छे ॥ १२१ ॥ कह्युं छे के, गुरु परतंत्र ज्ञान अने तेनी सद्दहणा, ए योग्यज छे; अने तेटलामाटेज माषतुष आदिक मुनिओने चारित्रपणुं कहेलुं छे ॥ १२२ ॥

॥१२१॥ किंच, अगीअस्स इमं कह । गुरुकुलवासाउ कहतओ गीओ ॥ गीआणाकरणाओ । कहमेअं नाणओ चेव ॥ १२३ ॥ अंधोणंधोव्वसया । तस्साणाए जहेव लंघेइ ॥ भीमंपि हु कंतारं । भवकंतारं इअअगीओ ॥ १२४ ॥ इत्यादि. केचित्पुनर्नृपाभरणवदंतर्बहिश्च साराः, हृदयबहिश्च सम्यक्श्रुतधारित्वात्; रत्नोपमनिरुपमातिशयविविधलब्धिसमृद्धिभिः समधिकतरं दीप्तिभृत्त्वाच्च ॥ १२५ ॥ अत्र श्रीवज्रस्वाम्यादयो दृष्टांताः स्पष्टा एवेति. एते चतुर्थभंगगताः श्रीगुरवः श्रीजिनशासनप्रभावनैकपराः, स्वपरयोस्तारणसमर्थाः, प्रवहणवदाश्रयणीयाः भवाब्धिं तरीतुकामैः ॥ १२६ ॥

वळी अगीतार्थने चारित्रपणुं शाथी होय? तो के गुरुकुळमां वसवाथी होय; अने तथी गीतार्थपणुं केम होय? तो के त्यां शास्त्रो सांभळवाथी होय, अने ते शास्त्रानुं सांभळवुं शाथी होय? तो के ज्ञानथी होय ॥ १२३ ॥ जेम अंध मनुष्य पांगळाना सहायथी तेनी आज्ञा प्रमाणे वर्त्तवावडे करीने भयंकर वनने पण ओळंगी जाय छे, तेम अगीतार्थ पण (गीतार्थ गुरुना संगथी) आ संसाररूपी वनने ओळंगी जाय छे ॥ १२४ ॥ इत्यादि, हवे केटलाक गुरुओ राजाना आभूषणनी पेठे अंदरथी अने बहारथी पण सारवाळा होय छे, केमके तेओ हृदयमां अने बहारथी पण उत्तम श्रुतने धरनारा होय छे; तेमज रत्न सरखी निरुपम अतिशयोवाळी नाना प्रकारनी लब्धिरूप समृद्धिओवडे करीने अधिक कांतिवाळा होय छे ॥ १२५ ॥ अहीं श्री वज्रस्वामी आदिकोनां दृष्टांतो स्पष्टज छे. ए उपर वर्णवेला चोथा भांगावाळा गुरुओ श्री जिनशासननी प्रभावनामांज तत्पर रहेला छे, तेम पोताने अने परने तारवामां समर्थ छे, माटे जेओने आ संसाररूपी समुद्र तरवानी इच्छा होय. तेओए वहाणनी पेठे तेवा गुरुओनो आदर करवो ॥ १२६ ॥

एतदभावे तृतीयभंगसंगिनोऽपि ; आद्यभंगाढ्यगुरवस्तु त्याज्या एवेति इत्युक्त्वा श्रीगुरुगता श्रुतमाश्रित्य चतुर्भंगी ॥ १२७ ॥ अथ क्रियामाश्रित्य श्राद्धानां चतुर्भंगी दर्श्यते ; श्रुतमाश्रित्य तु तेषां चतुर्भंगी न घटते, तेषां विशेषश्रुताऽनधिकारित्वात् ॥ १२८ ॥ तदुक्तं—अट्ठप्पवयणमायाए—गयं सुत्तं जहन्नओ पढइ ॥ उक्कोसेणं छज्जीवणिं तु । जइवयकयउज्जोगो ॥ १२९ ॥ इति, तत्र केचिच्छ्राद्धाः क्रियामाश्रित्य श्वपाककंकणाभ-अंतर्बहिश्चाऽसाराः, तथाहि—क्रिया खल्वत्र श्राद्धविध्यनुष्ठानं व्यवहारशुद्धिजिनपूजा-गुरुप्रतिपत्तिसुपात्रदानहिंसादिविरतिसामायिकावश्यकादिरूपा ॥ १३० ॥

ए चोथा भांगावाळा गुरुओ कदाच न मळे तो त्रीजा भांगावाळाओने पण स्वीकारवा; परंतु पहेला बे भांगावाळा गुरुओने तो तजवाज जोइए; एवी रीते श्रुतने आश्रीने गुरुओ संबंधि चोभंगी कही ॥ १२७ ॥ हवे क्रियाने आश्रीने श्रावकोनी चोभंगी देखाडे छे. श्रुतने आश्रीने तो तेओनी चोभंगी घटी शकती नथी; केमके तेओने विशेष श्रुतनुं अधिकारीपणुं नथी ॥ १२८ ॥ कह्युं छे के, साधुव्रतमां करेल छे उद्यम जेणे एवो श्रावक जघन्यथी आठ प्रवचन माताने अनुसरनारुं श्रुत जाणे, अने उत्कृष्टथी तो छजीवणी अध्ययन सुधी श्रुत जाणे ॥ १२९ ॥ इति; तेमां केटलाक श्रावको तो क्रियाने आश्रीने चांडालना आभूषणनी पेठे अंदरथी अने बहारथी पण सार विनाना होय छे; ते कहे छे—अहीं क्रिया एटले श्रावकोनी विधिपूर्वक क्रिया जेवी के व्यवहारशुद्धि, जिनपूजा, गुरुसेवा, सुपात्रदान, हिंसा आदिकनी विरति, सामायिक तथा आवश्यक आदिकरूप जाणवी ॥ १३० ॥

सा क्रिया केषांचिदंतर्हृदये हविरूपेण नास्ति, बहिश्च करणरूपेणापि नास्ति, केवलं श्राद्धकुलोत्पन्नत्वादिना श्राद्धनाममात्रधारित्वमस्ति ॥ १३१ ॥ ते प्रथमभंगपातिनः श्राद्धा ज्ञेयाः, एते च धर्मगोचराया रुचेरप्यभावेन सम्यक्त्वादित्रिकशून्याः प्रथमगुणस्थानवर्त्तिनो गृहस्त्रीधनापत्यादिप्रतिबद्धाः कुटुंबाद्यर्थं विविधारंभपरा इह दुःखिनः स्युरपयशोभाजनं च ॥ १३२ ॥ प्रेत्य चैकेंद्रियादिषु गताः सुचिरं भवं भ्राम्यंति धनप्रियश्रेष्ठ्यादिवत्; उक्तं च—पुत्ताइसु पडिबद्धा । अन्नाणपमायसंगया जीवा ॥ उप्पज्जंति धणप्पिय—वणिउव्वेगिंदिएसु बहुं ॥ १३३ ॥

ते क्रिया केटलाक श्रावकोना हृदयमां रुचिरूपे नथी होती, तेम बहारथी पण करवारूपे क्रिया नथी होती; केवल श्रावकना कुलमां उत्पन्न थवा आदिके करीने नामधारी श्रावकपणुं होय छे ॥ १३१ ॥ एवा प्रकारना श्रावकोने पेहेला भांगावाला जाणवा; वली तेओ धर्म संबंधि रुचिना पण अभावे करीने समकीत आदिकथी रहित थया थका प्रथम गुण ठाणामां वर्ते छे, तथा घर, स्त्री, धन तथा संतान आदिकना बंधन युक्त थया थका कुटुंब आदिक माटे नानाप्रकारना आरंभोमां पडीने आ लोकमां दुःखी तथा अपजशना भाजनरूप थाय छे ॥ १३२ ॥ वली परलोकमां पण एकेंद्रियादिकमां उत्पन्न थइने धनप्रिय शेठ आदिकनी पेठे घणा काळ सुधि संसारमां भमे छे. कह्युं छे के—पुत्र आदिकना बंधनमां पडेला तथा अज्ञान अने प्रमादने प्राप्त थयेला जीवो घणुं करीने धन प्रिय वणिकनी पेठे एकेंद्रिय आदिकोमां उत्पन्न थाय छे ॥ १३३ ॥

इति श्रीभवभावनायां; केचित् पुनर्हिंसाऽसत्यस्तैन्याऽब्रह्माद्यविरता भक्ष्याऽभक्ष्यपेयाऽपेयादिविवेकविकला इहापि ज्ञातिपंक्तिबहिःकरणधनराज्यादिभ्रंशेंद्रियाद्यंगच्छेदकुमरणादि प्राप्नुवंति ॥१३४॥ प्रेत्य नरकादि च भीमादिवत्, तथा च भवभावनायामेव,—

पाणिवहेणं भीमो । कुणिमाहारेण कुंजरनरिंदो ॥ आरंभेहि य अयलो । नरयगईए उदाहरणा ॥ १३५ ॥ न च श्राद्धनाममात्राच्चेषां साधारता कापि, नाममात्रस्याऽर्थाऽसाधकत्वात्; तत्त्वे च भीमादीनां मंगलादिनाम्ना प्रसिद्धानां मंगलाद्यर्थसाधकत्वापत्तेः ॥ १३६ ॥

एम श्री भवभावनामां कह्युं छे. वळी केटलाक तो हिंसा, असत्य, चोरी, तथा अब्रह्मआदिकथी नहीं विरति पामेला, अने भक्ष्य, अभक्ष्य पेय, अपेय आदिकना विवेक विनाना मनुष्यो अहीं पण ज्ञाति बहार थवुं, धन तथा राज्य आदिकनो नाश, इंद्रिय आदिक अंगोनो छेद, तथा कुमोत आदिकने प्राप्त थाय छे ॥ १३४ ॥ तथा परलोकमां पण भीम आदिकनी पेठे नरक आदिक पामे छे; वळी भवभावनामांज कह्युं छे के, जीवहिंसाथी भीम, अभक्ष्य भोजनथी कुंजर राजा, तथा आरंभोथी अचल नरके गयो; एवी रीते ए नरक गतिना उदाहरणो जाणवां ॥ १३५ ॥ वळी श्रावकना नाम मात्रथी तेओमां कंइ साधारणपणुं होतुं नथी, केमके नाम मात्र कंइ कार्य साधी शकतुं नथी; अने जो नाम मात्रथी कार्य सधातुं होय तो, मंगळ आदिक नामथी प्रसिद्ध एवा भीम आदिकोने मंगळ आदिक कार्य साधवानी आपत्ति (प्राप्ति) थाय ॥ १३६ ॥

न च तल्लक्ष्यते, उक्तं च—लोमे मंगलनाम विष्टिविषये लब्धा कणानां क्षये। वृद्धिः शीतलिकेति तीव्रपिटके राजा रजःपर्वणि ॥ मिष्टत्वं लवणे विषे च मधुरं जामिः सपत्न्यां पुनः। पात्रत्वं च पणांगनासु रुचिरं नाम्ना परं नार्थतः ॥ १२७ ॥ इत्युक्ताः श्वपाकाचरणानुसारिणः श्राद्धाः ॥ केचित् पुनर्गणिकाचरणवत् क्रियामाश्रित्यांतर्हृदयेऽसाराः क्रियापरिणामाद्यभावात् ॥ १२८ ॥ बहिस्तु साराः ऐहिकलाभपूजाद्यर्थं कंचिद्धर्मार्थिनं स्वपरकार्यमिसाधयिषया कथंचिच्छलयितुं वा सम्यक्श्राद्धानुष्ठाननिर्मितिनिपुणत्वात् ॥ १२९ ॥

अने तेम तो देखातुं नथी; कह्युं छे के, लोममां मंगळ नाम कहेवाय छे, *विष्टिना विषयमां लब्धा कहेवाय छे, धान्योनो क्षय होते छते वृद्धि कहेवाय छे, तीव्र फोल्लां होते छते शीतळा कहेवाय छे, होळीनो राजा कहेवाय छे, लुणने मीठुं कहेवाय छे, झेरने मधुर कहेवाय छे, तथा शोकने बहेन कहे छे, वेश्याओने पात्रपणुं कहे छे, ए सघळां नामथी मनोहर छे, पण ते प्रमाणे अर्थसाधक नथी ॥ १२७ ॥ एवी रीते चांडाळना आचरण सरखा श्रावको कह्या ॥ वळी केटलाको तो वेश्याना आचरणनी पेठे क्रियाने आश्रीने हृदयमां सार विनाना होय छे, केमके तेओने क्रियानी परिणति आदिकनो अभाव होय छे ॥ १२८ ॥ वळी तेओ बहारथी तो सारवाळा देखाय छे, केमके आ लोक संबंधि लाभ तथा पूजा आदिक माटे कोइक धर्मार्थी मनुष्यने पोताना अने परना कार्यने साधवानी इच्छाथी कोइ पण रीते ठगवा माटे सम्यक् प्रकारे श्रावकनी क्रिया करवामां तेओ निपुण होय छे ॥ १२९ ॥

* मजुरी या वेतना अर्थमां पण प्रवर्त्ते छे.

दृष्टांताश्च संप्रति दुःषमानुभावतोऽनुपदं सुलभा धर्मठकास्तादृशा बहवोऽपीति, जिनदासश्रेष्ठितुरगापहारकब्रह्मचारिचंद्रप्रद्योतनृपप्रहिताभयकुमारमंत्रिबंधनार्थकपटश्राविकीभूतगणिकाश्राद्धसुतापाणिग्रहार्थकपटश्राद्धीभूतबुधदासबब्बरकूलकुड्डकविक्रायकश्राद्धादयो वा दृष्टांता यथार्हमत्र वाच्याः ॥ १४० ॥ एतेऽपि चाऽभव्या दूरभव्या अपि च स्युः । गतिरप्येषां प्रथमगुणस्थानिनामिव यथार्हं वाच्या, धर्मानुष्ठानविषयश्रद्धानाद्यभावेन सम्यक्त्वरहितत्वात् ॥ १४१ ॥ श्राद्धत्वं जने प्रख्याप्य कुव्यवहारपरद्रोहविश्वासघातादिपरत्वेन श्रीजिनधर्मगोचरामपभ्राजनां कुर्वाणानां च तेषां केषांचित् दुरंतभवभ्रमणाद्यपि ॥ १४२ ॥

अहीं हालमां दुःखम काळना अनुभावथी तेवां दृष्टांतो तो पगले पगले मळी शके छे, केमके तेवा धर्मठगो बहु देखाय छे, जिनदास शेठनो घोडो हरनार ब्रह्मचारी, चंद्रप्रद्योत राजाए मोकलेली तथा अभयकुमार मंत्रिने बांधवा माटे कपटी श्राविका थयेली कन्या, श्रावकनी पुत्री परणवा माटे कपटी श्रावक थयेल बुद्धदास, तथा बब्बर कूळना कुड्डकने वेचनार श्रावक आदिकना दृष्टांतो यथायोग्य रीते अहीं वांची लेवां ॥ १४० ॥ ए उपर वर्णवेला श्रावको अभव्य तथा दूरभव्य पण होइ शके छे । तथा तेओनी गती पण प्रथम गुणठाणवाळाओनी पेठे यथायोग्य रीते जाणवी; केमके धर्मक्रियाना विषयवाळी श्रद्धा आदिकना अभावे करीने तेओने समकीत रहितपणुं होय छे ॥ १४१ ॥ वळी लोकोमां (पोतानुं) श्रावकपणुं प्रसिद्ध करीने खोटा व्यवहार, परनो द्रोह, तथा विश्वासघात आदिकमां तत्पर थइने श्री जैनधर्मनी हिलना करनारा एवा तेओ केटलाकोने दुरंत भवोमां भमवा आदिकपणुं पण थाय छे ॥ १४२ ॥

तदुक्तं—अप्रह नाणणाइसु। अबोहिबीयं हविज्ज नियमेण ॥ तत्तो भवपरिवुड्ढी। ता हुज्जा उज्जुववहारी ॥ १४३ ॥ केचित् पुनरंतः श्रद्धानाद्यभावेऽपि बहिः क्रियाभ्यासादिना प्रेत्य बोधिमपि लभंते, सप्ताष्टादिभवैः सिद्धिं च, वरदत्तश्रेष्ठिनो दासीपुत्रवत्, तथाहि—॥ १४४ ॥ अत्रैव भरते कौशांब्यां नरसिंहो राजा, कनकवती राज्ञी ॥ १४५ ॥ तत्रान्यदाऽवधिज्ञानी वरदत्तसाधुरुद्याने प्रापत्, तं वंदितुं नगरलोके गते मुनिना धर्मदेशना प्रारब्धा ॥ १४६ ॥ धर्मकथामध्ये मुनिनाऽकस्मात् हसितं, तत् दृष्ट्वा जाताश्चर्याः सभ्या मुनिं व्यज्ञपयन् ॥ १४७ ॥

कह्युं छे के—धर्ममार्गथी उलटो अभ्यास करवा आदिकथी निश्चयें करीने अबोधिबीज प्राप्त थाय छे; तथा तेथी संसारनी वृद्धि थाय छे, माटे *ऋजुव्यवहारी थवुं ॥ १४३ ॥ वळी केटलाको तो हृदयमां श्रद्धा आदिकनो अभाव होते छते पण बहारथी क्रियाना अभ्यास आदिकवडे करीने परभवमां बोधिबीजने पण प्राप्त थाय छे, अथवा सात आठ भवे मोक्ष पामे छे; (कोनी पेठे? तोके) वरदत्त शेठना दासी पुत्रनी पेठे; ते उदाहरण कहे छे—॥ १४४ ॥ आज भरतक्षेत्रमां कौशांबी नगरीमां नरसिंह नामे राजा हतो, तथा तेने कनकवती नामे राणी हती ॥ १४५ ॥ हवे एक दहाडो त्यां अवधिज्ञानवाळा वरदत्त नामे साधु उद्यानमां पधार्या, तेने वांदवाने ज्यारे नगरना लोको आव्या, त्यारे मुनिए धर्म देशना देवा मांडी ॥ १४६ ॥ धर्म कथा कहेतां थकां वच्चे मुनि अकस्मात् हसवा लाग्या; ते जोइ सभासदो आश्चर्य पामी मुनिने पुछवा लाग्या के, ॥ १४७ ॥

---

* प्रमाणिक.

भगवन् अन्येऽपि सत्पुरुषाः कारणं विना न हसंति, रागादिरहिता भवादृशास्तु कथं तद्विना हसंतीति हास्यहेतुमादिश ॥ १४८ ॥ साधुरुवाच भद्राः शृणुत, एतस्य निंबस्य शिखरे समलिकां पश्यत, एषा क्रोधान्मां पादाभ्यां घातयितुमिच्छति, प्राग्भववैरात् ॥ १४९ ॥ तत् श्रुत्वा सकौतुकाः सभ्यास्तत्प्राग्भवं पृच्छंति, साधुः समलिकायाः प्रतिबोधार्थं तमाख्याति, समलिकापि हृदयगतार्थकथनाद्विस्मिता शृणोति ॥ १५० ॥ तथाहि—अत्रैव भरते कनकपुरे धन्यो नाम्ना श्राद्धः, तस्य भार्या सुंदरी, सा दुःशीला अन्यासक्ता वर्त्तते ॥ १५१ ॥ अन्यदोपपतिनोचे, सुंदरि अद्यप्रभृति त्वत्पार्श्वे नायास्यामि, यतस्तव भर्तुर्बिभेमि॥१५२॥

हे भगवान! बीजा पण सत्पुरुषो विना कारणे हसता नथी, त्यारे रागआदिकथी रहित एवा आप सरखा तो कारणविना केम हसे? माटे आपना हास्यनुं कारण अमोने कहो? ॥ १४८ ॥ त्यारे साधुए कह्युं के, हे भद्रो! तमो सांभळो? आ लींबडाना वृक्षपर टोंच बेठेली समळीने तमो जुओ? ते समळी पूर्वभवना वैर करीने क्रोधथी मने पोताना पगोथी मारवाने इच्छे छे ॥ १४९ ॥ ते सांभळीने सभासदोने कौतुक थवाथी तेनो पूर्वभव पूछवा लाग्या; त्यारे साधु पण समळीने प्रतिबोधवा माटे ते वृत्तांत कहेवा लाग्या तथा समळी पण पोताना हृदयमां रहेलो अर्थ कहेवाथी विस्मय पामती थकी सांभळवा लागी. ॥ १५० ॥ ते कहे छे—आज भरतक्षेत्रमां कनकपुर नामना नगरमां धन्य नामे श्रावक हतो, तेने सुंदरी नामे स्त्री हती, ते खराब आचरणवाळी होवाथी अन्य पुरुषमां आसक्त हती ॥ १५१ ॥ एक दहाडो तेणीना यारे तेणीने कह्युं के, हे सुंदरि! आजथी मांडीने तारी पासे हुं आवीश नहीं; केमके तारा भरतारथी हुं डरुं छुं ॥ १५२ ॥

तत् श्रुत्वा भृशं जातदुःखा तमवादीत्, प्रियतम मैवं ब्रूयाः, स्तोकदिनमध्ये तव निःशल्यत्वं करिष्ये ॥ १५३ ॥ अन्यदा दुग्धमध्ये विषं क्षिप्तं, भर्तुः परिवेषणार्थं तदानयनाय यावत् सा गृहमध्ये याति, तावद् भुजगेन दष्टा पतिता, सद्यः प्राणैर्मुक्ता च ॥ १५४ ॥ धन्यः श्राद्धो भोजनादुत्थितः, हा किमेतदिति जल्पन् तां गतप्राणां वीक्ष्याऽज्ञाततच्चरित्रः स्नेहाद् व्यपलत ॥ १५५ ॥ सा मृत्वा शार्दूलोऽभूत्, तद्वैराग्याद् धन्यश्राद्धेन दीक्षा गृहीता ॥ १५६ ॥ अन्यदा वने कायोत्सर्गे स्थितः, विधिवशात् तद्भार्याजीवो व्याघ्रस्तत्रागतस्तं मुनिं दृष्ट्वा प्राग्भववैरात् व्यापादयामास ॥ १५७ ॥

ते सांभळीने अत्यंत दुःखी थइने तेने ते कहेवा लागी के, हे प्रियतम! तमो एम न कहो? थोडा दिवसमां तमारुं ते शल्य हुं दूर करीश ॥ १५३ ॥ पछी एक दहाडो तेणीए दुधमां झेर नाख्युं, अने भर्तारने पीरसवा माटे ते लेवाने जेटलामां घरमां जाय छे, तेटलामां सर्पे डंखवाथी ते पडी गइ, अने तुरत प्राणरहित थइ ॥ १५४ ॥ ते जोइ धन्य श्रावक भोजन करतो थको उठ्यो, तथा हा! आ शुं थयुं! एम बोलतो थको तेणीने मृत्यु पामेली जोइने, तेणीना चरित्रथी अजाण्यो होवाथी ते विलाप करवा लाग्यो ॥ १५५ ॥ पछी ते स्त्री मृत्यु पामीने सिंह थइ, अने धन्य श्रावके वैराग्यथी दीक्षा लीधी ॥ १५६ ॥ एक वखते ते वनमां काउसग्गध्याने रह्यो, एटलामां दैवयोगे तेनी स्त्रीना जीवरूप सिंह त्यां आव्यो, तथा पूर्वभवना वैरथी ते मुनिने जोइ तेने मारी नाख्यो ॥ १५७ ॥

स धन्यऋषिर्मृत्वा अच्युते कल्पे प्रापत्, सिंहस्तु चतुर्थे नरके: अच्युतकल्पाच्च्युत्वा पुनः स चंपायां दत्तश्राद्धस्य जिनमती नार्यां, तयोः पुत्रोऽनूत् वरदत्तनामा ॥ ॥ १५८ ॥ स आबाल्यात् संविग्नो यौवने विशिष्य सम्यक्त्वमूलधर्मोद्यतो दानी विवेकी मधुरनाषी शांतो विनीतश्चाऽनूत् ॥ १५९ ॥ प्राग्जवनार्याजीवस्तु नरकाच्च्युत्वा नवं भ्रांत्वा तस्यैव श्रेष्ठिनो गृहे दासीपुत्रोऽनूत्, स दुष्टो वंचनाशीलो दासीपुत्रेति नाम्ना ख्यातोऽनूत् ॥ १६० ॥ क्रमतः पितरि स्वर्गते वरदत्तो गृहस्वामी बभूव, स प्राग्जवस्नेहाद्दासीपुत्रं सहोदरवत् पश्यति, वस्त्रादि दत्ते ॥ १६१ ॥ दासीपुत्रस्तु वरदत्तं शत्रुवत् पश्यति, तथापि तद्रंजनार्थं किंचित् किंचित् धर्मं कुरुते नावं विनैव ॥ १६२ ॥

एवी रीते ते धन्य मुनि मृत्यु पामीने अच्युत देवलोकमां गयो, तथा सिंह चोथी नरके गयो; पछी अच्युत देवलोकथी चवीने वळी ते मुनिनो जीव चंपा नगरीमां दत्त श्रावकनी जिनमती नामनी स्त्रीनी कुक्षिए वरदत्त नामे पुत्ररूपे थयो ॥ १५८ ॥ ते छेक बाल्यपणाथीज वैराग्यवान हतो तथा यौवन अवस्थामां विशेष प्रकारे सम्यक्त्वमूळ श्रावक धर्ममां उद्यमवंत थइ दानी, विवेकी, मधुरनाषी, शांत तथा विनयवान् थयो ॥ १५९ ॥ वळी पूर्व नवनी स्त्रीनो जीव नरकथी चवीने तथा संसार नमीने तेज शेठने घेर दासी पुत्र थयो; ते दुष्ट ठगारो दासी पुत्रना नामथी प्रसिद्ध थयो ॥ १६० ॥ अनुक्रमे पिता देवलोके गये छते वरदत्त घरनो मालीक थयो; तथा पूर्व नवना स्नेहथी ते दासी पुत्रने सगा नाइ नरीके जोवा लाग्यो, तथा तेने वस्त्र आदिक आपवा लाग्यो ॥ १६१ ॥ परंतु दासी पुत्र तो तेने शत्रुनी पेठे जोतो हतो; तोपण तेने खुश राखवा माटे नावविनाज कंइक कंइक धर्म ते करतो हतो ॥ १६२ ॥

तस्य धर्मगुणं दृष्ट्वा तुष्टः श्रेष्ठीति विमृशति, मम भ्राता जिनधर्मानुरागी, परं कर्मवशान्नीचकुले उत्पन्नः श्रीजिनधर्मे च न कुलं प्रधानं ॥१६३॥ यतः—'न कुलं इत्थ पहाणं' ततो ममान्यो भ्राता नाऽभूत्, एष च धर्मतो भ्राता, तस्मान्नृपतिसमक्षमेनं भ्रातरं स्थापयामीति ॥ १६४ ॥ तथा तेन कृते दासीपुत्रो लोकैः श्रेष्ठिभ्रातेति बहुमानितः; ततः श्रेष्ठी विश्वासात्सर्वं तस्यार्पयति, तथापि स प्राग्भववैरात् श्रेष्ठिनो विश्वासार्थं बाह्यधर्मपरोऽपि श्रेष्ठिनं हन्तुं विविधोपायांश्चिन्तयति ॥ १६५ ॥ अन्यदा तालपुटं विषं पत्रमध्ये क्षिप्त्वा तद्वीटकं तेन शयनसमये श्रेष्ठिनेऽर्पितं, श्रेष्ठी तु तद्दर्शनात् प्राग् चतुर्विधाहारं प्रत्याख्यातवान् ॥ १६६ ॥

तेनो धर्मगुण जोईने खुशी थयेलो शेठ एम विचारतो हतो के, मारो भाई जैन धर्मनो अनुरागी छे, परंतु कर्मना वशथी नीच कुळमां उत्पन्न थयो छे; तथापि श्री जैन धर्ममां कंई कुळने प्रधानपणुं कह्युं नथी ॥ १६३ ॥ कह्युं छे के 'अहीं कुळ प्रधान नथी' माटे मारे बीजो भाई नथी, अने आ मारो धर्म भाई छे; माटे राजानी समक्ष हुं तेने मारा भाई तरीके स्थापन करुं ॥ १६४ ॥ पछी तेणे तेम कर्याथी आ शेठनो भाई छे, एम जाणी ते दासीपुत्रने लोको घणुं मान आपवा लाग्या; वळी शेठ पण विश्वास लावीने तेने सर्व कंई आपवा लाग्या; तो पण पूर्वभवना वैरथी, जोके ते शेठना विश्वास माटे उपरथी धर्ममां तत्पर थयो, परंतु मनमां शेठने मारवा माटे नाना प्रकारना उपायो चिंतववा लाग्यो ॥ १६५ ॥ एक वखत तालपुट झेर पानमां नाखीने, तेनुं बीडुं शयन वखते तेणे शेठने आप्युं; शेठे तो ते आपवा पेहेलांज चउविहारनुं पच्चखाण कर्युं हतुं ॥ १६६ ॥

तथापि तदुपरोधात्तद् गृहीत्वोपधानस्याधोऽमुंचत्, अथ विधिवशात्तानि पत्राणि भूमौ पतितानि प्रातर्दृष्ट्वा वरदत्तश्रेष्ठिनो जार्या गृहीत्वा गृहस्यांगणे यावदागात् तावद्दासीपुत्रं दृष्ट्वोचे, देवर तांबूलं गृहाणेति ॥ १६७ ॥ सोऽपि गृहीत्वा तद-जक्षयत्, सहसा भुवि पतितः, स्वामिद्रोहीतीव प्राणैस्त्यक्तः, आर्त्तध्यानान्मृत्वा-समलिकैषा जज्ञे, तत्स्वरूपं दृष्ट्वा जातनववैराग्यो वरदत्तश्रेष्ठी निजं वित्तं पुण्ये-त्रे व्यत्वा प्रव्रज्यामग्रहीत् ॥ १६८ ॥ सोऽहं, एतत्स्वचरित्रं युष्माकं मयोक्तं, एवं भवे रागद्वेषविलसितं ज्ञात्वा यद्युक्तं तदाद्रियध्वं, इति श्रुत्वा केऽपि सर्वविरतिं देशविरत्यादि च परे यथाशक्ति प्रत्यपद्यंत ॥ १६९ ॥

तोपण तेना आग्रहथी तेणे ते बीडुं लेइने ओसीका नीचे मूक्युं; हवे दैवयोगे ते पान जमीनपर पडी गयां, प्रभाते वरदत्त शेठनी स्त्रीए जोवाथी ते लेइने जेटलामां घरना आंगणा आगळ ते आवे छे, तेटलामां दासी-पुत्रने जोइ कहेवा लागी के, हे देवर! आ तांबुल ग्रहण करो? ॥ १६७ ॥ तेणे पण ते लेइने खाधुं के तुरत जमी-नपर पड्यो; स्वामीद्रोही होवाथीज जाणे तुरत जीवथी मुक्त थयो; तथा आर्तध्यानथी मरीने आ समळीरूपे ते उत्पन्न थयो छे; ते वृत्तांत जोइ वरदत्त शेठने संसारथी वैराग्य थवाथी पोतानुं धन शुभ मार्गे वापरी तेणे दीक्षा लीधी; ॥ १६८ ॥ अने तेज आ हुं पोते छुं; एवी रीते मारुं पोतानुं चरित्र में तमोने कह्युं; एवी रीते आ संसारमां रागद्वेषनुं चेष्टित जाणीने जे युक्त होय, तेनो आदर करो? एम सांभळीने केटलाकोए सर्वविरतिपणुं तथा बीजाओए शक्ति मुजब देशविरतिपणुं आदिक अंगीकार कर्युं ॥ १६९ ॥

सा शकुन्यपि जातजातिस्मरणात् सर्वं तत् साक्षाद् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा; तरुशिखरान्मुनेरग्रतः सहसा पतित्वा निजं दुश्चरितं क्षमयामास ॥ १७० ॥ ततो मुनिवचनादनशनं प्रपद्य नमस्कारस्मृतिपरा देवेषूपपन्नेति; एवं भावरहितोऽपि कषायकलुषितोऽपि जीवो द्रव्यतोऽपि यदि धर्मं करोति, तदाप्यचिराद् बोधिं लभते कश्चिदिति भावरहितधर्मकरणे दासीपुत्रस्य संबंधः ॥ १७१ ॥ अत एव च पूर्वस्माद् भंगादस्य किंचिद्विशुद्धत्वं, एवमग्रेऽपि ज्ञेयं; इत्युक्ता द्वितीयभंगगामिनः श्राद्धाः ॥ १७२ ॥ तथा केचिच्छ्राद्धा मद्देश्याभरणवदंतः सारा हृदये सम्यग् धर्मानुष्टानविषयाया रुचेः सत्त्वात्; बहिः पुनरसारा धर्मवीर्यांतरायोदयादिना नरकादौ बद्धायुष्कत्वादिना वा स्थूलहिंसादिविरतिप्रभृतिधर्मानुष्टाने प्रवृत्त्यनुल्लासात् ॥ १७३ ॥

पछी ते समळी पण जातिस्मरण ज्ञान थवाथी ते सघळुं साक्षात् जोइने प्रतिबोध पामी, तथा झाडनी टोच परथी तुरत मुनि पासे पडीने पोतानुं दुश्चरित्र खमाववा लागी ॥ १७० ॥ पछी मुनिना वचनथी अनशन करीने नवकारना स्मरण पूर्वक देवोमां उत्पन्न थइ; एवी रीते भाव विनानो तथा कषायोथी मलीन थयेलो पण कोइक जीव, जो द्रव्यथी पण धर्म करे, तो पण तुरत बोधिबीज पामे छे, तेटला माटे भावरहित धर्म करवामां दासीपुत्रनो संबंध कह्यो ॥ १७१ ॥ अने तेथीज पूर्वना भांगाथी आ भांगानुं कंइक विशेष शुद्धपणुं छे, तथा आगळ पण एवीज रीते जाणवुं; एवी रीते बीजा भांगाने अनुसरनारा श्रावको कह्या ॥ १७२ ॥ वळी केटलाक श्रावको शाहुकारना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारवाळा होय छे, केमके तेओने हृदयमां सम्यक् प्रकारे धर्मक्रिया करवाना विषयवाळी रुचि होय छे; परंतु बहारथी सारविनाना होय छे, केमके धर्म वीर्यना अंतरायना उदय आदिके करीने अथवा नरक आदिकमां आयु बांधवा आदिकथी स्थूल हिंसा आदिकनी विरति आदिक धर्म क्रियामां प्रवृत्ति करवानो तेओने उल्लास थतो नथी ॥ १७३ ॥

क्रियाविषयतीव्ररुचिविशेषात् स्वापत्यानां प्रविव्रजिषूणां निषेधं न करोमि, अन्योऽपि यः कश्चित् प्रव्रजति तस्य प्रव्रज्योत्सवं स्वयं कारयामि, तत्स्वजनानामाजन्मावधिनिर्वाहादिचिंतां च करोमीत्यादि प्रतिपत्तिमान्, सर्वाः स्वसुताः श्रीनेमिपार्श्वे प्रव्राजितपूर्वी स्वयमष्टादशसहस्रसाधुषु कृतिकर्मकृत् श्रीकृष्णनरेंद्रः, श्रीश्रेणिकनृपादयश्च निदर्शनमत्रेति ॥ १५४ ॥ एते च तृतीयभंगश्राद्धाः क्रियाविरहितत्वेन बहिर्लोकेषु क्रियापरश्राद्धवन्महिमानं न दधतीति बहिरसाराः, अंतःसारतया तु पूर्वमबद्धायुषोऽवांतसम्यक्त्वा वा वैमानिकवर्जमायुर्न बध्नंत्येव, यदागमः ॥ १५५ ॥—सम्मद्दिट्ठी जीवो । गच्छइ निअमा विमाणवासीसु ॥ जइ न विगयसम्मत्तो । अहवा न बद्धाउओ नरए ॥ १५६ ॥

क्रिया संबंधि तीव्ररुचिविशेषथी दीक्षा लेवानी इच्छावाळा पोताना संतानोने हुं निषेध करतो नथी, तेम बीजा पण जे कोइ दीक्षा लीये, तेनो दीक्षा महोत्सव हुं पोते करुं छुं, तेमज तेना कुटुंबीओना निर्वाह आदिकनी चिंता जीवित पर्यंत हुं करुं छुं, इत्यादिक अंगीकार करनारा, तेमज पोताना सघळा पुत्रोने श्रीनेमिनाथ प्रभु पासे दीक्षा अपावीने पोते अढार हजार साधुओने वंदना करनारा श्रीकृष्ण राजा, तथा श्रीश्रेणिकराजा आदिकना दृष्टांतो अहीं जाणवा ॥ १५४ ॥ एवी रीतना ए त्रीजा भांगावाळा श्रावको क्रियाविनाना होवाथी बहारना लोकोमां क्रियामां तत्पर एवा श्रावकनी पेठे महिमा धारण करता नथी, माटे बहारथी सारविनाना छे; तेमज अंदरथी सारपणाये करीने पूर्वे आयु बांध्याविना समकीतने नहीं वमता थका अथवा वैमानिक शिवायनुं आयु बांधेज छे; आगममां पण कह्युं छे के—॥ १५५ ॥ सम्यग् दृष्टी जीव निश्चये करीने विमानवासीओमां जाय छे, क्यारे? तोके जो तेनुं सम्यक्त्व न गयुं होय तो, अथवा नरकनुं आयु न बांध्युं होय तो ॥ १५६ ॥

बद्धायुष्का अबद्धायुष्काश्चेत्युभयेऽपि चैते प्रायः संख्यातभवमध्ये सिद्धिगामिनः स्युः, केचित्तु तृतीयभवेऽपीति ॥ १७७ ॥ अथ केचिन्नृपाभरणवदंतर्बहिश्च साराः, हृदये रुचिरूपेण बहिः रत्नोपमसातिशयसम्यक्त्वमूलद्वादशव्रतप्रतिमादिसदनुष्ठानविशेषैरधिकतरं दीप्तिभृत्त्वेन च, आनंदकामदेवादिश्राद्धवत् ॥ १७८ ॥ एते चेहापि नृपाद्यधिजनमध्ये महत्त्वप्रशंसाद्यवाप्य प्रेत्य द्वादशकल्पावधिसुखसंपदमवाप्नुयुः, जघन्यतस्तृतीयभवे सप्ताष्टभवैर्वोत्कर्षतः सिद्धिसुखभाजश्च भवेयुरित्युक्तास्तुर्यभंगश्राद्धाः॥१७९॥ एषां च चतुर्णामपि भंगानां मिथो विशेषः प्रतिभंगं भावित एवेति; एवं क्रियामाश्रित्य भाविता श्राद्धानां चतुर्भंगी ॥ १८० ॥

बांधेलां आयुवाळा अने नहीं बांधेलां आयुवाळा एम बन्ने भेदोवाळा तेओ प्राये करीने संख्याता भवमांहे मोक्षगामी थाय छे, तथा केटलाक तो त्रीजे भवे पण मोक्षे जाय छे ॥ १७७ ॥ वळी केटलाको राजाना आभूषणनी पेठे अंदरथी अने बहारथी पण सारवाळा छे, हृदयमां रुचिरूपे करीने तथा बहारथी रत्नसरखा अतिशयवाळा समकीत मूळ बारव्रतो तथा पडिमा आदिकनी उत्तम क्रिया विशेषे करीने आनंद तथा कामदेव आदिक श्रावकोनी पेठे अधिक दीप्तिवाळा होय छे ॥ १७८ ॥ वळी तेओ अहीं पण दरेक राजा मुख्यना लोकोमां मोटाइ तथा प्रशंसा आदिक पामीने परलोकमां बार देवलोक सुधिनी सुख संपदा मेळवे छे; तेमज जघन्यथी त्रीजे भव अथवा उत्कृष्टे सात आठ भवोमां मोक्षसुखने भजनारा थाय छे, एवी रीते चोथा भांगाना श्रावको कह्या ॥ १७९ ॥ ए चारे भांगाओना परस्पर भेद दरेक भांगे देखाडेलाज छे; एवी रीते क्रियाने आश्रीने श्रावकोनी चोभंगी कही ॥ १८० ॥

अथ धर्मविषया सैव शुद्धिमधिकृत्य ज्ञाप्यते, तथाहि—॥ १०१ ॥ धर्मस्यांतः शुद्धिः किल सर्वज्ञप्रणीतत्वादिधर्मप्रवर्त्तकानां सम्यग् जीवाऽजीवादितत्वस्याऽवधारणपुरस्सरस्थूलेतरसकलजीवरक्षापरिणामसर्वशक्तितो तद्विषयप्रयत्नशांतिमार्दवार्जवसत्यशौचब्रह्माकिंचन्यादिगुणमयत्वं च ॥ १०२ ॥ बहिः शुद्धिः पुनर्बहिर्मुखजनरंजनशीतातपवर्षादिक्लेशसहननानावनवासादिकष्टषष्टाष्टमादितपस्क्रियादिः ॥ १०३ ॥ ततश्च श्वपाकाचरणवत् कश्चन धर्मोऽन्तःशुद्धेरभावादंतरसारो, बहिःशुद्धेरभावाद् बहिरप्यसारश्च, यथा वेदादिविहितो यज्ञस्नानधेनुकन्यादानादिधर्मः ॥ १०४ ॥

हवे धर्म संबंधि शुद्धिने आश्रीने तेज चोभंगी देखाडे छे; ते कहे छे ॥ १०१ ॥ धर्मनी अंदरथी शुद्धि, एटले सर्वज्ञ प्रभुए रचेला धर्मने प्रवर्तावनाराओनुं सम्यक् प्रकारे जीव अजीव आदिक तत्वोना अवधारण पूर्वक स्थूल तथा बादर एवा सर्व जीवोनां रक्षणनो परिणाम, तथा ते माटे पोतानी सर्व शक्तिथी प्रयत्न, शांति, कोमळता, सरलता, सत्य, पवित्रपणुं, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रहरहितपणुं इत्यादिक गुणमयपणुं होय छे, अर्थात् उपर वर्णवेला गुणो तेमां होय छे ॥ १०२ ॥ बहारनी शुद्धि एटले बाह्य लोको जेथी खुश थाय, टाढ, तडका, तथा वरसाद आदिकना कष्टने सहन करवां, विविध प्रकारनां वनवास आदिक कष्ट, तेमज छठ, अठम आदिकनी तपस्यानी क्रिया आदिक रूप जाणवी ॥ १०३ ॥ हवे तेथी कोइक धर्म चांडालना आचरणनी पेठे अंदरथी शुद्ध न होवाथी अंदरथी असार छे, तेम बहारथी पण शुद्धिनो अभाव होवाथी बहारथी पण सारविनानो होय छे; जेमके वेद आदिकोमां कहेलो यज्ञ, स्नान, गोदान तथा कन्यादान आदिकरूप धर्म तेवो छे ॥ १०४ ॥

स खल्वसर्वज्ञप्रणीतशास्त्रमूलत्वेन हिंसादिमयत्वेन महारंभहेतुत्वेन चांतःशुद्धेरभावादंतरसारः ॥ १०५ ॥ एतच्चास्यामेव गाथायां प्राक् श्रीगुरुचतुर्भंग्यां लेशतो भावितं; तत् धर्मप्रणेतॄणां ब्रह्ममहेश्वरादिदेवानां विश्वामित्रादिमहर्षीणां चाऽसर्वज्ञत्वं पुनस्तथाविधक्रोधाद्यभावशापादिप्रवृत्तीन्द्रियाऽजयाऽज्ञानापराधतद्धेतुकानर्थप्राप्त्यादिना सुव्यक्तमेव ॥ १०६ ॥ तदुक्तं—ब्रह्मा लूनशिरा हरिर्दृशि सरुक् व्यालुप्तशिश्नो हरः । सूर्योऽप्युल्लिखितोऽनलोऽप्यखिलभुक् सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोऽपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः । सन्मार्गस्खलनाद् भवंति विपदः प्रायः प्रभूणामपि ॥ १०७ ॥

केमके ते धर्म सर्वज्ञे नहीं रचेलां एवां शास्त्रोरूपी मूळवाळो छे, तेमज हिंसामयपणाये करीने, अने महान आरंभपणाये करीने अंदर शुद्ध न होवाथी अंदरथी सारविनानो छे ॥ १०५ ॥ वळी ते संबंधि व्याख्यान आज गाथामां पूर्वे श्रीगुरुनी चतुर्भंगीमां लेशथी करेलुं छे; वळी एवी रीतनो धर्म चलावनारा ब्रह्मा तथा महादेव आदिक देवोनुं तथा विश्वामित्र आदिक महर्षिओनुं असर्वज्ञपणुं प्रगटज छे, केमके तेओमां तेवी रीतनो क्रोध आदिकनो अभाव, शाप आदिकनी प्रवृत्ति, इंद्रिओने नहीं जीतवापणुं, अज्ञानथी अपराध थवो, तथा ते निमित्ते अनर्थनी प्राप्ति आदिक तेओने थयेलीज छे ॥ १०६ ॥ कह्युं छे के—ब्रह्मानुं मस्तक छेदायुं छे, हरिनी आंखमां रोग थयो छे, महादेवनुं लिंग छेदायुं छे, सूर्यनी त्वचा उखेडवामां आवी छे, अग्नि पण सर्वभक्षी थयो छे, चंद्र कलंकी थयो छे, तेमज इंद्र पण शरीरमां रहेली योनिओवडे करीने विसंस्थुल शरीरवाळो थयो छे; माटे एवी रीते उत्तम मार्गथी स्खलना पामवाथी समर्थोने पण प्राये करीने आपदाओ थाय छे ॥ १०७ ॥

अतस्तदुक्तस्य धर्मस्य कथंनामांतःशुद्धिः, नापि बहिः, बाह्यस्यापि विशेषतपःकष्टानु-
ष्ठानादेस्तत्राऽदर्शनात् ॥ १८८ ॥ अपिच, संवत्सरेण यत्पापं । कैवर्त्तस्येह जायते ॥
एकाहेन तदाप्नोति । अपूतजलसंग्रही ॥ १८९ ॥ अस्तं गते दिवानाथे । आपो रु-
धिरमुच्यते ॥ तत्करैरेव संस्पृष्टा । आपो यांति पवित्रताम् ॥ १९० ॥ इत्याद्युक्त्वा
पुनरगलितजलस्नानं रात्रिभोजनादि च धर्मत्वेन समाचरतां, यज्ञादिषु निष्करुणतया
प्रकटछागादिवधं च कुर्वतां, गुडधेनुस्वर्णधेनुजलदगडुरिकापापघटादिदानानि प्रतीच्छ-
तां गृहस्थेभ्योऽपि निःशूकतयाऽधिकारंभवतां च द्विजन्मनां स धर्मः प्रत्युत ब-
हिर्मुखजनेष्वपि निंदास्पदमित्यतोऽपि बहिरसार इति ॥ १९१ ॥

माटे तेओए कहेला धर्मनी अंदरथी शुद्धि ते क्यांथीज होय? वळी ते धर्मनी बहारथी पण शुद्धि
देखाती नथी, केमके बाह्य एवुं विशेष प्रकारनुं तप तथा कष्ट क्रिया आदिक तेमां जणाती नथी ॥ १८८ ॥ वळी
पण, अहीं मच्छीमारने एक वर्ष जेटलुं पाप थाय छे; तेटलुं पाप अणगळ जळ वापरनारने एक दिवसमां थाय छे
॥ १८९ ॥ वळी सूर्य अस्त पामते छते, जळ रुधिरसमान गणाय छे, तथा पछी तेनाज किरणोथी स्पर्शित थयेलुं
जळ पवित्र थाय छे ॥ १९० ॥ इत्यादिक कहीने वळी एम कह्युं के धर्म निमित्ते अणगळ जळथी स्नान, तथा
रात्रि भोजन करवामां (दोष नथी) माटे एवी रीतनुं आचरण करता, तेमज यज्ञ आदिकोमां निर्दयपणे प्रगट रीते
बकरा आदिकोनी हिंसा करता, तेमज गोळनी गाय, सुवर्णनी गाय, जळनी गागर तथा पापना घडा आदिकनुं
दान ग्रहण करता, अने गृहस्थोथी पण निर्दयपणे अधिक आरंभ करता एवा ते ब्राह्मणोनो ते धर्म, उलटो बाह्य
लोकोमां पण निंदाने पात्र थाय छे, माटे तेथी पण ते धर्म बहारथी सारविनानो छे ॥ १९१ ॥

एवं नास्तिकादिधर्मोऽपि, तस्य द्विधाप्यसारता सुव्यक्तैव; बौद्धानां धर्मोऽप्यत्रैव जंगेऽवतरति, तत्र पात्रपतितमांसादेरपि कल्प्यत्वात्, तपः कष्टादेर्निषेधाच्च ॥१७२॥ तथाच तन्मतं—मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय पेया । जक्तं मध्ये पानकं चापराह्ने ॥ द्राक्षाखंमं शर्करा चार्धरात्रे । मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टः ॥ १७३ ॥ ततस्तस्यापि बहिरंतरसारता सुबोधैव; एवमन्येऽपि देवदानादयः, एवंजातीयाः सर्वे धर्मा अत्रैवांतर्भवंतीत्युक्तः प्रथमो जंगः ॥ १७४ ॥ गतिश्चैतद्धर्मजाजां प्रायो नरकादिः, तथा चोक्तं तद्यूथ्यैरपि—वृक्षं छित्वा पशून् हत्वा । कृत्वा रुधिरकर्दमं ॥ यद्येवं गम्यते स्वर्गे । नरके केन गम्यते ॥ १७५ ॥

एवी रीते नास्तिक आदिकानो धर्म पण तेवोज जाणवो; केमके तेनुं बन्ने रीते असारपणुं प्रगटज छे; वळी बौद्धोनो धर्म पण तेज जांगामां उतरे छे, केमके तेमां पात्रे पमेलुं मांसादिक पण कल्पनीक कहुं छे, तेम तप कष्टादिकनो निषेध करेलो छे ॥ १७२ ॥ ते बौद्धोना मतमां कहुं छे के—कोमळ शय्या, तथा प्रजाते उठीने कांजीनुं पान करवुं, मध्यान्हे जोजन करवुं, पाछले पहोरे पाणुं पान करवुं तथा अर्ध रात्रिए द्राक्ष, खांम अने साकर खावी, अने तेम कर्याथी छेवटे मोक्ष मळे छे, एम शाक्यपुत्रे जोयेलुं छे ॥ १७३ ॥ माटे ते धर्मनुं पण बहारथी अने अंदरथी असारपणुं सुखे जणाय तेवुंज छे; एवी रीते बीजा पण देवदान आदिकोने जाणवा; एवी रीतना सघळा धर्मोनो आज जांगामां समावेश थाय छे, एवी रीते पेहेलो जांगो कह्यो ॥ १७४ ॥ वळी ते धर्मवाळाओनी गति प्राये करीने नरक आदिकमां थाय छे; तेज मतवाळाओए पण कहुं छे के—वृक्षने छेदीने, पशुओने हणीने तथा रुधिरनो कीचम करीने जो स्वर्गमां जवातुं होय, तो पछी नरके कोण जशे ? ॥ १७५ ॥

इत्यादि, केषांचित्त्वल्पर्द्धिव्यंतरादिकेति ॥ १९६ ॥ कश्चिद्धर्मः पुनर्गणिकाभरणवदंतरसारो बहिस्तुसारः, यथा तापसादीनां धर्मः, यतः सम्यग्जीवादिस्वरूपाऽनभिज्ञत्वेन जीवरक्षाप्रकारमजानतां ॥ १९७ ॥ विशिष्य तत्परिणामाद्यप्यस्पृशतां स्वल्पापराधेऽपि शापादि प्रयच्छतामनंतकायकंदमूलशेवालफलाद्याहारिणां षड्जीवनिकायोपमर्दप्रवृत्तानां तापसादीनां धर्मस्य नांतः शुद्धिः कापि ॥ १९८ ॥ बहिःशुद्धिस्तु किंचिदस्ति, मुग्धजनरंजकस्य वनवासवृक्षत्वक्परिधानकिंचित्तपःकष्टानुष्ठानादेः सद्भावात्; एतस्माद्धर्मतो गतिरुत्कर्षतो ज्योतिष्कदेवादिषु ॥ १९९ ॥

इत्यादि, वळी तेमाना केटलाकोने कदाच अल्प ऋद्धिवाळी व्यंतर आदिकनी गति प्राप्त थाय छे ॥ १९६ ॥ वळी कोइक धर्म तो वेश्याना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारविनानो अने बहारथी सारवाळो होय छे, जेम तापस आदिकोनो धर्म; केमके तेओ सम्यक् प्रकारे जीव आदिकना स्वरूपने नहीं जाणता होवाथी जीव रक्षाना प्रकारथी अज्ञानी होय छे ॥ १९७ ॥ तेमज विशेष प्रकारे ते जीव रक्षाना परिणाम आदिकने पण तेओ स्पर्श करता नथी, वळी स्वल्प अपराध होते छते पण तेओ शाप आदिक आपे छे, अनंतकाय, कंदमुळ, शेवाळ तथा फळ आदिकनो आहार करे छे, छकाय जीवोनुं उपमर्दन करे छे, माटे तेवा तापस आदिकोना धर्मने अंदरथी कंइ पण शुद्धि होती नथी ॥ १९८ ॥ परंतु बहारथी कंइक तेमां शुद्धि होय छे, केमके मुग्ध लोको जेथी खुशी थाय, तेवां वनवास, वृक्षोनी छालनां वस्त्रो पहेरवां तथा कंइक तपरूप कष्टकारी क्रिया आदिक तेमां देखाय छे; एवी रीतना धर्मथी उत्कृष्टी गति ज्योतिष्क देव आदिकोमां थाय छे ॥ १९९ ॥

यदागमः—'तावसिया जोइसिआ चरगपरिव्वायबंभलोगो जा' एवंजातीयोऽन्योऽपि ध-
र्मोऽत्र भंगे ज्ञेय इति द्वितीयो भंगः ॥ २०० ॥ अपरो धर्मश्च मध्येऽन्तरणान्-
ऽतःसारो बहिश्चाऽसारः, यथा अविरतसम्यग्दृष्टेर्धर्मः, तस्य सम्यग्देवगुरुधर्मश्रद्धा-
नतदाराधनपरिणामपापभीरुत्वादिलक्षणानां अंतःशुद्धेः सत्त्वेनांतःसारत्वात् ॥२०१॥
स्थूलवधाद्यविरतितपःकष्टानुष्ठानादिरहितत्वाच्च बहिरसारत्वाच्च, सत्यकिविद्याधरा-
देरिव; एतद्धर्माराधकाश्च नियमाद्वैमानिकदेवगतिवर्जमायुर्न बध्नंति; यदागमः—
'सम्मद्दिट्ठी जीवो, विमाणवज्जं न बंधए आउं' इत्युक्तस्तृतीयो धर्मः॥ २०२ ॥

आगममां पण कह्युं छे के–'तापसो ज्योतिषी तथा चरकपरिव्राजको ब्रह्मलोक सुधि जाय छे.' वळी एवा प्रकारनो बीजो पण कोइ धर्म, आ ज भांगामां जाणवो; एवी रीते बीजो भांगो कह्यो ॥ २०० ॥ वळी कोइक धर्म शाहुकारना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारवाळो अने बहारथी सारविनानो होय छे, जेम अविरति सम्यग् दृष्टिनो धर्म; केमके तेमां सम्यग् देवगुरु अने धर्मपर श्रद्धा, तथा तेना आराधनना परिणामरूप पापथी डरवापणुं इत्यादिक लक्षणवाळी अंदरनी शुद्धि होवाथी, ते अंदरथी सारभूत छे ॥ २०१ ॥ तथा स्थूलहिंसा आदिकनी अविरति तथा तपरूप कष्ट क्रिया आदिकना रहितपणाथी ते सत्यकिविद्याधर आदिकनी पेठे बहारथी असार छे; वळी ते धर्मना आराधको निश्चयथी वैमानिक देवगति शिवायनुं आयु बांधता नथी; आगममां पण कह्युं छे के—सम्यग् दृष्टी जीव वैमानिक शिवायनुं आयु बांधतो नथी; एवी रीते त्रीजो प्रकारनो धर्म कह्यो ॥ २०२ ॥

अथ कश्चिद्धर्मोऽन्तर्बहिश्च सारः, पृथ्वीपत्यावरणवत्, यथा जैनः सर्वविरतिधर्मः, स हि यथोक्तांतःशुद्धिबहिःशुद्धिमत्त्वेन द्विधापि सार एव ॥ २०३ ॥ एतद्भावना सुबोधैवेति न प्रतन्यते, अस्माच्च धर्माज्जघन्यतः सौधर्मे, उत्कर्षतः सर्वार्थसिद्धे सिद्धौ च गतिर्जीवानामिति ॥ २०४ ॥ देशविरतिधर्मोऽप्यत्रैवाऽवतारणीयः, अंतःशुद्धिबहिःशुद्धिभावना देशतोऽत्रापि वाच्या; अतो धर्मादुत्कर्षतो द्वादशे कल्पे, जघन्यतः सौधर्मे च गतिः, दृष्टांतश्च यथार्हं स्वयं वाच्यः, इति धर्मविषयां शुद्धिमधिकृत्योक्ता चतुर्भंगी ॥ २०५ ॥

वळी कोइक धर्म तो अंदरथी अने बहारथी एम बन्ने प्रकारे सारवाळो होय छे; जेम सर्व विरतिरूप जैन धर्म; ते यथोक्त रीते अंदरथी अने बहारथी पण शुद्धिवाळो होवाथी बन्ने रीते सारवाळोज छे ॥ २०३ ॥ तेनी भावना सुखे समजाय तेवीज छे, माटे तेनो विस्तार करता नथी; आ धर्मथी जघन्यपणे सौधर्म देवलोकमां, तथा उत्कृष्टी सर्वार्थसिद्धिमां तथा मोक्षमां जीवोनी गति थाय छे ॥ २०४ ॥ देशविरतिरूप धर्मने पण आ भांगामांज उतारवो; तथा तेमां पण देशथी अंदरनी शुद्धिनी तथा बहारनी शुद्धिनी भावना जाणी लेवी; तेमज आ देशविरतिरूप धर्मथी उत्कृष्टी बारमा देवलोकमां तथा जघन्यथी सौधर्म देवलोकमां गति जाणवी; तथा दृष्टांतो योग्यता पूर्वक पोतानी मेळेज जाणी लेवा. एवी रीते धर्म संबंधि शुद्धिने आश्रीने चोभंगी कही ॥ २०५ ॥

अथ सामान्यतो जीवानां धर्मगुणमधिकृत्य चतुर्भंगी; तथाहि—केचिज्जीवाः श्वपाकाभरणवद्धर्मतोऽन्तर्बहिश्चाऽसाराः, हृदये परिणामतो बहिश्च क्रियातो धर्माऽभावात् ॥ २०६ ॥ कालसौकरिकादिवत् नरकादिगामिनश्चैते ज्ञेयाः ॥ २०७ ॥ अन्ये पुनर्गणिकाभरणवदंतरसारा बहिश्च साराः, हृदये धर्मपरिणामस्याऽभावाद् बहिस्तत्क्रियासमाचरणाच्च, द्वादशवर्षीययतिवेषोदायिनृपवधकसाधुवत् ॥ २०८ ॥ त्रिग्राममध्यवासिकूटरूपकवच्च; एते च केचिदिहाऽप्यनर्थभाजनं स्युस्तद्भवयवदेव, प्रेत्य च नरकादिगामिनो ज्ञेयाः ॥ २०९ ॥ केचित्पुनरनतिक्रुद्धमनसः क्रियाऽभ्यासादिना प्रेत्य बोधिमपि लभंते; तत आसन्नसिद्धिका अपि भवंति, निदर्शनं प्राग्वत् ॥ २१० ॥

हवे सामान्यथी जीवोना धर्मगुणने आश्रीने चोभंगी कहे छे—केटलाक जीवो चांडालना आभूषणनी पेठे धर्मथी हृदयमां अने बहार एम बन्ने प्रकारे सारविनाना होय छे; केमके तेओना हृदयमां परिणामरूप तथा बहारथी क्रियारूपे धर्मनो अभाव होय छे ॥ २०६ ॥ तथा तेओने कालसौकरिकादिकनी पेठे नरक आदिकमां जनारा जाणवा ॥ २०७ ॥ वळी बीजा केटलाक जीवो वेश्याना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारविनाना तथा बहारथी सारवाळा होय छे. केमके तेओना हृदयमां धर्म परिणाम होतो नथी. परंतु बहारथी ते संबंधि क्रिया आचरे छे; (कोनी पेठे? तोके) बार वर्ष सुधि साधुनो वेष धरनारा उदायी राजाने मारनार साधुनी पेठे; ॥ २०८ ॥ तथा त्रण गामनी वच्चे रहेनार कूटसाधुनी पेठे; वळी तेओ बन्नेनी पेठे तथा केटलाको आ लोकमां पण अनर्थना पात्ररूप थाय छे, तथा परलोकमां पण तेओने नरक आदिकमां गमन करनारा जाणवा ॥ २०९ ॥ वळी केटलाको अतिक्रुद्ध मनवाळा न होवाथी क्रियाना अभ्यास आदिकथी परभवमां बोधिबीजने पण प्राप्त थाय छे, अने तेथी नजदीक सिद्धिवाळा पण थाय छे; अहीं दृष्टांत पूर्वनी पेठेज जाणी लेवां ॥ २१० ॥

वरदत्तश्रेष्ठिदासीपुत्रादयः; केचित्तु तद्भवेऽपि सम्यग् धर्ममपि लभंते, क्षुल्लककुमारवत्, नवपरिणीतनागिलाध्यानपरभ्रातृभवदेवोपरोधवशाद्बहुवर्षद्रव्यलिंगधारकभवदत्तवच्चेति द्वितीयो भंगः ॥ २११ ॥ अपरे पुनर्मध्यस्याभरणवदंतः साराः, हृदये धर्मपरिणामवत्त्वात् वज्रजङ्घमहर्षिसेवकमृगवत्; बहिस्त्वसाराः, धर्मक्रियारहितत्वेन, तथा चागमः—सुइं च लद्धुं सद्धं च। वीरिअं पुण दुल्लहं। बहवे रोअमाणावि। नोअणं पडिवज्जए ॥ २१२ ॥ एते चासन्नसिद्धिकाः स्युः, प्रायः क्रियानुष्ठानं विना भवतरणाऽसिद्धेः ॥ यदुक्तं—जाणंतो विहु तरिउं। काइयजोगं न जुंजई जोतं ॥ सो वुड्डइ सोएणं। एवं नाणी चरणहीणो ॥ २१३ ॥

वरदत्त शेठना दासीपुत्र आदिकनां दृष्टांतो जाणवां. वळी केटलाको तो ते भवमां पण सम्यग् धर्मने पण पामे छे; (कोनी पेठे तोके) क्षुल्लक कुमारनी पेठे तथा नवी परणेली नागीला नामनी स्त्रीना ध्यानमां तत्पर रहेला तथा पोताना भाइ भवदेवना आग्रहना वशथी घणां वर्षो सुधि द्रव्य लिंगने धरनारा भवदत्तनी पेठे; एवी रीते बीजो भांगो जाणवो ॥ २११ ॥ वळी बीजा केटलाक जीवो शाहुकारना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारवाळा होय छे, केमके तेओना हृदयमां वज्रजंघ महर्षिना सेवक मृगनी पेठे धर्मनो परिणाम होय छे. तथा धर्म क्रियाथी रहित होवाथी बहारथी सारविनाना होय छे; आगममां पण कह्युं छे के—धर्म संबंधि तथा श्रद्धा तो मळवी सहेली छे, परंतु ते माटे वीर्य फोरववुं दुर्लभ छे; केमके घणाओने धर्म संबंधि रुचि तो थाय छे, परंतु ते पडिवजता नथी, एटले ते धर्म मुजब क्रिया करी शकता नथी ॥ २१२ ॥ एवी रीतना उपर वर्णवेला जीवो नजदीक मोक्षगामी होय छे, केमके प्राये करीने क्रियाना अनुष्ठानविना संसार तरी शकातो नथी ॥ कह्युं छे के—तरवाने जाणतो एवो पण मनुष्य जो कायिकयोगने न जोडे, अर्थात् जो पोताना हाथ पग हलाववारूप क्रिया न करे, तो ते बुडे छे, एवी रीतेज चारित्र विनानो ज्ञानी पण जाणवो ॥ २१३ ॥

इति तृतीयो भंगः ॥ अन्ये पुनर्नृपाभरणवद् बहिरंतश्च सारा:, यथा देशविरता: श्रीकुमारपालादय:, सर्वविरता: श्रीवीरप्राच्यभवनंदनर्ष्यादयश्च ; एते च तत्रैव भवे तृतीयादिभवेषु वा सिद्धिगामिन इति चतुर्थो भंगः ॥ २१४ ॥ एवं गुरुश्रावकधर्मजीवगते पृथग् भंगचतुष्टयेऽस्मिन् ॥ यतध्वमंत्यद्वितयेषु चेतो । निवेश्य भावारिजयश्रिये ज्ञा: ॥ २१५ ॥

॥ इति तपागच्छे श्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे श्रीगुरुपरीक्षाधिकारे पंचदशस्तरंग: समाप्त: ॥

एवी रीते त्रीजो भांगो जाणवो ॥ वळी केटलाक जीवो तो राजाना आभूषणनी पेठे बहारथी अने अंदरथी पण सारवाळा होय छे, जेम देशविरतिधारी श्रीकुमारपाळ राजा आदिको, तथा सर्वविरति एवा श्री वीरप्रभुना पूर्व भववाळा नंदन ऋषि आदिको; वळी तेओ तेज भवे अथवा त्रीजा आदिक भवोमां मोक्षगामी होय छे; एवी रीते चोथो भांगो जाणवो ॥ २१४ ॥ एवी रीते गुरु, श्रावक, धर्म, तथा जीवने आश्रीने कहेला एवा आ पृथक्-भूत चार भांगाओमांथी छेल्ला बेमां मन राखीने, हे पंडितो! तमो भावशत्रुओने जीतवानी लक्ष्मी माटे प्रयत्न करो ॥ २१५ ॥

॥ एवी रीते श्रीतपगच्छमां श्रीमुनिसुंदरसूरिजीए रचेला श्रीउपदेशरत्नाकर नामना ग्रंथमां श्रीगुरुपरीक्षाना अधिकारमां पंनरमो तरंग समाप्त थयो ॥ श्रीरस्तु ॥

इति पंचदशस्तरंगः समाप्तः

अथ षोडशस्तरंगः

अथ करंडोपमया श्रीचतुर्भंगीमाह—मूलम्—सोवागवेसगिहवइ—रायकरंडोवमा चउरह गुरुणो ॥ सुअचरणाईहिं—जहुत्तरं असाराय साराय ॥ १ ॥

हवे करंडीयानी उपमावडे करीने चतुर्भंगी कहे छेः-मूळनो अर्थः—चांडाल, वेश्या, गृहपति तथा राजाना करंडीयानी उपमावाळा श्रुत तथा चारित्र आदिके करीने उत्तरोत्तर सारविनाना तथा सारवाळा एम चार प्रकारना गुरुओ होय छे ॥ १ ॥

व्याख्या—श्वपाकादीनां करंडैरुपमा येषां ते चतुर्धा गुरवो भवंति, श्रुतचरणादिभि-रसद्भिः सद्भिः सातिशयैश्च हेतुभूतैर्यथोत्तरं असाराः साराश्चेति भंगद्वयेन चतुर्भं-गीसूचनादसारतमा असाराः, साराः सारतमाश्च भवंतीत्युक्तिसंटंकः ॥ २ ॥ तत्र श्रुत-मर्हत्प्रणीतागमः, चरणं पंचमहाव्रतादि; तथा चागमः—वय (५) समणधम्म (१०) संयम (१७) । वेआवच्चं (१०) च बंभगुत्तिओ (९) ॥ नाणाइतिगं (३) तव (१२) । कोहनिग्गहाइ (४) चरण मेअं ॥ ३ ॥ आदिशब्दात्करणा-दिग्रहः, श्रीसूरिविशेषगुणातिशयलब्धिप्रभृतिग्रहश्च, तत्र करणं पिंडविशुद्ध्यादि. यदागमः ॥ ४ ॥

व्याख्या—चांडाल आदिकोना करंडीआओनी छे उपमा जेओने एवा चार प्रकारना गुरुओ होय छे; अछतां तथा छतां अने अतिशयोवाळा हेतुरूप एवा श्रुतज्ञान तथा चारित्र आदिकोवडे करीने उत्तरोत्तर सारविनाना तथा सारवाळा एम बे भांगाओवडे करीने चोभंगीना सूचनथी वधारे सारविनाना तथा सारविनाना अने सारवाळा तथा वधारे सारवाळा गुरुओ होय छे, एवो संबंध छे ॥ २ ॥ त्यां श्रुत एटले श्रीअरिहंत प्रभु-ए प्ररूपेलुं आगम, तथा चारित्र एटले पंचमहाव्रतो, दश प्रकारनो श्रमणधर्म, सत्तर भेदे संयम, दश प्रकारनुं वैया-वच्च, नव ब्रह्मचर्यनी गुप्तिओ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बार भेदे तप, तथा क्रोध आदिक चार कषायोनो निग्रह ए चरण सित्तेरीरूप चारित्र छे ॥ ३ ॥ आदि शब्द थकी करण आदिकने पण ग्रहण करवां; तेमज आश्चर्य संबंधि विशेष गुणो अतिशयो तथा लब्धि आदिकोनो पण संग्रह करवो; तेमां करण एटले पिंडविशुद्धि आदिक; आगममां पण कह्युं छे के—॥ ४ ॥

पिंडविसोही (४) समिई (५) । भावण (१२) पडिमा (१२)य इंदियनिरोहो (५) ॥ पडिलेहण (२५) गुत्तीओ (३) । अभिग्गहा (४) चेव करणं तु ॥ ५ ॥ श्रीसूरिविशेषगुणाः प्रतिरूपत्वादयः, तदुक्तं—पडिरूवो तेअस्सी जुगप्पहा० (१) अपरिस्सावि० (२) ॥ ६ ॥ अतिशयाः पुनः सार्धयोजनशतादौ दुर्भिक्षमरकहरत्वादयः, विद्यामंत्रचूर्णादिप्रयोगजन्मानो वा वशीभूतदेवतादिजनिता वा चमत्कारविशेषाः ॥ ७ ॥ लब्धयस्तु क्षीराश्रवादयः कफविप्रुण्मलामर्षौषध्यादयोऽवधिज्ञानादयश्चेति ॥ ८ ॥ अथैतद्भाव्यते—यथा श्वपाककरंडश्चर्मपरिकर्मोपकरणवर्ध्रादिचर्मांशस्थानतयाऽत्यंतमसारः, तथा पार्श्वस्थादयः षट्प्रज्ञकगाथाज्योतिषादिरूपसूत्रार्थधारिणस्तथाविधयतिक्रियाविकलाश्चेत्यत्यंतमसाराः ॥ ९ ॥

चार प्रकारनी पिंडविशुद्धि, पांच प्रकारनी समिति, बार भावना, बार पडिमा, पांच इंद्रिओनो निरोध, पचीस पडिलेहणा, त्रण गुप्ति, तथा चार अभिग्रह एवी रीते करणसित्तरी जाणवी ॥ ५ ॥ आचार्यना विशेष गुणो प्रतिरूप आदिक जाणवा. कह्युं छे के—प्रतिरूप, तेजस्वी, युगप्रधान आदिक ॥ ६ ॥ अतिशयो एटले अढी योजन आदिकमां दुकाळ तथा मरणने हरवापणुं आदिकरूप. तथा विद्या, मंत्र तथा चूर्ण आदिकना प्रयोगथी उत्पन्न थयेला, अथवा वश थयेला एवा देवता आदिके उत्पन्न करेला चमत्कार विशेषो जाणवा ॥ ७ ॥ लब्धिओ एटले क्षीराश्रव आदिको, तथा कफ, शुक, मल, आमर्ष औषधी आदिक तथा अवधिज्ञान आदिक जाणवी ॥ ८ ॥ हवे तेनुं विशेष व्याख्यान कहे छे—जेम चांडालनो करंडीयो चांमडानो मंडळो तथा ते संबंधि उपकरणरूप वाधरी आदिक चर्मना अंशना स्थानपणाथी करीने अत्यंत सारविनानो छे; तेम पासत्था आदिको षट् प्रज्ञक गाथा, ज्योतिष आदिकरूप सूत्रार्थने धरनारा छे, तथा तेवी रीतनी साधु क्रिया विनाना होवाथी तेओ अत्यंत सारविनाना छे ॥ ९ ॥

तेषां तथाविधश्रुतस्य यत्तत्क्रियाणां च सावद्यत्वेन परेषां धर्मेऽनास्थामिथ्यात्वादिपोषकत्वेन च चर्मांशादिसमत्वात्; एतद्भावना च पूर्वगाथायां श्वपाकाभरणदृष्टांतभावनायां कृतास्तीति ततो विशेषार्थिभिर्ज्ञेया ॥ १० ॥ यथा च वेश्याकरंडको जतुपूरितस्वर्णाभरणादिस्थानत्वात् श्वपाकाभरणतः सारोऽपि वक्ष्यमाणकरंडापेक्षयाऽसारः ॥ ११ ॥ तथा केचिद् दुरधीतश्रुतलवाः किंचित् क्रियाप्रवर्त्तनेन वागाडंबरेण च मुग्धजनमावर्जयंतोऽपि परीक्षायां अक्षमत्वादसाराः; पार्श्वस्थादिभ्यः किंचित्सारत्वेऽप्येतेषां विशिष्टचारित्रिभ्यपेक्षया असारत्वमिति ॥ १२ ॥

वळी तेओनुं तेवी रीतनुं श्रुत, जे ते क्रियाना सावद्यपणायें करीने अन्योने धर्मनी अनास्था तथा मिथ्यात्व आदिकना पोषकपणायें करीने चर्मांशादिक समान छे; वळी तेनी भावना पूर्वनी गाथामां चांडालना आभूषणना दृष्टांतनी भावनामां करेली छे, माटे विशेष जाणवाना अर्थीओए त्यांथी जाणवी ॥ १० ॥ वळी जेम वेश्यानो करंडीयो लाखथी भरेलां सुवर्णना आभूषण आदिकना स्थानरूप होवाथी चांडालना आभूषणथी जोके सारवाळो छे, तोपण आगळ कहेवामां आवनारा करंडीयानी अपेक्षायें सारविनानो छे ॥ ११ ॥ तेम केटलाक गुरुओ, के जेओ महा मुश्केलीथी श्रुतनो लेश मात्र भणेला छे, तेओ कंइक क्रियाना प्रवर्तने करीने तथा वचनना आडंबरथी जोके भोळा लोकोने समजावी ले छे, तो पण (गुरु संबंधि खरी) परीक्षामां पसार नहीं थता होवाथी तेओ सारविनाना छे; जोके पासत्था आदिकोथी तेओमां किंचित् सारपणुं छे, छतां पण विशेष चारित्रवाननी अपेक्षायें तेओमां असारपणुं छे ॥ १२ ॥

तथा गृहपतिः श्रीमान् कौटुंबिकः, तस्य करंडो यथा विशिष्टमणिस्वर्णाभरणादिस्थानत्वात् सारः, एवं केचिद् गुरवः स्वसमयपरसमयज्ञाः सम्यक्क्रियादिगुणयुक्ताश्चेति साराः ॥ १३ ॥ तथा च राज्ञः करंडकोऽमूल्यरत्नजटिताभरणाऽमूल्यरत्नादिस्थानत्वात्सारतमः, तथा केचिद् गुरवः समस्ताचार्यगुणभृतो विशिष्टातिशयविविधलब्धिसमृद्धिपदं चेति सारतमाः, श्रीगौतमश्रीसुधर्मस्वामिश्रीभद्रबाहुश्रीस्थूलभद्रादिवत् ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तदेवं गुरुगोचरां चतुर्भंगीं करंडोपमया स्फुटीकृतां ॥ सदाश्रयध्वं सुगुरून् बुधा यदि । स्पृहा भवद्वेषिजयश्रियेऽस्ति वः ॥ १५ ॥

॥ इति तपागच्छनायकश्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे षोडशस्तरंगः समाप्तः ॥

तथा गृहपति एटले लक्ष्मीवान् कुटुंबी, तेनो करंडीओ जेम ऊंचां मणि तथा सुवर्णना आभूषण आदिकना स्थानरूप होवाथी सारवाळो छे, तेम केटलाक गुरुओ पोताना अने परना सिद्धांतोने जाणता थका उत्तम क्रिया आदिकना गुणवाळा होय छे, माटे तेओ सारवाळा छे ॥ १३ ॥ वळी राजानो करंडीओ जेम अमूल्य रत्नोथी जडेला आभरणो तथा अमूल्य रत्न आदिकोनां स्थानरूप होवाथी वधारे सारवाळो छे, तेम केटलाक गुरुओ आचार्यना सर्व गुणोए संपन्न तथा विशिष्ट प्रकारना अतिशयो अने नाना प्रकारनी लब्धिओनी समृद्धिना स्थानरूप होवाथी वधारे सारवाळा छे; (कोनी पेठे ? तो के) श्री गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी, श्रीभद्रबाहुस्वामी तथा श्रीस्थूलभद्र आदिकोनी पेठे ॥ १४ ॥ माटे एवी रीते करंडीआनी उपमाथी प्रगट करेली गुरु संबंधि चोभंगीने सांभळीने हे पंडितो ! जो तमोने संसाररूपी शत्रुने जीतवानी लक्ष्मीनी वांछा होय, तो तमो सुगुरुओनो आदर करो ! ॥ १५ ॥
॥ एवी रीते श्रीतपगच्छनायक श्रीमुनिसुंदरसूरिए रचेला श्रीउपदेशरत्नाकर नामना ग्रंथमां सोळमो तरंग समाप्त थयो ॥ श्रीरस्तु ॥

इति षोडशस्तरंगः समाप्त :

॥ १२७ ॥

अथ सप्तदशस्तरंगः

अथ रत्नदृष्टांतेन पुनर्गुरुचतुर्भंगीं प्रस्तावतः सामान्यजीवादिचतुर्भंगीश्चाह—मूलम्

—मज्झबहिसारऽसारा । रयणावायरिअसमणसढुजिआ सपरुभयाणुभयाणं ।

वयारओ हुंति चउभेआ ॥ १ ॥

वळी रत्नना दृष्टांत करीने फरीने गुरु संबंधि चोभंगी तथा प्रस्तावथी सामान्य जीवआदिकोनी पण चोभंगी कहे छे—मूळनो अर्थः—आचार्यो, साधुओ, श्रावको अने सामान्य जीवो पोताने, परने, बन्नेने तथा अनुभयने उपकारना हेतुथी रत्नोनी पेठे अंदरथी अने बहारथी सारवाळा तथा सारविनाना थया थका चार प्रकारना होय छे ॥ १ ॥

व्याख्या—आचार्याः श्रमणाः श्राद्धाः सामान्यतो जीवाश्च रत्नानीव मध्ये ब-हिःसारा असाराश्च भवंतीति चतुर्भंगी ॥ २ ॥ तत्र रत्नानामंतःसारत्वं अगर्भि-तत्वाऽभंगुरत्वादिभिः, बहिःसारत्वं पुनस्तादृक् तेजोविशेषादिना; आचार्यादीनां बहिरंतःसारत्वे सूत्रकार एव हेतुमाह ॥ ३ ॥ स्वपरुभयाणुभयाणोवयारउत्ति, स्व-स्य स्वजीवस्य, परेषामन्यभव्यसत्वानां तदुभयस्य अनुभयस्य चोपकारतो हेतो-श्चतुर्भेदा भवंतीति गाथार्थः ॥ ४ ॥ एतद्भावयति, यथा कानिचिद्रत्नानि मध्ये बहिश्चाऽसाराणि, यथा काचमणिः ॥ ५ ॥ कानिचिदंतरसाराणि बहिश्च सा-राणि मंडूक्यादिगर्भितरत्नवत् ॥ ६ ॥

व्याख्या—आचार्यो, साधुओ श्रावको अने सामान्य जीवो रत्नोनी पेठे अंदरथी अने बहारथी सारवाळा तथा सारविनाना होय छे, एम चोभंगी जाणवी ॥ २ ॥ तेमां रत्नोनुं अंदरथी सारपणुं अगर्भितपणाथी तथा अभंगुरपणा आदिकथी जाणवुं; अने बहारथी सारपणुं तो तेवा प्रकारना तेज विशेष आदिकथी जाणवुं; हवे आचार्य आदिकोना बहारथी अने अंदरथी सारपणामां सूत्रकारज हेतु कहे छे ॥ ३ ॥ पोताने एटले पोताना जीवने, परने एटले बीजा भव्य प्राणीओने, तेओ बन्नेने तथा अनुभयने (एटले तेओ बन्नेमांथी एकने पण नहीं) उपकारना हेतुथी ते आचार्य आदिको चार प्रकारना होय छे, एवो गाथानो अर्थ छे ॥ ४ ॥ हवे तेनी विशेष समज कहे छे; जेम केटलांक रत्नो, जेवांके काच, ते अंदरथी अने बहारथी पण सारविनाना होय छे ॥ ५ ॥ वळी केटलांक रत्नो अंदर सारविनाना तथा बहारथी सारवाळां होय छे, जेवांके देडकी आदिक जेना गर्भमां छे, एवां रत्नो ॥ ६ ॥

कानिचित्पुनरंतःसाराणि बहिश्चाऽसाराणि खन्यादिमृन्मलिनजात्यरत्नवत् ॥ ७ ॥ कानिचिन्मध्ये बहिश्च साराण्येव, यथाविधसंस्कृतकोटीमूल्यादिप्रसिद्धजात्यरत्नवदिति ॥ ८ ॥ तथा केचिदाचार्याः प्ररूढप्रमादत्वेनोभयलोकैकांतिकहितं चारित्रधर्मं शिथिलयंतः स्वात्मनोऽप्यनुपकारिणः इत्यंतरऽसाराः ॥ ९ ॥ अन्यसत्त्वेभ्योऽपि सम्यग्देशनादिना तं धर्मं न ददतीत्यन्येषामपि नोपकारिणः, इति बहिरसाराश्च ॥ १० ॥ ते च पार्श्वस्थादयो ज्ञेयाः, तत्स्वरूपं च प्राग्गाथयोरुक्तमिति प्रथमो भंगः ॥ ११ ॥

वळी केटलांक रत्नो अंदर सारवाळां तथा बहारथी सारविनाना होय छे. जेवांके खाण आदिकनी माटीथी मलीन थयेलां उत्तम रत्नो ॥ ७ ॥ वळी केटलांक रत्नो अंदरथी अने बहारथी पण सारवाळांज होय छे, जेवांके योग्यता पूर्वक पालीस करेलां क्रोडोनी कीमतवाळा उत्तम रत्नो ॥ ८ ॥ एवी रीते केटलाक आचार्यो घणा प्रमादे करीने बन्ने लोकमां एकांत हितकारी एवा चारित्रधर्मने शिथिल करता थका पोताने पण उपकार करी शकता नथी, माटे तेओ अंदरथी सारविनाना छे ॥ ९ ॥ तेमज अन्य प्राणीओ प्रत्ये पण उत्तम देशना आदिके करीने ते धर्म तेओ आपी शकता नथी, माटे तेओ बीजाओपर पण उपकार करी शकता नथी, एटला माटे तेओ बहारथी पण सारविनाना छे ॥ १० ॥ अने तेवा गुरुओ पासत्था आदिकोने जाणवा, अने तेओनुं स्वरूप पूर्वनी बन्ने गाथाओमां कह्युं छे, एवी रीते पहेलो भांगो जाणवो ॥ ११ ॥

केचित्पुनर्द्वितीयरत्नवदन्तःसाराः, स्वस्याऽनुपकारित्वात्, भावना प्राग्वत्; बहिस्तु साराः, सूत्रार्थप्रदानादिभिः शिष्यवर्गस्य, विहारदेशनादिभिरन्यभव्यसत्त्वानां चेह परत्र च द्रव्यतो भावतश्चोपकारकारित्वात् ॥ १२ ॥ एते च संविग्नपाक्षिका ज्ञेयाः, तथा च तल्लक्षणं—सुद्धं सुसाहुधम्मं । कहेइ निंदइ य निअयमायारं ॥ सुतवस्सिआणपुरओ । होइ य सव्वोमरायणिओ ॥ १३ ॥ वंदइ न य वंदावइ । किइकम्मं कुणइ कारवे नेअ ॥ अत्तट्ठा न वि दिक्खइ । देइ सुसाहूण बोहेउं ॥ १४ ॥

वळी केटलाक गुरुओ बीजा रत्ननी पेठे अंदरथी सारविनाना होय छे, केमके तेओ पोतानो उपकार करी शकता नथी, ते संबंधि भावना पूर्वनी पेठे जाणवी; वळी तेओ बहारथी सारवाळा होय छे, केमके तेओ सूत्रार्थनी वाचना आदिकवडे करीने शिष्य वर्गनो तथा विहार अने देशना आदिके करीने बीजा भव्य प्राणीओनो आ लोक अने परलोक संबंधि द्रव्यथी अने भावथी उपकार करी शके छे ॥ १२ ॥ अने तेवा संवेगपक्षी गुरुओ जाणवा. वळी तेवा संवेगपक्षीओनुं लक्षण नीचे मुजब कह्युं छे— संवेगपक्षी गुरुओ शुद्ध तथा उत्तम साधु धर्म कहे, तथा पोताना आचारने निंदे, तथा उत्तम तपस्वी मुनिराजनी पासे सर्व प्रकारे नम्रता आचरे ॥ १३ ॥ पोते अन्य साधुओ प्रत्ये वंदन करे, परंतु पोताने कोइ पासे वंदावे नहीं, पोते कृतिकर्म करे, परंतु बीजा पासे पोताप्रत्ये करावे नहीं, पोता माटे कोइने दीक्षा आपे नहीं, परंतु पोते प्रतिबोधीने उत्तम साधु पासे कोइने दीक्षा अपावे ॥ १४ ॥

इति द्वितीयो भंगः ॥ केचिच्च तृतीयरत्नवदंतःसाराः, स्वात्मोपकारैकपरत्वात् : बहिस्त्वसाराः, आत्मार्थैकनिष्ठत्वेन परेषां शिष्यगच्छश्राद्धादीनां तत्तिपरिहारादिना-ऽनुपकारित्वात् ॥ १५ ॥ यथा श्रीआर्यमहागिरिसूरयः, ते हि श्रीआर्यसुहस्तिभ्यो गच्छं दत्वा तदा जिनकल्पस्य व्यवच्छेदाज्जिनकल्पार्हवृत्त्या गच्छनिश्रात्या व्यहार्षुः ॥१६॥ अन्यदा श्रीसुहस्तिसूरयो विहरंतः पाटलीपुत्रपत्तनमाजग्मुः, तत्र सुभूतिः श्रेष्ठी श्रीगुरुवचनात् प्रतिबुद्धः श्राद्धोऽभूत् ॥ १७ ॥ श्रीगुरूक्तधर्मानुवादेन स्वजनान् बोधयति, परं ते नाऽबुध्यंताल्पमेधसः; ततस्तत्प्रतिबोधायाहूताः श्रीसुहस्तिगुरवस्त-द्गृहमापुः, देशनां प्रारेभिरे ॥ १८ ॥

एवी रीते बीजो भांगो जाणवो ॥ वळी केटलाक गुरुओ त्रीजा रत्ननी पेठे अंदरथी सारवाळा होय छे, केमके तेओ फक्त पोताना उपकारमां तत्पर होय छे; परंतु तेओ बहारथी सारविनाना होय छे, केमके तेओ फक्त स्वार्थमांज तत्पर होवाथी शिष्योनां तथा गच्छवासी श्रावक आदिक अन्योना दुःखने दूर करवारूप उप-कार करी शकता नथी ॥ १५ ॥ जेम श्रीआर्यमहागिरि आचार्य तेओ श्रीआर्यसुहस्ति महाराज प्रत्ये गच्छ सोंपीने ते वखते जिनकल्पीपणानो विच्छेद थयेलो होवाथी जिनकल्पी जेवी वृत्तियें करीने गच्छनी निश्रामां रह्या थका विहार करवा लाग्या ॥ १६ ॥ एक वखते श्रीआर्यसुहस्ति महाराज विहार करता थका पाटलीपुत्र नगरमां पधार्या; त्यां सुभूति नामनो एक शेठ श्रीगुरु महाराजना वचनथी प्रतिबोध पामीने श्रावक थयो ॥१७॥ तथा श्रीगुरु महाराजे कहेला धर्मना अनुवादे करीने स्वजनोने उपदेश देवा लाग्यो; परंतु तेओ थोडी बुद्धिवाळा होवाथी प्रतिबोध पाम्या नहीं; तेथी तेमने प्रतिबोधवा माटे तेणे श्रीआर्यसुहस्ति महाराजने बोलाववाथी गुरु-महाराज तेने घेर पधार्या; तथा देशना देवा लाग्या ॥ १८ ॥

तावत्तत्र भिक्षार्थं प्राविशत् आर्यश्रीमहागिरिः, श्रीसुहस्तीतमभ्युत्थायाऽवंदत, ततः सहसा भिक्षामगृहीत्वैव न्यवर्त्तत श्रीमहागिरिगुरुः ॥ १९ ॥ तथा दृष्ट्वा श्रीसुहस्तिगुरुं श्रेष्ठ्युवाच, युष्माकमपि कोऽप्यस्ति किं गुरुः, सूरिः—श्रेष्ठिन्नस्माकमेते गुरवः त्यागार्हभक्तादिभिक्षामाददते सदा; अत्र तद्गुणवर्णनं ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा जातश्रद्धः स श्राद्धः स्वजनानूचे, ईदृशं मुनिं यदा पश्यत तदा भक्तादिकं त्यज्यमानं दर्शयित्वा तस्मै देयं, यथा महाफलं स्यात् ॥ २१ ॥ ततो द्वितीयेऽह्नि तैस्तथादीयमाने उपयोगेन तमाहारमशुद्धं विज्ञायाऽनादाय च वसतौ गत्वा श्रीसुहस्तिनमुपालब्धवान् ॥ २२ ॥

एटलामां त्यां श्रीआर्यमहागिरि महाराज भिक्षा माटे पधार्या; त्यारे श्रीसुहस्ती महाराज उभा थइने तेमने वांदवा लाग्या, त्यारे श्रीमहागिरि महाराज भिक्षा लीधाविनाज त्यांथी तुरत पाछा वल्या ॥ १९ ॥ ते जोइने शेठ श्रीसुहस्ति महाराजने कहेवा लाग्या के, आपना पण शुं कोइ गुरु छे? त्यारे आचार्य महाराजे कह्युं के, हे शेठ! अमारा ते गुरु छे; तथा ते हमेशां* त्याग लायक भोजन आदिकनी भिक्षा ले छे; एम कही अहीं तेमना गुणोनुं तेमणे वर्णन कर्युं ॥ २० ॥ ते सांभळीने थयेल छे श्रद्धा जेने एवो ते श्रावक स्वजनोने कहेवा लाग्यो के, आवा मुनिने ज्यारे तमो जुओ, त्यारे तजवानुं भोजन आदिक देखाडीने तेने देवुं, के जेथी मोटुं फल थाय ॥ २१ ॥ पछी बीजे दिवसे तेओ तेवी रीते ज्यारे आहार देवा लाग्या, त्यारे उपयोगथी ते आहारने अशुद्ध जाणीने, ग्रहण कर्या विना उपाश्रये जइने महागिरिजी सुहस्तीजीने ठपको देवा लाग्या के ॥ २२ ॥

* नाखी देवालायक अरस नीरस भोजन.

यत् त्वया ह्यो विनयं कृत्वाऽस्माकमनेषणा कृतेति; ततो नैवं भूयः करिष्ये इ-
त्युक्त्वा श्रीसुहस्ती तं क्षमयामासेति ॥ २३ ॥ एवं ये गणादितसिं विमुच्य स्वा-
र्थैकपरास्तेऽत्र भंगे ज्ञेयाः जिनकल्पिकाचार्यादयश्चात्र निदर्शनमिति तृतीयो भंगः
॥ २४ ॥ तथा तुर्यरत्नवत् केचिदाचार्या उभयथापि साराः, प्राग्वत् स्वात्मोपकार-
परत्वेन, परेषामपीह प्रेत्य च द्रव्यतो भावतश्चोपकारित्वेन च ॥ २५ ॥ त्र्यधिकपंच-
दशशततापसयथेष्टपरमान्नाहारकेवलज्ञानप्रदायिश्रीगौतमगणधरादिवत्, तदुक्तं—न
व्यो गुरुः सुरतरुर्विहितामितार्थि—र्यत्केवलाय कवलार्थिषु गौतमोऽभूत् ॥ तापातुरेऽ-
मृतरसः किमु शैत्यमेव । नाऽप्रार्थितोऽपि वितरत्यजरामरत्वं ॥ २६ ॥

तमोए गइ काले विनय करीने अमोने अनेषणा करी; ते सांभळी सुहस्ती महाराज कहेवा लाग्या के, फरीने हुं तेम करीश नहीं, एम कही क्षमा याचवा लाग्या ॥ २३ ॥ एवी रीते जेओ गच्छ आदिकनी तप्तिने तजीने फक्त स्वार्थमांज तत्पर होय छे, तेओने आ भांगामां जाणवा; तथा अहीं जिनकल्पी आचार्य आदिकोने दृष्टांतरूपे जाणवा, एवी रीते त्रीजो भांगो जाणवो ॥ २४ ॥ वळी केटलाक आचार्यो चोथा रत्ननी पेठे बन्ने प्रकारे सारवाळा होय छे, केमके तेओ पूर्वे कह्या प्रमाणे पोताना उपकारमां अने परना उपकारमां तत्पर होवाथी आ लोक अने परलोकमां द्रव्यथी अने भावथी उपकारी होय छे ॥ २५ ॥ (कोनी पेठे? तोके) पंदरसो त्रण तापसोने इच्छा मुजब क्षीरनुं भोजन तथा केवलज्ञान आपनारा श्री गौतमस्वामी गणधर महाराजनी पेठे कह्युं छे के— धारणा करेल छे वर्णाज ऋद्धिओ जेणे एवा श्रीगौतमस्वामी गुरु कोइक नवीन प्रकारना कल्पवृक्ष सरखा थया छे, केमके तेमणे कवलना (भोजनना) अर्थी एवा तापसो प्रत्ये केवलज्ञान आप्युं छे! केमके अमृतरस, तापातुर माणसोने शुं केवल शीतलताज आपे छे? नहीं, परंतु प्रार्थना कर्या विना अजरामरपणुं पण आपे छे ॥ २६ ॥

श्रीकुमारपालनरेन्द्रस्य बहुष्ववसरेषु ऐहिकोपकारकः पारत्रिकोपकारकश्च श्रीहेमसूरिः,
आमनृपादेर्द्विधाप्युपकारिणः श्रीबप्पभट्टिगुर्वादयश्चात्र निदर्शयितव्या इतितुर्यो
भंगः ॥ २७ ॥ एषु प्रथमभंगगुरवस्त्याज्या एव, द्वितीयभंगगुरवोऽपि मुमुक्षुयोगसंभवे
त्याज्या एव, यतस्तेषां प्रमादाचरणं पश्यतां श्रोतॄणां तदुक्तधर्मेऽप्यनास्थोल्लासादिना
आर्थो न तदुपकारसिद्धिरिति ॥ २८ ॥ यथोत्तरमुत्तरभंगगुरुद्वयं च योग्यमि-
त्याराध्यं श्रेयोऽर्थिभिरिति, इत्युक्ता श्रीआचार्यानधिकृत्य चतुर्भंगी ॥ २९ ॥
अथ श्रमणगोचरा सा भाव्यते, तथाहि श्रमणानां स्वोपकारः सम्यक् चरणकरण-
समाचरणादिः, परोपकारश्च गुरुतपस्विबालवृद्धग्लानादिवैयावृत्त्यादिः, ३० ॥

अहीं श्री कुमारपाळ राजाने घणे अवसरे आ लोक संबंधि उपकार करनार तथा परलोक संबंधि उपकार करनार श्रीहेमचंद्राचार्य तथा श्रीआमराजा आदिकोने बन्ने प्रकारे उपकार करनार श्रीबप्पभट्टिगुरु आदि-कोने दृष्टांतरूपे जाणवा; एवी रीते चोथो भांगो जाणवो ॥ २७ ॥ हवे ते भांगाओमांथी पहेला भांगाना गुरुओ तो तजवा लायकज छे. बीजा भांगाना गुरुओ पण मुमुक्षुनो योग मळते छते तजवा लायकज छे; केमके तेओनुं प्रमादी आचरण जोइने तेमणे कहेला धर्मपर श्रोताओने आस्थानो उल्लास आदिक न थवाथी तेओ तरफथी उपकारनी सिद्धि थती नथी ॥ २८ ॥ वळी ते पछीना बन्ने भांगाओवाळा गुरुओ योग्य छे. माटे कल्याणना अर्थीओए तेओने आराधवा जोइये, एवी रीते श्री आचार्योने आश्रीने चोभंगी कही ॥ २९ ॥ हवे साधुने आश्रीने ते चोभंगी कहे छे—साधुओनो स्वोपकार एटले सम्यक प्रकारे चरण करणना समाचरण आदिकरूप जाणवो, तथा परोपकार एटले गुरु, तपस्वी, बाल, वृद्ध, तथा रोगी साधुनी वैयावच्च आदिकरूप जाणवो; ॥ ३० ॥

सम्यक्सामाचारीप्रवर्त्तनस्थिरीकरणादिकश्च, तत्र काचादिमणिवत् केऽपि श्रमणाः स्वोपकारपरोपकाराभ्यां रहितत्वात् द्विधाप्यसाराः, पार्श्वस्थादय एव ॥ ३१ ॥ केचित्तु द्वितीयरत्नवदंतरसाराः, स्वात्मोपकारहेतुसंयमगुणविकलत्वात्; बहिस्तुसाराः, ग्लानत्वाद्यवस्थासु सुसाधूनां वैयावृत्त्याद्युपकारपरत्वात्; ते च संविग्नपाक्षिकादय एव ॥ ३२ ॥ तदुक्तं—कांताररोहमध्धा—णओमे गेलन्नमाइकज्जेसु ॥ सव्वायरेण जयणाइ । कुणइजं साहु करणिज्जं ॥ ३३ ॥ एते च मनाग् योग्याः, संविग्नपाक्षिकत्वस्य तृतीयमार्गत्वात्, यदुक्तं—॥ ३४ ॥

तेमज सम्यक् प्रकारे सामाचारीना प्रवर्त्तनरूप तथा तेमां स्थिर करवा आदिकरूप पण परोपकार जाणवो; हवे त्यां काचआदिक मणिनी पेठे केटलाक साधुओ स्वोपकार तथा परोपकारथी रहित होवाथी बन्ने रीते सारविनाना छे, अने तेवा पासत्था आदिकोज छे ॥ ३१ ॥ वळी केटलाको तो बीजा रत्ननी पेठे अंदरथी सारविनाना होय छे, केमके तेओ पोताना उपकारना हेतुरूप एवा संयमगुणथी रहित होय छे; परंतु बहारथी तेओ सारवाळा होय छे, केमके सुसाधुओनी मांदगी आदिक अवस्थामां तेओ तेमनी वैयावच्च आदिक उपकार करवामां तत्पर होय छे; अने तेवा संवेगपक्षी आदिकोनेज जाणवा ॥ ३२ ॥ कह्युं छे के—*कांतार (अटवी), रोध, (नगर—दुर्गादिनो घेरो) अध्धा (दुर्भिक्ष आदिकाळ) अवम (बाळ) अने ग्लानि आदिक कार्य प्रसंगे जे साधुनुं कर्तव्य छे ते अतिआदरथी करे अर्थात् तेवे प्रसंगे सुसाधु जनोने अत्यंत सहायभूत थाय. एवो परमार्थ उक्त गाथानो होवो संभवे छे ॥ ३३ ॥ एवी रीतना ते संवेगपक्षीओ कंइक योग्य छे; केमके संवेगपक्षीओनो त्रीजो मार्ग छे. कह्युं छे के—॥ ३४ ॥

* आ गाथाना पूर्वार्द्धनो अर्थ बहु श्रुतोथी जाणी लेवो.

सावज्जजोगपरिवज्जणाई—सव्वुत्तमो जइधम्मो ॥ बीओ सावगधम्मो । तइओ संविग्गपक्खपहो ॥ ३५ ॥ इति द्वितीयो भंगः ॥ केचिच्च तृतीयरत्नवदंतः साराः, बहिः पुनरसाराः, स्वार्थैकनिष्ठत्वात्, प्रतिमाप्रतिपन्नजिनकल्पिकादिसाधुवदिति तृतीयः ॥ ३६ ॥ केचित्तु तुर्यरत्नवदुभयथापि साराः, स्वस्य परस्य चोपकारित्वात्, श्रीभरतचक्रिबाहुबलिप्राग्भवबाहुसुबाहुश्रीवसुदेवजीवश्रीनंदिषेणादिमहर्षिवदिति चतुर्थः ॥ ३७ ॥ एते द्वये योग्यास्तद्भवे त्रिचतुरादिभवेषु वा सिद्धिगामिन इति उत्तरत्राप्येवं भावना ज्ञेयेत्युक्ता श्रमणानां चतुर्भंगी ॥ ३८ ॥

सावद्य योगोनो परिवर्जनारूप यतिधर्म सर्वथी उत्तम छे, तेथी उतरतो बीजो श्रावकधर्म छे, तथा तेथी उतरतो त्रीजो संवेगपक्षी धर्म छे ॥ ३५ ॥ एवी रीते बीजो भांगो जाणवो वळी केटलाक साधुओ त्रीजा रत्ननी पेठे अंदरथी सारवाळा तथा बहारथी सारविनाना होय छे, केमके तेओ पडिमाधारी जिनकल्पी साधु आदिकोनी पेठे फक्त स्वार्थमांज तत्पर होय छे; एवी रीते त्रीजो भांगो जाणवो ॥ ३६ ॥ वळी केटलाक साधुओ चोथा रत्ननी पेठे बन्ने प्रकारे सारवाळा होय छे, केमके तेओ पोताना तथा परना पण बन्नेना उपकारी होय छे; (कोनी पेठे? तो के) श्री भरत चक्री तथा बाहुबलिना पूर्व भवना जीव एवा बाहु सुबाहु तथा श्रीवसुदेवना जीव श्रीनंदिषेण महर्षि आदिकनी पेठे; एवी रीते चोथो भांगो जाणवो ॥ ३७ ॥ ए बन्ने भांगावाळा साधुओने योग्य जाणवा, तथा तेओ ते भव अथवा त्रीजा चोथा आदिक भवे मोक्षगामी थाय छे; एवी रीते आगळ पण एज भावना जाणवी; एवी रीते साधुओनी चोभंगी कही ॥ ३८ ॥

अथ श्राद्धानां सा ज्ञाप्यते, तत्र श्राद्धाः केचिद्धर्मक्रियासु प्रमादित्वेन स्वं भवाब्धौ मज्जयंति, धर्मकारणतदुपदेशतत्साहाय्यदानादिविकलत्वेन परं स्वजनपरिजनाद्यमपि न तारयंतीत्युभयोपकाररहिता इति काचमणिवदुभययाप्यसाराः, सहदेववत् तज्ज्ञातं यथा—॥ ३९ ॥ कुशस्थलपुरे विमलसहदेवौ भ्रातरौ, साधोः पार्श्वे प्रतिपन्नधर्मौ, अन्यदा तौ प्रागदेशे द्रव्याय चेलतुः ॥ ४० ॥ अर्धपथे विमलः पथिकेन प्रांजलनीरादियुतपथं पृष्टो न जानामीत्याह पापभीरुत्वात्, क्व यास्यसीति पृष्टो यत्र पण्यार्थः ॥ ४१ ॥ निजपुरं वदेति, राजधान्यां वसामि, न मे किंचिद्; त्वया सहागच्छामीति च पृष्टः स्वेच्छया गच्छतां वः के वयमिति चाऽवादीत् ॥ ४२ ॥

हवे श्रावकोनी ते चोभंगी कहे छे: त्यां केटलाक श्रावको धर्मक्रियामां प्रमादी रहेवाथी पोताने संसार समुद्रमां बुडावे छे; तेमज धर्म कराववो, ते संबंधि उपदेश देवो, तथा ते माटे सहाय आपवो, इत्यादिक नहीं करवाथी परने एटले पोताना संबंधि तथा परिवार आदिकने पण तेओ तारी शकता नथी, माटे तेओ बन्ने रीते उपकार विनाना होय छे, अने तेथी काचमणिनी पेठे सहदेवनी माफक तेओ बन्ने रीते सारविनाना छे; ते सहदेवनुं उदाहरण नीचे मुजब छे ॥ ३९ ॥ कुशस्थल नामे नगरमां विमल अने सहदेव नामे बे भाइओ हता; तेओए साधु पासेथी धर्म स्वीकार्यो हतो: एक वखते तेओ धन माटे पूर्व देशमां चाल्या ॥ ४० ॥ अर्धे मार्गे कोइ वटेमार्गुए विमलने सारं पाणी आदिकवालो मार्ग पूछ्यो त्यारे विमले पापना डरथी कह्युं के, मने तेनी खबर नथी; पछी ज्यारे तेणे एम पूछ्युं के तमे क्यां जाओ छो ? त्यारे तेणे कह्युं के, ज्यां व्यापार मळे त्यां ॥ ४१ ॥ तारा नगरनुं नाम कहे ? एम पूछवाथी तेणे कह्युं के, हुं राजधानीमां रहुं छुं, मारुं कंइ नथी; तारी साथे हुं आवुं ? एम पूछवाथी तेणे कह्युं के, तमारी इच्छाथी चालता एवा तमोने अमोनो शो संबंध छे ? ॥ ४२ ॥

अथ पाकस्थाने सहागतपथिकेनाग्नियाचने मत्पार्श्वे भुंक्ष्व, नाग्निमर्पये, इत्युक्तौ प-थिकेनाक्रोशने, वपुर्यष्ट्यादिना तापने, प्राणांतेऽप्यक्षोभे स्वदिव्यरूपप्रादुःकृतौ इन्द्र-प्रशंसावृत्तोक्तौ वस्त्राद्युत्तरीये विषापहारमणिं निबध्य देवगमेनेष्टं सहदेवादीनां वृ-त्तोक्तौ ॥ ४३ ॥ नगरक्षोभं दृष्ट्वा प्रश्ने पुरुषोत्तमो राजाऽद्याऽहिदष्टपुत्रजीवयितुः रा-ज्यार्धप्रदानपटहं वादयतीत्युक्तौ सहदेवेन बलाद्विमलांचलान्मणिं लात्वा पटहस्पर्शे त-ज्जीवने सहदेववचसा ॥ ४४ ॥ राज्ञा विमलपार्श्वे आगत्य राज्याभ्यर्थने, तेनारंभभि-याऽग्रहणे गजारूढस्वगृहनयने सहदेवाय राज्यार्धदाने विमलस्याऽनिच्छतोऽपि श्रेष्ठि-पदं गृहादि चार्पयत् ॥ ४५ ॥

पछी रसोइनी जगोए ते साथे आवेला पंथीए तेनी पासेथी अग्नि मागते छते, तेणे कह्युं के, तुं मारी पासे भोजन कर हुं अग्नि आपीश नहीं; ते सांभळी ते पंथीए क्रोध करी शरीर बळावा आदिकथी तेने पीडावते छते, तथा प्राणांते पण तेने नहीं चळायमान थयेलो जोइ, ते पंथीरूप देवे पोतानुं खरुं रूप प्रगट कर्युं, तथा इंद्रे करेली तेनी प्रशंसा आदिकनुं वृत्तांत तेने कह्युं, तथा आग्रहथी तेने दुपट्टे छेडे दूर करनारुं मणि बांधीने देव गये छते, ते वृत्तांत विमले सहदेव आदिकोने कह्युं ॥ ४३ ॥ एटलामां नगरमां कोलाहल थतो जोइ पुछवाथी मालुम पड्युं के, पुरुषोत्तम राजा आजे सर्प डंसेला पोताना पुत्रने जीवाडनारने अरधुं राज्य आपवानो पडह वगडावे छे; तेथी सहदेवे बळात्कारे विमलना वस्त्रने छेडेथी मणि लइ पडहने स्पर्शी तेने जीवतो कर्यो, तथा सहदेवना वचनथी ॥ ४४ ॥ राजा विमल पासे आवी अरधुं राज्य लेवानी प्रार्थना करवा लाग्यो; त्यारे विमले आरंभना भयथी ते नहीं लेवाथी, राजा तेने हाथीपर चडावी पोताने घेर लइ गयो, तथा सहदेवने अरधुं राज्य आप्युं, विमलनी इच्छा नहोती, तोपण तेने राजाए शेठनी पदवी तथा घर आदिक आप्युं ॥ ४५ ॥

सहदेवस्तु राज्ये विषयेषु च गृध्नो महारंभरतो धर्मं तत्याज, साधर्मिकानप्यपीडयद-न्यायकरादिभिः, दूरे तेषां धर्मसाहाय्यादि, विमलेन वारितोऽपि युद्धाद्यकरोत् ॥ ४६ ॥ उवाच च, राजकार्याणि कृतानि विलोक्यंते, धर्मोऽप्यवसरे करिष्यते, इत्यादि, तत्संगत्या तत्परिवारोऽपि तथैव धर्मपराङ्मुखोऽभूत् ॥ ४७ ॥ सोऽन्यदा वैरिप्रहित-घातकेन हतः, प्रथमं नरकं प्रापत्, विमलस्तद्वैराग्याद् गाढतरं धर्ममाराध्य स्वर्गं गतो, महाविदेहे सेत्स्यतीति प्रथमो भंगः ॥ ४८ ॥ एके पुनश्चारित्रमोहनीयप्राबल्यादिना स्वयं धर्मक्रियासु प्रमादिनोऽपि परैस्ताः कारयंति, तदुपदेशसाहाय्यकरणतद्विघ्नवा-रणादिभिः दीनाऽनाथादीनपि धनादिदानैरुपकुर्वंतीति बहिःसाररत्नतुल्याः ॥ ४९ ॥

पछी सहदेवे तो राज्य अने विषयमां लुब्ध थइ मोटा आरंभथी धर्मने छोडी दीधो, तथा अन्याय अने कर आदिकोथी साधर्मीओने पण दुःख आपवा लाग्यो; वळी तेओने धर्म आदिकमां सहाय आपवो तो दूर रह्यो; विमले वार्यो छतां पण ते युद्ध आदिक करवा लाग्यो ॥ ४६ ॥ तथा कहेवा लाग्यो के, करेलां राजकार्योने तपासवांज जोइये, अवसरे धर्म पण कराशे; इत्यादि, एवी रीते तेनी सोबतथी तेनो परिवार पण तेवीज रीते धर्मथी पराङ्मुख थयो ॥ ४७ ॥ पछी एक वखते वैरीए मोकलेला माराथी हणायो थको ते पेहेली नरके गयो; तेना वैराग्यथी विमल धर्मने वधारे आराधीने स्वर्गे गयो, तथा महाविदेहमां मोक्षे जशे, एवी रीते पेहेलो भांगो जाणवो ॥ ४८ ॥ वळी केटलाक श्रावको चारित्र मोहनीय कर्मनी प्रबळताथी पोते जोके धर्म क्रियामां प्रमादी होय छे, तो पण अन्योपासे ते करावे छे; एटले ते धर्म संबंधि उपदेश, सहाय करावो तथा ते संबंधि विघ्नोने निवारवा आदिके करीने, तेमज दीन तथा अनाथ आदिकोने धन आदिकनी मददथी उपकार करे छे, माटे तेओ बहारथी सारवाळा रत्न सरखा छे, ॥ ४९ ॥

प्रविव्रजिषुस्वापत्याऽनिषेधिस्वसुताऽप्रव्रजितपूर्विंशेषाशेषतपस्यार्थितपस्योत्सवकरणतत्कुटुंबनिर्वाहादिसाहाय्यकृत्तद्धेतुकतीर्थंकरनामकर्मार्जकश्रीकृष्णनृपादिवत् ॥ ५० ॥ श्रीकृष्णादीनां केषांचिदंतःसम्यक्त्वादिभावेऽपि विरत्यादिविशेषगुणाऽभावेनाऽनुदराकन्येत्यादिवदंतरसारत्वं ज्ञेयमिति द्वितीयो भंगः ॥ ५१ ॥ अन्ये तु भ्रातृकलत्रपुत्रादिस्वजनपरिजनादिप्रतिबोधाऽशक्ताः परेषां धर्मसाहाय्याद्यक्षमाश्च, सम्यग् धर्मानुष्ठानैः स्वं भवात्तारणेनोपकुर्वंतीत्यंतः साररत्नतुल्याः, पूर्वभंगोक्तसहदेवाऽभजविमलवदिति तृतीयो भंगः ॥ ५२ ॥

दीक्षा लेवानी इच्छावाळा पोताना पुत्रोने निषेध नहीं करनारा, तथा पोताना पुत्रोए दीक्षा लीधा पहेलां बाकीना सघळा तपस्याना अर्थीओनी तपस्यानो उत्सव करनारा, तथा तेओना कुटुंबिओने आजीविका आदिकनी साहाय करनारा, तथा तेथी तीर्थंकरनाम कर्म उपार्जन करनारा श्रीकृष्ण राजा आदिकनी पेठे तेवा श्रावको जाणवा ॥ ५० ॥ श्रीकृष्ण आदिक केटलाकोने अंदरथी समकीत आदिकनो भाव होते छते पण विरति आदिक विशेष गुणना अभावे करीने 'उदर विनानी कन्या' इत्यादिकनी पेठे अंदरथी असारपणुं जाणवुं; एवी रीते बीजो भांगो जाणवो ॥ ५१ ॥ वळी केटलाक श्रावको भाइ, स्त्री, पुत्र आदिक स्वजन तथा परिवार आदिकने प्रतिबोधवाने अशक्त होय छे, तेमज बीजाओने पण धर्मनो सहाय आपवामां असमर्थ होय छे, परंतु सम्यक् प्रकारनी धर्मक्रियाओथी फक्त पोताने संसारथी तारवारूप उपकार करी शके छे, माटे तेओ अंदरथी सारवाळा रत्न सरखा छे; (कोनी पेठे? तोके) पूर्वेना भांगामां कहेला सहदेवना भोज भाइ विमलनी पेठे एवी रीते त्रीजो भांगो जाणवो ॥ ५२ ॥

केचित्पुनः स्वपरोपकारसमर्था इत्युभयथा साररत्नोपमाः, श्रीकुमारपालनृपादिवत् ॥ ५३ ॥ तथाहि—श्रीकुमारपालस्य श्रीसम्यक्त्वमूलद्वादशव्रतपालनं, त्रिकालं जिनपूजा, अष्टमीचतुर्दश्योः पौषधोपवासः, पारणके दृष्टिपथगतानां परःशतानामपि यथार्हवृत्तिदानेन संतोषकरणं ॥ ५४ ॥ सार्धं गृहीतपौषधानां स्वावासे पारणककारणं, भग्नसाधर्मिकोद्धरणे सहस्रदीनारार्पणं, एकस्मिन्वर्षे साधर्मिकेभ्यः कोटिदीनारदानं ॥ ५५ ॥ एवं चतुर्दशवर्षेषु चतुर्दशकोटिदीनारदानं साधर्मिकेभ्यः, अष्टनवतिलक्षद्रव्यस्यौचित्ये प्रदानं, द्वासप्ततिलक्षरुदतिद्रव्यपत्रपाटनं, एकविंशतिश्रीज्ञानकोशलेखनं ॥ ५६ ॥

वळी केटलाक श्रावको पोताने अने परने एम बन्नेने उपकार करवाने समर्थ छे, एवी रीते तेओ बने प्रकारना श्रीकुमारपाल राजा आदिकनी पेठे सारवाळा रत्न सरखा छे ॥ ५३ ॥ ते कहे छे—श्रीकुमारपाल राजा समकीत मूळ बारे व्रतोने धरनारा हता, त्रिकाळ जिनपूजा करता, आठम चौदसे पोषध सहित उपवास करता, पारणाने दिवसे दृष्टिए पडेला सेंकडो गमे मनुष्योने यथायोग्य आजीविका आपी संतुष्ट करता ॥ ५४ ॥ साथे पोषध करनाराओने पोताने घेर पारणां करावता, धनहीन थयेला साधर्मीने हजार सोनामोहोरो आपता, एकज वर्षमां साधर्मीओने क्रोड सोनामोहोरोनुं दान देता ॥ ५५ ॥ एवी रीते चौद वर्षोमां चौद क्रोड सोना मोहोरोनुं तेमणे साधर्मीओने दान आप्युं; अठाणुं लाख द्रव्यनुं उचित दान आप्युं, बोहोंतेर लाख द्रव्य आवता करजदारोना खत फडाव्या. एकवीस ज्ञान भंडार लखाव्या ॥ ५६ ॥

प्रत्यहं श्रीत्रिभुवनपालविहारे स्नात्रोत्सवः, श्रीहेमचंद्रसूरिगुरुपादपद्मेषु द्वादशावर्त्तवंदनकदानं, ततोऽनुक्रमेण सर्वसाधुवंदनं ॥ ५७ ॥ पूर्वप्रतिपन्नपौषधादिव्रतार्हश्रावकवंदनमानदानादि, अष्टादशदेशेष्वमारिपटहदापनं, न्यायघंटावादनं, चतुर्दशदेशेषु धनबलेन मैत्रीबलेन च जीवरक्षाकारणं ॥ ५८ ॥ चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशतनव्यप्रासादकारणं, १६०० जीर्णोद्धाराः, सप्त श्रीतीर्थयात्राः, प्रथमव्रते मारिरित्यक्षरकथने उपवासकरणं ॥ ५९ ॥ द्वितीयव्रते विस्मृत्याद्यसत्यभाषणे आचाम्लादितपःकरणं, तृतीयव्रते मृतधनमोचनं, चतुर्थव्रते धर्मप्राप्त्यनंतरं पाणिग्रहणाऽकरणं, चतुर्मास्यां त्रिधा मनोवचनकायैः शीलपालनं ॥ ६० ॥

हमेशां श्रीत्रिभुवनपाल विहारमां स्नात्रोत्सव कराव्यो, श्रीहेमचंद्राचार्यना चरण कमलोमां द्वादशावर्त्त वंदन कर्युं, पछी अनुक्रमे सर्व साधुओने वंदन कर्युं ॥ ५७ ॥ पहेलेथी पौषध आदिव्रत लेनार योग्य श्रावकने वंदन तथा मान आदिक आप्युं, अढार देशोमां अमारी पडो वजडाव्यो, न्याय घंटा वगडाव्यो, वळी चौद देशोमां धनने बळे तथा मित्राइने बळे जीवरक्षा करावी, ॥ ५८ ॥ चारसो चुमाळीस नवां जिनमंदिरो कराव्यां, सोळसो जीर्णोद्धार कराव्या, सात तीर्थयात्रा करी; पहेला व्रतमां 'मारि' एवो जो अक्षर मुखथी बोलाय तो पण उपवास करता ॥ ५९ ॥ बीजा व्रतमां भूल आदिकथी असत्य बोलतां आंबिल आदि तप करता, त्रीजा व्रतमां मृत्यु पामेलानुं द्रव्य नहीं लेता, चोथा व्रतमां धर्म पाम्या पछी परणवानुं नियम कर्युं; चोमासामां मन, वचन अने काया, एम त्रण प्रकारे शील पाळता ॥ ६० ॥

मनसा भंगे क्षपणं, वाचा भंगे आचाम्लं, कायभंगे चैकाशनं, परनारीसहोदर-
बिरुदधरणं च, राज्ञी *भोपलदेव्याजायायां मरणेऽपि प्रधानादिभिर्बहूच्यमानेऽपि
पाणिग्रहणनियमस्याऽभंगः ॥ ६१ ॥ आरात्रिकार्थं सुवर्णमयभोपलदेवीमूर्त्तिकार-
णं, श्रीगुरुभिर्वासक्षेपपूर्वं राजर्षिबिरुददानं, पंचमव्रतविस्तरस्तु यथा— ॥ + ॥
॥ ६२ ॥ षट्कोट्यः कनकस्य, अष्टौकोट्यस्तारस्य, दशतुलाशतानि महार्घ्यमणि-
रत्नादीनां, ३२ सहस्रमणाघृतं, ३२ सहस्रमणातैलं, ॥ ६३ ॥

मनथी शील भांगते छते क्षपणक करता, वचनथी भांगते छते आंबिल करता, कायाथी भांगते छते एकाशन करता, परस्त्री प्रत्ये सहोदरनुं बिरुद धारण करता. भोपलदेवी राणीना मृत्युबाद प्रधान आदिकोए घणुं कह्या छतां पण परणवाना नियमनो तेमणे भंग कर्यो नहीं ॥ ६१ ॥ आरात्रिक माटे भोपलदेवी राणीनी सुवर्णनी मूर्त्ति करावी, श्री गुरुमहाराजे वासक्षेपपूर्वक तेमने राजर्षिनुं बिरुद आप्युं; पांचमा व्रतनो विस्तार नीचे मुजब छे— ॥ ६२ ॥ छ क्रोड सोनामोहोर, आठ क्रोड रूपामहोर, दशसो तोला मोटी किंमतनां मणिरत्नो विगेरे, बत्रीस हजार मण घी, बत्रीस हजार मण तेल ॥ ६३ ॥

---

* राज्ञीभोपलदेव्यादिजायां ० मरणेऽपि ॥ इति द्वितीयपुस्तकपाठः ॥

\+ यथा ग्रंथांतराद्वाच्यः ॥ इति द्वितीयपुस्तकपाठः ॥

३ लक्षाः शालिचनकयुगंधरीमुद्गप्रभृतिधान्यमूटकानां प्रत्येकं पंचलक्षी, अश्वानां सहस्रं गजा उष्ट्राश्च प्रत्येकं पंचशतानि ॥ ६४ ॥ एहहट्टसज्जायानपात्रशकटवाहिनीनामित्यादि; एकादशशतगजानां, ५० सहस्ररथानां, ११ लक्षा हयानां, १८ लक्षाः सुभटवराणामित्येवं सर्वसैन्यमेलापकः इत्यादि ॥ ६५ ॥ षष्टे व्रते वर्षाकाले श्रीपत्तनपरिसरादधिकगतिनिषेधः, सप्तमे भोगोपभोगव्रते मद्यमांसमधुम्रक्षणबहुबीजपंचोडुंबरफलाऽभक्ष्याऽनंतकायघृतपूरादिनियमः ॥ ६६ ॥ देवाऽदत्तवस्त्रफलाहारादिवर्जनं, सचित्तलेके पत्ररूपं दिने तद्वीटकाष्टकं, रात्रौ चतुर्विधाहारनिषेधः, वर्षास्वेका घृतविकृतिः, शाड्वलशाकनिषेधः ॥ ६७ ॥

त्रण लाख चावलना तथा चणा, जुवार अने मग आदिक धान्योना दरेकना पांच पांच लाख मुडा, एक हजार घोडा, हाथी तथा उंट दरेक पांचसो पांचसो ॥ ६४ ॥ घर, हाट सजा वहाण, गाडी पालखी इत्यादि; अग्यारसो हाथीओ, पचास हजार रथो, अग्यार लाख घोडा, अढार लाख सुभटो, एवी रीते सर्व सैन्यनो मेलापक हतो. इत्यादि ॥ ६५ ॥ छट्ठा व्रतमां वर्षाकालमां श्री पाटणना सीमाडाथी अधिक गमन करवानो निषेध हतो; सातमा भोगोपभोग व्रतमां मद्य, मांस, मध, माखण, बहुबीजां, पांच जातिना उदुंबर फळ, अभक्ष्य, अनंतकाय तथा घेवर आदिकनो तेने नियम हतो; ॥ ६६ ॥ देवे नहीं दीधेलां वस्त्र, फळ तथा आहार आदिकनो त्याग हतो, एक पान रूपी सचित्त, अने तेना पण एक दिवसमां आठ बीडां तेने खपतां; रात्रिए चारे प्रकारना आहारनो निषेध हतो; वर्षाकालमां एक घीनो विगय छूट हतो, शाड्वल शाकनो त्याग हतो; ॥ ६७ ॥

एकाशनं सदा, पर्वस्वब्रह्मविकृतिसचित्तवर्जनं; अष्टमव्रते सप्तव्यसनानां देशात्कर्षणं समुद्रतटे क्षेपणं ॥ ६८ ॥ नवमे व्रते उभयकालसामायिककरणं, तस्मिन् कृते श्रीहेमसूरीन् विनाऽन्यैर्जल्पननिषेधः, प्रत्यहं १२ प्रकाश २० वीतरागस्तवगुणनं ॥ ६९ ॥ दशमव्रते चतुर्मासीकटकाऽकरणं, गाजणीसुरत्राणागमेऽपि नियमादऽक्षोभादि धार्ष्ट्यं; एकादशे व्रते पौषधोपवासे रात्रौ कायोत्सर्गकरणे मर्कोटकः पादे लग्नो जनैरुत्सार्यमाणोऽपि कोपान्न मुंचति ॥ ७० ॥ तन्मृतिशंकया स्वपादत्वचा सह तस्य दूरीकरणं; पारणके सर्वपौषधग्राहिभोजनं; अतिथिसंविभागव्रते दुःखिसाधर्मिकश्रावकलोकानां ७२ लक्षद्रव्यकरमोचनं ॥ ७१ ॥

हमेशां एकासणुं करवा, पर्वने दिवसे मैथुन, विगय तथा सचित्तनो तेने त्याग हतो; आठमा व्रतमां तेणे साते व्यसनोने देशमांथी कहाडी समुद्रमां फेंक्यां ॥ ६८ ॥ नवमा व्रतमां बने वखत सामायिक करवुं, तथा ते करते छते श्री हेमचंद्राचार्य विना बीजाओ साथे बोलवानो तेने त्याग हतो, हमेशां बार प्रकाश (योग शास्त्रना) तथा वीस वीतरागस्तवनो पाठ करवा ॥ ६९ ॥ दशमा व्रतमां चोमासामां रणसंग्राम न करवो; गीजनीनो सुलतान आवते छते पण नियमथी चलायमान नहोता थया; अगीयारमा व्रतमां पौषध उपवास करते छते रात्रिए काउसग्ग ध्याने रह्या हता; ते वखते पगे मंकोडो चोट्यो, माणसो तेने उखेडवा लाग्या, परंतु कोपथी ते चोटीज रह्यो ॥ ७० ॥ ते वखते ते मंकोडो मरी जवानी शंकाथी पोताना पगनी चामडी सहित तेने दूर कर्यो; पारणाने दिवसे सघळा पोसातीओने भोजन करावता; अतिथि संविभाग व्रतमां दुःखी एवा साधर्मी श्रावकोनो बहोंतेर लाख द्रव्यनो कर मूकी दीधो ॥ ७१ ॥

श्रीहेमसूरिधर्मशालमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखकधार्मिकस्य पंचशततुरंगमद्वादशग्रामाधिपतित्वप्रदानं, सर्वमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखकानां ५०० ग्रामदानादि च ॥ ९२ ॥ एवमनेकविधास्तस्य विवेकिशिरोमणेरन्येऽपि पुण्यमार्गाः कियंतोऽत्र लेखितुं शक्यंते; इत्येवं तस्य स्वयं सम्यग्धर्मानुष्ठानेन स्वात्मन उपकारो जवद्यावशेषसंसारकरणादिरूपः ॥ ९३ ॥ साधर्मिकादीनां यथार्हदानमानधर्मसान्निध्यकरणकरमोचनसीदत्समुद्धरणादिनिरष्टादशदेशेष्वमारिप्रवर्त्तनादिभिश्च परोपकारोऽपि स्फुट एव ॥ ९४ ॥ इत्यंतर्बहिश्च सारत्वमिति साधुश्रीपृथ्वीधरसाहजगसिंहसाहमुहणसिंहादयोऽपि दृष्टांता योजनीया यथार्हमत्र, इत्युक्ता श्राद्धानाश्रित्य चतुर्भंगी ॥९५॥

श्री हेमचंद्रसूरिना धर्मशालानी मुहपत्ति पडिलेहनार धार्मिकने पांचसो घोडा, तथा बार गामनुं अधिपतिपणुं आप्युं; तथा सघळी मुहपत्ति पडिलेहनाराने पांचसो गामोनुं दान आप्युं; ॥ ९२ ॥ एवी रीते विवेकीओमां शिरोमणि सरखा एवा ते कुमारपाळ राजाना बीजा पण अनेक प्रकारना पुण्यमार्गो हता. तेमांथी अहीं केटलाक लखी शकाय? एवी रीते उत्तम धर्म क्रियाथी तेणे फक्त पोताना बाकी बे भवो रहेवा आदिक रूप पोतानो उपकार कर्यो ॥ ९३ ॥ तेमज साधर्मीओने योग्य दान, मान, धर्मनी सहायता, करोनुं छोडवुं, तथा दुःखीओना उद्धार आदिकथी, तथा अढार देशोमां अमारीना प्रवर्त्तन आदिकथी तेनो परोपकार पण प्रगटज देखाय छे ॥ ९४ ॥ एवी रीते तेनुं अंदरथी तथा बहारथी पण सारपणुं जाणवुं; एवी रीते साधु श्री पृथ्वीधर जगसिंहशाह, तथा मुहणसिंहशाह आदिकनां दृष्टांतो पण अहीं यथायोग्य रीते जोडी लेवां, एवी रीते श्रावकोने आश्रीने चोभंगी कही ॥ ९५ ॥

अथ सामान्यतो जीवानाश्रित्याप्येवमेव चतुर्भंगी वाच्या, नवरं श्राद्धा इति स्थाने केचिज्जीवा इति वाच्यं, दृष्टांताश्च यथार्हं साधुश्राद्धादयः सर्वेऽपि तत्रावतारणीया इति ॥ ७६ ॥ मत्वेति गुर्वादिगता इमा श्चतु—र्भंगीःसदांगीकृतशुद्धदर्शनाः ॥ तथा यतध्वं भववैरिणो जय—श्रियं वृणीध्वं भविनोऽचिराद्यया ॥ ७७ ॥

॥ इतिश्रीतपागच्छेश्रीमुनिसुंदरसूरिविरचितेश्रीउपदेशरत्नाकरे रत्नदृष्टांतेनगुर्वादिस्वरूपव्यावर्णनरूपस्तरंगःसप्तदशः ॥

हवे सामान्यथी जीवोने आश्रीने पण एवीज रीते चोभंगी जाणवी; परंतु विशेष के, श्रावकोने ठेकाणे केटलाक जीवो एम कहेवुं; वळी अहीं साधु श्रावक आदिकनां सघळां दृष्टांतो पण यथायोग्य रीते उतारवां ॥ ७६ ॥ एवी रीते गुरु आदिक संबंधि आ चोभंगी जाणीने, हमेशां अंगीकार करेल छे. शुद्ध दर्शन जेओए एवा हे भविकलोको! तमो एवी रीते यत्न करो? के जेथी संसाररूपी शत्रुनो जय करवानी लक्ष्मीने तमो तुरत वरो ॥ ७७ ॥

॥ एवी रीते श्रीतपागच्छमां श्रीमुनिसुंदर सूरिए रचेला श्री उपदेशरत्नाकरमां रत्नना दृष्टांत करीने गुरु आदिकनां स्वरूपने वर्णन करवारूप सत्तरमो तरंग समाप्त थयो. ॥

इति सप्तदशस्तरंगः समाप्तः

अथ अष्टादशस्तरंगः

पुनः प्रकारांतरेण श्रीगुर्वादिस्वरूपं प्ररूपयति—॥ सूत्रं ॥—वयणकिरिआ हि सारा—ऽसारा जहा हुंति चउविहकवाला ॥ तह गुरु सीसा सावय । वाया-विणयाइकम्मेहिं ॥ १ ॥

वळी प्रकारांतरथी श्री गुरु आदिकोनुं स्वरूप कहे छे—॥ मूळनो अर्थः ॥—जेम वचन अने क्रियावडे करीने सारवाळी तथा सार विनानी एम चार प्रकारनी खोपरीओ होय छे, तेम गुरु, शिष्य अने श्रावको वचन तथा विनय आदिक क्रियाओथी चार प्रकारना होय छे ॥ १ ॥

यथा वचनक्रियाभ्यां साराण्यसाराणि चेति चतुर्विधानि कपाल्लानि, तथा गुरवः शिष्याः श्रावकाश्च वाचा विनयादिक्रियाभिश्च सारा असाराश्चेति चतुर्विधाः स्युरिति संटंकः ॥ २ ॥ तत्र कपालरीति करोटिका उच्यन्ते, तास्थ काश्चन साधिष्टायकाः स्युर्महापुरुषसंबंधिन्यः, तासु च काश्चन केनचिद्विधिवत्पूजिता वदन्ति पंचशतीं रत्नानि गृहाणेति ॥ ३ ॥ सद्यस्तान्यर्पयन्ति चेति वाचा क्रियया च द्विधापि सारा इति प्रथमः ॥ ४॥ काश्चिच्च तथैव वदंति, न त्वर्पयंति किंचिदपीति वाचा साराः, क्रियया त्वसारा इति द्वितीयः ॥ ५ ॥ अपराः पुनर्न ब्रुयुः किमपि. परं प्रागवत्पूजिताः पूरयंत्यर्थितानीति वागसाराः क्रियासाराश्चेति तृतीयः ॥ ६ ॥

जेम वचन अने क्रियाथी सारवाळी तथा सारविनानी एम चार प्रकारनी खोपरीयो होय छे, तेम गुरुओ, शिष्यो अने श्रावको वचनथी तथा विनय आदिक क्रियाओथी सारवाळा तथा सारविनाना एम चार प्रकारना होय छे, एवो संबंध छे ॥ २ ॥ त्यां कपाल एटले खोपरीओ कहेवाय छे; तेमांनी केटलीक महापुरुष संबंधि अधिष्ठायकवाळी होय छे; तेमांनी केटलीक विधिपूर्वक पूज्याथी कहे छे के, पांचसो रत्न ल्यो ? ॥ ३ ॥ तेमज तुरत तेओ आपे पण छे, माटे तेओ वचनथी अने क्रियाथी पण एम बन्ने रीते सारवाळी छे, एवी रीते पहेलो भांगो जाणवो ॥ ४ ॥ वळी केटलीक खोपरीओ तो तेम बोले छे, परंतु कंइ पण आपती नथी, माटे तेओ वचनथी सारवाळी छे, परंतु क्रियाथी सारविनानी छे; ए बीजो भांगो जाणवो ॥ ५ ॥ वळी केटलीक कंइ बोलती नथी, परंतु पूर्वनी पेठे पूजवाथी इच्छित पूरे छे, माटे तेओ वचनथी सारविनानी परंतु क्रियाथी सारवाळी छे, ए त्रीजो भांगो जाणवो ॥ ६ ॥

याः पुनः सामान्यपुरुषसंबंधिन्यो निरतिशयास्ता न वदंति न च वितरंति किंचिद-पीति द्विधाप्यसारा इति चतुर्थश्च विकल्पः ॥ ७ ॥ तथा गुर्वादीनप्याश्रित्य चतुर्भं-गी, तत्र गुरुणां वाक्सारत्वं सदुपदेशकौशलवत्तया, विनयः पंचमहाव्रतादिसम्यग-नुष्ठानरूपः, तदादिमत्तया क्रियासारत्वं च ज्ञाव्यं ॥ ८ ॥ ततश्च केचिद्गुरवो द्विधा-पि साराः, श्रीवज्रस्वामीप्रभृतिवत् ॥ ९ ॥ अपरे तु वाचा साराः, क्रियया त्वसारा-स्तादृगुपदेशकौशलभृत्पार्श्वस्थाद्याचार्यवत् ॥ १० ॥ अन्ये वाचा असाराः क्रियया पुनः साराः मूककेवल्यादिवत् प्रत्येकबुद्धादिवच्च देशनाऽनासेवकः प्रत्येकबुद्धा दिरित्यागमवचनात् ॥ ११ ॥

वळी जे खोपरीओ सामान्य पुरुषोनी तथा अतिशयो विनानी होय छे, तेओ बोलती पण नथी, तेम कंइ आपती पण नथी, माटे बन्ने रीते सारविनानी छे; एम चोथो विकल्प जाणवो ॥ ७ ॥ वळी एवी रीते गुरु आदिकोने आश्रीने पण नीचे मुजब चोभंगी थाय छे; तेमां गुरुजीनुं वचन संबंधि सारपणुं उत्तम उपदेशनी कुश-ळतायी होय छे, तथा विनय पंच महाव्रतोने सम्यक् प्रकारे पालन करवारूप होय छे; अने इत्यादिकपणायें करीने क्रिया संबंधि सारपणुं पण जाणी लेवुं ॥ ८ ॥ माटे केटलाक गुरुओ बन्ने रीते सारवाळा छे, (कोनी पेठे? तोके) श्रीवज्रस्वामी आदिकनी पेठे ॥ ९ ॥ वळी केटलाको वचनथी तो सारवाळा होय छे, परंतु क्रियाथी सारविनाना होय छे (कोनी पेठे? तोके) तेवा उपदेशनी कुशळतावाळा पासत्था आचार्य आदिकनी पेठे ॥१० ॥ वळी केटलाको वचनथी सारविनाना होय छे, परंतु क्रियाथी सारवाळा होय छे, (कोनी पेठे? तोके) मूक केवळी आदिकनी पेठे, तथा प्रत्येक बुद्ध आदिकनी पेठे; केमके आगममां कह्युं छे के प्रत्येक बुद्ध आदिक देशना नहीं सेवनारा छे ॥ ११ ॥

उभयथाप्यसाराश्च कांचित, उपदेशाऽकुशलपार्श्वस्थाद्याचार्यवदिति ॥ १२ ॥ अथ शिष्यानधिकृत्य आव्यते, तत्र विनयो गुरुगोचरबहुमानः, यथार्हप्रतिपत्त्यादिर्विनयाध्ययनाद्युक्तः ॥ १३ ॥ तथाहि—पडिणीअं च बुद्धाणं वाया अदुवकम्मुणा ॥ आवी-वा जइ वा रहसे । नेवकुज्जाकयाइवि ॥ १४ ॥ न पक्खओ न पुरओ । नेवकिच्चाण पिट्ठओ ॥ न जुंजे ऊरुणाऊरुं । सयणे नो पडिस्सुणे ॥ १५ ॥ नेव पल्हत्थिअं कुज्जा । पक्खपिंडिवसंजए ॥ पाएपसारिए वावि । न चिट्ठे गुरुणंतिए ॥ १६ ॥ इत्यादि, अपि च, अह अट्ठहिं ठाणेहिं । सिक्खसीलत्ती वुच्चइ ॥ अहस्सिरे सया दंते । न य मम्ममुदाहरे ॥ १७ ॥

वळी केटलाको तो उपदेश देवामां अकुशल एवा पासत्था आदिक आचार्यनी पेठे बन्ने प्रकारे सार-विनाना छे ॥ १२ ॥ हवे शिष्योने आश्रीने कहे छे; त्यां विनय एटले गुरु प्रत्ये बहुमान, यथायोग्य रीते तेमनी सेवाभक्ति आदिक, के जे संबंधि वर्णन (उत्तराध्ययनमां) विनय अध्ययन आदिकमां कर्युं छे ॥ १३ ॥ ते कहे छे—हे साधु! तुं ज्ञानीओ प्रत्ये प्रतिकूलपणुं नहीं आचरजे तेमज (तमो पण थोडुंज जाणो छो) इत्यादिक वच-ने करीने, तेमज गुरुना संथारा आदिकने कचरवारूप कर्मे करीने प्रगट रीते अथवा गुप्त रीते तुं कदापि पण गुरुनो अविनय नहीं करजे ॥ १४ ॥ वळी आचार्य आदिकोनी पडखे, आगाडी, तेम पछाडी बेसवुं नहीं; तेम-ज गुरुना साथळ साथे पोतानो साथळ अडाडीने बेसवुं नहीं; तथा बीछानापर सुतां थकां अथवा बेठा थकां-ज 'अमो आम करीये छीये' इत्यादिक न कहेवुं ॥ १५ ॥ वळी गुरु समक्ष पलांठी नहीं वाळवी, तेम बन्ने पड-खांने पिंडरूप नहीं करवां, तेम पग पण पसारवा नहीं तथा गुरुना निकटपर पण बेसवुं नहीं ॥ १६ ॥ वळी पण नीचे मुजब आठ स्थानको वडे करीने शिक्षाशील साधु कहीये; हास्य न करे, हमेशां इंद्रियाने दमे, परना मर्मो प्रगट न करे ॥ १७ ॥

नासीले न विसीले । न सिआ अइलोलुए ॥ अकोहणे सच्चरए । सिक्खासीलत्ति वुच्चइ ॥ १८ ॥ तथा, अह पनरसहिं ठाणेहिं । सुविणी इत्तिवुच्चइ ॥ नीआवत्ती अचवले । अमाई अकुऊहले ॥ १९ ॥ अप्पं चा हिक्खिवई । पबंधं च न कुव्वइ ॥ मित्तिज्जमाणो जयइ । सुअं लद्धु न मज्जइ ॥ २० ॥ न य पावपरिक्खेवी । नय मित्तेसु कुप्पई ॥ अप्पियस्सावि मित्तस्स । रहे कल्लाण भासइ ॥ २१ ॥ कलहडमरवज्जए ॥ बुद्धे अभिजायए ॥ हरिमं पडिसंलीणो । सुविणी इत्ति वुच्चइ ॥ २२ ॥ इत्यादि, एवंविधं विनयं वाचा प्रतिपद्यंते, पालयंति चेति द्विधापि साराः केचित् शिष्याः श्रीचंडरुद्राचार्यशिष्यवत् श्रीसिंहगिरिसूरिशिष्यवच्च, तदुक्तं—'सीहगिरिसुसीसाणं भद्दं०' ॥ २३ ॥

शील रहित न होय, अतिचारवाळा चारित्रवाळो न होय, अति रसलंपट न होय, क्रोध रहित होय, तथा सत्यमां रक्त होय; एवी रीतनो साधु शिक्षाशील कहेवाय ॥ १८ ॥ वळी, हवे नीचे मुजब पन्नर स्थानको वडे करीने सुविनीत साधु कहीयें, चपळताइ विनानी वृत्तिवाळो, मायायें करीने कार्यमां अस्थिरपणा विनानो, कपट विनानो, कुतूहल विनानो ॥ १९ ॥ कोइनो पण अधिक्षेप (तिरस्कार) न करे, कोइने क्रोधित न करे, मित्राइ करनारपर प्रत्युपकार करे, तथा ज्ञान पामीने मद न करे ॥ २० ॥ पोतानो अपराध बीजापर नाखे नहीं, मित्र प्रत्ये क्रोध करे नहीं, अप्रिय एवा पण मित्रनुं श्रेयज कहे ॥ २१ ॥ कजीआ तथा विग्रहने वर्जे, बुद्धिवान तथा कुलीनपणुं धारण करे, लज्जाळुपणुं धारण करे, कार्य विना आमी अवळी चेष्टा न करे, एवी रीतना गुणवाळो शिष्य सुविनीत कहेवाय ॥ २२ ॥ एवी रीतना विनयने वचनथी तेओ स्वीकारे छे, तथा पाळे पण छे, तेओ केटलाक एवी रीते सारवाळा शिष्यो छे; (कोनी पेठे ? तोके) श्रीचंडरुद्र आचार्यना तथा श्री सिंहगिरिसूरिना शिष्यनी पेठे; कह्युं छे के—'सिंहगिरिना शिष्य प्रत्ये भद्र' ॥ २३ ॥

अपरे विनयं वाचा प्रतिपद्यंते न च समाचरंति, ततो वाचा साराः, क्रियया त्वसारा इति युगप्रधानश्रीकालकसूरिशिष्यवत् युगप्रधानोपघातिकुशिष्यवच्च । तथाहि— ॥ २४ ॥ कश्चिद्गुरुर्युगप्रधान उद्यतविहार्यपि क्षीणजंघाबल एकत्र स्थाने तस्थौ। तत्र श्राद्धैराधारोऽयमित्यहं स्निग्धमधुराद्याहारादि तस्मै सदाददे ॥ २५ ॥ तच्छिष्यास्तु गुरुकर्मत्वात्कदापि दध्युः कियच्चिरमयमजंगमः पाल्य इति ततस्तेनाऽनशनं जिग्राहयिषवो जनकश्राद्धदत्ताद्याहारं तस्मै न ददुः ॥ २६ ॥ अंतप्रांताद्यानीय विषण्ण इव तत्पुरे ऊचुः, किं कुर्मो यदीदृशानामपि योऽर्हाद्याविवेकाः श्राद्धाः सदपि दातुमशक्ता ॥ २७ ॥

वळी केटलाक शिष्यो वचनथी तो विनयने स्वीकारे छे, परंतु ते मुजब आचरण करता नथी; माटे तेओ वचनथी तो सारवाळा छे, परंतु क्रियाथी सारविनाना छे; कोनी पेठे? तोके, युगप्रधान श्रीकालकसूरिना शिष्यनी पेठे, तथा युगप्रधाननो उपघात करनारा कुशिष्योनी पेठे। ते कहे छे—॥ २४ ॥ कोइक युगप्रधान गुरु उग्रविहारी हता, छतां पण पगोनुं बळ क्षीण थवाथी एक स्थाने रहेता हता; त्यां 'आ तीर्थना आधारभूत छे' एम विचारि श्रावको तेमना माटे योग्य घृतादिक सहित मिष्टान्न आदिक हमेशां देता हता ॥ २५ ॥ एक दिवसे तेमना शिष्यो भारे कर्मी होवाथी एवो विचार करवा लाग्या के, आ स्थिर वास करी रहेला अपंग गुरुने ते आपणे केटलोक वखत पाळवा? एम विचारि गुरुने अनशन कराववानी इच्छावाळा एवा ते शिष्यो जन किंवा श्रावकोए दीधेलो योग्य आहार तेमने आपता नहीं ॥ २६ ॥ जेवो तेवो स्वाद विनानो आहार लावीने तेओ गुरुने कहेवा लाग्या के, अमो शुं करीये? अविवेकी श्रावको आप सरीखाने पण योग्य आहार आदिक होवा छतां आपी शकता नथी ॥ २७ ॥

श्राद्धांश्चोचुर्देहं मुमुक्षवः स्निग्धाहारमार्या नेच्छंति, संलेखनामेव चिकीर्षवः ॥२८॥ तत् श्रुत्वा सकोपाः श्राद्धा गुरुमेत्य सगद्गदं जगुः, भगवन् विश्वार्केष्वर्हत्सु चिरातीतेष्वपि प्रत्ययस्तु भवत्सु शासनं भाति, तत्किमकाले संलेखनारब्धा ॥ २९ ॥ न वयमेषां निर्वेदायेति चिन्त्यम्, यतः शिरःस्था अपि यूयं न भाराय नः शिष्याणां च कदापि ॥ ३० ॥ ततस्तैरिंगितैर्ज्ञातं, यथाऽस्मत्शिष्यकृतमेतत् तत् किमदोऽप्रीतिदायुषा, न धर्मिणा कस्याऽप्यप्रीतिरुत्पाद्येति ध्यात्वा मुकुलितमेतद्गुरु ऊचुः ॥ ३१ ॥ कियच्चिरमभंगमैरस्माभिर्वैयावृत्त्यं कार्याः साधवो यूयं च, तदुत्तमार्थमेव स्वीकुर्म इति तानसौ संस्थाप्य भक्तं प्रत्याख्यादिति ॥ ३२ ॥

पछी तेओ श्रावकोने एम कहेवा लाग्या के, शरीरने छोडवानी इच्छावाळा गुरु महाराज हवे स्निग्ध आहारने इच्छता नथी, तेओनी इच्छा संलेखना करवानी हवे छे ॥ २८ ॥ ते सांभळी गुस्से थयेला श्रावको गुरु पासे आवी गद्गद् कंठे कहेवा लाग्या के, हे भगवन्! जगत्मां सूर्य समान एवा श्रीअरिहंत प्रभुओ घणो काळ थयां जोके अतीत थया छे, तो पण आप साहेब बिराजते छते शासन शोभे छे, माटे अनवसरे आप साहेबे संलेखना शामाटे करवा धारी छे? ॥ २९ ॥ वळी आप साहेबे एम पण नहीं विचारवुं, के अमाराथी श्रावकोने हवे कंटाळो उपजे छे; केमके अमारां मस्तकपर रहेला एवा पण आप साहेब अमोने के शिष्योने कंइ कदापि पण भाररूप थइ पडता नथी ॥ ३० ॥ ते सांभळी आचार्यजी महाराजे ते इंगितोथी जाण्युं के, आ कार्य आपणा शिष्योनुं छे, माटे हवे अप्रीति उपजावे एवां मारा जीवितनुं मारे शुं प्रयोजन छे? धर्मी मनुष्ये कोइने पण अप्रीति न उपजाववी जोइये, एम विचारि गुरु महाराजे ते श्रावकोने कंपेल वचनज नीचे मुजब कह्युं ॥ ३१ ॥ हवे अपंग एवा अमो तमारी पासे तथा साधुओ पासे केटलोक वखत वैयावच्च करावीये? माटे हव उत्तमार्थज अमो साधीशुं, एम कही तेओने स्थीर करी तेमणे आहारनां पच्चखाण कर्यां ॥ ३२ ॥

केचिच्च वाचा विनयं न प्रतिपद्यंते, परं यथार्हं समाचरंति ततो न वाचा साराः, क्रियया पुनः साराः, दृष्टांतः स्वयमभ्युह्यः ॥ ३३ ॥ अन्ये पुनरुभयथाप्यसाराः, कूलवालकादिश्रमणवत्, श्रीउत्तराध्ययनप्रसिद्धश्रीगर्गाचार्यकुशिष्यवच्च ॥ ३४ ॥ यद्वा विनयं वाचा परेभ्य उपदिशन्ति इति वाचा साराः, स्वयमपि समाचरंतीति क्रियासाराश्चेति ॥ ३५ ॥ एवं शेषभंगत्रयेऽपि वाच्यं । अथ श्राद्धानाश्रित्य भाष्यते, तत्र श्राद्धानां विनयः सम्यक्त्वमूलपंचाणुव्रतत्रिगुणव्रतचतुःशिक्षाव्रतादिरूपः, श्रीदेवगुरुसाधर्मिकादियथोचितप्रतिपत्तिरूपश्च ॥ ३६ ॥

वळी केटलाक शिष्यो वचनथी विनयने स्वीकारता नथी, परंतु यथायोग्य रीते विनय आचरे छे, माटे तेओ वचनथी सारवाळा नथी, परंतु क्रियाथी सारवाळा छे, तेनुं दृष्टांत पोतानी मेळेज जाणी लेवुं ॥ ३३ ॥ वळी बीजा केटलाक शिष्यो तो बन्ने रीते सारविनाना छे; कूलवालक आदि साधुनी पेठे तथा श्री उत्तराध्ययनमां प्रसिद्ध एवा श्रीगर्गाचार्यना कुशिष्यनी पेठे ॥ ३४ ॥ अथवा वचन वडे करीने परप्रते विनय उपदेशे छे, माटे वचनथी सारवाळा छे, तेम पोते पण आचरे छे, माटे क्रियावडे करीने पण सारवाळा छे ॥ ३५ ॥ एवी रीते बाकीना त्रणे भांगाओमां पण कहेवुं; हवे श्रावकोने आश्रीने कहे छे; त्यां श्रावकोनो विनय एटले समकीत मूळ पांच अणुव्रत, त्रण गुणव्रत, तथा चार शिक्षाव्रत आदिक रूप, तेमज श्रीदेवगुरु तथा साधर्मिक आदिकोनी यथोचित सेवारूप जाणवो ॥ ३६ ॥

ततश्च केचित् श्राद्धा यथोक्तं विनयं परेभ्य उपदिशंति, आदिशब्दाद्यथार्हं यथावसरं तद्विषयस्मारणादि च परेभ्यः कुर्वंति श्रीगुरुमुखश्रुतानुसारेणेति वाचा साराः ॥ ३७ ॥ स्वयं च सम्यक् समाचरंतीति क्रियासाराश्च, श्रीवीरजिनसेवकपुष्कलीश्राद्धादिवत्, आधुनिकपत्तनीय"मं"हेमादिवच्च ; ॥ ३८ ॥ वाचोपदिशंति न तु स्वयं समाचरंति केचित्, गणिकागृहस्थनंदिषेणवत्; नोपदिशंति तथाविधोपदेशाशक्त्यभावात् स्वयंतु समाचरंत्यपरे, दृष्टांताः सुज्ञाः ॥ ३९ ॥ उभयथाप्यसाराश्चान्ये श्रावकनामधारिणो विषयादिव्यासंगव्यामूढा दुर्गतिपतयालवो ब्रह्मदत्तचक्रितापसश्रेष्ठ्यादिवदिति ज्ञापितास्तित्वोऽपि चतुर्भंग्यः ॥ ४० ॥

हवे तेथी केटलाक श्रावको उपर वर्णवेलो विनय परमते उपदेशे छे; आदि शब्दथी यथा योग्य, योग्य अवसरे ते संबंधि याददास्ती आपवा आदिक रुप परमते श्रीगुरु मुखथी जेम सांभळ्युं होय ते मुजब करे छे. माटे तेओने वचनथी सारवाळा जाणवा ॥ ३७ ॥ तेमज पोते पण सम्यक् प्रकारे ते आचरे छे, माटे तेओने क्रियाथी पण सारवाळा जाणवा; (कोनी पेठे? तोके) श्रीवीरप्रभुना सेवक पुष्कली श्रावक आदिकनी पेठे, तथा हमणां (ग्रंथकारना समयमां) पाटण निवासी मेहेता हेमा आदिकनी पेठे ॥ ३८ ॥ वळी केटलाक श्रावको वचनथी तो उपदेशे छे, परंतु पोते समाचरता नथी, गणिकाने घेर रहेला नंदिषेणनी पेठे; केटलाक तेवा प्रकारनो उपदेश देवाने अशक्त होवाथी उपदेशता नथी, परंतु पोते आचरे छे; ते संबंधि दृष्टांतो सुज्ञ छे ॥ ३९ ॥ हवे केटलाक फक्त नामधारी श्रावको बन्ने रीते सारविनाना होय छे, केमके तेओ विषय आदिकना संगमां मूढ थयेला होय छे, अने तेथी दुर्गतिमां पडवानी इच्छावाळा देखाय छे. अने तेवा ब्रह्मदत्त चक्री तापस श्रेष्ठी आदिकनी पेठे जाणवा; एवी रीते चार चोभंगीओ कही ॥ ४० ॥

तत्रोभयथा साराः केवलक्रियासाराश्चेति द्वयेऽपि योग्याः, शेषास्त्वयोग्याः ॥४१॥ इति योग्याऽयोग्यत्वं । विज्ञाय विबुधाः करोटिदृष्टांतात् ॥ यत्नं योग्यगुणाप्तौ । विमोहविजयश्रिये विधत्त ॥ ४२ ॥

॥ इति तपागच्छे श्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे कपालदृष्टांतेन गुर्वादिस्वरूपनिरूपी अष्टादशस्तरंगः समाप्तः ॥ श्रीरस्तु ॥

हवे तेमां बन्ने रीते सारवाळा, तेमज क्रियावडे करीने केवळ सारवाळा ए बन्ने योग्य छे, अने बाकीनाओ अयोग्य छे ॥ ४१ ॥ एवी रीते खोपरीना दृष्टांतथी योग्य अयोग्यनो विचार करीने हे पंडितो! मोहने जीतवानी लक्ष्मी माटे योग्य गुणनी प्राप्तिमां तमो यत्न करो ? ॥ ४२ ॥

॥ एवी रीते तपागच्छमां श्रीमुनिसुंदरसूरिए रचेला श्रीउपदेशरत्नाकर ग्रंथमां कपालना दृष्टांते करीने गुरु आदिकना स्वरूपने निरूपण करनारो अढारमो तरंग समाप्त थयो ॥ श्रीरस्तु ॥

इति अष्टादशस्तंरगः समाप्तः

अथ नवदशस्तरंगः

पुनर्दृष्टांतांतरैर्गुर्वादिगतं योग्याऽयोग्यस्वरूपमाह—॥ मूलम्—सप्पा मोसग ठग व-णि—वंझगवी नरूय धेणु सहिबंधू ॥ पिय माय कप्पतरुणो । गुरु सायत्त विनय-दिट्ठंता ॥ १ ॥

वळी पण बीजां दृष्टांतोवडे करीने गुरु आदिक संबंधि योग्य अयोग्यनुं स्वरूप कहे छे—मूळनो अर्थः—सर्प, चोर, ठग, वणिक्, वंध्या गाय, नर, गाय, मित्र, बंधु, पिता, माता तथा कल्पवृक्ष, एटलां दृष्टांतो गुरु तथा श्रावकना संबंधमां जाणवां ॥ १ ॥

पदघटना सुगमैव, भावना चेयं, तथाहि सप्पत्ति, यथा सर्पाः स्वभावादपि क्रूरकर्माणः क्रोधनैकप्रकृतयो भीषणाकृतयश्च स्युः, स्फारैः फूत्कारैर्भापयंति च बालादीन्, स्वल्पेऽप्यपराधे लब्धावकाशास्तज्जीवितान्यप्यपहरंति च, तदुक्तं—॥ २ ॥ सर्पाणां च खलानां च । चौराणां च विशेषतः ॥ अभिप्राया न सिध्यंति । तेनेदं वर्त्तते जगत्, ॥ ३ ॥ इति, तथा केचन लौकिका लोकोत्तराश्च कुगुरवो रागद्वेषादिविषविषमाः केवलमैहिकार्थसमर्थनपराः ॥ ४ ॥ सर्वथापि जीवदयादिमूलधर्ममर्मपराङ्मुखा बहुविधमंत्रतंत्रयोगप्रयोगमोहनोच्चाटनवशीकरणहोमशातनपातनादिकर्मनिर्माणशीलतया क्रूरकर्माणः ॥ ५ ॥

आ गाथानी पद रचना सुगम ज छे; ते कहे छे; सप्प एटले जेम सर्पो स्वभावथीज क्रूर कार्यो करनारा, क्रोध युक्त स्वभाववाळा तथा भयंकर आकृतिवाळा होय छे; तेमज तेओ मोटा फुंफाडाओथी बालक आदिकोने बीवरावे छे, वळी स्वल्प अपराध होते छते पण तेओना जीवितने पण हरे छे; कह्युं छे के—॥ २ ॥ सर्पोना, लुच्चाओना तथा चोरोना अभिप्रायो विशेषे करीने सिद्ध थता नथी, अने तेथीज आ जगत् नभी शके छे ॥ ३ ॥ इति, एवी रीते केटलाक लौकिक तथा लोकोत्तर कुगुरुओ राग द्वेष आदिक झेरथी विषम थयेला, तथा केवळ आ लोक संबंधि स्वार्थ साधवामांज तत्पर थयेला ॥ ४ ॥ तथा सर्वथा प्रकारे जीव दया आदिक मूळवाळा धर्मना मर्मथी पराङ्मुख थया थका, घणा प्रकारना मंत्र तंत्रना योग तथा प्रयोग, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण होम, शातन, तथा पातन आदिक कार्यो करवामां तत्पर थयेला होवाथी तेओ क्रूर कर्मोवाळा होय छे ॥ ५ ॥

सुविहितगुर्वादिगोचराऽतुच्छमत्सरप्रसरवशप्रोन्मिषद्रोषभरभीषणाः शुद्धधर्ममार्गप्रवृत्तान् स्वावर्जनप्रमत्तान् वा मारयंति ॥ ६ ॥ बालिशजनांस्तादृक्क्रूरस्वजयाऽनेकविधायिवाग्डिंडिमाडंबरैः स्वल्पेऽप्यपराधपदे च स्वमनोऽननुकूलाचरणादिरूपे शापादिभिः कार्मणादिभिर्वा सद्योऽप्यपहरंति तज्जीवितान्यपि निस्त्रिंशहृदयाः ॥ ७ ॥ एवंविधा लौकिका बहवोऽपि महर्षयः प्रसिद्धाः, परिव्राजकश्चात्र निदर्श्यते, तथाहि —॥ ८ ॥ क्वचित्सन्निवेशे रोहीतकनामा परिव्राजकस्तप्यते स्म तपः, सोऽन्यदा क्वचिदुपलब्धतेजोलेश्यालब्ध्युपायः सम्यगनुष्ठिततद्विधिर्लब्धवांस्तेजोलेश्यां ॥ ९ ॥

तेमज वळी उत्तम आचारवाळा गुरु आदिकपर घणोज मत्सर धारवाथी उछळता एवा रोषना समूहथी भयंकर थयेला होय छे; तथा शुद्ध धर्म मार्गमां प्रवर्त्तनाराओने अथवा पोताने शिखामण आपनाराओने तथा भोळा लोकोने तेओ मरावे छे ॥ ६ ॥ तेमज क्रूर हृदयवाळा थया थका तेवी रीतना क्षुद्र प्राणीओने जयनो उच्चार करनारा वचनोरूपी डिंडिमना आडंबरोवडे करीने पोताना मनने अनुकूल न पडे तेवां आचरण आदिकरूप स्वल्प अपराध होते छते पण शाप आदिकोथी अथवा कामण आदिकोवडे करीने तुरत तेओनां जीवित आदिकोने पण हरी ले छे ॥ ७ ॥ एवी रीतना घणा लौकिक महर्षिओ प्रसिद्ध छे; अहीं तेवा एक परिव्राजकनुं दृष्टांत देखाडे छे; ते नीचे मुजब छे ॥ ८ ॥ कोइक सन्निवेशमां रोहीतक नामे परिव्राजक तप तपतो हतो, तेणे एक वखते क्यांक तेजोलेश्यानी लब्धिनो उपाय मळी जवाथी तेनी विधि सारी रीते आचरीने तेणे तेजोलेश्या मेळवी ॥ ९ ॥

अन्यदा तरुतलस्थस्य तस्य शिरसि तरुशिरःस्थबलाकया पुरीषव्युत्सर्जनं कृतं, ततो रुष्टेन तेन तेजोलेश्यया सा जस्मसाच्चक्रे ॥ १० ॥ अन्यदा स भिक्षायै पुरमविशत्, प्राप्तो जिनदासश्रेष्ठिगृहं, तत्र श्रीमदार्हतधर्मजावितहृदया नाम्नाऽर्थतोऽपि च शीलवती गृहस्वामिनी पतिशुश्रूषाव्यग्रा ॥ ११ ॥ कियद्विलंबेन भिक्षां दातुमुद्यता यावत्तावन्महाक्रोधनप्रकृतिर्विलंबदानरुष्टः स परिव्राट् बलाकागतिगोचरीकर्त्तुं तेजोलेश्यां मुमुक्षुर्धूममुज्जगार मुखात् ॥ १२ ॥ तत्स्वरूपं च दृष्ट्वा सम्यक्श्रीजिनधर्मनिर्मलशीलगुणाऽवाप्तऽवधिज्ञानज्ञातबलाकादाहव्यतिकरा सर्वांगदृढशीलकवचा स्माह सा तं प्रति, जद्र नाहं सा बलाकास्मीति ॥ १३ ॥

एक वखते ते एक वृक्ष नीचे बेठो हतो, एटलामां ते वृक्षनी टोचपर बेठेली एक बगलीए तेना मस्तकपर वीट करी, तेथी क्रोधायमान थइ तेणे तेणीने तेजोलेश्याथी बाळी नांखी ॥१०॥ पछी एक समये ते भिक्षा माटे नगरमां गयो, तथा त्यां जिनदास शेठने घेर पहोंच्यो; त्यां श्रीमज्जैन धर्मथी जावित छे हृदय जेणीनुं, तथा नामथी अने अर्थथी पण शीलवती शेठाणी पोताना स्वामिनी सेवामां गुंथायेली हती; ॥ ११ ॥ अने तेथी जरा विलंबथी जेटलामां ते भिक्षा देवाने तैयार थइ, तेटलामां महा क्रोधिष्ट प्रकृतिवाळो ते परिव्राजक विलंबदानथी रोषयुक्त थइने तेणीने बगलीनी हालते पहोंचाडवाने तेजोलेश्या मूकवानी इच्छाथी मुखमांथी धुंवाडा कहाडवा लाग्यो; ॥ १२ ॥ ते स्वरूप जोइने सम्यक् एवा श्रीजिनधर्म तथा निर्मल एवा शीलगुणथी प्राप्त थयेला अवधिज्ञानथी जाणेल छे बगलीना दाहसंबंधि वृत्तांत जेणीए, तथा सर्व अंगे दृढ शीलरूपी कवचवाळी एवी ते शीलवती तेने कहेवा लागी के, हे जद्र! हुं कंइ ते बगली नथी ॥ १३ ॥

तद्वचनचकितश्च स मनागुपशान्त इवाऽप्राक्षीत्तां, कथं वेत्सि बलाकाव्यतिकरं? साऽजाणीत्, एतत्ते वाणारसीवासी कुलालः कथयिष्यति ॥ १४ ॥ ततो विस्मितः स वाणारस्यां गतः, मिलितमात्रस्तेन कुलालेन प्रथममेव ज्ञापितश्च भद्र शीलवत्या प्रेषितोऽसि संशयप्रश्नार्थं ॥ १५ ॥ तत् श्रुत्वा भृशं चमत्कृतः सः, ततः पुनरुक्तं कुलालेन, शीलगुणेन शीलवत्या अवधिज्ञानमुत्पन्नं, ममापि च, तेन यथास्थितं बलाकादिस्वरूपं जानीमः ॥ १६ ॥ ततः प्रतिबुद्धः स सम्यक्त्वशीलसुभगं धर्मं प्रत्यपद्यतेति; एवं लोकोत्तरानाश्रित्यापि निदर्शनानि स्वयं ज्ञेयानि ॥ १७ ॥

ते वचनथी आश्चर्य पामीने ते परिव्राजक जरा जाणे उपशांत थयो होय नहीं, तेम तेणीने पूछवा लाग्यो के, तें ते बगलीनुं वृत्तांत शी रीते जाण्युं? त्यारे तेणीए कह्युं के, ते हकीकत तने वाणारसी नगरीनो वासी कुंभार कहेशे ॥ १४ ॥ ते सांभळी आश्चर्य पामीने ते वाणारसीमां गयो; त्यां मळतांज ते कुंभारे पहेलेथीज तेने कह्युं के, हे भद्र! तने शीलवतीए संशय पूछवा माटे मोकल्यो छे नी? ॥ १५ ॥ ते सांभळीने अत्यंत आश्चर्य पाम्यो; त्यारे कुंभारे फरीने तेने कह्युं के, शीलगुणे करीने शीलवतीने अवधिज्ञान उत्पन्न थयुं छे, तेम मने पण उत्पन्न थयुं छे; अने तेथी ते बगलीनुं यथास्थित वृत्तांत अमो बन्ने जाणीये छीये ॥ १६ ॥ ते सांभळी ते परिव्राजके प्रतिबोध पामी सम्यक्त्व तथा शीलथी मनोहर धर्म स्वीकार्यो; एवी रीते लोकोत्तर गुरुओने आश्रीने पण दृष्टांतो पोतानी मेळेज जाणी लेवां ॥ १७ ॥

यद्वाऽपहरंति शुद्धधर्मजीवितानि जनानां स्वार्थसिद्ध्यनुसारिस्वेच्छाप्ररूपितधर्माभासोपदेशदर्शनक्रियादिभिः, इति सर्पसदृशाः केचन गुरवः ॥ १८ ॥ उक्तंच—सप्पो इक्कं मरणं । कुगुरु अणंताणि कुणइ मरणाइं ॥ तोवरि सप्पं गहिउं । मा कुगुरुसेवणं भद्द ॥ १९ ॥ इत्युक्ता सर्पदृष्टांतभावना। अथ आमोसगत्ति, आमोषकाश्चौरविशेषास्ते हि शस्त्रादिभिर्भापयित्वा लोकानां धनानि मुष्णंति ॥ २० ॥ एवं केचित् कुलगुरुत्वाद्यभिमानभृतः केवलैहिकार्थप्रतिबद्धाः शापकार्मणपंक्तिवहिःकरणशिरोजठरस्फोटादिभियो विविधाः प्रदर्श्य शुद्धधर्मधनान्यामुष्णंति मुग्धजनानां, वसुराजस्येव पर्वतकः, तथाहि—॥ २१ ॥

अथवा स्वार्थनी सिद्धिने अनुसारे पोतानी इच्छा मुजब प्ररूपेला एवा धर्माभासरूप उपदेशना देखाडवापणा तथा क्रिया आदिकवडे करीने लोकोना शुद्ध धर्मरूप जीविनने तेओ हरी ले छे, माटे एवा केटलाक गुरुओ सर्प सरखा होय छे ॥ १८ ॥ कह्युं छे के—सर्प तो एक वखत मरण करे छे, परंतु कुगुरु अनंतां मरणो करे छे; माटे सर्पने ग्रहण करवो सारो. परंतु कुगुरुने सेववा सारा नहीं ॥ १९ ॥ एवी रीते सर्पना दृष्टांतनी भावना कही. हवे आमोसग एटले चोर विशेषो, तेओ शस्त्र आदिकोथी डरावीने लोकोनां धन हरी ले छे; ॥ २० ॥ एवी रीते केटलाक कुलना गुरुपणा आदिकना अभिमानथी भरेलाओ तथा केवल आ लोक संबंधि स्वार्थमां मचेला थइने शाप, कामण, ज्ञातिबहार करवापणुं, तथा मस्तक पेट फोडवा आदिकना विविध प्रकारना भयो देखाडीने भोला लोकोना शुद्ध धर्मरूपी धनोने तेओ हरी ले छे; (कोनी पेठे ? तोके) वसु राजा प्रत्ये जेम पर्वत. ते कहे छे—॥ २१ ॥

शुक्तिमतीपुर्यां क्षीरकदंबोपाध्यायपुत्रः पर्वतकः पितर्युपरते तत्पदवीमारूढश्छात्रान् जापयति ॥ २२ ॥ तस्य सहाध्यायिनौ वसुर्नाम राजा नारदश्च, तत्र वसुनृपः सत्यवादी गगनतलावलंबिस्फाटिकपीठस्थं सिंहासनमध्यास्ते ॥ २३ ॥ सत्यवादिमहिम्ना नृपस्य सिंहासनं गगनस्थायीति जने प्रसिद्धिः ॥ २४ ॥ अन्यदोपाध्यायपुत्रश्छात्रानध्यापयन्नजैर्यष्टव्यमित्यत्राजैश्छागैरिति व्याख्यानयंस्तदा तत्रागतेन नारदेन मैवं वादीरुपाध्यायेनाऽजशब्देन त्रिवार्षिका व्रीहयः प्रोक्ताः, इति प्रतिषिद्धः ॥ २५ ॥

शुक्तिमती नामनी नगरीमां क्षीरकदंबक नामना उपाध्यायनो पुत्र पर्वत, (पोतानो) पिता मृत्यु पामते छते तेनी पदवीपर बेसीने शिष्योने भणाववा लाग्यो ॥ २२ ॥ वसु नामे राजा तथा नारद तेना सहाध्यायिओ एटले साथे भणनाराओ हता; तेमांथी वसुराजा सत्यवादी होवाथी आकाशतलमां अधर रहेली स्फटिकनी पाटपर रहेला सिंहासनपर बेसतो हतो ॥ २३ ॥ सत्यवादीना माहात्म्यथी राजानुं सिंहासन आकाशमां स्थिर रहेनारुं छे, एम लोकोमां ख्याति थइ हती ॥ २४ ॥ एक दहाडो उपाध्यायनो पुत्र (पर्वत) शिष्योने भणावतो थको 'अजोवडे करीने होम करवो' ए पाठनो 'अज' एटले 'बकराओ' एवो अर्थ करवा लाग्यो; ते वखते त्यां आवेला नारदे तेने प्रतिषेध कर्यो के, तुं तेनो एवो अर्थ नहीं कर? उपाध्यायजीए तो 'अज' शब्दनो अर्थ त्रण वर्षोनी (जुनी) शाळ (चोखा) कह्यो छे ॥ २५ ॥

मिथो विवदमानौ च तौ शिरःपणं चक्रतुर्वसुनृपं च साक्षिणं, ततः पर्वतो वसुनृपं स्वपक्षं प्रतिपादयितुं पूर्वं गत्वा विविधोपरोधभीतिदर्शनादिभंगिभिः पर्यवासयत् ॥ २६ ॥ ताभिरप्यप्रतिपद्यमानं तं मत्वा स्वमातुरग्रे तत्स्वरूपं न्यरूपयत्, तदनु सा तज्जननी वसुनृपं स्माह, देहि मे गुरुपत्न्याः पुत्रजीवितं, यद्वा प्रतीच्छाधुनैवेमां गुरुपत्नीहत्यां ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा यावत्सा मरणोद्यताऽभूत् तावद् भीतस्तद्वचः प्रत्यपद्यत नृपः ॥ २८ ॥ ततो विवदमानौ प्राप्तौ तत्र नारदपर्वतौ, तत्र पर्वतकपक्षं कुर्वन्नृपः सद्यो देवतया चपेटाहतो भूमौ नरके चापतदिति ॥ २९ ॥ एवमपरेऽपि दृष्टांता ज्ञेयाः, इत्यामोपकभावना ॥ ३० ॥

एवी रीते परस्पर विवाद करता एवा तेओ बन्नेए मस्तक आपवानी शरत करी, तथा ते माटे वसुराजाने साक्षी कर्यो; तेथी पर्वत वसुराजाने पोतानो पक्ष अंगीकार कराववा माटे प्रथमथीज तेनी पासे जइ, विविध प्रकारना आग्रह तथा भय देखाडवा आदिकथी समजाववा लाग्यो ॥ २६ ॥ परंतु तेथी पण तेने नहीं स्वीकार करतो जाणीने, तेणे पोतानी माता पासे ते वृत्तांत कर्युं ; त्यारे तेनी माता वसुराजा पासे जइ कहेवा लागी के, मने गुरुपत्नीने पुत्रनुं जीवित दे? अथवा तो अत्यारेज गुरुपत्नीनी हत्या स्वीकार ? ॥ २७ ॥ एम कहीने जेटलामां ते मरण पामवाने (आपघात करवाने) तैयार थइ, तेटलामां राजाए डरीने तेणीनुं वचन स्वीकार्युं ॥ २८ ॥ पछीथी नारद अने पर्वत बन्ने विवाद करता थका त्यां आव्या ; त्यां पर्वतनो पक्ष करता एवा राजाने तुरत देवताए थपाट मारी पृथ्वीपर तथा नरकमां पाड्यो ॥ २९ ॥ एवी रीते बीजां पण दृष्टांतो जाणी लेवां ; एवी रीते आमोपक संबंधि भावना जाणवी ॥ ३० ॥

बगत्ति, बका नाम धूर्त्ताः, मधुपिधानविषकुंभसमानाः, केदारमार्जारादिसदृशाः, यथा ते कपटकोटिपटुतया मुग्धजनानां धनान्यपहरंति जीवितान्यपि च ॥ ३१ ॥ तथा केचिद्गुर्वाभासा हृदि नास्तिकाः, बहिः क्रियादंभमधुरवचनादिभिर्जनान् विप्रलभ्य स्वेष्टसिद्ध्यनुसारेण धर्माभासदेशनादिभिः सुविहितसाधुसंगनिवारणादिभिश्च तेषां शुद्धधर्मधनानि शुद्धधर्मजीवितानि चाऽपहरंति ॥ ३२ ॥ तदुक्तं—पीयूषधारामिव दांभिकाः प्राक् । प्रसंजनीयां गिरमुद्गिरंति ॥ पुनर्विपाकेऽखिलदोषधात्री । सैवातिशेते बत कालकूटं ॥ ३३ ॥ अपि च,—जटामौंड्यशिखाभस्मवल्कनाग्न्यादिधारणैः ॥ मुग्धं जनं गर्धयंते । पाखंडा हृदि नास्तिकाः ॥ ३४ ॥

बगो एटले धूर्तो, तेओ मधथी ढंकेला झेरना घडा सरखा, केदारनी माळावाळा बीलाडा आदिकनी पेठे होय छे; तेओ जेम कपटनी रीतिनी चतुराइथी भोळा लोकोनां धनो तथा जीवितोने पण हरे छे ॥ ३१ ॥ तेम केटलाक गुर्वाभासो हृदयमां तो नास्तिक होय छे, परंतु बहारथी क्रियाना दंभ तथा मधुर वचन आदिकथी लोकोने ठगीने पोतानी इच्छित सिद्धिने अनुसारे धर्मना आभास सरखी देशना आदिकोथी तथा उत्तम साधुना संगनुं निवारण करवा आदिकथी तेओना शुद्ध धर्मरूप धनोने तथा शुद्ध धर्मरूप जीवितोने हरी ले छे ॥ ३२ ॥ कह्युं छे के—कपटीओ प्रथम तो अमृत धारा सरखी ठगाइवाळी वाणी बोले छे, परंतु विपाक वखते (अंते) समस्त दोषोने उत्पन्न करती थकी ते कालकूट झेर करतां पण अधिक थाय छे. ए खेदनी वात छे ॥ ३३ ॥ वळी पण, हृदयमां नास्तिक एवा पाखंडीओ जटा, मुंडपणुं, शिखा, भस्म, तथा नग्नपणुं आदिकने धारवावडे करीने मुग्ध लोकने ठगे छे ॥ ३४ ॥

केदारमार्जारसंबंधः पुनरयं, तद्यथा—क्वचिद्वृक्षाधस्तित्तिरिर्वसति, अन्यदा तस्मिन् प्राणयात्रायै पक्वशालिक्षेत्रेषु प्राप्ते शशकस्तदावासमरुधत् ॥ ३५ ॥ कियद्भिर्दिनैः स्वाश्रयं प्राप्तः शशकं प्रत्याह, शीघ्रं निर्गच्छ, ममायमाश्रमः, शशोऽवक् ममैवायमिति ॥ ३६ ॥ तित्तिरिः—पृच्छयतां प्रातिवेश्मिकाः, उक्तंच—वापीकूपतडागानां । गृहस्योपवनस्य च ॥ सामंतप्रत्यया सिद्धि—रित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ३७ ॥ शशः—मूर्ख किं न श्रुतं स्मृतिवचः? प्रत्यक्षं यस्य यद्भुक्तं । क्षेत्राद्यं दशवत्सरान् ॥ प्रमाणं नाक्षराण्यत्र । साक्षी वा तस्य तद्भवेत् ॥ ३८ ॥

केदारनी माळावाळा बिलाडानुं दृष्टांत तो नीचे मुजब छे—कोइक वृक्षनी नीचे एक तेतरपक्षी रहेतुं हतुं; एक वखते ते चरवा माटे पाकेलां चावलनां क्षेत्रोमां गयुं, ते वखते एक ससलो आवीने तेनुं स्थान दबाव्युं ॥ ३५ ॥ केटलेक दिवसे ते तितिर पोताने स्थानके आवीने ससलाने कहेवा लाग्युं के, तुं अहींथी जलदी चाल्यो जा? आ मारुं स्थान छे; त्यारे ससले कह्युं के, आ स्थान तो मारुंज छे ॥ ३६ ॥ तितिरे कह्युं के, ते माटे तुं पाडोशीओने पूछी जो? कह्युं छे के—वाव, कुवा, तळाव, घर, तथा बगीचानी मालिकीनी व्यवस्था पाडोशीद्वारा थाय छे, एम मनुरुषि कहे छे ॥ ३७ ॥ त्यारे ससले कह्युं के—अरे! मूर्ख! तें शुं स्मृतिनुं वचन सांभळ्युं नथी? क्षेत्र आदिक प्रत्यक्ष रीते जेणे दश वर्षो सुधि भोगव्युं छे, ते तेनुंज कहेवाय छे; तेमां दस्तावेज के साक्षीनी कंइ जरूर रहेती नथी ॥ ३८ ॥

तथा च नारदमतं—मनुष्याणां प्रमाणं स्याद्भुक्तिर्वै दशवार्षिकी ॥ विहंगानां तिरश्चां च । यावदेव समाश्रयः ॥ ३९ ॥ ततो यद्यपि तवाश्रयस्तथापि शून्यो मयाश्रित इति ममैवायं; तित्तिरिः—स्मृतिं चेत्प्रमाणयसि तत्स्मार्तान् पृच्छामस्ते यस्मै ददति तस्यायमिति ॥ ४० ॥ ततो गंगापुलिने केदारकंकणाभरणस्तपोनियमव्रतस्थो दृष्टो दधिकर्णो नाम मार्जारः; धर्मात्मायं विवादं छिनत्त्वित्युक्ते, शशः—अलमनेन क्षुद्रेण,—न हि विश्वसनीयं स्यात्तपस्व्यपि स्थितेऽधमे ॥ दृश्यंते चैव तीर्थेषु । गलबद्धास्तपस्विनः ॥४१॥ तत् श्रुत्वा दंभनिधिस्तद्विश्वासनाया-दित्याभिमुखो द्विपादावस्थित ऊर्ध्वबाहुर्निमीलितनयनो धर्मदेशनामकरोत्सः ॥ ४२ ॥

वळी नारदनो मत पण नीचे मुजब छे— मनुष्योना संबंधमां दश वर्षनो जोगवटो प्रमाणभूत छे; अने पक्षी तथा तिर्यंचोनी मालिकी ज्यांसुधि तेओ रहेतां होय त्यांसुधिनी छे ॥ ३९ ॥ माटे जोके आ तारुं स्थान छे, परंतु ते शून्य पडेलुं होवाथी, तेमां हुं रह्यो, माटे ते हवे मारुंज छे; ते सांभळी तितिरे कह्युं के, आ बाबतमां जो तुं स्मृतिने प्रमाणभूत गणे छे, तो चालो आपणे ते स्मृति जाणनाराओने पुछीये, तेओ जेने आपे, तेनुं आ स्थान ॥ ४० ॥ पछी तेओए गंगाना किनारापर केदारना कंकणना आभूषणवाळो, तपनियम तथा व्रतमां स्थिर थयेलो दधिकर्ण नामनो बिलाडो जोयो; आ धर्मात्मा विवाद कापशे, एम कहेते छते ससलो कहेवा लाग्यो के अरे! आ नीचथी तो सर्युं, केमके कपटी तथा अधमनो तप विश्वास करवा लायक नथी, केमके एवा गळुं कापनारा घणा तपस्वीओ तीर्थोमां देखाय छे ॥ ४१ ॥ ते सांभळी कपटना भंडार सरखो ते बिलाडो तेओने विश्वास उपजाववा माटे सूर्य सन्मुख बे पगे उभीने, तथा बन्ने हाथो उंचा करीने अने आंखो मीचीने नीचे मुजब धर्मोपदेश करवा लाग्यो ॥ ४२ ॥

अहो—असारोऽयं संसारः, स्वप्नसदृशाः प्रियसंगमाः, तद्धर्मादन्या गतिर्नास्ति ॥४३॥ उक्तंच—यस्य धर्मविहीनस्य । दिनान्यायांति यांति च ॥ स लोहकारभस्त्रेव । श्वसन्नपि न जीवति ॥ ४४ ॥ इत्यादिदेशनां श्रुत्वा विश्वस्तौ तावाहतुः, नपस्विन् धर्मदेशक आवयोर्विवादं धर्मशास्त्रेण जंक्त्वा निर्णयं देहि ॥ ४५ ॥ यो मिथ्यावादी स ते नक्ष्य इतिः मार्जारः—आः शांतं पापं शांतं पापं, निर्विण्णोऽहं नरककारणाद्धिंसायाः ॥ ४६ ॥ अहिंसापूर्वको धर्मो यस्मात् सर्वहिते रतः ॥ यूकामत्कुणदंशादी—स्तस्मात्तानपि रक्षयेत् ॥ ४७ ॥ हिंसकान्यपि भूतानि । यो हिनस्ति सुनिर्घृणः ॥ स याति नरकं घोरं । किं पुनर्यः शुभानि च ॥ ४८ ॥

अहो! आ संसार तो असार छे; प्रेमिओना संगमो स्वप्न सरखा छे, माटे धर्म शिवाय बीजो (संसारथी तरवानो) उपाय नथी ॥ ४३ ॥ कह्युं छे के—धर्म रहित एवा जे माणसना दिवसो आवे छे, अने जाय छे, ते लुहारनी धमणनी पेठे श्वास लेतो थको पण जीवतो नथी (अर्थात् मृत्यु पामेला सरखो छे) ॥ ४४ ॥ इत्यादि देशना सांभळीने विश्वास पामेला एवा तेओ बन्ने (तितिर अने ससलो) तेने कहेवा लाग्या के, हे तपस्वी धर्मोपदेशक! अमारो विवाद धर्मशास्त्र पूर्वक जाणीने तुं तेनो निर्णय करी आप ॥ ४५ ॥ जे मिथ्यावादी थाय, तेने तारे भक्षण करवो; ते सांभळी बिलाडो बोल्यो के, अरे! पाप शांत थयुं! शांत थयुं! (राम! राम! राम!) नरकना कारणरूप हिंसाथी हुं तो कंटाळी गयो छुं!! ॥ ४६ ॥ अहिंसारूप धर्म सर्वोत्कृष्ट छे, केमके ते धर्म सर्वने हितकारी छे; अने तेटला माटे जू, मांकड, तथा डांस आदिकोनुं रक्षण करवुं ॥ ४७ ॥ हिंसक प्राणीओने पण जे कोइ निर्दय थइने मारे छे, ते घोर नरकमां जाय छे, त्यारे उत्तम प्राणीओने मारनाराओनी तो वातज शुं करवी? ॥ ४८ ॥

तन्नेदं वाच्यं, परं वृद्धोऽहं दूरान्न युवयोर्भाषोत्तरं शृणोमि, तत्कथं न्यायं कुर्वे, तत्समीपे भूत्वा निवेद्यतां ॥ ४९ ॥ यथा विज्ञातपरमार्थं वदतो मे परलोकबाधा न स्यात्; उक्तं च—मानाद्वा यदि वा क्रोधा—ल्लोभाद्वा यदि वा भयात् ॥ यो न्यायमन्यथा ब्रूते स याति नरकं नरः ॥ ५० इत्याद्युक्त्वा तथा विश्वासितौ यथांतिकमागतौ, तावेकः पादेन द्वितीयो दंष्ट्रयाक्रम्य हताविति: इति वकदृष्टांतभावना ॥ ५१ ॥ वणिक्ति, वणिजो यथा मूल्येनैव जनानां क्रयाणकाद्यर्पयंति, नान्यथा; आवर्जयंति च ग्राहकान्मायामधुरवचनादिभिर्यथा ते नाऽन्यत्रापणादौ व्रजंति, सुखेन च वंचयितुं शक्याः स्युः ॥ ५२ ॥

माटे ते हिसाबनी तो वातज करवी नहीं; परंतु हुं वृद्ध छुं, माटे दूरथी तमारुं बोलवुं हुं सांभळी शकतो नथी, माटे न्याय केवी रीते करी शकुं? माटे मारी पासे आवीने तमारे जे कंइ कहेवुं होय, ते कहो? ॥ ४९ ॥ के जेथी परमार्थ जाणीने तमोने उत्तर देवाथी मने परलोक संबंधि बाधा न थाय; कह्युं छे के—मानथी अथवा क्रोधथी अथवा लोभथी अथवा भयथी जे अन्याय कहे छे, ते मनुष्य नरके जाय छे. ॥५०॥ इत्यादिक कहीने तेओने तेणे एवो तो विश्वास उपजाव्यो, के जेथी तेओ बन्ने नजीक आव्या, के तुरत एकने पगथी तथा बीजाने दाढथी दाबीने तेणे मारी नांख्या; एवी रीते बगना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ५१ ॥ हवे वणिको जेम मूल्य लेइनेज लोकोने करियाणा आदिक आपे छे, परंतु मूल्य लीधा विना आपता नथी; तेमज कपट युक्त मीठां वचनो वडे करीने ग्राहकोने तेओ एवा तो खुशी करे छे के, जेथी तेओ बीजानी दुकान आदिकमां जता नथी; अने तेम करी सुखेथी तेओने ठगी शके छे. ॥ ५२ ॥

तदुक्तं—नृपैः कूटप्रयोगेण । वणिग्भिः कूटचेष्टितैः ॥ विप्रैः कूटक्रियाकांडै—र्मुग्धोऽयं वंच्यते जनः ॥ ५३ ॥ एवं केचित् कुगुरवो मूल्येनैव सम्यक्त्वालोचनादि ददते, प्रतिष्ठादि वा कुर्वते ॥ ५४ ॥ चिकित्सादि कृत्वा विद्याप्रागल्भ्यं तच्चमत्कारादिविधिमंत्रयंत्रार्पणकार्मणवशीकरणादिलाभालाभादिनिमित्तशकुनमुहूर्तादि च प्रकाश्य दानादि गृह्णांति ॥ ५५ ॥ विविधावर्जनादिभिर्वशीकुर्वंति च धर्मार्थिनोऽपि जनांस्तथा, यथा नान्यान् सुविहितगुरूनप्याश्रयंति, प्रत्युत हसंति तांस्तदनुसारिणश्च ॥ ५६ ॥

कह्युं छे के राजाओ खोटा लोकोने खोटा आळ आदिक प्रयोगोथी वणिको खोटी चेष्टाओथी तथा ब्राह्मणो कूडा क्रियाकांडोथी ठगे छे ॥ ५३ ॥ एवी रीते केटलाक कुगुरुओ किमत लइनेज समकीत, आलोयण आदिक दीये छे, अथवा प्रतिष्ठा आदिक करे छे ॥ ५४ ॥ तेमज वैद्यक (औषध) आदिक करीने तथा विद्यानी बडाइ, ते संबंधि चमत्कार आदिक विधि, मंत्रयंत्र आदिकनुं आपवुं, कामण, वशीकरण आदिक लाभ अलाभ आदिक निमित्त, शकुन, तथा मुहूर्त आदिक प्रकाशीने तेओ दान आदिक ग्रहण करे छे ॥ ५५ ॥ वळी नाना प्रकारथी खुशी करवा आदिक वडे करीने धर्मार्थि लोकोने पण एवा तो तेओ वश करे छे के, जेथी तेओ बीजा उत्तम गुरुओने पण सेवता नथी; परंतु उलटी तेवा उत्तम गुरुओनी तथा तेओना सेवकोनी हांसी करे छे ॥ ५६ ॥

तथा चाह—कष्टं नष्टदृशां नृणां यद्दृशां जात्यंधवैदेशिकः । कांतारे प्रदिशत्यनीप्सितपुराध्वानं किलोत्कंधरः ॥ एतत् कष्टतरं तु सोऽपि सुदृशः सन्मार्गगांस्तद्विद—स्तद्वाक्याननुवर्त्तिनो हसति यत्सावज्ञमज्ञानिव ॥ ५७ ॥ दुष्षमायामेवंविधा बहवोऽपीति न दृष्टांतोपन्यासः, एते च निजाजीविकामात्रार्थं धर्मस्य श्रुतस्य च विक्रयकारिणः परलोकपराङ्मुखाः स्वयं संसारे मज्जंति ॥ ५८ ॥ स्वाश्रितान् सन्मार्गभ्रंशकुमार्गप्रवर्त्तनादिभिर्मज्जयंति च ; उक्तं च लौकिकैरपि,—मंत्रभेदी पृथक्पाकी । आदेशी वेदविक्रयी ॥ तरुण्या योषितस्त्यागी । पंचैते ब्रह्महाः स्मृताः ॥ ५९ ॥

वळी कह्युं छे के—दिशा चूकी गयेला एवा अंध मनुष्योने जन्मांध परदेशी उंची डोक करीने, तेओना इच्छित नगरनो मार्ग जे वनमां देखाडे छे, ते खेददायक बाबत छे; परंतु आ तो तेथी पण वधारे खेदकारक छे के, उत्तम दृष्टिवाळा तथा उत्तम मार्गे जनारा, तथा ते मार्गने जाणनारा, अने ते जात्यंधना वाक्यने नहीं अनुसरनारा एवा लोकोनी ते जे अवज्ञा सहित अज्ञानीओनी पेठे जाणीने हांसी करे छे ॥ ५७ ॥ आ दुःषमकालने विषे एवा घणाओ देखाय छे, माटे अहीं तेओनुं दृष्टांत कह्युं नथी; एवा कुगुरुओ मात्र पोतानी आजीविकाने अर्थे धर्म तथा ज्ञानने वेचे छे, तेमज परलोकथी पराङ्मुख थया थका पोते संसार सागरमां बूडे छे ॥ ५८ ॥ तेमज पोताना आश्रितोने पण उत्तम मार्गथी पाडीने तथा कुमार्गमां प्रवर्त्ताववा आदिक करीने बूडाडे छे; अन्य दर्शनीओए पण कह्युं छे के—मंत्रभेद करनार, जुदी रसोइ करनार, वेदने वेचनार, तथा युवान स्त्रीनो त्याग करनार ए पांचेने ब्रह्महत्या करनारा कह्या छे ॥ ५९ ॥

इति वणिग्दृष्टांतभावना वंकगतीत्ति, यथा वंध्या गौश्चारिं मार्गयति निरंतरं, न तु प्रसूते दुह्यते वा; एवं केचन कुलगुर्वाद्यभिमानमात्रप्रतिबद्धा नित्यं विशिष्टाहार-वस्त्रपूजादिकमर्थयंते ॥ ६० ॥ तदकरणे रुष्यंति, बलादपि गृह्णंति च, न पुनर्विशिष्टागमानुसारिपुण्यक्रियाद्याचारमुज्ज्वलतरं दुग्धोपमं प्रसुवते ॥ ६१ ॥ नापि तथाविधपुण्योपदेशादिना श्राद्धजनानुपकुर्वतेऽपि; तथा चोक्तं—यैर्जातो न च वर्धितो न च न च क्रीतोऽधमर्णो न च । प्राग् दृष्टो न च बांधवो न च न च प्रेयान्न च प्रीणितः ॥ तैरेवान्यधमाधमैः कृतमुनिव्याजैर्बलाद्वाह्यते । नस्योतपशुवज्जनोऽयमनिशं नीराजकं हा जगत् ॥ ६२ ॥

एवी रीते वणिकना दृष्टांतनी भावना जाणवी. हवे जेम वंध्या गाय चारो तो हमेशां मागे छे, परंतु ते व्याती नथी अथवा दुझती पण नथी; एवी रीते केटलाक कुलगुरु आदिकनुं मात्र अभिमान धारण करीने हमेशां उत्तम आहार, वस्त्र तथा पूजा आदिक मागे छे; ॥ ६० ॥ अने जो तेम करवामां न आवे तो तेओ रोष पामे छे, अने बलात्कारे पण ते ग्रहण करे छे; परंतु विशेष रीते आगमने अनुसरनारी पवित्र क्रिया आदिकना दूधना सरखा वधारे उज्ज्वल एवा आचारने उत्पन्न करी शकता नथी ॥ ६१ ॥ तेमज तेवी रीतना पवित्र उपदेश आदिके करीने श्रावक लोकोने उपकार पण करता नथी; कह्युं छे के—जेओए उत्पन्न कर्यो नथी, पोष्यो नथी, वेचाती लीधो नथी, कर्जे राखेलो नथी, पूर्वे दीठेलो नथी, संबंधि नथी, व्हालो नथी, खुशी करेलो नथी, एवा पण महा नीचमां नीच तथा करेल छे मुनिपणानो डोळ जेओए एवा कुगुरुओवडे करीने नाथेला पशुनी पेठे बलात्कारे आ लोक वहन कराय छे, माटे हाय! हाय! आ जगत नायक विनानुं छे ॥ ६२ ॥

जौतिकशिष्याश्चात्रोदाहरणं—गोदग्रामे सरको नाम जौतिकाचार्यः, तस्य भूयांसः शिष्याः, परं न ते किमपि पठंति, गणयंति, क्रियां वा कुर्वंते ॥ ६३ ॥ किं तु निद्रावार्तविकथादिपरास्तिष्ठंति, तथापि तत्रत्यो भृशं मूर्खो लोकस्तद्गुणरंजितोऽहमहमिकापूर्वं तेषां भोजनवस्त्रादिबह्वादरेण ददाति ॥ ६४ ॥ तेनानिशं यथेच्छाहारविहारादिना पुष्टवपुषो महिषप्रायास्तेऽभूवन् ; ततोऽन्यदा तद्ग्रामवासिना ग्राम्यकविना द्विजेन ग्राममध्ये बहुयाचनेऽपि ॥ ६५ ॥ किमप्यलभमानेन तान् दृष्ट्वा विस्मयापन्नेन साश्चर्यमुपश्लोकितास्ते. जरढकलवचट्टा लंबपुट्टा समुट्टा । न पठति न गुणंति नेव कव्वं कुणंते ॥ वयमपि च पढामो किं पि कव्वं कुणामो । तदपि छुह मरामो कम्मणां कोऽत्र दोषः ॥ ६६ ॥

अहीं जौतिक शिष्योनुं दृष्टांत कहे छे—गोद गाममां सरक नामे एक जौतिक आचार्य हतो ; तेने घणा शिष्यो हता : परंतु तेओ नहीं कंइ जाणता, गणता के क्रिया करता ; ॥ ६३ ॥ परंतु निद्रा, वार्ता तथा विकथाओमां तत्पर थइने रहेता ; तो पण त्यांना अत्यंत मूर्ख लोक तेना गुणोथी खुशी थइने हुं प्रथम आपुं, हुं प्रथम आपुं, एम मानीने तेओने भोजन तथा वस्त्र आदिक बहु मानथी आपता हता ॥६४॥ अने तेथी इच्छा मुजब आहार विहार आदिकथी पाडा जेवा मोटेला शरीरवाळा तेओ थइ गया ; पछी एक दहाडो ते गाममां वसनारा तथा गामडीया कवि, एवा एक ब्राह्मणे गाममां घणी याचना करी, परंतु ॥ ६५ ॥ कंइ पण नहीं मळवाथी ते जौतिक शिष्योने जोइने आश्चर्य पामी तेओपर एक कविता करी के, जरडा, उगारा तथा चट्टा एवा आ लोको नथी जाणता, नथी गणता, के नथी कविता करी जाणता, छतां पण हृष्टपुष्ट थइने फरे छे, अने अमो जाणीये छीये, तेम कंइक काव्य पण करी जाणीये छीये, छतां पण भूखे मरीये छीये, माटे तेमां कर्मोनो शो दोष छे? ॥ ६६ ॥

इति लोकानां पुरः कथयति, लोकेष्वाश्चर्यमिति ॥ ६७ ॥ एवं लोकोत्तरगुरुविषयोऽपि दृष्टांतः स्वयमभ्यूह्यः, एतेषु वस्त्राहारादिदानमपि सर्वं जस्मनि हुतायते वंध्यायां गवि सरसचर्यादिदानवत् ॥ ६८ ॥ एते च कुगुरवः स्वयं महाप्रमादपंकनिमग्नाः कथं स्वाश्रितान् जवान्निस्तारयंतु? किं तु तैर्जारिता अधिकतरं स्वं परांश्च नत्रैव निमज्जयंतीति : इति वंध्यगवीदृष्टांतजावना ॥ ६९ ॥ नटत्ति, यथा हि नटा वाचिकांगिकसात्त्विकादिनानाविधाभिनयविधिकुशलास्तैर्विजावादिजिः स्वस्मिन्नसंतमपि बहिः साक्षात् स्फुरंतमिव सर्वांगमालिंगतमिव चर्वणागोचरमिव च शृंगारादिरसं सद्योऽवतारयंति, रंजयंति च पर्षज्जनान्; हृतहृदयाश्च तेऽनर्गलहर्षदानादिजिः प्रीणयंति तानिति ॥ ७० ॥

एवी रीते लोकोनी पासे कहे छे, अने तेथी लोकोने आश्चर्य थाय छे ॥ ६७ ॥ एवी रीते लोकोत्तर गुरु संबंधि दृष्टांत पण पोतानी मेळेज जाणी लेवुं; एवाओने वस्त्र तथा आहार आदिकनुं जे दान देवुं, ते पण राखमां घी रेडवा बरोबर छे, तेमज वंध्या गायने रसयुक्त चारो आपवा बरोबर छे ॥ ६८ ॥ वळी ते कुगुरुओ पोते महाप्रमादरूपी कादवमां खुचेला छे, तो पछी पोताना आश्रितोने केवी रीते तेओ संसारथी तारी शके? परंतु तेथी उलटा वधारे जारवाळा थइने पोताने अने परने तेमांज खुचावे छे; एवी रीते वंध्या गायना दृष्टांतनी जावना जाणवी ॥ ६९ ॥ हवे नटो जेम वचन संबंधि, अंग संबंधि तथा सत्त्व संबंधि आदिक विविध प्रकारनी अजिनयनी विधिमां, कुशल होय छे, अने ते विजाव आदिकोथी पोतामां नहीं एवा पण शृंगार आदिक रसने बहारथी जाणे साक्षात् स्फुरायमान थतो होय नहीं, सर्व अंगोने जाणे आलिंगन करतो होय नहीं, तथा आवी आवीने जाणे तेनो कुचो करी नांख्यो होय नहीं, तेम तुरत ते रसने उतारे छे, अने सजा जनोने खुशी करे छे; अने तेथी खुश मनवाळा थयेला ते सजाजनो तेओने अत्यंत हर्ष, मान आदिक आपीने सामा खुशी करे छे ॥ ७० ॥

एवं गुरवोऽपि केचिद्धर्माद्बहिःप्लवमानमनसोऽपि सागारिकादिसमक्षं तत्तादृक्क्रियाकलापादिप्रकटनपरा विविधाक्षेपिण्यादिप्रकारधर्मकथाभिः ॥ ११ ॥ स्वस्मिन्नसंतमपि दर्शयंति पुरःस्फुरंतमिव संवेगवैराग्यादिरसं, रंजयंति च सभ्यजनान्; रंजिताश्च ते नानाविधाहारवस्त्रपुस्तकादिभिरुपचरंति तानिति ॥ १२ ॥ तदुक्तं—पढइ नडो वेरग्गं । निव्विज्जिज्जा बहुओ जणो जेण ॥ पढिऊण तं तह सढो । जालेण जलणं समोअरइ ॥ १३ ॥ अंगारमर्दकाचार्यश्चात्र निदर्शनं; तथा ये च नटवन्निजाजीविकार्थे श्राद्धादीन् दातॄन् स्तुत्वा तद्दानानि गृह्णंति ॥ १४ ॥

एवी रीते केटलाक गुरुओ पण धर्मथी जेओ बाह्य मनवाळा होय छे, तो पण गृहस्थी आदिकोनी समक्ष तेवी रीतनां क्रिया कलाप आदिकोने प्रगट करीने विविध प्रकारनी रमुजी धर्मकथा आदिकोथी ॥ ११ ॥ पोतामां नहीं छतां पण संवेग तथा वैराग्य आदिक रसने जाणे आगळथी प्रगटी निकळतो होय नहीं तेम देखाडे छे, तथा सभाजनोने खुशी खुशी करी दे छे; तथा एवी रीते खुश थयेला ते सभाजनो विविध प्रकारना आहार वस्त्र तथा पुस्तक आदिकोवडे करीने तेओनी भक्ति करे छे ॥ १२ ॥ कह्युं छे के—नट वैराग्य जणे छे, के जेथी घणा लोको संवेग पामे छे; तेवी रीते श्रावक पण (कुगुरुओ पासेथी) वैराग्य सांभळीने संवेग पामे छे; अने ते जळथी अग्नि ओलाववा सरखुं थाय छे ॥१३॥ अहीं अंगार मर्दक आचार्यने दृष्टांतरूपे जाणवा; वळी जेओ नटनी पेठे पोतानी आजीविका माटे, देनारा एवा श्रावक आदिकोनी स्तुति करीने तेमनी पासेथी दान ग्रहण करे छे ॥ १४ ॥

उक्तंच—गुरुणो भट्टा जाया । सड्ढे थुणिऊण लिंति दाणाइं ॥ दुन्निवि अमुणिअतत्ता । दूसमसमयंमि बुड्डंति ॥ ७५ ॥ तेष्वेतेष्वेवांतर्भवंतीति; एवमेते षड्भंगीसंगिनोऽपि गुर्वाभासाश्चरणकरणगुणबाह्याः, केवलं भवाभिनंदितया प्रमादोत्सूत्रप्ररूपकत्वादिभिः स्वयं नष्टाः शुद्धधर्मापहारेण परानपि नाशयंतीति सर्वथा दूरतरं परिहरणीयाः ॥ ७६ ॥ तदुक्तं—किमितोऽपि महापाप—मज्ञानात्पातुकः स्वयं ॥ पातयत्यंधकूपे यन् । मूढः सहचरानपि ॥ ७७ ॥ इति नटदृष्टांतभावना ॥ अथ धेणुत्ति, धेनुर्नवसूतिका गौः, सा हि यत्तृणादि उपजीवति दुग्धं घृतं च करोति परोपकारार्थमेव, प्रतिवर्षं प्रसूते च ॥ ७८ ॥

कह्युं छे के—गुरुओ भाट सरखा थया, के जेओ श्रावकोनी स्तुति करीने दान आदिक लीये छे; अने एवी रीते तेओ बन्ने तत्त्व जाण्या विना आ दुःषम काळमां बुडे छे ॥ ७५ ॥ एवा कुगुरुओनो पण आ भांगानी अंदर समावेश थाय छे; एवी रीते आ छए भांगावाळा गुरुओ चरण करणना गुणोथी रहित थया थका गुर्वाभास सरखा छे; तथा फक्त भवाभिनंदिपणाथी करीने प्रमाद अने उत्सूत्र प्ररूपणा आदिके करीने पोते नष्ट थया छे, तथा शुद्ध धर्मना अपहारे करीने अन्योने पण नष्ट करे छे, माटे तेओने तो सर्वथा प्रकारे दूरज छोडवा ॥ ७६ ॥ कह्युं छे के—शुं आथी पण कोइ वधारे मोटुं पाप छे? के अज्ञानथी ते मूढ पोते तो पडे छे, एटलुंज नहीं, पण पोताना सोबतीओने पण अंध कुवामां पाडे छे ॥ ७७ ॥ एवी रीते नटना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ हवे धेनु एटले नवी वीयायेली गाय, ते जे ते तृणादिक चरे छे, तथा दूध अने घी करे छे, तेमज दरवर्षे फक्त परोपकार माटेज वीयाय छे ॥ ७८ ॥

एवं केचन प्रासुकनीरसभक्तपानादिमात्रोपजीविनः सुविशुद्धप्रकृतयः शुद्धधर्ममार्गोपदेशैर्दुग्धघृताद्युपमैः सततमुपकुर्वंते परान् ॥ ७९ ॥ सम्यक्चरणकरणानुष्ठानादिवत्सलकाद्युपमं प्रसुवते च. श्रीप्रदेशिनृपप्रतिबोधकश्रीकेशिगणधरवत् योग्याश्चैते; यदुक्तं—महाव्रतधरा धीरा । भैक्ष्यमात्रोपजीविनः ॥ सामायिकस्था धर्मोप—देशका गुरवो मताः ॥ ८० ॥ यथा च धेनोर्दत्तं तृणाद्यपि दुग्धादितया परिणमति, एवमेतेषु दत्तं स्वल्पमप्यनंतफलाय च कल्पते ॥ ८१ ॥ श्रीऋषभजिनदेवप्रथमभवधनसार्थवाहसार्थविहृतश्रीधर्मघोषसूरिप्रभृतिवत्, इति धेनुदृष्टांतभावना ॥ ८२॥

एवी रीते केटलाक गुरुओ तजेलां तथा रसविनाना एवा मात्र जात पाणी आदिकथी आजीविका चलावीने शुद्ध प्रकृतिवाळा थया थका, दूध अने घी आदिक जेवा शुद्ध धर्ममार्गना उपदेशोवडे करीने परने उपकार करे छे; ॥ ७९ ॥ तथा वात्सल्य आदिक सरखी उत्तम चरणकरणनी क्रिया आदिक उत्पन्न करे छे; (कोनी पेठे ? तोके) श्रीप्रदेशी राजाना प्रतिबोधक श्रीकेशिगणधरनी पेठे; अने तेवा गुरुओ योग्य छे; कह्युं छे के— महाव्रतोने धारण करनारा, धैर्यवाळा, तथा फक्त भिक्षाथीज आजीविका चलावनारा, सामायिकमां रहेनारा एवा धर्मोपदेशक गुरुओ कह्या छे ॥ ८० ॥ वळी गायने दीधेलुं तृण आदिक जेम दूध आदिकरूपे परिणमे छे, तेम एवा उत्तम गुरुओने दीधेलुं अल्प दान पण अनंत फल करनारुं थाय छे ॥ ८१ ॥ (कोनी पेठे ? तोके) श्रीऋषभदेव प्रभुना प्रथम भववाळा धनसार्थवाहना साथमां विहार करनारा श्रीधर्मघोषसूरि आदिकनी पेठे; एवी रीते गायना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ८२ ॥

अथ सहृदिति, सखा मित्रं, स च यथा स्वहार्दसौहार्दवशंवदतयैव. न पुनर्धनादिलिप्सयाजीविकादिहेतोर्वा प्रवर्त्तयति साम्ना मित्रं हिते, निवर्त्तयति कुप्रवृत्तेः, निस्तारयत्यापद्गतं ॥ ८३ ॥ अवगूहति तदपराधान्, प्रकटयति तद्गुणादि च: तदुक्तं—पापान्निवारयति योजयते हिताय । गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ॥ आपद्गतं च न जहाति ददाति काले । सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति संतः ॥ ८४ ॥ परं यथाऽवसरं बहुमानदानाद्युपचारमपेक्षते, प्रायः अबहुमानितस्तु स्वल्पस्नेहो निःस्नेहोऽपि वा भवेत्: तथा चाहुः—॥ ८५ ॥

हवे सखि एटले मित्र, ते जेम पोताना मित्रने पोताना हृदयनी मित्राइने वश थइने ज, नहिं के धन आदिकनी इच्छाथी के आजीविका आदिक हेतुथी पण समपणाथी हितमां प्रवर्त्तावे छे. तथा कुमार्गथी अटकावे छे, दुःखथी बचावे छे ॥ ८३ ॥ तेना अपराधोने ढांके छे. तथा तेना गुण आदिकोने प्रगट करे छे; कह्युं छे के—पापथी निवारे छे. हितमां जोडे छे. तेनी गुप्त वातने ढांके छे. गुणोने प्रगट करे छे. दुःख समये छोडतो नथी, तथा अवसरे द्रव्यादिक आपे छे; एवी रीतनुं उत्तम मित्रनुं लक्षण विद्वानो कहे छे ॥ ८४ ॥ परंतु ते मित्र उचित अवसरे बहु मान तथा दान आदिक उपचारनी अपेक्षा राखे छे; अने ते वखते तेने जो बहु मान देवामां न आवे तो प्राये करीने ओछा स्नेहवालो अथवा स्नेहविनानो पण थइ जाय छे; कह्युं छे के—॥ ८५ ॥

अहंसणेण अइदं—सणेण दिहं अणाजवंतेण ॥ माणेण पवासेण य पंचविहं जिकए पिम्मं ॥ ८६ ॥ ततश्च तादृक्कार्यावसरादावुदास्तेऽपीति: एवं केचिद्गुरवः सर्वसत्त्वेषु परममैत्रीपवित्रचित्ततयैव, न तु धनादिलिप्सयाजीविकादिहेतोर्वा जलधर इव साधारणोपकारप्रवृत्तयः ॥ ८७ ॥ तादृगवसराद्युचितमनोज्ञिरुचितमधुरदेशनाभिरनुशासंति हितं, प्रकाशयंति विवेकं, निर्नाशयंति मोहतिमिरपटलं प्रबोधयंति प्रमादनिद्रामुद्रितविवेकलोचनं ॥ ८८ ॥ जव्यजनं, प्रकटयंति सम्यक्त्वादिगुणान्, रुंधंति दुर्गतिमार्गान्, निस्तारयंति चाऽपारसंसारपारावारप्रस्फुरद्विविधापत्परंपराज्यः ॥ ८९ ॥

नहीं मळवाथी, अतिशय मळवाथी, मळवा छतां नहीं बोलाववाथी, अभिमानथी तथा परदेश प्रवासथी, एम पांच प्रकारे स्नेह घटे छे ॥ ८६ ॥ माटे तेवां कार्य अवसर आदिकमां रीसाइ पण जाय छे; एवी रीते केटलाक गुरुओ धनादिकनी लालचथी नहीं, अथवा आजीविका माटे पण नहीं, परंतु सर्व प्राणीओपर परम मित्राइथी पवित्र थयेला चित्तपणाथें करीने वरसादनी पेठे साधारण उपकारनी प्रवृत्तिवाळा होय छे; ॥ ८७ ॥ तथा तेवा अवसर आदिकमां उचित तथा मनने रुचे एवा मधुर उपदेशोथी हित शिक्षा तेओ आपे छे, विवेकने प्रकाशे छे, मोहरूपी अंधकारनो समूह मटाडे छे, तथा प्रमादरूपी निद्राथी बीडायेलां विवेकरूपी लोचन ॥ ८८ ॥ जव्यजन प्रत्ये सम्यक्त्व आदिक गुणोने प्रगट करे छे, दुर्गतिना मार्गोने रोके छे; तथा अपार एवा संसाररूपी समुद्रमां उछळती एवी नाना प्रकारनी आपदाओनी श्रेणिओथी तारे पण छे ॥ ८९ ॥

परं तेऽपि यथोचितबहुमानादि यथावसरमपेक्षंते, अबहुमानिताः पुनरुदासतेऽपीति, यथा बप्पभट्टिसूरयः, तथाहि—॥ ९० ॥ गुर्जरदेशे पाटलाख्ये नगरे श्रीसिद्धसेनसूरिः, सोऽन्यदा श्रीवीरं नंतुं मोढेरे प्राप्तो निशि स्वप्नं ददर्श ॥ ९१ ॥ यथा तत्कालः केसरिकिशोरश्चंद्रशृंगमारूढ इति; प्रातस्तं स्वप्नं शिष्यान् श्रावयामास; तैर्विनयपूर्वं तत्फलं पृष्टः स्माह ॥ ९२ ॥ कोऽप्यन्यवादिदंतिमददलनो महामतिः शिष्योऽद्य समेष्यतीति; ततश्चैत्ये देवान् वंदमानानां तेषां पुरः षड्वार्षिको बाल एकः प्रापत् ॥ ९३ ॥ पृष्टः स्वं स्वरूपमुवाच, अहं पंचालदेशडुंबाउधीग्रामवास्तव्यबप्पाख्यजनकजट्टीनामजननीसुतः सुरपालाख्यः शत्रून् हंतुं सन्नह्यन्, विक्रमहेतुर्वयो नेति पित्रा निवारितः ॥ ९४ ॥

परंतु तेवा गुरुओ पण यथा अवसरे यथोचित बहु मान आदिकनी अपेक्षा राखे छे; अने ते समये जो तेओने बहु मान देवामां न आवे, तो तेओ रीसाइ पण जाय छे; जेम बप्पभट्टिसूरी; तेमनुं उदाहरण कहे छे ॥ ९० ॥ गुजरात देशमां पाटण नामना नगरमां श्रीसिद्धसेनसूरि हता; ते एक वखते श्रीवीरप्रभुने वांदवा माटे मोढेरा गाममां गया, त्यां रात्रिए तेमने स्वप्न आव्युं के ॥ ९१ ॥ केसरिनुं बच्चुं ठेक मारीने चंद्रना शिखर उपर चड्युं; पछी प्रभाते ते स्वप्न तेमणे शिष्योने संभळाव्युं, तेओए विनय पूर्वक पूछ्याथी तेनुं फळ तेमणे कह्युं के ॥ ९२ ॥ कोइक अन्य वादीओरूपी हाथीना मदने दळनारो महा बुद्धिमान् शिष्य आजे आवशे; पछी मंदिरमां देववंदन करतां थकां तेओनी पासे एक छ वर्षनो बालक आव्यो ॥ ९३ ॥ पूछवाथी ते पोतानुं वृत्तांत कहेवा लाग्यो के, पंचाल देशमां आवेला डुंबाउधी गामनो रहेवासी बप्प नामे मारो पिता तथा जट्टी नामे मारी माता छे; तेमनो हुं सुरपाल नामे पुत्र छुं; शत्रुओने हणवा माटे ज्यारे हुं तैयार थतो हतो, त्यारे मारा पिताये मने निवार्यो के, हमणा पराक्रम करवानी तारी उमर नथी ॥ ९४ ॥

पिता स्वयं शत्रुघ्न इति, मामपि च तान् घ्नंतं निवारयतीत्यनुशयादंबामप्यनापृ-
च्छ्यात्रागमं ॥ ९५ ॥ अस्याऽमानुष्यकं तेज इति ध्यात्वा गुरुणोचे, अस्म-
त्पार्श्वे तिष्ठ; मद्भाग्यैः फलितमित्युक्त्वा स तत्र स्थितः ॥ ९६ ॥ एकशः श्रु-
तमात्रेणाऽनुष्टुभां सहस्रं धारयतीति प्रज्ञां विज्ञाय तुष्टो गुरुः पितरौ प्रार्थ्य त-
मदीक्षयत ॥ ९७ ॥ पित्रोरभ्यर्थनया बप्पभट्टीति नाम चाऽकरोत्; श्रीविक्रमाद्-
वर्षाणां शताष्टके ससाधिके वैशाखशुक्लतृतीयायां गुरौ तस्य तपस्या बभूव ॥ ९८ ॥
अन्यदा श्रीगुरुस्तस्य सारस्वतमदात्, तस्य तं मंत्रं स्मरतो गंगाश्रोतसि अनाव-
रणा शिशिरे स्नाती सरस्वती तन्मंत्रजापमाहात्म्यात् तद्रूपैवोपतस्थे* दमायथौ ॥९९॥

हवे मारो पिता पोते तो शत्रुओने हणी शकतो नथी, अने तेओने हणता एवा मने पण ते अटकावे छे, माटे ते खेदथी मारी माने पण कह्या विना हुं अहीं आवी पहोंच्यो छुं ॥ ९५ ॥ आ बाळकनुं तेज मनुष्य संबंधि नथी, अर्थात् दैविक छे, एम विचारीने गुरुए तेने कह्युं के, तुं अमारी पासे रहे? अहो! मारां भाग्य फळ्यां! एम कहीने ते त्यां रह्यो ॥ ९६ ॥ एकवार फक्त सांभळवाथीज एक हजार अनुष्टुभ्श्लोकोने धारी राखवानी तेनी बुद्धि जोइने खुशी थयेला गुरु महाराजे तेना मावापनी रजा लेइ तेने दीक्षा आपी ॥ ९७ ॥ तथा तेना मावापनी प्रार्थनाथी तेनुं बप्पभट्टि नाम पाड्युं; श्रीविक्रम पछी आठसोने सात वर्षे वैशाख शुदि त्रीज अने गुरुवारे तेमनी तपस्या एटले तेनी दीक्षा थइ ॥ ९८ ॥ पछी एक वखते श्रीगुरु महाराजे तेमने सारस्वतमंत्र आप्यो; ते मंत्रनुं स्मरण करवाथी तेना माहात्म्यथी मध्य रात्रिए गंगा नदीमां वस्त्र रहित स्नान करती सरस्वती देवी, तेज हालतमां त्यां तेमनी पासे आवी ॥ ९९ ॥

---

* तस्य समीपमुपतस्थे।

ईषद् दृष्ट्वा च तां वक्त्रं । परावर्त्तयति स्म सः स्वरूपं विस्मरंतीव प्राह, वत्स कथं मुखं ॥ १०० ॥ व्यावर्त्तयो नवन्मंत्र-जापात् तुष्टाहमागता ॥ वरं वृणिष्वेति तत्प्रोक्तो । बप्पभट्टिरुवाच च ॥ १०१ ॥ मातर्विसदृशं रूपं । कथं वीक्षे तदृ-शं ॥ स्वं तत्त्वं पश्य निर्वस्त्र—मित्युक्ते स्वं ददर्श सा ॥ १०२ ॥ अहो निर्विक-मेतस्य ब्रह्मव्रतमिति विचिंत्य मंत्रमाहात्म्याद्विगलितवेद्यांतराऽत्रागताहमित्याह च. वरदानेऽपि निःस्पृहत्वात्त्वयि तुष्टा, तवेच्छयागमिष्यामीति वरं दत्वा तिरोऽधात् ॥ १०३ ॥ अन्यदा वर्षति मेघे देवकुलस्थस्य बप्पभट्टेः कोऽपि देवोपमः पुमान् सम-गंस्त. प्रशस्तिपट्टिकायां च काव्यान्यवाचयत् ॥ १०४ ॥

तेणीने जरा जोइने बप्पभट्टिजीए पोतानुं मुख फेरवी नाख्युं; ते वखते जाणे ते पोताना स्वरूपने भूली जती होय नहीं, तेम तेने कहेवा लागी के, हे वत्स! ॥ १०० ॥ तें मुख शामाटे फेरव्युं? तारा मंत्रना जापथी हुं तुष्टमान थइने आवी छुं, माटे तुं वर माग? एवी रीते तेणीए कहेवाथी बप्पभट्टिजी बोल्या के ॥ १०१ ॥ हे माताजी! हुं आपनुं आवुं विसदृश रूप केम जोउं छुं? आप पोतानुं नग्न रूप जुओ. एम तेणे कहे-वाथी ते सरस्वती देवी पोताने वस्त्र रहित जोवा लागी ॥ १०२ ॥ अहो! आनुं ब्रह्मचर्य व्रत दृढ छे, एम विचारि तेणीए कह्युं के, तमारा मंत्रना माहात्म्यथी बीजुं सघळुं भान भूली जइने हुं अहीं आवी छुं; तथा वरदानमां पण तमोने निस्पृही जाणीने हुं तमारापर तुष्टमान थइ छुं; हवे तमो ज्यारे इच्छा करशो त्यारे हुं हाजर थइश, एम वरदान आपीने ते अदृश्य थइ गइ ॥ १०३ ॥ एक वखते वरसाद वरसते छते बप्पभट्टिसूरि देवमंदिरमां हता, ते वखते कोइक देव सरखो पुरुष त्यां आव्यो, तथा त्यां रहेला शिलालेखमांथी प्रशस्तिना काव्यो वांचवा लाग्यो ॥ १०४ ॥

बप्पभट्टिना व्याख्यापयच्च, शांते वर्षे बप्पभट्टिना सहोपाश्रयं प्राप : गुरुभिः कस्य पु-
त्रोऽसीति पृष्टः प्रोचे ॥ १०५ ॥ सूर्यवंशीयश्रीचंद्रगुप्तनृपवंशालंकारस्य कन्यकुब्जदे-
शाधिपयशोवर्मनृपतेः सुतोऽहं, पित्रा शिक्षावशात् किंचिदुक्तः कोपादिहागमं
॥ १०६ ॥ अलेखीच्च खटिकया स्वं नाम आमेति; ततो गुरुणोक्तं, वत्स निश्चिन्तो
बप्पभट्टिसुहृदा समं शास्त्राणि गृहाण ॥ १०७ ॥ ततस्तत्र तिष्ठतस्तस्य बप्पभट्टिना
समं दृढा मैत्र्यभवत् ॥ १०८ ॥ अन्यदा बप्पभट्टिं प्रोचे सः, राज्यं चेल्लप्स्ये तदा
तुभ्यं दास्ये; कियता कालेन च तज्जनकेन पट्टाभिषेककृते प्रधानाः प्रहिताः
॥ १०९ ॥ बप्पभट्टिमापृच्छ्य तैः सह कन्यकुब्जं प्राप्तः, पित्रा राज्येऽभ्यषिच्यत॥ ११०॥

बप्पभट्टिजीए तेने बोलाव्यो; वरसाद बंध पड्ये छते बप्पभट्टिजीनी साथे ते उपाश्रये आव्यो, तथा तुं कोनो पुत्र छे? एम गुरु महाराजे पूछ्याथी ते कहेवा लाग्यो के ॥ १०५ ॥ सूर्यवंशी श्रीचंद्रगुप्त राजाना वंशमां आभूषण समान एवा कन्यकुब्ज देशना अधिपति यशोवर्म राजानो हुं पुत्र छुं; पिताए शिखामण द्वारा कंइंक कहेवाथी क्रोधथी हुं अहीं आवेलो छुं ॥ १०६ ॥ पछी तेणे पोतानुं 'आम' एवुं नाम खडीथी लख्युं; पछी गुरुए तेने कह्युं के, हे वत्स! तुं निश्चिंत थइने बप्पभट्टिमित्रनी साथे शास्त्रो ग्रहण कर ॥ १०७ ॥ पछी त्यां रहेतां बप्पभट्टि साथे तेने दृढ मित्राइ थइ ॥ १०८ ॥ एक दिवसे तेणे बप्पभट्टिजीने कह्युं के, जो मने राज्य मळशे, तो हुं तमोने ते आपीश. पछी केटलेक काळे तेना पिताए पट्टाभिषेक माटे प्रधानोने मोकल्या ॥ १०९ ॥ त्यारे बप्पभट्टिजीने पूछीने ते प्रधानो साथे ते कन्यकुब्ज गयो, तथा पिताए तेनो राज्याभिषेक कर्यो ॥ ११० ॥

लक्षद्वितयमश्वानां । चतुर्दशशतानि च ॥ रथानां हस्तिनां पत्ति—कोटी राज्येऽस्य जज्ञिरे ॥ १११ ॥ अन्यदा आमराजा स्वसुहृद्बप्पभट्टिमाकारयितुं स्वप्रधानान् प्रैषीत्; तेषामत्यादराद्गुरुस्तं प्रेषितवान् ॥ ११२ ॥ स च धर्मोन्नत्यै आमपुरं गतः, तदागमनहृष्टः स सर्वाडंबरेण संमुखमागत्य प्रवेशे गजारोहणप्रार्थनां चक्रे ॥ ११३ ॥ बप्पभट्टिः प्राह, शमिनां गजारोहणं विरुध्यते, राजाह पूर्वं मया वो राज्यदानं प्रतिपन्नं, राज्यस्याद्यं चिन्हं गजः ॥ ११४ ॥ बप्पभट्टिराह, सत्यं, एवं तव प्रतिज्ञा न पूर्यते, परं सर्वसंगमुचां नः प्रतिज्ञा हीयते ॥ ११५ ॥

तेना राज्यमां बे लाख घोडा, चौदसो रथ तथा हाथी, तथा एक क्रोड पाळा हता ॥ १११ ॥ एक दहाडो आम राजाए पोताना मित्र बप्पभट्टिने बोलाववा माटे पोताना प्रधानोने मोकल्या, तथा तेओना अत्यंत आदरथी गुरुए पण बप्पभट्टिजीने मोकल्या ॥ ११२ ॥ बप्पभट्टिजी पण धर्मनी उन्नति माटे आम राजाना नगर प्रत्ये गया; तेमना आववाथी खुशी थयेलो आम राजा सर्व आडंबरथी सामो आवीने प्रवेश माटे हाथीपर चडवानी गुरुने प्रार्थना करवा लाग्यो ॥ ११३ ॥ त्यारे बप्पभट्टिजीए कह्युं के, मुनि माटे हाथीपर चडवुं विरोधवाळुं छे; त्यारे राजाए कह्युं के, पूर्वे में आपने राज्य आपवानुं कबूल्युं छे, अने राज्यनुं पहेलुं चिह्न हाथी छे; ॥ ११४ ॥ त्यारे बप्पभट्टिजीए कह्युं के, ते सत्य छे, परंतु तमारी प्रतिज्ञा एवी रीते कंई संपूर्ण थाय नहीं; पण उलटुं सर्व संगनो त्याग करनारा एवा जे अमो, तेओनी प्रतिज्ञानो भंग थाय ॥ ११५ ॥

चमत्कृतो राजा, प्रवेशानंतरं सौधांतः क्ष्माभुजा सिंहासनं मंडितं, तदवसरे बप्पभ- ट्टिराह, अस्माकं सूरिपदे जाते सिंहासनमासनं कल्प्यं ॥ ११६ ॥ ततो राजा खिन्न आसनांतरममंडयत्, दिनानि कियंति तत्र तमत्रस्थाप्याचार्यपदार्थी राजा प्रधानैः सह गुरुपार्श्वे प्रैषीत् ॥ ११७ ॥ प्रधाना गुरुं विज्ञपयंति, चंद्रं विना चकोर इव बप्पभ- ट्टिं विनाऽस्मत्स्वामी रतिं न भजते ॥ ११८ ॥ अतोऽस्याचार्यपदं दत्वा पश्चादिमं प्रेषयंतु, यथास्योपदेशाद्राजा धर्मोन्नतिं कुरुते ॥ ११९ ॥ गुरुः प्राह जोऽस्त्रो एतस्य शिष्यस्यासत्तिं विनाऽस्माकमपि न रतिः, ते प्राहुः—तरवस्तरणेस्तापं । स चाभ्रो- ल्लंघनक्रमं ॥ पाथोधिनौश्रमं सोढा । वोढा कूर्मः क्षितेर्भरं ॥ १२० ॥

पछी प्रवेश कराव्या बाद महेलनी अंदर राजाए सिंहासन मंडाव्युं; त्यारे बप्पभट्टिजीए कह्युं के, ज्यारे अमोने सूरिपद मळे, त्यारे अमोने सिंहासननुं आसन कल्पे ॥ ११६ ॥ पछी राजाए खेद पामीने बीजुं आसन मंडाव्युं; पछी केटलाक दिवसो सुधि तेमने त्यां राखीने, तेमना आचार्यपदना अर्थी एवा राजाए प्रधानो सहित तेमने गुरु पासे मोकल्या ॥ ११७ ॥ प्रधानोए त्यां जइ तेमना गुरुने विनंति करी के, चंद्रविना जेम चकोर, तेम बप्पभट्टिजी विना अमारा स्वामीने चेन पडतुं नथी ॥ ११८ ॥ माटे तेमने आचार्यपद आपीने पाछा मोकलावो के जेथी तेमना उपदेशथी राजा धर्मोन्नति करे ॥ ११९ ॥ त्यारे गुरुए कह्युं के, हे प्रधानो! आ शिष्यनी हाजरी विना अमोने पण चेन पडतुं नथी; त्यारे प्रधानोए कह्युं के, वृक्षो जे सूर्यनो ताप सहन करे छे, अने ते सूर्य पण जे आकाशने उलंघवानो क्लेश सहन करे छे, समुद्र जे वहाणोनो थाक खमे छे, तथा काचबो जे पृथ्वीनो भार वहे छे, ॥ १२० ॥

वारिदो वर्षणक्लेशं । क्षितिर्विश्वासुमत्क्षमं ॥ उपकारादृतेऽमीषां । न फलं किंचि-
दीक्ष्यते ॥ १२१ ॥ इति तद्गिरा श्रीसंघकृतोत्सवैस्तं गुरुराचार्यपदेऽस्थापयत्: एका-
दशाधिके तत्र । जाते वर्षशताष्टके ॥ विक्रमात्सोऽभवत्सूरिः । कृष्णचैत्राष्टमीदिने
॥ १२२ ॥ अथानुशिष्टो गुरुणा । विधिवद् ब्रह्मरक्षणे ॥ तारुण्यं राजपूजा च ।
वत्सानर्थद्वयं ध्रुवः ॥ १२३ ॥ तच्छ्रुत्वा श्रीबप्पभट्टिसूर्यिदकरोत् तान् श्लोकेनाह:
भक्तं भक्तस्य लोकस्य । विकृतीश्चाखिला अपि ॥ आजन्म नैव भोक्ष्येऽहं—ममुं
नियममग्रहीत् ॥ १२४ ॥

वरसाद जे वरसवानो क्लेश सहन करे छे, तथा पृथ्वी जे सघळां प्राणीओना (भारनो) क्लेश सहे छे, तेओ सघळामां उपकारविना बीजुं कंइ पण फळ देखातुं नथी ॥ १२१ ॥ तेओनां एवी रीतनां वचनथी श्री संघे करेला उत्सव पूर्वक गुरु महाराजे श्रीबप्पभट्टिजीने आचार्यपदपर स्थाप्या: विक्रमथी आठसो अग्यार वर्षो जाते छते चैत्रवदी आठमने दिवसे ते आचार्य थया ॥ १२२ ॥ पछी गुरु महाराजे तेमने शिखामण आपी के, विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रतनी रक्षा करवी; वळी हे वत्स ! तरुणता तथा राजमान्यपणुं ए बन्ने अनर्थोनां मूळ छे ॥ १२३ ॥ ते सांभळी श्रीबप्पभट्टिजीए जे कंइ कर्युं, ते श्लोकथी कहे छे; भक्त लोकोनो आहार पाणी, तथा सघळी विगयो छेक जन्मपर्यंत हुं खाइश नहीं, एवुं तेमणे नियम ग्रहण कर्युं ॥ १२४ ॥

ततो नृपाग्रहाद्गोपगिरौ प्राप्तास्तदुपदेशाद्राज्ञा एकशतहस्तोन्नतः प्रासादः कारि-
तः, तत्र जात्यसुवर्णाष्टादशभारमिता श्रीवीरप्रतिमा स्थापिता ॥ १२५ अन्यदा
राज्ञा पूज्यद्विजानुवर्तनयाऽन्यदासनं श्रीगुरुभ्यो मण्डितम्, प्राक् तु सिंहासनं ॥१२६॥
ततः प्रतिबोधाय सूरिर्जगौ, मर्दय मानमतंगजदर्प्पं । विनयशरीरविनाशनसर्प्पं ॥
क्षीणो दर्पाद्दशवदनोऽपि । यस्य न तुल्यो भुवने कोऽपि ॥ १२७ ॥ इति श्रु-
त्वा राज्ञाऽवलेपं परिहृत्य पुनः सिंहासनमेवाऽमंड्यत सदापि ॥ १२८ ॥ अन्य-
दांतःपुरे म्लानमुखीं वल्लभां दृष्ट्वा राजाह समस्यां सूरये. 'अज्जवि सा परितप्प-
इ । कमलमुही अत्तणो पमाएण' ॥ १२९ ॥

पछी राजाना आग्रहथी ते गोपगिरि प्रत्ये पहोंच्या, त्यां तेमना उपदेशथी राजाए एकसो हाथ ऊंचुं जिनमंदिर बंधाव्युं; तथा तेमां उत्तम सुवर्णनी अढार भारना प्रमाणवाळी श्रीवीरप्रभुनी प्रतिमा स्थापन करी ॥ १२५ ॥ हवे एक दिवसे राजाए राजगोर ब्राह्मणनुं कह्युं मानीने श्रीगुरु महाराज माटे बीजुं आसन मंडाव्युं, पहेलां तो सिंहासन मंडावता हता ॥ १२६ ॥ त्यारे राजाने प्रतिबोधवा माटे आचार्यजीए कह्युं के, विनयरूपी शरीरनो नाश करवामां सर्प सरखा एवा मानरूपी मदोन्मत्त हाथी जेवा दर्पनुं मर्दन करो? केमके जेना सरखो जगत्मां कोइ पण नहोतो, एवो रावण पण अहंकारथी नष्ट थयो ॥ १२७ ॥ ते सांभळी राजा अहंकार छोडी फरीने हमेशां सिंहासन मंडाववा लाग्यो ॥ १२८ ॥ एक वखते अंतःपुरमां पोतानी राणीने उतरेला मुखवाळी जोइने राजाए आचार्यजीने समस्या कही के, 'हजु पण ते कमळमुखी पोताना प्रमादथी परिताप पाम्या करे छे' ॥ १२९ ॥

॥ १६७ ॥ सिद्धसारस्वतसूरिः—'पुव्वविलुत्तेण तए । जीसे पच्छाइअं अंगं ॥१३०॥ पुन-
रन्यदा पट्टराज्ञीं संचरंतीं पदे पदे व्यथमानामिव दृष्टपूर्वी स्माह नृपः, 'बाला
चंकम्मंती । पए पए कीस कुणइ मुहभंगं ॥ १३१ ॥ सूरिः—'नूणं रमण-
पएसे । मेहलिआ छिवइ नहपंति ॥ १३२ ॥ तच्छ्रुत्वा नृपतिर्विकृतमुखोऽभूत्,
निरादरश्च; तं तादृशं दृष्ट्वा श्रीगुरुरुपाश्रये गत्वा किंचिन्मिषं कृत्वा द्वारकपाट-
योः काव्यं लिखित्वा व्यहार्षीत् ॥ १३३ ॥ तच्चेदं—यामः स्वस्ति तवास्तु रो-
हणगिरे मत्तः स्थितिं प्रच्युता । वर्तिष्यंत इमेऽधुना कथमिति स्वप्नेऽपि मैवं कृथाः
॥ श्रीमंतो मणयो वयं यदि भवल्लब्धप्रतिष्ठास्तदा । के शृंगारपरायणाः क्षिति-
भुजो मौलौ करिष्यंति नः ॥ १३४ ॥

त्यारे सिद्ध करेल छे सारस्वत मंत्र जेमणे एवा आचार्यजीए कह्युं के 'पूर्वे जाणी उतवाथी शरीर ढांक्युं, तेटला माटे' ॥ १३० ॥ वळी एक दहाडो राजाए चालती एवी पोतानी पट्टराणीने पगले पगले जाणे व्यथा पामती होय नहीं, तेम पेहेलां देखवाथी समस्या कही के, 'चालती थकी बाळा पगले पगले शामाटे मुखभंग करे छे?' ॥ १३१ ॥ त्यारे आचार्यजीए कह्युं के, 'खरेखर तेणीना गुह्यस्थले मेखला पासे नखोनी श्रेणि लागेली छे' ॥ १३२ ॥ ते सांभळीने राजानुं मुख उतरी गयुं, तथा आचार्यजी प्रत्ये आदर रहित थया; पछी तेने तेवी रीतनो जोइने गुरु महाराजे उपाश्रये जइ, कंइक मिष करीने, तथा बारणाना बन्ने कमाडोपर काव्य लखीने त्यांथी विहार कर्यो ॥ १३३ ॥ ते काव्य नीचे मुजब हतुं हे रोहणाचल! तुं स्वप्नमां पण एवो विचार नहीं करजे के मारी पासेथी खसी जवाथी तेओना हवे शुं हाल थशे?! केमके जो अमो मणियो किमती छइये, तथा तमारायी जो अमोने प्रतिष्ठा मळेली छे, तो केटलाक शृंगारना इच्छक राजाओ अमोने मस्तके पण चडावशे; माटे हवे तारुं कल्याण थाओ? अमो जइये छीए ॥ १३४ ॥

श्रीगुरुर्गौडदेशं प्राप, तत्र धर्मनृपः, तदाग्रहाद्यावत् श्रीआमनृपः स्वयमाकारणाय नायाति तावन्न विहर्त्तव्यमिति प्रतिज्ञाय स्थिताः ॥ १३५ ॥ अन्यदा श्रीआमनृपो राजपाटिकायै गतः, क्वचित् कृष्णसर्पं दृष्ट्वा मुखे सुदृढं तं गृहीत्वा मुष्टिमध्ये कृत्वा, बाहुवस्त्रेणाच्छाद्य च 'शस्त्रं शास्त्रं कृषिर्विद्या। अन्यो यो येन जीवति' इतिसमस्यामप्राक्षीत् ॥ १३६ ॥ न कोऽपि नृपाभिप्रायेण पूरयति, तदा श्रीगुरुं भृशमस्मार्षीत्, ततः पटहो, य एतां ममाभिप्रायेण पूरयेत्तस्य स्वर्णटंकलक्षमर्प्पये, इत्यवाद्यत ॥ १३७ ॥ द्यूतकारेण गौडदेशे गत्वा श्रीगुरून् पृष्ट्वाऽपूरि 'सुगृहीतं च कर्त्तव्यं । कृष्णसर्पमुखं यथा' ॥ १३८ ॥

पछी श्रीबप्पभट्टिजी गौडदेशमां गया, त्यां धर्म नामे राजा हतो, तेना आग्रहथी त्यां ते रह्या, तथा एवी प्रतिज्ञा करी के, ज्यांसुधि आम राजा पोते मने बोलाववाने न आवे, त्यांसुधि मारे अहींथी विहार करवो नहीं ॥ १३५ ॥ एक दहाडो श्रीआम राजा रयवाडीए गया त्यां क्यांक एक काळा सर्पने जोइने, तथा तेनुं मुख दृढ रीते पकडीने अने मुठीमां लेइने तथा हाथ वस्त्रथी ढांकीने 'शस्त्र, शास्त्र, खेती, तथा विद्या के जे जेनाथी जीवे छे' एवी रीतनी समस्या पुछवा लाग्यो ॥ १३६ ॥ परंतु कोइये पण राजाना अभिप्राय मुजब ते संपूर्ण करी नहीं; ते वखते राजाए श्रीबप्पभट्टिजीने घणा संभार्या, तथा पछी तेणे पडह वजडाव्यो के, जे कोई आ समस्या अभिप्राय पूर्वक पुरशे, तेने एक लाख सुवर्णटंका हुं आपीश ॥ १३७ ॥ पछी एक जुगारीए गौडदेशमां जइने श्रीगुरु महाराजने पुछीने ते समस्या पुरी के, 'जेम कृष्ण सर्पनुं मुख, तेम ते सुगृहीत करवुं ॥ १३८ ॥

केनाऽपूरीति निर्बंधपूर्वं राज्ञा पृष्टो गुरुस्वरूपं व्याख्यायीत्यादि बहुविस्तरार्थिना एत-त्प्रबंधादि विलोक्यं ॥ १३९ ॥ ततोऽनुतापपरः प्रैषीत् प्रधानान् काव्यानि च श्रीबप्प-भट्टिगुरून् प्रति, तथाहि—॥ १४० ॥ छायाकारणि सिरि धरिअ । पच्छवि भूमिप-डंति ॥ पत्तह एहु पत्तत्तणं । वरतरु काइं करंति ॥ १४१ ॥ न गंगां गांगेयं सुयुवति-कपोलस्थलगतं । न वा शुक्तिं मुक्तामणिकरसिजास्वादरसिकः ॥ न कोटीरारूढः स्म-रति च सवित्रीं मणिचय—स्ततो मन्ये लोकं स्वसुखनिरतं स्नेहविरतं ॥ १४२ ॥

कोणे ने पूरी? एम आग्रहपूर्वक राजाए पूछवाथी तेणे गुरुनुं वृत्तांत कह्युं, इत्यादि जेने घणो विस्तार वांचवानी इच्छा होय, तेणे तेमना प्रबंध आदिक जोवां ॥ १३९ ॥ पछी पश्चात्तापमां पडेला राजाए श्रीबप्पभट्टि गुरु प्रत्ये प्रधानोने काव्यो आपी मोकल्या; ते कहे छे—॥ १४० ॥ हे उत्तम वृक्ष! प्रथम तो तुं छायाने कारणे पांदडांओने मस्तकपर धारण करे छे, अने पाछां तेओने पृथ्वीपर पाडे छे. माटे एवुं हलकुं कार्य तुं शा माटे करे छे? ॥ १४१ ॥ स्त्रीना कपोलस्थलने प्राप्त थयेलुं (गांगेय) सुवर्ण गंगाने याद करतुं नथी, तेमज स्त्रीना स्तनना स्वादनो रसीयो मुक्तामणि छीपने याद करतो नथी, तथा मुकुटमां चडेलो मणि समूह पोतानी जन्मभूमिने याद करतो नथी; माटे हुं एम मानुं छुं के, लोको फक्त पोताना सुखमांज रक्त छे, तथा स्नेह विनाना छे ॥ १४२ ॥

इत्यादीनि प्रधानेभ्यो गुरुराकर्ण्याह, आमनृपस्येमा गाथाः श्राव्याः, तथाहि–॥ १४३॥ विंझेण विणावि गया । नरिंदभवणेसु हुंति गारविआ ॥ विंझो न होइ अगओ । गएहिं बहुएहिं विगए ॥ १४४ ॥ माणसविणा सुहाइं । जइय न लब्भंति रायहंसेहिं ॥ तहतस्सवि तेहिंविणा । तीरुच्छंगा न सोहंति ॥ १४५ ॥ परिसेसिअहंसउलंपि । माणसं माणसं न संदेहो ॥ अन्नत्थ विजत्थ गया । हंसावि बगा न जायंति ॥ १४६ ॥ मलओसचंदणुच्चिअ । नइ मुहहीरंतचंदणदुमोहो ॥ पज्झंटंपि हु मलयाओ । चंदणं जायइ महग्घं ॥ १४७ ॥

इत्यादिक काव्यो प्रधानो पासेथी सांभळीने गुरु कहेवा लाग्या के, तमारे आम राजाने नीचे मुजब गाथाओ संभळाववी ने कहे छे.—॥ १४३॥ हाथीओ विंध्याचल विना पण राज भुवनोमां जइ गौरववाळा थया छे, तेमज घणा हाथीओ चाली जवाथी पण विंध्याचळ पण कंइ हाथी विनानो नथी थइ गयो ॥ १४४ ॥ जेम मानससरोवर विना राजहंसोने सुख मळतुं नथी, तेमज राजहंसो विना मानससरोवरना किनाराओ पण शोभता नथी ॥ १४५ ॥ वळी हंसो विना पण मानससरोवर ते मानसज कहेवाय छे, तेमां कंइ संदेह नथी; तेम हंसो पण ज्यां जाशे, त्यां हंसोज कहेवाशे, परंतु बगलां नहीं कहेवाशे ॥ १४६ ॥ मलयाचल चंदनयुक्त कहेवाय छे, अने तेमां रहेलां चंदननां वृक्षो नदीवाटे जोके तणाइ जाय छे, तथा एवी रीते मलयाचलथी जोके तेओ भ्रष्ट थाय छे, परंतु ते चंदननी किंमत ओछी थती नथी ॥ १४७ ॥

इक्केण कोत्थुहेणं । विणावि रयणायरुच्चिअसमुद्दो ॥ कोत्थुहरयणंपिठरे । जस्स ठिअं सोवि हु महग्घो ॥ १४८ ॥ पढ्मुक्काहवि करतरु पिल्लइ पत्तत्तणं न पत्ताणं ॥ तुह पुण छाया जइहोइ । तारिसी तेहिं पत्तेहिं ॥ १४९ ॥ जे केवि पहुमहिमंरुहंमि । ते उच्छुदंडसारिस्था ॥ सरसा जणाणमज्झे । विरसा पत्तेसु दीसंति ॥ १५० ॥ ततः, अस्माभिर्यदि कार्यं वः—स्तदा धर्मस्य भूपतेः ॥ सभायां क्षणमागत्य । स्वयमापृच्छयतां द्रुतं ॥ १५१ ॥ ज्ञाते प्रतिज्ञानिर्वाहे । यथास्थानमस्तवां स्थितं ॥ प्रधानाः प्रहिताः पूज्यै—रिति शिक्षापुरस्सरं ॥ १५२ ॥

एक कौस्तुभ मणि विना पण समुद्र रत्नाकर कहेवाय छे, तेमज जेना वक्षस्थळमां कौस्तुभ मणि रहेल छे, ते पण महा मूल्यवान् कहेवाय छे ॥ १४८ ॥ हे उत्तम वृक्ष ! ते पत्रोने तजी दीधां, तोपण पत्रोनुं पत्रपणुं जातुं नथी, परंतु तने पण ज्यारे तेवां पत्रो होशे, त्यारेज छाया थशे ॥ १४९ ॥ आ पृथ्वी मेरुसमान जेटला मोटा कहेवाय छे, तेओ शेलडीना सांठा सरिखा छे, केमके तेओ जनोनी अंदर (गांठो—कातळीओनी अंदर) रसवाळा छे, तथा पात्रोनी अंदर (पर्णो—पत्रोनी अंदर) रसविनाना देखाय छे ॥ १५० ॥ माटे, तमारे जो अमारी साथे प्रयोजन होय तो धर्म राजानी सभामां गुरु आवीने तमारे पोतेज अहीं तुरत पूछी जवुं ॥ १५१ ॥ अने एवी रीते अमारी प्रतिज्ञा संपूर्ण थयेथी अमो तमारी पासे आवीशुं ; एवी रीते शिक्षापूर्वक आचार्यजीए प्रधानोने मोकल्या ॥ १५२ ॥

ते कन्यकुब्जनृपं प्राप्ता गुरुसंदेशादि प्राहुः, राजा तत्कंठया कृपाणस्करजैर्निःशंको गच्छन् गोदावरीतीरे ग्राममेकं प्राप ॥ १५३ ॥ तत्परिसरे खंडदेवकुले रात्रिमुवास, तद्रूपमूढा तद्देवी तत्प्रार्थनापूर्वं बुभुजे; प्रातस्तामनापृच्छ्यैव करजारूढः श्रीगुरुपादांतिकं प्राप ॥ १५४ ॥ विरहव्यंजकैः काव्यैः स्तौति स्म च; ततो गाथार्धं प्राह, 'अज्जवि सा सुमरिज्जइ । को नेहो एगराईए' ॥ १५५ ॥ गुरुराह—'गोलानईइतीरे । सुन्नउले जंमिवीसमिओ' हृष्टो राजा शास्त्रगोष्ठ्यादिभिर्दिनशेषमतिचक्राम ॥ १५६ ॥

तेओए पण कन्यकुब्जना राजा पासे जइ गुरुना संदेशा आदिक कह्युं; त्यारे राजा उत्कंठित थइ कृपाणमां ऊंटपर बेसी निःशंकपणे जतो थको गोदावरीने किनारे एक गाममां पहोंच्यो ॥ १५३ ॥ तेना पादरमां रहेला एक खंडित देवमंदिरमां ते रात्रि रह्यो, त्यां तेना रूपथी मोह पामेली ते मंदिरनी देवीए प्रार्थनापूर्वक तेनी साथे भोग भोगव्यो; पछी प्रभाते तेणीने पूछ्या विनाज ते ऊंटपर चडीने श्रीगुरु महाराजना चरणोमध्ये पहोंच्यो ॥ १५४ ॥ तथा विरह देखाडनारां काव्योथी प्रेमथी स्तुति करवा लाग्यो; पछी तेणे एक नीचे मुजब अरधी गाथा कही; 'हजुसुधि ते याद आवे छे के, अहो! एक रात्रिमांज केवो स्नेह ॥ १५५ ॥ त्यारे गुरुजीए कह्युं के, 'गोदावरी नदीने कांठे सूना देवकुलमां विश्राम कर्यो तेटला माटे'; पछी राजाए शास्त्री वगेरे वार्ताथी दिवस शास्त्र वार्ता आदिकथी संपूर्ण कर्यो ॥ १५६ ॥

प्रातः स्थगीधरवेषभाग् आमनृपश्च सूरिश्च धर्मनृपास्थानं प्राप्तौ ॥ १५७ ॥
आमविज्ञप्तिं धर्मराजस्य गुरुरदर्शयत्, विरहव्यंजिकां तां वाचयित्वा दूतः पृष्टः, तव
नृपः कीदृशः? स प्राह, अस्य स्थगीजर्तुस्तुल्योऽसावेव बुध्यतां ॥ १५८ ॥ मातुलिंगं
करे किंचित् । सैष पृष्टश्च सूरिणा ॥ करे ते किं स चावादीत् । बीजओरा इति स्फुटं
॥ १५९ ॥ दूतेन चाडकीपत्रे दर्शिते गुरुराह सः ॥ स्थगीधरं पुरस्कृत्य । तुअरि-
पत्तमित्ययं ॥ १६० ॥

प्रभाते आमराजा *स्थगिधरनो वेष लइने, तथा आचार्य महाराज पण धर्म राजानी सभामां आव्या ॥ १५७ ॥ पछी गुरुए धर्मराजाने आमराजानी विज्ञप्ति देखाडी, त्यारे विरहने प्रगट करनारी ते विज्ञप्ति वांचीने राजाए दूतने पूछ्युं के, तारो राजा केवो छे? त्यारे दूते कह्युं के, आ स्थगीधर सरखो जाणो तेज जाणवो ॥ १५८ ॥ पछी बीजोरुं जेणे हाथमां धारण करेलुं छे, एवा तेने आचार्यजीए पूछ्युं के, तारा हाथमां शुं छे? त्यारे तेणे प्रगट रीते कह्युं के, 'बीजओरा'. ॥ १५९ ॥ पछी दूते आडकीपत्र देखाडते छते गुरुए स्थगीधरने आगाडी करीने कह्युं के, आ तो 'तुअरिपत्त' छे ॥ १६० ॥

* स्थगी पानदानीथी तेथी स्थगीधर एटले पान बीडांदानीयांने राखनार यावत पानबीडां राखनार तथा आपनार एवो अर्थ थाय छे.

इत्येवं श्लिष्टेऽर्थे उक्तेऽपि ऋजुणा धर्मनृपेन न ज्ञातं, तत उत्थाय श्रीआमो वारवेश्यागृहेऽवसत् ॥ अमूल्यं कंकणं दत्वाऽस्याः प्रातर्निरगाद् गृहात् ॥ १६१ ॥ द्वितीयं राजसौधद्वारेंद्रकीलके मुक्त्वा ततो निर्गतो बहीरहोवनेऽस्थात्; ततः प्रातर्गुरुर्नृपसभां गत्वा कन्यकुब्जप्रस्थानाय नृपमापृच्छे ॥ १६२ ॥ तेनोक्तं प्रतिज्ञा किं विस्मृता? गुरुणोक्तं सा पूर्णा कथमिति राज्ञोक्ते, आमागमादिस्वरूपं यथास्थं जातमवदत् ॥ १६३ ॥ तावद्वारवध्वा आमनामांकितं कंकणं राज्ञोऽग्रे मुक्तं, द्वितीयं च द्वारपालेन: ततो जातप्रत्ययं राजानमापृच्छ्य कन्यकुब्जं प्रति गुरुः प्रतस्थे ॥ १६४ ॥

एवी रीते श्लेषयुक्त अर्थ कहेते छते पण सरल एवा धर्मराजाए तेनो भावार्थ जाण्यो नहीं; पछी त्यांथी उठीने श्रीआमराजा वारांगनाने घेर रह्यो, तथा तेणीने अमूल्य कंकण आपीने प्रभाते तेणीने घेरथी ते निकळी गयो ॥ १६१ ॥ पछी बीजुं कंकण राजमेहेलना दरवाजाना गोखलापर मूकीने त्यांथी बहार निकळी ते गुप्त रीते वनमां रह्यो; पछी प्रभाते गुरु महाराज धर्मराजानी सभामां जइने कन्यकुब्ज प्रत्ये जवा माटे रजा मागवा लाग्या ॥ १६२ ॥ त्यारे धर्मराजाए कह्युं के, शुं तमोए प्रतिज्ञा विसारी मूकी? त्यारे गुरुए कह्युं के, ते तो संपूर्ण थइ; केवी रीते? एम राजाए पूछ्याथी तेणे आमराजाना आगमननुं स्वरूप यथार्थ रीते कह्युं ॥ १६३ ॥ एटलामां वारांगनाए आवीने आमराजाना नामवाळुं कंकण राजानी पासे मूक्युं; तथा बीजुं कंकण द्वारपाळे पण लावी मूक्युं; एवी रीते जेने खातरी थयेली छे, एवा ते राजानी रजा लेइने गुरु महाराज कन्यकुब्ज प्रत्ये चाल्या; ॥ १६४ ॥

श्रीआमनृपेण सह गोपालगिरिमापत्; तत्र कदाचित् शास्त्रगोष्ठ्या कदाचिद्धर्मगोष्ठ्या समयो याति ॥ १६५ ॥ श्रीबप्पभट्टिः साम्ना श्रीआमनृपप्रतिबोधाय बहूनुपायानकरोत् परं स नाऽबुध्यत धर्मं ॥ १६६ ॥ अन्यदा तत्र गायनवृंदं सुस्वरमाययौ, तत्रैका मातंगी राजानं रूपेण स्वरेण च रंजयामास १६७ ॥ राजा तद्रूपमोहितो बहिरावासमचीकरत्, उवाच च—वक्त्रं पूर्णशशी सुधाधरलता दंता मणिश्रेणयः । कांतिः श्रीर्गमनं गजः परिमलस्ते पारिजातद्रुमाः ॥ वाणी कामदुघा कटाक्षलहरी सा कालकूटच्छटा । तत् किं चंद्रमुखि त्वदर्थममरैरामंथि दुग्धोदधिः ॥ १६८ ॥

त्यारबाद ते श्रीआमराजानी साथे गोपालगिरि प्रत्ये आव्या , तथा त्यां कोइ वखते शास्त्रवार्ताथी तथा कोइ वखते धर्मवार्ताथी तेओनो समय जवा लाग्यो ॥ १६५ ॥ पछी श्रीबप्पभट्टिजीए सामभेदे करीने श्रीआमराजाने प्रतिबोधवा माटे घणा उपायो कर्या, परंतु तेने धर्मनो प्रतिबोध लाग्यो नहीं ॥ १६६ ॥ एक वखते त्यां उत्तम गायनो करनारा गानाराओनुं टोळुं आव्युं, तेमांनी एक कुंवरीए राजाने रूप तथा स्वरथी खुश कर्यो ॥ १६७ ॥ तेणीना रूपथी मोहित थयेला राजाए बहार एक महेल बंधाव्यो, तथा कहेवा लाग्यो के —हे चंद्रमुखी! तारुं मुख पूर्णिमाना चंद्र सरखुं छे, ओष्ठलता अमृत सरखी छे, दांतो मणिओनी श्रेणिओ सरखा छे, कांति लक्ष्मी सरखी छे, गमन हाथी सरखुं छे, सुगंधि कल्पवृक्ष सरखी छे; वाणी कामधेनु सरखी छे, कटाक्षोनी श्रेणि कालकूटनी (विषनी) छटा सरखी छे, माटे शुं तारे माटेज देवोए क्षीरसमुद्रने मंथेलो छे? ॥ १६८ ॥

जन्मस्थानं न खलु विमलं वर्णनीयो न वर्णो। दूरे शोभा वपुषि निहिता पंकशंकां तनोति ॥ विश्वप्रार्थ्यः सकलसुरभिद्रव्यदर्पापहारी । नो जानीमः परिमलगुणः कस्तु कस्तूरिकायाः ॥ १६९ ॥ सूरिणा चिंतितं, अहो महतामपि कीदृग्मतिविपर्यासः, जग्धा काचन भूरिरंध्रविगलत्तत्तन्मलक्लेदिनी । सा संस्कारशतैः क्षणार्धमधुरां बाह्यामुपैति द्युतिं ॥ आंतर्ज्ञानरसोर्मिधौतमनसोऽप्येतां तु कांताधिया । श्लिष्यंति स्तुवते नमंति च पुरः कस्यात्र पूत्कुर्महे ॥ १७० ॥ तस्यैना मत्वा. त्रिभिर्दिनैर्नृपेण पुरबहिः सौधं कारितं, मातंगीसहितोऽत्र वत्स्यामीतिधिया, तदवगतं बप्पभट्टिगुरुणा ॥ १७१ ॥

कस्तूरीनुं जन्मस्थान निर्मल नथी तेम तेनो रंग पण प्रशंसवा लायक नथी, शोभा तो तेनी दूर रही, परंतु शरीरपर लेपन करवाथी पण कादवनी शंका विस्तारे छे; एटलुं छतां पण अमोने नथी मालुम पडतुं के, तेमां केवोक सुगंधिनो गुण रहेलो छे ? के जेथी आखुं जगत् तेनी प्रशंसा करे छे, तथा ते सघळा सुगंधि द्रव्योना अहंकारने हरे छे ॥ १६९ ॥ त्यारबाद आचार्यजीए विचार्युं के, अहो! महान् पुरुषोनी पण केवी बुद्धि फरी जाय छे? घणा छिद्रोथी मलना एवा ते ते मेलथी मलीन थयेली, तथा सेंकडो गमे संस्कारोथी अरधा क्षण सुधि जे बहारनी मनोहर कांतिने धारण करे छे, एवी कोइक घमण सरखी स्त्रीने पण, हृदयमां तत्त्वरसना मोजांओथी जेनी मति निर्मल थयेली छे, एवा मनुष्यो पण कांतानी बुद्धिथी तेणीने आलिंगन करे छे, स्तवे छे, तथा नमे पण छे, माटे हवे अमो कोनी पासे पोकार करीये ॥ १७० ॥ पछी सभा उठ्या बाद राजाए त्रण दिवसोमां नगरनी बहार महेल तैयार कराव्यो; एवी बुद्धिथी के, ते डुंबडी सहित हुं त्यां रहीश; पछी ते बाबत बप्पभट्टिजी गुरुने मालुम पडी ॥ १७१ ॥

ततो मासौ कुकर्मणा नरकं यासीदिति कृपया गुरुणा निष्पद्यमानसौधशारपट्टे निशि खटिकया प्रतिबोधकाव्यानि लिखितानि ॥ १७२ ॥ यथा,—शैत्यं नाम गुणस्तवैव भवतः स्वाभाविकी स्वच्छता । किं ब्रूमः शुचितां भवंति शुचयस्त्वत्संगतोऽन्ये यतः ॥ किं चातः परमस्ति ते स्तुतिपदं त्वं जीवितं देहिनां । त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥ १७३ ॥ सद्वृत्तसद्गुणमहार्घमहार्हकांत—कांताघनस्तनतटोचितचारुमूर्ते ॥ आः पामरीकठिनकंठविलग्नभग्न । हा हार हारितमहो भवता गुणित्वं ॥ १७४ ॥ जीअं जलबिंदुसमं । संपत्तिओ तरंगलोलाओ ॥ सुविणयसमं च पिम्मं । जं जाणसि तं करिज्जासु ॥ १७५ ॥

त्यारे तेमणे विचार्युं के, कुकर्मथी आ राजा नरकमां न पडे तो सारुं, एवी दया लावी तेमणे तैयार थता महेलना भारवटीयामां रात्रिए खडीथी तेना प्रतिबोध माटे नीचे मुजब काव्यो लख्या ॥ १७२ ॥ ते कहे छे—हे ! जल ! शीतल नामनो गुण पण तारामांज छे, तेम स्वाभाविक स्वच्छता पण तारामांज छे, वळी वधारे शुं कहीये ? तारा संगथी बीजाओ पण पवित्र थाय छे; वळी तेथी पण तारी अमो वधारे स्तुति शुं करीये ? केमके तुंज प्राणीओना जीवितरूप छे. माटे एवुं पण तुं जो नीच मार्गे जशे, तो पछी तने रोकवाने कोण समर्थ छे ? ॥ १७३ ॥ हे हार ! तुं केवो छो ? तोके उत्तम वृत्तयुक्त (पक्षे—गोळ आकारयुक्त मोतीवाळो) सद्गुणवाळो (पक्षे—उत्तम दोरीथी गुंथेलो) महान् अर्थवाळो लायक तथा मनोहर छो, तेमज स्त्रीना निबिड स्तन तटोपर उचित तथा मनोहर तेजवाळो छो; एवो पण तुं, एक नीच कुंबडीना कठिन कंठमां अथडाइने ज्यारे भांगी जइश, त्यारे अरेरे ! तें तारुं गुणिपणुं खोयुंज समजवुं ॥ १७४ ॥ आ जीवित जलबिंदु सरखुं छे, तथा संपदाओ मोजांओ सरखी चपल छे, अने प्रेम स्वप्न सरखो छे माटे जेम उचित जणाय, तेम आचरण करवुं ॥ १७५ ॥

लज्जिज्जइ जेण जणे । मइलिज्जइ निअकुलक्कमो जेण ॥ कंठट्ठिएवि जीए । तं न कुलीणेहिं कायव्वं ॥ १७६ ॥ इति, प्रातः श्रीआमोऽपि तत्सदनं प्रेक्षितुं ययौ, अपश्यच्च तानि काव्यानि यथा यथा, तथा तथा भ्रमो नष्टो दुग्धाद्धत्तूरमोहवत् ॥ १७७॥ तत आमः श्यामास्यो भृशमन्वतप्यत व्यमृशच्च, मम मित्रं विना कोऽन्य एवं बोधयेत्,- इदानीं कथं स्वमास्यं दर्शये । १७८ ॥ मम वह्निरेव शुद्धिं विधास्यति, धिग्मे जन्म सकलंकं, इति ध्यात्वा स तत्रैवादिशच्चितायै पार्श्वस्थान् ॥ १७९ ॥ तेऽनिच्छंतोऽपि तं नृपादेशं व्यधुः, इदं राजलोको ज्ञात्वा गुरोरग्रे पूच्चक्रे ; ततो गुरुस्तत्र गत्वाह ॥ १८० ॥

जेथी करीने दुनीयामां लज्जा पामीये, तथा जेथी पोतानो कुलक्रम मलिन थाय, तेवुं कार्य कुलीन माणसोए कंठे प्राण आवे तोपण न करवुं ॥ १७६ ॥ इति; हवे प्रभाते आमराजा पण ते मेहेल जोवा गयो, तथा जेम जेम ते काव्योने जोवा लाग्यो, तेम तेम दूधथी जेम धन्तुरानुं विष, तेम तेनो भ्रम नष्ट थवा लाग्यो ॥ १७७ ॥ पछी आमराजा झंखवाणा मुखवाळो थइने घणो पश्चाताप करवा लाग्यो. तथा विचारवा लाग्यो के, मारा मित्रविना बीजो कोण मने आवी रीते प्रतिबोधे; हवे हुं मारुं मुख शुं बतावुं ? ॥ १७८ ॥ हवे तो मने अग्नि शुद्ध करशे, मारा आ कलंकित जन्मने धिक्कार छे ; एम विचारि तेणे त्यांज नोकरोने चिता माटे हुकम कर्यो ; ॥ १७९ ॥ तेओए इच्छाविना पण राजानो ते हुकम बजाव्यो ; पछी ते बाबती राजदरबारीओने खबर पडवाथी, तेओए गुरु पासे जइ पोकार कर्यो ; त्यारे श्रीबप्पभट्टिजी महाराज त्यां जइ कहेवा लाग्या के ॥ १८०॥

राजन् किमिदं योषिदर्हं प्रारब्धं? राजाह, ममास्य दुष्कृतस्य देहत्याग एव प्रायश्चित्तं, यथा दुर्नयलोकस्य । वयं दंडमकुर्महि ॥ तथा स्वस्यापि किं नैव । कुर्मः कर्मच्छिदः कृते ॥ १८१ ॥ गुरुराह, निबद्धं कर्म चित्तेन । चित्तेनैव विमुच्यते ॥ स्मार्त्तादीन् पृच्छ, यतः स्मृत्यादिषु सर्वेषां पापानां मोक्षोपाय ऊचे ॥ १८२ ॥ राज्ञा ते आहूताः, स्वमनःपापमुक्तं, स्मार्त्ता आहुः,—आयसीपुत्रिकां वह्नि—ध्मातां तद्वर्णरूपिणीं ॥ आश्लिष्यन् मुच्यते पापा—च्चांडालीसंगसंभवात् ॥ १८३ ॥ इति श्रुत्वा नृपस्तां कारयामास, तदालिंगनाय सज्जोऽभूत. तदा पुरोधोबप्पभट्टिभ्यां नृपो भुजयोर्धृतः ॥ १८४ ॥

हे राजन्! मुनि लायक एवुं आ शुं कार्य करवा मांड्युं छे? त्यारे राजाए कह्युं के, मारां आ दुष्कार्यनुं प्रायश्चित्त शरीर त्याग करवुं, एज छे; जेम अन्यायी लोकने अमो दंड करीये छीये, तेम कर्मोना छेद माटे अमो अमारो पोताना दंड शामाटे न करीये? ॥ १८१ ॥ गुरुए कह्युं के, मनथी बांधेलुं कर्म मनथीज मूकाय छे, वळी ते माटे तुं स्मृति जाणनाराओने पुछीजो केमके स्मृति आदिकोमां सर्व पापोथी मुक्त थवानो उपाय कहेलो छे ॥ १८२ ॥ पछी राजाए ते स्मार्त्तोने बोलाव्या, तथा तेमनी पासे पोताना मननुं पाप जाहेर कर्युं; त्यारे तेओए कह्युं के, तेणीना सरखा रंग अने रूपवाळी लोखंडनी पुतळी बनावीने, तथा तेने अग्निमां तपावीने, तेणीनुं आलिंगन करवाथी, चांडालणीनो, संग करवाथी उत्पन्न थयेलां पापथी माणी मुक्त थाय छे ॥ १८३ ॥ ते सांभळी राजाए तेवी पुतळी करावी, तथा ज्यारे तेणीने आलिंगन करवा माटे ते तैयार थयो, त्यारे पुरोहित तथा बप्पभट्टिजीए राजाना बन्ने हाथो पकडी राख्या ॥ १८४ ॥

उक्तं च ताभ्यां, राजन् कोटिज्वरमात्मानं मा मुधा नाशय? दुष्करकरणानिप्रा-
यादेव तत् पापं नष्टं. ततः श्रीगुरुवाग्भिः प्रबुद्धः सः ॥ १०५ ॥ अमात्याद्यैः
कृतः प्रौढो नगरप्रवेशमहः, अन्यदा धर्मव्याख्यावसरे श्रीबप्पभट्टिर्जैनादिधर्मतत्त्वा-
नि प्राह ॥ १०६ ॥ ततो जैनं धर्मं परीक्षापूर्वं राजन् श्रयेत्याह च. राजा प्रा-
हार्हतो धर्मो ! निर्वहत्येव मादृशां ॥ परीक्षायां परं शैव—धर्मे चेतोऽलगद् दृढं
॥ १०७ ॥ तेन तं धर्मं न मुंचे. इत्यादि. अन्यच्च भगवन् किंचिद्वच्मि. भवं-
तोऽपि बालगोपालादिकं प्रबोधयंति नतु कोविदं ॥ १०८ ॥

तथा तेओए कह्युं के. हे राजन ! कोटीनुं जगणपोषण करनारा एवा तमारा आत्मानो तमो फोकट विनाश नही करो? में आदुष्कर्म कर्युं छे. एवा पश्चातापथीज तमारुं ते पाप नष्ट थयुं छे; पछी एवी रीतनां श्रीगुरु महाराजनां वचनोथी ते राजा प्रतिबोध पाम्यो ॥ १०५ ॥ तथा प्रधान आदिकोए मोटा आडंबरथी तेनो नगरमां प्रवेश महोत्सव कर्यो; एक वखते धर्मव्याख्यान अवसरे श्रीबप्पभट्टिजीए जैनआदिक धर्मनां तत्वो कह्यां ॥ १०६ ॥ तथा पछी कह्युं के, हे राजन परीक्षा पूर्वक तमो हवे जैनधर्म स्वीकारो ? त्यारे राजाए कह्युं के, मारा जेवाने जैनधर्म परीक्षामां तो बराबर लागे छे. परंतु मारुं मन शिवधर्ममां दृढ चोंटेलुं छे ॥ १०७ ॥ माटे ते धर्मनो हुं त्याग करुं नहीं; इत्यादि, वळी पण हे भगवान! हुं आपने कंइक कहुं छुं के, आप पण बालगोपाल आदिकने तो प्रबोधो छो. परंतु कोइ विद्वानने प्रबोधी शकता नथी ॥ १०८ ॥

शक्तिश्चेत्तदा मथुरायामागतं, हृदि विष्णुं ध्यायंतं, यज्ञोपवीतालंकृतं, नासाग्रन्यस्तदृशं, तुलसीमालया पत्रजीवमालया च श्लिष्टवक्षःस्थलं, कृष्णगुणगायकं, वैष्णववृंदवृतं, वराहस्वामिदेवस्य प्रासादांतःस्थं, वैराग्याद् गृहीताऽनशनं, पर्यंकासनस्थं प्रबोध्य जैनमते स्थापयत वाक्पतिराजसामंतं ॥ १८९ ॥ श्रीगुरवस्तत्प्रतिबोधं प्रतिज्ञाय चतुरशीतिसामंतविबुधसहस्रपरिवृता मथुरायां वराहस्वामिमंदिरं प्रापुः ॥ १९० ॥ तं तथास्थं दृष्ट्वा तत्पृष्टस्थाः सूरयः पेठुः—संध्यांयत्प्रणिपत्य लोकपुरतो बध्दांजलिर्याचसे ।धत्से यच्च परां विलज्जशिरसा तत्रापि सोढं मया ॥ श्रीर्जातामृतमंथने यदि हरेः कस्माद्विषं भक्षितं । मा स्त्रीलंपट मां स्पृशेत्यभिहितो गौर्या हरः पातु वः ॥ १९१ ॥

माटे जो आपनी शक्ति होय तो मथुरामां आवेला तथा हृदयमां विष्णुनुं ध्यान धरता, जनोइथी शोभिता, नासिकाना अग्र भागपर लोचनने धारण करता, तुलसीमाळा तथा पत्रजीवनी माळाथी श्लिष्ट थयेला वक्षःस्थळवाळा, कृष्णना गुण गानारा, वैष्णवोना समूहथी वींटायेला, वराहस्वामिदेवना मंदिरनी अंदर रहेला, वैराग्यथी जेणे अनशन ग्रहण करेलुं छे एवा, पर्यंक आसनवाळीने रहेला एवा वाक्पति राजाना सामंतने प्रबोधीने आप जैन मतमां स्थापन करो ॥ १८९ ॥ पछी श्रीगुरुमहाराज पण तेने प्रतिबोधवा प्रतिज्ञा करीने चोर्यासी सामंत तथा एक हजार पंडितोथी परवार्या थका मथुरामां वराह स्वामिना मंदिर प्रते पहोंच्या ॥ १९० ॥ त्यां तेने तेवी रीते रहेला जोइने, तेनी पाछळ बेसीने आचार्य महाराज कहेवा लाग्या के, हे शंकर! तुं संध्याने नमीने हाथ जोडीने लोकोनी पासे याचे छे, तथा हे निर्लज्ज तुं मस्तकपर बीजी स्त्रीने धारण करे छे, ते पण में सहन कर्युं, वळी अमृतने (समुद्रने) मथवाथी उत्पन्न थयेली लक्ष्मी ज्यारे विष्णुनी थइ, तो तें विष शामाटे भक्षण कर्युं? माटे हे स्त्री लंपट! मने तुं स्पर्श नहीं कर? एवी रीते पार्वतीथी कहेवायेला महादेव तमारुं रक्षण करो ॥ १९१ ॥

॥ १७७ ॥ एकं ध्याननिमीलनान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः । पार्वत्या विपुले नितंबफलके शृं-
गारभारालये ॥ अन्यद् दूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपितं । शंभोर्भिन्नरसं समा-
धिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ॥ १७२ ॥ रामो नाम बभूव हुं तदबला सीतेति हुं तौ-
पितु—र्वाचा पंचवटीवने विहरतस्तां चाहरद्रावणः ॥ निद्रार्थं जननीकथामिति हरे-
र्हुंकारिणः शृण्वतः । पूर्वस्मार्तुरवंतु कोपकुटिलभ्रूभंगुरा दृष्टयः ॥ १७३ ॥ दर्प-
णार्पितमालोक्य । मायास्त्रीरूपमात्मनः ॥ आत्मन्येवानुरक्तो यः । श्रियं दिशतु
केशवः ॥ १७४ ॥

ध्याननी अंदर जोडवाथी एक चक्षुतो जेमनुं बीचायेलुं छे, तथा बीजुं शृंगारना समूहना स्थान रूप एवा पार्वतीना विस्तीर्ण नितंबतटपर स्थिर थयेलुं छे, अने त्रीजुं तो धनुष्य चढावीने रहेला एवा कामदेवपर कोध रूपी अग्निथी जाज्वल्यमान थयेलुं छे, एवी रीते समाधि वखते भिन्न भिन्न रसोवाळां एवां शंकरना त्रणे नेत्रो तमारुं रक्षण करो ॥ १७२ ॥ एक राम नामे राजा हतो, तेने सीता नामे स्त्री हती, तेओ बन्ने पिताना वचनथी पंचवटीना वनमां विचरता हता, त्यां तेणीने रावणे हरी लीधी, एवी रीते निद्रामाटे माताना कथाने हुंकारो देइने सांभळता अने तेथी पूर्वावस्थानुं स्मरण करनारा एवा हरिना क्रोधथी कुटिल तथा भ्रुकुटीथी भंगुर थयेली दृष्टिओ रक्षण करो ॥ १७३ ॥ दर्पणमां रहेलां एवां पोतानां मायावी स्त्रीरूपने जोइने जे पोतामांज अनुरक्त थया छे, ते केशव लक्ष्मी आपो ॥ १७४ ॥

इत्यादि, तच्छ्रुत्वा वाक्पतिः संमुखीभूयोचे, सूरिमिश्राः किमस्मत्पुरतः शृंगाररौद्रांगं पद्यपाठं कुरुध्वे ॥ १९५ ॥ सूरयः—युष्मद्देवाशिषः पठंतः स्मः, यथा स च हि श्रोतुः पुरः पठनीयं; वाक्पतिः—यद्यप्येवं तथापि मुमुक्षवो वयमासन्नं निधनं ज्ञात्वा इह परमब्रह्म ध्यातुमायाताः स्मः ॥ १९६ ॥ सूरयः—किं तर्हि रुद्रादयो मुक्तिदातारो भवंतीति मनुध्वे? वाक्पतिः—एवं संभाव्यते ॥ १९७ ॥ सूरयो बभाषिरे, तर्हि यो मुक्तिदानक्षमस्तं शृणु पठामः ॥ १९८ ॥ जं दिट्ठीकरुणातरंगियफुरा एयस्स सोमं मुहं। आयारोपसमागरो परियरो संतोपसन्ना तणू ॥ तं मन्ने जरजम्ममच्चुहरणो देवाहिदेवो जिणो। देवाणां अवराण दीसइ जओ नेयं सरूवं जए॥१९९॥

इत्यादि हवे ते सांभळीने वाक्पति सन्मुख थइ बोलवा लाग्यो के, हे सूरिमिश्रो अमारी आगळ शृंगार तथा रौद्ररसवाळो पद्यपाठ शा माटे करो छो ॥ १९५ ॥ त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्युं के, तमारा देवोनी अमो आशिष कहीये छीये के जे श्रोतानी पासे कहेवामां आवे छे; त्यारे वाक्पतिए कह्युं के जोके एम छे, तोपण अमोतो मुमुक्षु छीये, अमारुं मृत्यु नजदीक जाणीने अमो अहीं परम ब्रह्मनुं ध्यान धरवा माटे आव्या छीये ॥ १९६ ॥ ते सांभळी आचार्यजी महाराजे कह्युं के, शुं त्यारे रुद्र आदिक देवो मुक्ति आपनारा छे, एम तमो मानो छो? त्यारे वाक्पतिये कह्युं के, अमोने तो एवो संभव थाय छे ॥ १९७ ॥ त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्युं के, मुक्ति देवामां जे देव समर्थ छे, ते अमो तमोने कहीये छीये ते सांभळो ॥ १९८ ॥ जेनी दृष्टि दयाना तरंगोथी प्रफुल्लित थयेली छे, तथा जेमनुं मुख शांत मुद्रावाळुं छे, तथा जेमनो आकार पण शांततानी खाण रूप छे तथा जेमनो परिवार पण सज्जनतावाळो, अने जेमनुं शरीर पण प्रसन्नतावाळुं छे एवा देवाधिदेव श्रीजिनेश्वरप्रभुने जन्म, जरा तथा मृत्युना हरनारा हुं मानुं छुं, केमके बीजा देवोमां एवुं स्वरूप देखातुं नथी ॥ १९९ ॥

वाक्पतिः—स जिनः क्वास्ते? सूरयः—स्वरूपतो मुक्तौ, मूर्तितस्तु जिनायतने ॥ २०० ॥ ततः श्रीआमनृपकारिते प्रासादे श्रीजिनमूर्त्तिं दर्शयित्वा तं प्रतिबोध्य जैनधर्मं प्रतिपाद्य कियद्भिर्दिनैः कन्यकुब्जं प्राप्ताः ॥ २०१ ॥ चरैः प्रागपि ज्ञातवृत्तांतो राजा तत्संमुखं गत्वा समहं तान् प्रावेशयत् ॥२०२॥ राजाह भगवन्नद्भुतं किमपि, प्रभूणां वचःसामर्थ्यं । सोऽपि यत् प्रतिबोधितः ॥ प्रभुः प्राहाथ का शक्ति—र्मम यत्त्वं न बुध्यसे ॥ २०३ ॥ राजाह सम्यग् बुद्धोऽस्मि । त्वद्धर्मोऽस्तीति निश्चितं ॥ माहेश्वरं पुमर्धर्मं । मुंचतो मे महाव्यथा ॥ २०४ ॥

ते सांभळी वाक्पतिए कह्युं के, एवा जिन क्यां छे? त्यारे आचार्यजीए कह्युं के, स्वरूपथी तो तेओ मुक्तिमां छे, अने मूर्त्तिथी जिनालयमां बिराजे छे ॥ २०० ॥ पछी श्रीआम राजाए करावेलां मंदिरमां रहेली जिनमूर्त्ति तेने देखाडीने, तथा प्रतिबोध पूर्वक तेने जिन धर्म अंगीकार करावीने केटलेक दिवसे आचार्यजी महाराज कन्यकुब्जमां पधार्या ॥ २०१ ॥ दूतो मारफते प्रथमथीज ते वृत्तांत राजाए जाणेलो होवाथी, तेमनी सन्मुख जइ महोत्सव पूर्वक तेमनो तोए प्रवेश कराव्यो ॥ २०२ ॥ पछी राजाए कह्युं के, हे भगवन्! आपना वचनोनुं सामर्थ्य तो कंइक अद्भुतज छे, केमके आपे ते वाक्पति जेवाने पण प्रतिबोध्यो; त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्युं के, ज्यांसुधि तमो प्रतिबोध पामता नथी, त्यांसुधि मारी शक्ति शा कामनी छे ॥ २०३ ॥ त्यारे राजाए कह्युं के, आपनो धर्म उत्तम छे, एम हवे हुं सारी रीते जाणुंछुं, परंतु शिवधर्मने छोडतां मने महादुःख थाय छे ॥ २०४ ॥

तेन हे भगवन् पृच्छामि को मे पूर्वभवः? प्रधाना अपि तदा प्राहुः भगवन् प्रसद्य नृपपूर्वभवः कथ्यतां ॥ २०५ ॥ ततः प्रभुः प्रश्नचूडामणिशास्त्रबलेन तं प्राहः, शृणु भूपते, कालिंजराख्यस्य गिरेः शालद्रुमोर्ध्वस्थशाखाबद्धभुजद्वयोऽधोमुखो ॥२०६॥ जटाकोटिसंस्पृष्टभूतलो, षष्ठे षष्ठे मिताहारी, रागादिरहितः, साग्रं वर्षशतं घोरं तपस्तप्त्वायुःप्रांते त्वं राजाऽभूः ॥ २०७ ॥ यदि न प्रत्ययस्तदा सुभटान् प्रेषय, अद्यापि तत्तरोरधःस्था जटा आनायय, इति श्रुत्वा नृपो जटा आनाययत् ॥ २०८ ॥ मुनींद्रोऽयं महाज्ञानी कोऽप्यात्र इति प्रशंसां चक्रे च ॥ २०९ ॥

माटे हे भगवन् ! हुं आपने पूछुं छुं के, मारो पूर्व भव शुं हतो ? ते वखते प्रधानो पण आचार्यजीने कहेवा लाग्या के, हे भगवन् ! आप साहेब कृपा करीने राजानो पूर्व भव कहो ॥ २०५ ॥ त्यारे आचार्यजी महाराजे प्रश्नचूडामणि नामना शास्त्रना बळथी तेने कह्युं के हे राजन् ! सांभळो. कालिंजर नामना पर्वतमां शाल वृक्षनी ऊंची डाळीमां जेणे बे हाथ बांधी नीचे मुख करेलुं छे, एवो ॥ २०६ ॥ जेनी जटाना छेडा नीचे भूमीपर स्पर्श करी रहेला छे एवो, बबे दिवसे मित भोजन करनारो, राग आदिकथी रहित, एवो तुं सवासो वर्ष सुधी घोर तप तपीने छेवटे आयुः क्षय थवाथी राजा थयो ॥ २०७ ॥ जो तने प्रतीति न आवती होय, तो त्यां तुं सुभटोने मोकल. तथा हजु पण ते वृक्ष नीचे रहेली तारी जटा मंगाव. ते सांभळी राजाए ते जटा मंगावी ॥ २०८ ॥ तथा आचार्यजीनी प्रशंसा करवा लाग्यो के, आ तो कोइक महाज्ञानी मुनींद्र अहीं पधार्या छे ॥ २०९ ॥

अन्यदा प्रपंचश्राद्धैरपि दुर्ग्राह्यं राजगिरिनगरं राजा रुरोध, तत्र समुद्रसेनो राजा, स-प्राकारः कथमपि ग्रहीतुं न शक्यते ॥२१०॥ ततो राजा सूरिं पप्रच्छ, भगवन् कथं ग्राह्योऽयं प्राकारः? सूरिः प्रश्नचिंतामणिशास्त्राद्विचार्याब्रवीत् ॥ २११ ॥ पौत्रस्ते भोजश्चमं ग्रहीष्यति, ततो दृढाद्राजा तत्रैव द्वादशवर्षाण्यस्थात् ॥ २१२ ॥ ततो दुंदुकनाम्नः सुतस्य सुतोऽजनि, स च पर्यंकिकान्यस्तः प्रधानैर्जातमात्र एव दुर्गासन्नमानीतः, तन्मुखं संमुखं कृत्वा स दुर्गो गृहीतः ॥ २१३ ॥ परं दुर्गाधिष्ठाता यक्षः प्रतोलीस्थो जनान् हंति, ततस्तत्र गत्वा राज्ञोक्तं यक्षराजलोकं मुक्त्वा मामेव घातय ॥ २१४ ॥

हवे एक दहाडो श्रावो उपायोथी पण ग्रहण न करी शकाय एवा राजगिरि नामना नगरने राजाए घेरो घाल्यो, परंतु त्यां किल्लो बंधी करीने रहेला समुद्रसेन राजाने कोइ पण रीते ते जीती शक्यो नहीं ॥ २१० ॥ त्यारे राजाए आचार्यजी महाराजने पूछ्युं के हे भगवान् ! आ किल्लो हवे केवी रीते लइ शकाय ? त्यारे आचार्यजी महाराजे पण प्रश्नचिंतामणिशास्त्रथी विचारीने कह्युं के ॥ २११ ॥ तारो पौत्र भोज आ किल्लो लेशे; पछी हठथी राजा तो बार वर्ष सुधी त्यांज पडाव नाखीने रह्यो ॥ २१२ ॥ पछी एटलामां तेना दुंदुक नामना पुत्रनो पुत्र जन्म्यो, तेज वखते प्रधानो ते पुत्रने पालखीमां बेसाडी ते किल्लानी नजदीक लाव्या, तथा तेनुं मुख किल्ला सन्मुख करीने ते किल्लो लीधो ॥ २१३ ॥ परंतु किल्लानो अधिष्ठायक यक्ष दरवाजामां रह्यो थको लोकोने हणवा लाग्यो, त्यारे राजाए त्यां जइ कह्युं के हे यक्षराज ! लोकोने छोडीने मनेज तुं मारी नाख ॥ २१४ ॥

ततो नृपस्य सत्वेन संतुष्टो जनोपद्रवान्निवृत्तो मैत्रीं प्रपेदे; आमो मित्रयक्षपार्श्वे स्वायुर्मानं पप्रच्छ ॥ २१५ ॥ षण्मास्यामेव शेषायां कथयिष्यामीत्युक्त्वा यक्षस्तिरोऽभूत्; अवसरे च स तदब्रवीत् ॥ २१६ ॥ गंगांतर्मागधेन तीर्थेनावतरतस्ते मृत्युरस्ति, जलात्कूर्मं निर्यंतं दृष्ट्वा तदभिज्ञानं ज्ञेयं ॥ २१७ ॥ प्रेत्यार्थमाचरेति च; ततो राजा श्रीगुरूपदेशान्महता विस्तरेण श्रीशत्रुंजययात्रां कृत्वा दिगंबरगृहीतं श्रीगिरनारतीर्थमवालयत् ॥ २१८ ॥ ततः स्वपुरं प्राप्य ढुंढुकं राज्ये निवेश्य प्रजाः क्षमयित्वा गंगातीरस्थमागधतीर्थं प्रति चलन्नावमारुरोह सूरिणा सह ॥ २१९ ॥

पछी राजाना पराक्रमथी संतुष्ट थइ ते लोकोने उपद्रव करवाथी अटक्यो, तथा मित्ररूप थयो पछी आम राजाए ते यक्षरूपी मित्रनी पासे पोताना आयुनुं प्रमाण पूछ्युं ॥ २१५ ॥ त्यारे यक्षे कह्युं के, छ मास ज्यारे बाकी रहेशे, त्यारे कहीश, एम कही ते अलोप थयो; तथा अवसर आव्ये तेणे कह्युं के ॥ २१६ ॥ गंगानी अंदर मगध नामना तीर्थथी उतरतां तारुं मृत्यु छे, जळमांथी काचबाने निकळतो जोइने तेनुं एंधाण जाणवुं ॥ २१७ ॥ माटे हवे परलोक माटे नुं सावधान था? पछी राजाए श्री गुरुमहाराजना उपदेशथी मोटा विस्तारपूर्वक श्रीशत्रुंजय तीर्थनी यात्रा करीने दिगंबरोए ग्रहण करेलां श्रीगिरनार तीर्थने पाछुं वाळ्युं ॥ २१८ ॥ पछी पोताना नगरमां आवीने तथा ढुंढुकने गादीए बेसारीने, अने प्रजाने खमावीने गंगाने कांठे रहेला मागध तीर्थन प्रत्ये चालतो थको आचार्य महाराजनी साथे ते राजा नावमां चड्यो ॥ २१९ ॥

तन्मध्ये भूमनिर्गमं दृष्ट्वा व्यंतराख्याते स्मृते सूरिरामनृपमाह, प्रांतेऽपि जैनं धर्मं प्रपद्यस्व ॥ २२० ॥ ततो राजा जैनं धर्मं प्रपद्योत्तमार्थमसाधयन्नमस्काराराधनपरः ॥ २२१ ॥ ततः श्रीबप्पभट्टिगुरुः कन्यकुब्जं प्राप्तः, स्वगच्छमपालयदिति ॥२२२॥ एवं श्रीबप्पभट्टिगुरवः श्रीआमनृपं दुष्प्रतिबोधमपि मनोगतसमस्याकवित्वादिगोष्ठ्या यथा तन्मनोऽनुवृत्तितः तस्यैहिकापन्निस्तारणतदुपायप्रकटनादिसमाचरणेन च प्रीण- यंतो मैत्रीवृत्त्या प्रत्यबोधयत् धर्मं मनाक् ॥ २२३ ॥ नृपस्याऽनानुकूल्यं ज्ञात्वा च दूना देशांतरेऽपि व्यहार्षुस्तेन मित्रतुल्याः, एवमन्येपीति कृता मित्रदृष्टांतभावना ॥ २२४ ॥

पछी तेमांथी धूमाडो नीकळतो जोइने व्यंतरनुं वचन याद आवी आचार्यजी महाराज आम राजाने कहेवा लाग्या के, हवे छेवटे पण तुं जैनधर्म अंगीकार कर ॥ २२० ॥ पछी राजाए जैन धर्म अंगीकार करीने नवकारना आराधनमां तत्पर थइ उत्तमार्थ साध्यो ॥ २२१ ॥ पछी बप्पभट्टिजी महाराज कन्यकुब्जमां पधारी पोताना गच्छने संभाळवा लाग्या ॥ २२२ ॥ आ श्री बप्पभट्टिजी गुरु महाराजे श्री आमराजा के जेने प्रतिबोधवो मुश्केल हतो, तेने पण तेना मननी समस्या पूरीने, तथा काव्य आदिकनी गोष्ठिथी, तथा तेना मन मुजब वर्तीने, तेमज तेने आ लोक संबंधि दुःखथी निवारीने, तथा दुःखथी छुटवानो उपाय देखाडवा आदिकवडे करीने खुशी करीने मित्रवृत्तिथी धर्ममां प्रतिबोध्यो ॥ २२३ ॥ तेमज राजाने जराक अनादर जोइने पण रीसाइने देशांतरमां तेमणे विहार कर्यो, माटे तेओने मित्रसमान गुरु जाणवा, एवी रीते बीजाओने पण जाणवा, एवी रीते मित्रना दृष्टांतनी भावना कही ॥ २२४ ॥

बंधुरित्ति, यथा बंधुः सदापि सस्नेहहृदय एव, निजबंधुं शिक्षयति हितादि यथा-वसरं, परं तथा विनयोपचारादिकर्मस्वनादरः ॥ २२५ ॥ नापि तदपेक्षी परस्मादपि, विशिष्य पराभवे संकटादौ च भवत्येव तस्य सहायः ॥ २२६ ॥ तथा केचिद्गुरवः श्रद्धालुषु जनेष्वकृत्रिमाऽतुलवात्सल्यभृतः सदाप्युपदिशंति परमार्थहितं धर्म, न पुन-स्तद्विषयगुणसंस्तवादौ[illegible]विनोदोपचारक्रियासु तथादरभाजः ॥ २२७ ॥ नापि ते-भ्यस्तादृग् बाह्योपचाराद्याकांक्षिणो. विशिष्य परंपराभवे रोगातंकादौ संकटेष्वैहि-केऽपि धर्मस्थिरीकरणाद्यर्थं ॥ २२८ ॥

हवे जेम बंधु हमेशां स्नेहयुक्त हृदयवाळोज होय छे, तथा पोताना बंधुने योग्य अवसरे हितशिखामण आदिक पण आपे छे, परंतु तेवी रीतना विनय उपचार आदिकना कार्योमां आदरवाळो न होय ॥ २२५ ॥ तेमज सामो तेनी पासेथी तेनी अपेक्षा राखतो नथी, परंतु तेथी आगळ वधीने, बंधुने पराभव तथा संकट आदिक आदिकमां ते मदद करे छे ॥ २२६ ॥ एवी रीते केटलाक गुरुओ श्रद्धालु लोको प्रत्ये खरा दिलथी अत्यंत वत्सलतावाळा थया थका हमेशां परमार्थवाळो हितकारी धर्म उपदेशे छे, परंतु तेओना गुणोनी प्रशंसा करवामां, के तेओने खुशी करवा माटे बीजा उपाय आदिकोमां एवा आदरवाळा होता नथी ॥ २२७ ॥ तेम तेओ तरफथी बाह्य उपचार आदिकनी आशा राखता नथी; पण तेथी आगळ वधीने उलटा पराभव समये, तेमज रोग, आदिक आ लोक संबंधि संकट वखते पण तेओने धर्ममां स्थिर करवा आदिक माटे ॥२२८॥

पारत्रिकेऽपि च धर्मादिगोचरे जवंत्येव तेषां साहाय्यः कृतः सर्वशक्त्यापि यथा श्रीहेमचंद्रगुरवः श्रीकुमारपालनृपं प्रति, तथाहि---॥ २२९ ॥ अन्यदा श्रीजयसिंहदेवे गुर्जरधात्र्या राज्यं शासति, तद्भयान्नष्टवृत्त्या भ्राम्यन् श्रीकुमारपालः स्तंभतीर्थे प्राप्तः ॥ २३० ॥ तत्र जिघांसुतया प्राप्तराजनरेभ्यः परित्रातः श्रीहेमसूरिभिः शालास्थभूगृहनिक्षेपादिना ॥ २३१ ॥ कथमपि ततः क्रमाद्राज्यप्राप्तौ पत्तने श्रीहेमचंद्रगुरवो विद्युदग्निभ्यस्तारयांचक्रुस्तं, तद्यथा—॥ २३२ ॥ अन्यदा श्रीगुरवोऽपृच्छन्नुदयनमंत्रिणं, राजास्माकं स्मरति न वा ॥ २३३ ॥

तेम परलोक संबंधि धर्म आदिक कार्यमां तेओने ज्यांसुधी बने त्यांसुधी सहाय करनारा थायज छे; जेम श्रीकुमारपाल राजा प्रत्ये श्रीहेमचंद्राचार्य: तेमनुं वृत्तांत नीचे मुजब छे ॥ २२९ ॥ एक वखते सिद्धराज जयसिंह गुर्जरभूमिपर ज्यारे राज्य करता हता, ते वखते तेना भयथी नासता फरता कुमारपाल खंभातमां आव्या ॥ २३० ॥ त्यां तेने मारवानी इच्छाथी ज्यारे राजाना माणसो आवी पहोंच्यां, त्यारे श्रीहेमचंद्रजीए तेमने पौषधशाळामां रहेला भोंयरामां संताडवा आदिकथी तेमनुं रक्षण कर्युं हतुं ॥ २३१ ॥ त्यारबाद अनुक्रमे कोइक रीते तेने राज्य मळया बाद पाटणमां श्रीहेमचंद्रजीए तेमनुं विजळीना विघ्नथी रक्षण कर्युं, ते नीचे मुजब छे ॥ २३२ ॥ एक दहाडो श्रीहेमचंद्रजी गुरुमहाराजे उदयनमंत्रीने पुछयुं के, राजा अमोने कंइ याद करे छे ? के नहीं ॥ २३३ ॥

मंत्रिणोक्तं नेति, ततोऽन्यदोचे श्रीगुरुभिः मंत्रिन्नद्य नृपं रहो ब्रूयाः, अद्य त्वया नव्यराज्ञीगृहे न गंतव्यं न सुप्तव्यं, रात्रौ, सोपसर्गत्वात् ॥ २३४ ॥ केनोक्तमिति पृच्छेच्चेत्तदाऽत्याग्रहे मन्नाम वाच्यमिति ॥ २३५ ॥ ततो मंत्रिणा तथोक्ते राज्ञा तथाकृते निशि विद्युत्पातात्तस्मिन् गृहे दग्धे, राज्यां च मृतायां चमत्कृतो राजा जगाद सादरं ॥ २३६ ॥ मंत्रिन् कस्येदमनागतं ज्ञानं? महत्परोपकारित्वं चेत्यतिनिर्बंधे मंत्रिणोचे श्रीगुरुस्वरूपं ॥ २३७ ॥ प्रमुदितो नृपस्तानाकारयामास सदसि, श्रीगुरून् दृष्ट्वाऽऽसनादुत्थाय वंदित्वा प्रांजलिरुवाच ॥ २३८ ॥ भगवन् तदा स्तंभतीर्थे रक्षितोऽहं श्रीपूज्यैः, संप्रति चास्मादुपसर्गात् ॥ २३९ ॥

त्यारे मंत्रीए कह्युं के, नथी खबर पडता; पछी एक दहाडो श्री आचार्यजी महाराजे उदयनमंत्रीने कह्युं के, हे मंत्री! आजे तमारे राजाने एकांतमां कहेवुं के, आजे तमारे नवी राणीने महोले जवुं के सूवुं नहीं, केमके रात्रिए त्यां उपसर्ग थवानो छे ॥ २३४ ॥ वळी तमोने ते पूछे के, आम कोणे कह्युं? त्यारे अत्यंत आग्रह जो करे, तो तमारे मारुं नाम लेवुं ॥ २३५ ॥ पछी मंत्रीए तेम कहाथी, तथा राजाए पण तेम कर्याथी, अने रात्रिये विजळीना पडवाथी ते घर बळते छते, अने राणी मृत्यु पामते छते आश्चर्य पामेलो कुमारपाळ राजा आदरसहित कहेवा लाग्यो के ॥ २३६ ॥ हे मंत्रि! आवुं जविष्यज्ञान तथा महान् परोपकारीपणुं कोनुं छे? एवी रीते घणा आग्रहपूर्वक पूछवाथी मंत्रिए गुरुमहाराजनुं स्वरूप कह्युं ॥ २३७ ॥ त्यारे राजाए खुशी थइने तेमने सजामां बोलाव्या, तथा गुरु महाराजने जोइने आसन थकी उठीने वंदना करीने हाथ जोडी ते कहेवा लाग्यो के ॥ २३८ ॥ हे जगवन्! ते वखते स्तंभतीर्थमां आप साहेबे मारुं रक्षण कर्युं छे, तेमज हमणां आ उपसर्गथी आपे मारुं रक्षण कर्युं छे ॥ २३९ ॥

ततो निष्कारणप्रथमोपकारिणां पूज्यानां कथंचनाप्यहं नाऽनृणो भवामि, ततो राज्यमिदं गृहीत्वा मामनुगृहाणेति ॥ २४० ॥ ततः सूरिरुवाच, राजन्निःसंगानामस्माकं किं राज्येन, कृतज्ञत्वेन राजेंद्र । चेत् प्रत्युपचिकीर्षसि ॥ आत्मनीने तदा जैनधर्मे धेहि निजं मनः ॥ २४१ ॥ ततो राजाह, भवदुक्तं करिष्येऽहं । सर्वमेव शनैः शनैः ॥ कामयेऽहं परं संगं । निधेरिव तव प्रभो ॥ २४२ ॥ इत्यादि, ततः श्रीगुरुर्नृपस्य यथावसरं धर्मं दिशति, नृपश्च कदाचिद् गुरूपाश्रये आयाति, कदाचिदाकारयत्यास्थाने श्रीगुरुं ॥ २४३ ॥ अन्यदा श्रीकुमारनृपः सोमेश्वरयात्रायै चलन् श्रीगुरून् सहाकारयामास ॥ २४४ ॥

माटे निष्कारण प्रथम उपकारी एवा आप साहेबनो हुं कोइ पण रीते अनृणी थइ शकुं तेम नथी, माटे हवे तो आ राज्य तमो ग्रहण करीने मारापर अनुग्रह करो ॥ २४० ॥ त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्युं के, हे राजन्! निःसंग एवा अमोने राज्यनी शी जरुर छे ? वळी हे राजन! जो तमो कृतज्ञपणाथी प्रत्युपकार करवाने इच्छता हो, तो तमारा आत्माने हितकारी एवा जैन धर्ममां तमारुं मन जोडो ॥ २४१ ॥ त्यारे राजाए कह्युं के, तमोए कहेलुं सघळुं हुं धीरे धीरे करीश, परंतु हुं निधाननी पेठे हे प्रभु! आपनो संग इच्छुं छुं ॥ २४२ ॥ इत्यादि, त्यारबाद श्रीगुरुमहाराज योग्य अवसरे राजाने धर्मनो उपदेश करे छे, तथा राजा पण कोइ कोइ समये गुरुने उपाश्रये आवे छे, तथा कोइक वखते गुरु महाराजने पण सभामां बोलावे छे ॥ २४३ ॥ एक वखते श्रीकुमारपाळ राजाए सोमनाथनी यात्रा माटे चालतां थकां श्रीगुरुमहाराजने साथे लीधा ॥ २४४ ॥

क्रमात्तीर्थे प्राप्तः कृतसकलकृत्यश्च रात्रौ सोमेश्वरप्रासादगर्भगृहे श्रीसूरीनाकार्य स्माह ॥ २४५ ॥ हे भगवन् देवः सोमेशः, महर्षिर्भवान्, तत्त्वार्थी च मादृश इत्यस्मिंस्तीर्थे त्रिकयोगस्त्रिवेणीसंगम इवाद्य जज्ञे ॥ २४६ ॥ मिथो विरुद्धसिद्धांतवादिदर्शनैर्देवगुरुतत्त्वानि भिन्नभिन्नतया प्रोच्यंते स्म, तदद्य रागद्वेषौ विमुच्य प्रसद्य सम्यग् देवादितत्त्वं प्रसादय ॥ २४७ ॥ ततः किंचिद्विचार्योचुः श्रीगुरवः, राजन् शास्त्रसंवादेनालं, शिवं प्रत्यक्षयामि तव पुरः, धर्मं वा दैवतं वापि। यदयं वक्ति शंकरः ॥ तदुपास्तिस्त्वया धेया। मृषा न खलु देवगीः ॥ २४८ ॥

अनुक्रमे तीर्थमां पहोंच्या, तथा त्यां सघळुं कार्य करीने रात्रिये सोमेश्वरना मंदिरना गंभारामां आचार्यजी महाराजने बोलावीने तेमणे कह्युं के ॥ २४५ ॥ हे भगवन्! सोमेशदेव, तमो महान् ऋषि, अने मारा सरखो तत्वनो अर्थी, एवी रीते आ तीर्थमां त्रिवेणीना संगमनी पेठे आजे त्रिकयोग थयो छे ॥ २४६ ॥ परस्पर विरुद्ध सिद्धांतोने केहेनारा दर्शनो देवगुरु संबंधि तत्वो भिन्न भिन्न रूपे कहे छे, माटे आजे रागद्वेषने छोडीने तथा मारापर कृपा करीने सम्यक् प्रकारे देव आदिक तत्व समजाववानी कृपा करो ॥ २४७ ॥ त्यारे श्रीगुरुमहाराजे जरा विचार करीने कह्युं के, हे राजन्! शास्त्र संबंधि संवादथी तो हवे सर्युं, हवे तमारी आगळ हुं आ शिवनेज प्रत्यक्ष करुं छु, अने ते शंकर जे धर्म अथवा देवता कहे, तेनी तमोर सेवा करवी, केमके देववाणी मिथ्या होय नहीं ॥ २४८ ॥

ततोऽस्मरन्मंत्रं श्री–सूरयः अर्धरात्रे लिंगमध्याज्ज्योतिस्तन्मध्ये महेशो गंगाजटाशशिकलादृक्त्रयाद्युपलक्षितः प्रत्यक्षीबभूव ॥ २४९ ॥ श्रीगुरवो ध्यानं मुक्त्वा राजानं स्माहुः, नृप पश्य पुरः शिवं, एनं प्रसाद्य पृष्ट्वा च सम्यक्तत्त्वविदां कुरु ॥२५०॥ राजापि हृष्टः प्रणम्य तं पप्रच्छ, ईशा उवाच, हेकुमार! चेत्त्वं भुक्तिमुक्तिप्रदं धर्ममिच्छसि ॥ २५१ ॥ तदा सर्वदेवावतारोऽजिह्मब्रह्मभृदेषगुरुर्ब्रह्मेव क्ष्मातलेऽधुना जयतीत्येतदादिष्टं तन्वन् स्वेष्टमाप्स्यसीत्युक्त्वा तिरोऽधात् ॥ २५२ ॥ ततो विस्मेरो नृपः सूरिमूचे, त्वमेव मेऽसीश्वरो यस्येश्वरोऽपि वश्यः, अतःप्रभृति मे देवो । गुरुस्तातः सवित्र्यपि ॥ सहोदरो वयस्यश्च । त्वमेवैकोऽसि नाऽपरः ॥ २५३ ॥

पछी आचार्यजी महाराजे मंत्रनुं स्मरण कर्युं, जेथी अर्ध रात्रिये लिंगमांहेथी ज्योति प्रगट थइ, अने तेनी अंदर जटामां गंगावाळा, चंद्रकळावाळा, तथा त्रण नेत्र आदिकोथी उपलक्षित थयेला महेश्वर प्रगट थया ॥ २४९ ॥ त्यारे गुरुमहाराजे ध्यान मूकीने राजाने कह्युं के, हे राजन्! आ तमारी पासे शिवने जुओ? तथा तेमनी सेवा करीने अने पूछीने सम्यक् तत्त्वनुं निराकरण करो ॥ २५० ॥ त्यारे राजाए पण खुशी थइने, तथा तेने नमीने पूछयुं, त्यारे महादेवे कह्युं के, हे कुमारपाळ! जो तमो भोग अने मोक्ष देनारा धर्मने इच्छता हो तो ॥ २५१ ॥ सर्व देवोना अवताररुप तथा अखंड ब्रह्मने धारण करनारा आ गुरु पृथ्वीतळपर हमणा ब्रह्मानी पेठेज जयवंता वर्त्ते छे, माटे तेमना कहेवा मुजब वर्त्तवाथी तमो इच्छित प्राप्ति मेळवी शकशो, एम कहीने ते अलोप थया ॥ २५२ ॥ पछी आश्चर्य पामेलो राजा आचार्यजी महाराजने कहेवा लाग्यो के, आपज मारा इश्वर छो, के जेने इश्वर पण वश थयेला छे; माटे आजथी तो एक आपज मारा देव, गुरु, पिता, माता, सहोदर तथा मित्र छो, बीजो कोइ नथी॥२५३॥

इह लोकः पुराऽदायि । मह्यं जीवितदानतः ॥ शुद्धधर्मोपदेशेन । परलोकोऽद्य दीयतां ॥ २५४ ॥ ततः क्रमात्सूरिवचसा सम्यक्त्वाभिमुखोऽभूत् श्रीशांतिप्रतिमां देवतावसरेऽतिष्ठिपत् ॥ २५५ ॥ अथ नृपं श्रीजिनधर्मानुरक्तं ज्ञात्वा विप्रैराकारितः प्रत्यक्षसरस्वतीको महेंद्रजालादिविद्याचूडामण्यादिशास्त्रैरतीतानगतादिवेत्ता पूरकरेचककुंभकपवनसाधनापटुश्चतुरशीत्यासनकरणप्रवण आमतंतुबद्धकमलनालकदलीपत्रासनाद्यधिरोही यथार्हरूपक्रियापटुर्देवबोधिः पत्तने प्रागात् ॥ २५६ ॥ राज्ञा समहं प्रवेशितः, कमलनालदंडमामतंतुबद्धं कदलीपत्रमयासनं अष्टवार्षिकशिशुसुंधन्यस्तमारुह्य नृपसदस्यागात् ॥ २५७ ॥

वळी आप साहेबे प्रथमज मने जीवितदानथी आ लोक तो आपेलो छे, अने हवे आज शुद्ध धर्मना उपदेशथी परलोक पण आपो ? ? ॥ २५४ ॥ पछी अनुक्रमे ते राजा आचार्यजी महाराजना वचनथी समकित सन्मुख थयो, तथा पूजा समये श्रीशांतिनाथजी महाराजनी मूर्ति ते स्थापन करवा लाग्यो ॥ २५५ ॥ हवे राजाने श्री जैनधर्ममां रक्त थयेलो जाणीने ब्राह्मणोये बोलावेलो देवबोधि पाटणमां आव्यो, ते देवबोधि केवो छे ? तोके, प्रत्यक्ष छे सरस्वति जेने एवो महा इंद्रजालादि विद्या तथा चूडामणि आदिक शास्त्रोथी भूत भविष्य आदिक जाणनारो, पूरक, रेचक तथा कुंभक वायुनी साधनामां चतुर, चोर्यासी आसनो वाळवामां तत्पर, काचा सुतरथी बांधेली कमळनी दांडी तथा केळना पानना आसन आदिकपर चडनारो, अने यथायोग्य रूपक्रियामां पण ते समर्थ हतो. ॥ २५६ ॥ पछी राजाए तेने महोत्सवपूर्वक प्रवेश कराव्यो, त्यारे ते पण कमळना दंडवाळां काचां सुतरथी बांधेलां, केळनां पांदडांनां बनावेलां, तथा आठ वर्षना बाळकनी सांधे मुकेलां आसनपर बेसीने राजसभामां आव्यो ॥ २५७ ॥

सर्वेषां विस्मयः, आसने निवेशित आशीःपुरस्सरं तत्तदद्भुतकलाविज्ञानाऽपूर्वप्रबंधादिभिर्नृपं परिकरं चाऽरंजयत् ॥ २५८ ॥ ततो विसृष्टसभः क्ष्मापो देवतावसरणाय प्राप्तः, देवबोधिरपि वयमाद्य राज्ञो देवपूजाविधिं विलोकयिष्याम इत्यादिवादी राज्ञाऽकारितस्तत्रागात् ॥ २५९ ॥ राजापि कांचनपट्टे शंकरादिदेवान् श्रीशांतिप्रतिमां च निवेश्य पूजयामास ॥ २६० ॥ तदा जिनप्रतिमां दृष्ट्वाऽवादी देवबोधिः, राजन्नयुक्तं तवैतत्पूजनादि, यतः—'अवेदस्मृतिमूलत्वा—ज्जिनधर्मो न सत्तमः' ॥ अपि च 'नोल्लंघनीयाः कुलदेशधर्माः' ॥ २६१ ॥

तेने जोइ सर्व लोकोने घणुं आश्चर्य लाग्युं. पछी आसनपर बेसाड्या बाद आशिर्वादपूर्वक तेणे ते ते अद्भुत कलाओनी चतुराइथी तथा अपूर्व प्रबंध आदिकोथी राजाने तथा परिवारने खुशी कर्या ॥२५८॥ पछी राजा सभा विसर्जन करीने देवपूजा करवा माटे चाल्यो, त्यारे देवबोधिये कह्युं के आजे अमो पण राजानी देवपूजानी विधि जोइशुं, तेथी राजाए बोलाववाथी ते पण त्यां आव्यो ॥ २५९ ॥ ते वखते राजा पण सुवर्णना पाटलापर शंकर आदिक देवोने तथा श्री शांतिनाथ प्रभुनी प्रतिमाने स्थापीने पूजा करवा लाग्यो ॥ २६० ॥ त्यारे त्यां जिन प्रतिमाने जोइने देवबोधि बोल्यो के राजन्! आ तमारुं पूजन आदिक अयुक्त छे, केमके वेद अने स्मृति रहित होवाथी जैनधर्म सत्य नथी; तेमज वळी कुळधर्म तथा देशधर्मनुं उल्लंघन न करवुं जोइए ॥ २६१ ॥

किंच,—। निंदंतु नीतिनिपुणा यदिवा स्तुवंतु'० इत्यादि ॥ २६२ ॥ ततो नृपोऽवोचत्, हे देवबोधे श्रौतो धर्मो हिंसाकलुषत्वेनाऽसर्वज्ञप्रणीतत्वेन च मम मनसि न प्रतिभाति, जैनस्तु सर्वजीवदयासंवादसुंदरत्वेन भृशं स्वदते ॥ २६३ ॥ पुनर्देवबोधिः प्रोचे, राजन् यदि न प्रत्येषि तदा महेश्वरादिदेवान् स्वपूर्वजांश्च मूर्तिमतोऽत्रागतान् स्वमुखेन पृच्छेति निगद्य विद्याशक्त्या तानदीदृशत् ॥ २६४ ॥ अत्र महेश्वरादिदेवत्रयपूर्वजसंवादो देवबोधिवचनानुसारेण ज्ञेयः, यावदस्मत्प्रतिकृतिरेष देवबोधिर्महायतिर्गुरुतया स्वीकार्य इत्याद्युक्त्वा ते सर्वे तिरोदधुः ॥ २६५ ॥ ततो नृपो विस्मितः सोमेशोक्तं तदुक्तं च स्मरन् जड इवाऽजनि ॥ २६६ ॥

वळी ' नीतिनिपुणो निंदे अथवा स्तुति करे ' इत्यादि ॥ २६२ ॥ त्यारे राजाये कह्युं के, हे देवबोधि! वैदिक धर्म हिंसाथी कलुषित थयेलो छे, तेमज सर्वज्ञ प्रभुनो रचेलो नथी, माटे मारा मनने ते रुचतो नथी, अने जैनधर्म तो सर्व जीवो प्रत्ये दयावाळो सुंदर होवाथी मने बहु रुचे छे ॥ २६३ ॥ त्यारे वळी देवबोधिये कह्युं के, हे राजन्! जो तमोने खातरी न थती होय, तो अहीं साक्षात् मूर्तिरूपे आवेला महेश्वर आदिक देवोने तथा तमारा पूर्वजोने तमारा मुखथीज पूछो ? एम कही पोतानी विद्याशक्तिथी तेणे तेओने देखाड्या ॥ २६४ ॥ अहीं महेश्वर आदिक त्रणे देवो तथा पूर्वजो संबंधि संवाद देवबोधिना वचन प्रमाणेज जाणी लेवो; ते एटले सुधिके, आ देवबोधि महायति अमारीज मूर्त्ति छे, तथा तेने तारे गुरु रूपे स्वीकारवो, एम कही तेओ सघळा अलोप थया ॥ २६५ ॥ ते जोइ विस्मय पामेलो राजा सोमेशे कहेलुं अने तेओए कहेलुं याद करतो थको जड जेवो थइ गयो ॥ २६६ ॥

अथ मंत्रिवचसा ज्ञाततत्स्वरूपाः श्रीहेमसूरयः क्ष्मापतेः सांशयिकमिथ्यात्वापदो निस्तारयितुं प्रातर्निर्वृत्तितो दूरे सप्तगड्डिकमासनमध्यास्य स्थिताः ॥ २६७ ॥ ततो देवबोधेः समः कलावान् गुरुर्न दृश्यते कोऽपि, परं निजगुरौ श्रीहेमाचार्ये किंचित्कला-कौशलं संभाव्यते नवेति मंत्र्यूचे स्वामिन् प्रातर्देवबोध्यादिसमक्षं पृच्छ्यंते गुरव इ-त्यादि मंत्रिवचसा देवबोध्यादिपरिवृतः प्रातर्गुरून्ननाम ॥२६८॥ ततोऽध्यात्मशक्त्या पंचा-पि मारुतान्निरुध्यासनात् किंचिदुच्चस्थव्याख्यातुमारेभिरे गुरवः ॥२६९॥ तावता पूर्व-संकेतितः शिष्योऽधरासनमाकृषत्, ततो निराधारा एवाऽस्खलितवचनैः सार्धप्रहरं व्याख्यांतिस्म ॥ २७० ॥

हवे मंत्रिना वचनथी राजानुं ते स्वरूप जणाया बाद श्रीहेमचंद्रजी राजाने संशयवाळा मिथ्यात्वरूप दुःखथी निवर्त्तन करवाने प्रभाते भीतथी छेटे सात गादीवाळुं आसन बीछावी तेपर बेठा ॥२६७॥ पछी राजा मंत्रिने कहेवा लाग्यो के, हे मंत्रि ! देवबोधि सरखो कळावान बीजो कोइ गुरु देखातो नथी, तोपण आपणा गुरु हेमचंद्राचार्यमां पण कंइ कळाकौशल्य छे के नहीं ? त्यारे मंत्रिये कह्युं के, हे स्वामी ! प्रभाते आपणे ते माटे देवबोधिनी समक्ष गुरुमहाराजने पुछीशुं, इत्यादि मंत्रिना वचनथी राजाए देवबोधि आदिक परिवार सहित प्रभाते श्रीहेमचंद्रजी महाराजने नमस्कार कर्यो ॥ २६८ ॥ त्यारे पोतानी अध्यात्मशक्तिथी पांचे वायुने रोकीने, तथा आसनथी कंइक उंचा रहीने गुरुमहाराज व्या-ख्यान वांचवा लाग्या ॥ २६९ ॥ एटलामां पूर्वथी संकेत करेला शिष्ये नीचेनुं आसन खेंची लीधुं, अने तेथी आधाररहितज गुरुमहाराजे अधर रहीने दोढ पहोर सुधी अस्खलित वचनोथी उपदेश आप्यो ॥ २७० ॥

अथ देवबोधेरपि रंभासनमासीत्, मौनेन च कायवायवः सुजयाः स्युः, परं व्याख्यान-यतोऽस्य स्थितिरतिकौतुककरीति चिंतयन्नृपः श्रीगुरूनासने निवेश्योवाच ॥ २९१ ॥ तिरोहिताः सर्वकलाः कलावतां । कलाविलासैस्तव सूरिशेखर ॥ तेजस्विनां किं प्रसरंति दीप्तयः । समंततो भास्वति भास्वति स्फुटं ॥ २९२ ॥ सूरयोऽपि मम देवतावसरं पश्येयुरितीयं श्रीचौलुक्यमपवरकेऽनैषुः, तत्र च पुरापि हेमासनेषु निविष्टांश्चतुर्मुखानष्टमहाप्रातिहार्यादिविराजितान्, चतुःषष्टिसुरेंद्रसेव्यान् साक्षाच्चतुर्विंशतिजिनेंद्रान् श्रीचुलुक्यादीनेकविंशतिं स्वपूर्वजांश्च रत्नाभरणादिविश्वातिशायिसंपदाढ्यान् श्रीजिनाग्रे योजितपाणीन् दृष्ट्वानमत् ॥ २९३ ॥

हवे ते वखते राजाए विचार्युं के, देवबोधिनुं पण केळनुं आसन हतुं, तेमज मौनपणाथी तो शरीरनां वायु सुखे जीती शकाय, परंतु व्याख्यान करतां थकां आवी रीते अधर रहेवुं, ए घणुं आश्चर्यवाळुं छे, एम विचारी राजाये गुरुमहाराजने आसनपर बेसाडी कह्युं के ॥ २९१ ॥ हे सूरिशेखर ! आप साहेबनी कळा कुशळताए तो कळावानोनी सघळी कळाओने ढांकी दीधी छे, केमके चारे बाजुथी प्रगट रीते सूर्य प्रकाशते छते (तारा आदिक) तेजस्वीओनी कांतिओ शुं प्रकाशी शके छे ॥ २९२ ॥ पछी आचार्यजी महाराजे राजाने कह्युं के, अमारी पण देवपूजनविधि तमे जुओ एम कहीने तेओ राजाने एक ओरडामां लइ गया; त्यां प्रथमथीज सुवर्णना सिंहासनपर बेठेला, चार मुखोवाळा, आठ महाप्रातिहार्यादिकोथी विराजित थयेला, चोसठ इंद्रोथी सेवायेला, एवा साक्षात् चोवीस जिनेश्वरोने तथा चुलुक्य आदिक पोताना एकवीस पूर्वजो के, जेओ रत्नोना आभूषणो आदिकथी जगतमां अतिशयेवाळी संपदावाळा हता, तेओने श्रीजिनेश्वरप्रभुओ पासे हाथ जोडी रहेला जोइने ते राजा नम्यो ॥ २९३ ॥

तेऽप्यवदन् राजन्नेकस्त्वमेव विवेकी जगति, यो हिंसादुष्टं श्रौतं धर्मं त्यक्त्वा दयाधर्मं प्रपन्नः, अयं गुरुः सर्वदेवावतार एव, तदुक्तं तत्वमाराधयेति ॥ २७४ ॥ पूर्वजा अपि वत्स त्वया जिनधर्मादरणात्वयं सुगतिभाजोऽभूमः ईदृशीं च महर्धिं भुंज्महे इत्याद्युक्त्वा तिरोदधुः ॥ २७५ ॥ ततो दोलायितमना नृपः सम्यक् तत्त्वं श्रीगुरूनप्राक्षीत्, श्रीसूरयः प्रोचुः, राजन्निंद्रजालकलाकलितमेवैतन्न कश्चित्परमार्थः ॥ २७६ ॥ देवबोधेरेकैवैषा, मम तु सप्त संति, तच्छक्त्या दर्शितमिदं, यदि न प्रत्येषि तदा वद, विश्वमपि समग्रं दर्शयामि, परं न किंचिदेतत्, तत्वं तत्त्वं सोमेशदेवोऽवददित्यादि ॥ २७७ ॥

तेओ पण कहेवा लाग्या के, हे राजन् ! तुंज एक जगतमां विवेकी छो, के जेणे हिंसाना दूषणवाळो वेदधर्म छोडीने दयाधर्म स्वीकार्यो छे, आ श्रीहेमचंद्रजीगुरु सर्व देवोना अवताररूपज छे, माटे तेमणे कहेला तत्वोनुं तुं आराधन कर ॥ २७४ ॥ पूर्वजो पण कहेवा लाग्या के, हे वत्स ! तें जे जैनधर्म स्वीकार्यो छे, तेथी अमो सुगतिने जनार थया छीये, अने आवी महान ऋद्धि अमो भोगवीये छीये; एम कहीने तेओ अलोप थया ॥ २७५ ॥ पछी मुंझायेला मनवाळा राजाए गुरुमहाराजने सत्य तत्व पुछयुं, त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्युं के, हे राजन ! आ सघळुं इंद्रजाळनी कळानुं कार्य छे, परंतु तेमां कंइ पण परमार्थ नथी ॥ २७६ ॥ ज्यारे ते देवबोधि पासे आ एकज इंद्रजाळ कळा छे, त्यारे मारी पासे तेवी सात कळाओ छे, अने तेनी शक्तिथी में आ तने देखाड्युं छे; जो तने तेनी खातरी न होय, तो कहे तो समस्त जगत् तने देखाडुं, परंतु ते सघळुं कंइ नथी, माटे सत्य तत्व तो तेज छे, के जे तने सोमेश्वरदेवे ते वखते कहेलुं छे. इत्यादि ॥ २७७ ॥

ततः श्रीगुरुसाहाय्यान्निस्तीर्णस्तां मिथ्यात्वापदं, दृढसम्यक्त्वो बभूव क्रमादिति ॥ २७८ ॥ अथान्यदा नवरात्रेषु देवतार्चका नृपं व्यजिज्ञपन् हेनरेंद्र कंटेश्वर्यादिकुलदेवीनां बलिहेतोः ७–८–९ दिनेषु क्रमात् ७–८–९ शतान्यजमहिषा दीयंते, नोचेद्देवता विघ्नकारिण्यो भवंतीत्यादि ॥ २७९ ॥ ततो राजा श्रीगुरुवचसा दिनत्रयं भोगादि अकुर्वन् जिनेश्वरध्यानैकतानो, नवमीरात्रौ यावदास्ते, तावत्कंटेश्वरी त्रिशूलहस्ता साक्षाद्भूयाऽवक् ॥२८०॥ राजन् एतद्भो अस्मदेयं, कस्मात्त्वया नाऽदायि, त्वत्पूर्वजैः प्रागुदत्तमित्यादि ॥ २८१ ॥

त्यारबाद एवी रीतना श्रीगुरुमहाराजनी सहायथी ते मिथ्यात्वरूपी आपदाने तरी गयो, तथा अनुक्रमे दृढ समकीती थयो ॥ २७८ ॥ हवे एक दहाडो नवरात्रिमां देवीपूजको राजाने विनंति करवा लाग्या के, हे राजन् ! कंटकेश्वरी आदिक कुळदेवीओना बळिदान माटे सातेम, आठेम अने नोमने दिवस अनुक्रमे सातसो, आठसो अने नवसो बकरां तथा पाडाओ आपवामां आवे छे, अने जो तेम नहीं करो तो ते देवीओ विघ्न करशे. इत्यादि ॥ २७९ ॥ ते सांभळी राजा तो श्रीगुरुमहाराजना वचनथी त्रण दिवसो सुधी भोग आदिक नहीं करीने एक श्रीजिनेश्वरप्रभुनाज ध्यानमां लाग्यो. पछी ज्यारे नोमनी रात्री थइ, त्यारे हाथमां त्रिशूळवाळी कंटकेश्वरीदेवी प्रत्यक्ष थइ कहेवा लागी के ॥ २८० ॥ हे राजन् ! अमारुं बळिदान तें केम न आप्युं, तारा पूर्वजोए पण प्रथम अमोने आपेलुं छे. इत्यादि ॥ २८१ ॥

राजा स्माह, हेकुलदेवते विश्ववत्सले संप्रति जीवदयाधर्ममर्मज्ञो नाहं जीवान् हन्मीत्याद्यत्र जीवदया स्थापना देवींप्रति तदुपदेशश्च ॥ २०२ ॥ ततो रुष्टा देवी त्रिशूलेन नृपं मूर्ध्नि हत्वा तिरोऽभूत्, तेन दिव्यघातेन सद्यो नृपः सर्वांगीणकुष्टकुष्टादिरोगग्रस्तोऽजनि ॥ २०३ ॥ ततो मंत्रिणमाकार्य देवीव्यतिकरमाचख्यौ, देहस्वरूपं चाऽदर्शयत्, ततो वज्रहत इव जज्ञे मंत्री ॥ २०४ ॥ राजाऽवक् मंत्रिन्नमे कुष्टादि बाधते, किंतु मत्कृतुकं जैनधर्मे लांछनं जावीति यावत् कोऽपि न वेत्ति, तावद्रात्रावेव वह्नौ प्रवेक्ष्यामीत्यादि वदंतं नृपं निषेध्य श्रीगुरूणां तत्स्वरूपं ज्ञापितवान् ॥ २०५ ॥

त्यारे राजाए कह्युं के, हे कुळदेवता ! हे जगतनुं वत्सल करनारी ! हमणां तो में जीवदयारूप धर्मनो मर्म जाणेलो छे, माटे हवे हुं जीवहिंसा करीश नहीं, इत्यादि अहीं जीवदयानी स्थापना, तथा देवी प्रत्ये राजाए करेला उपदेशनुं वर्णन जाणी लेवुं ॥ २०२ ॥ ते सांभळी क्रोधायमान थयेली देवी राजाने मस्तकमां त्रिशुळ मारी अलोप थइ गइ; तथा ते दिव्यघातथी राजाना सर्व शरीरमां कुष्ट आदिक रोगोनी उत्पत्ति थइ ॥२०३॥ पछी तेणे मंत्रिने बोलावी देवीनुं वृत्तांत कह्युं, तथा पोतानुं शरीर पण देखाड्युं, ते जाइ मंत्रि जाणे वज्रथी हणायो होय नहीं, तेवो थयो ॥ २०४ ॥ पछी राजाये कह्युं के, हे मंत्रि ! मने आ कुष्ट आदिकनी तो पीडा नथी परंतु मारे लीधे जैनधर्मने कलंक लागशे माटे ज्यांसुधी आ बाबत कोइ जाणतुं नथी, त्यांसुधीमां हुं अग्निमां बळी मरुं, एम कहेता राजाने निषेधीने ते स्वरूप मंत्रिये श्रीगुरुमहाराजने जणाव्युं ॥ २०५ ॥

ततो गुरुदत्ताभिमंत्रितवारिणा सिद्धरसेनेव जात्यहेमद्युतिर्नृपदेहोऽभूत, महान् हर्षो जिनधर्मप्रभावना ॥ २०६ ॥ प्रातर्गुरुवंदनायागच्छन् शालाप्रवेशे स्त्रीकरुणस्वरं शुश्राव भूपः, ततस्तां कंटेश्वरीं निशि दृष्टा प्रत्यभिज्ञासीत् ॥ २०७ ॥ श्रीगुरून् प्रसाद्य मंत्रबंधादमोचयच्च, तदन्वष्टादशदेशेषु जीवरक्षातलारक्षतां कुर्वती सा राजभवनद्वारेऽस्थात् ॥ २०८ ॥ अथ श्रीकुमारभूपोऽन्यदा वर्षासु श्रीपत्तनप्रतोलीभ्यो बहिर्निर्गमननियमं जग्राह, तं नियमं चरेभ्यो ज्ञात्वा गुर्जरदेशभंजनाय गर्जनेशो महानीकः प्रयाणमकरोत् ॥ २०९ ॥

पछी श्रीगुरुमहाराजे आपेला मंत्रेला पाणीवडे करीने ते जाणे सिद्धरसवडे करीने होय नहीं, तेम राजानुं शरीर उत्तम सुवर्ण जेवी कांतिवालुं थइ गयुं; अने तेथी मोटो हर्ष तथा जैनधर्मनी प्रभावना थइ ॥२०६॥ प्रभाते गुरुमहाराजने वांदवा माटे ज्यारे राजा आव्यो, त्यारे पौषधशालामां प्रवेश करती वखते तेणे कोइक स्त्रीनो करुणास्वर सांभळ्यो, तथा रात्रिये जोएली कंटकेश्वरीदेवीने रुती थकी तेणे ओळखी कहाडी ॥ २०७ ॥ पछी तेणे गुरुमहाराजने प्रसादित करीने तेणीने मंत्र बंधनथी छोडावी, अने ते वार पछी अढार देशोमां जीवरक्षा माटे चोकी करती थकी ते राजभुवनना द्वारमां रहेवा लागी ॥ २०८॥ हवे एक वखते श्रीकुमारपाळराजाए वर्षाकाळमां पाटणना दरवाजाथी बहार नीकळवानुं नियम लीधुं, तेना ते नियमने गुप्त मनुष्योथी जाणीने गीजनीना सुलताने गुजरातदेश भांगवा माटे मोटी सेनासहित प्रयाण कर्युं ॥ २०९ ॥

तत्स्वरूपं चरेभ्यो ज्ञात्वा, एकतो देशभंगे लोकपीडा, अन्यतो व्रतभंग इत्यतो व्याघ्रदुस्तटीसंकटे पतितः सोऽमात्यः श्रीकुमारपालनृपः श्रीगुरूणां ज्ञापितवांस्तत्स्वरूपं ॥ १९० ॥ ततः श्रीगुरवो राजन् त्वदाराधितधर्म एव सहायस्तव, चिंतां मा कुरुथाः सर्वथेत्याश्वास्य नृपं, ध्यानमारूढाः ॥ १९१ ॥ गते मुहूर्ते गगनाध्वनाऽयांतं पल्यंकमद्राक्षीन्नृपः, स च सुप्तैकपुरुषः क्षणादागत्य गुरोः पुरस्तस्थौ पल्यंकः ॥ १९२ ॥ कोऽयमित्यादिप्रश्नपरे नृपे सगर्जनाधीशोऽयं पल्यंकः, सुप्तो यस्तवोपर्यागच्छन्नभूदित्यवोचन् सूरयः ॥ १९३ ॥

ते वृत्तांत गुप्त मनुष्यो मारफते जणावाथी कुमारपाळ राजा, एक बाजुथी देशनो भंग थवाथी लोकोने पीडा थाय, तथा बीजी बाजुथी व्रतनो भंग थाय, व्याघ्रतटी न्याय जेवा संकटमां पड्यो, अने तेथी तेणे ते वृत्तांत मंत्रिसहित श्रीआचार्यजी महाराजने जणाव्यो ॥ १९० ॥ त्यारे गुरुमहाराजे कह्युं के हे राजन् ! तमारो आराधेलो धर्मज तमोने सहाय करशे, माटे कोइ पण जातनी तमो चिंता न करो, एवी रीते राजाने दिलासो दइने गुरुमहाराज ध्यान धरवा लाग्या ॥ १९१ ॥ बे घडी जते छते राजाए आकाशमार्गे आवता एक पलंगने जोयो ते पलंगपर एक पुरुष सुतेलो हतो, तथा ते पलंग तुरत आवीने गुरुनी पासे स्थिर थयो ॥१९२॥ आ कोण छे ? एम राजाए पुछवाथी गुरुमहाराजे कह्युं के, आ गीजनीना सुलतान पलंगसहित छे, तथा जे तारापर चडीने अहीं आवतो हतो, ते गिजनीनो सुलतान आनी अंदर सुतेलो छे ॥ १९३ ॥

ततो जजागार शकाधीशस्तन्महिमानं तदैश्वर्यं देवतासाहाय्यं श्रीगुरुबलं च विमृश्य श्रीकुमारपालेन सह स्वकवैरः, स्वदेशे प्रतिपन्नषाण्मासिकसर्वजीवाऽमारिः सत्कृत्य राज्ञा विसृष्टः ॥ २९४ ॥ अथान्यदा निशि सुखसुप्तस्य श्यामांगा क्रूररूपा काचिद्देवी प्रत्यक्षीबभूव; नृपपृष्टाऽवदद्भूताधिष्टायिकाहं, पूर्वशापात्त्वदंगे प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा गता ॥ २९५ ॥ प्रातस्तत्स्वरूपं नृपः श्रीसूरिभ्यो ज्ञापयामास, तैर्धर्मोपदेशः प्रतन्यते स्म, राजन् धर्मं कुर्वित्यादि ॥ २९६ ॥ रात्रौ भूपस्य महाव्यथाऽजनि, राजिकाकणमानः पृष्टे पिटकोऽभूत्, प्रतीकारैरप्यनुपशमे श्रीगुरवः प्राप्ताः, राजानं दुःखार्तं दृष्ट्वाऽवसरोचितमुपदिश्य मंत्रिणं स्माहुः ॥ २९७ ॥

एटलामां ते सुलतान जागी उठ्यो, तथा त्यां तेणे तेनो महिमा, तेनी प्रभुता, देवतानो सहाय, तथा गुरुमहाराजनुं बळ जोइने कुमारपाळ साथेनुं वेर छोडी आप्युं, तथा पोताना देशमां छ मास पर्यंत सर्व जीवोनी हिंसा नहीं करवानुं तेनी पासे स्वीकारी, राजाए सत्कारपूर्वक तेने विसर्जन कर्यो ॥ २९४ ॥ हवे एक दहाडो राजा रात्रिये सुखे सुतो हतो, एटलामां श्याम शरीरवाळी तथा भयंकर स्वरूपवाळी कोइक देवी प्रत्यक्ष थइ, राजाए पुछवाथी ते कहेवा लागी के, हुं भूतानी अधिष्ठायिकादेवी छुं, पूर्वना शापना वशथी हुं तारा शरीरमां प्रवेश करुं छुं, एम कही ते चाली गइ ॥ २९५ ॥ प्रभाते ते वृत्तांत राजाए श्रीगुरुमहाराजने जणाव्युं, त्यारे गुरुमहाराजे पण राजाने उपदेश आप्यो के, हे राजन्! तमो धर्म करो. इत्यादि ॥ २९६ ॥ पछी रात्रिये राजाने घणी वेदना थइ, वांसामां राइना कण जेवडो एक फोल्लो थयो, घणा उपायो कर्या, परंतु दुःख शांत न थयुं. एटलामां श्रीगुरुमहाराज त्यां पधार्या, तथा राजाने दुःखी जोइने अवसरोचित उपदेश देइने मंत्रिने कहेवा लाग्या के ॥ २९७ ॥

मंत्रिन् अपायानां उपायाः स्युः, बहुरत्ना वसुंधरा, मंत्र्याहादिशत, श्रीगुरुरप्यधात् नात्र मंत्रादीनां प्रभावप्रसरः ॥ २९८ ॥ परं यद्यन्यस्य राज्यं दीयते, तदा राज्ञः कुशलं, परं नायं धर्मः श्रीआर्हतानां, ततोऽस्माकमेव राज्यमस्तु ॥ २९९ ॥ राजोए भगवन् को नाम कीलिकाहेतोः प्रासादोच्छेद मिच्छतीत्यादि, गुरवोऽप्यधुः, राजन् युक्तं यदि मे शक्तिर्न स्यात्, परं—शक्तो हनुमान् मदबंधयत्स्वं । विष्णुर्दधौ यच्च शिवास्वरूपं ॥ सैरंध्रिकाकारधरश्च भीम—स्तथाहमप्यत्र कृतौ समर्थः ॥ ३०० ॥ ततः क्रमाच्छून्यचित्ते नृपे सर्वसांमत्येन श्रीसूरीराज्ये उपविष्टः. तत्क्षणमेव राज्ञो व्यथा सूरिवपुषि संक्रांता ॥ ३०१ ॥

हे मंत्रि ! दुःखोना उपायो घणा छे, केमके पृथ्वी बहु रत्नोवाळी छे. त्यारे मंत्रिये कह्युं के, आप साहेब उपाय बतावो. त्यारे गुरुमहाराजे कह्युं के, आ बाबतमां मंत्र आदिकोनो प्रभाव तो चाली शके तेम नथी ॥ २९८ ॥ परंतु जो बीजा कोइने राज देवामां आवे, तो राजाने कुशळ थाय, परंतु तेम करवानो जैनीओनो धर्म नथी, माटे अमोनेज राज्य मळे तो सारुं ॥ २९९ ॥ त्यारे राजाये कह्युं के, हे भगवन् ! एक खीलीने माटे आखो महेल पाडवाने कोण इच्छे ? इत्यादि; त्यारे गुरुमहाराजे कह्युं के, हे राजन् ! जो मारामां शक्ति न होय, तो तो तेम करवुं युक्त छे, परंतु जेम शक्तिवान् हनुमाने पोतानेज बंधाव्यो, तथा विष्णुये जेम शिवनुं स्वरूप धारण कर्युं हतुं, तथा भीमे पण जेम सैरंध्रीनुं स्वरूप धारण कर्युं हतुं, तेम हुं पण आ कार्यमां समर्थ छुं ॥ ३०० ॥ पछी अनुक्रमे राजा ज्यारे शून्य चित्तवाळो थयो, त्यारे सर्वनी सम्मतिपूर्वक आचार्यजी महाराज राज्यगादीपर बेठा, के तुरत राजानी व्यथा आचार्यजी महाराजना शरीरमां दाखल थइ ॥ ३०१ ॥

गुरुव्यथां ज्ञात्वा राजा वज्राहत इव, गतसर्वस्व इव स्वेदमेदुरो बभूव ॥ ३०२ ॥ ततः, पक्वं कुष्मांडमानाय्याप्रविश्यांतः स्वयं गुरुः ॥ तत्र न्यवीविशद्भूतां ॥ तदैवाभूत्तदन्यथा ॥ ३०३ ॥ उत्पाट्यांधप्रधौ क्षिप्तं । कश्चिन्नोल्लंघते यथा ॥ एवं स्वस्थमभूत्सर्वं । राज्ञो जन्मोत्सवः पुनः ॥ ३०४ ॥ इति । इह यथैहिकसंकटेषु धर्मगोचरदेवबोध्यादिकृतसंकटेषु च साहाय्यकारित्वात्परमार्थहितोपदेशकत्वादकृत्रिमस्नेहादिमत्त्वाच्च भ्रातृसमाः श्रीहेमसूरयोऽभूवन् श्रीकुमारपालभूपालंप्रति, तथान्येऽपीति भ्रातृदृष्टांतभावना ॥ ३०५ ॥

ते वखते गुरुने व्यथा थती जाणीने राजा जाणे वज्रथी हणायो होय नहीं, तथा जाणे तेनुं सर्वस्व गयुं होय नहीं तेम पसीनावाळो थइ गयो ॥ ३०२ ॥ पछी गुरुमहाराजे एक पाकुं कोळुं मगावीने तेनी अंदर पोते दाखल थया, अने तेमां भुतानें मुकी दीधी, तेज वखते गुरुमहाराज पण पीडारहित थया ॥ ३०३ ॥ पछी ते कोळुं उपाडीने अंधारा कुवामां नांख्युं, के जेने कोइ ओळंगी शके नहीं; एवी रीते सघळुं शांत थयुं तथा राजानो फरीने जन्मोत्सव थयो ॥ ३०४ ॥ इति ॥ अहीं जेम श्रीहेमचंद्राचार्य, देवबोधि आदिकोये करेला धर्म संबंधि आ लोकना संकटमां कुमारपाळ राजाने सहायकारी थया, तथा परमार्थ हितना उपदेश देवाथी अने अपूर्व स्नेह देखाडवाथी भ्रातृसमान थया, तेम बीजाओने पण जाणवा. एवी रीते भाइ संबंधि दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ३०५ ॥

पितन्ति, पिता यथा एकांतवत्सलहृदयः पुत्रं साम्ना ताडनादिनापि च शिक्षयति, परां प्रतिष्ठां चारोपयति, एवं केचन गुरवोऽपि श्राद्धजनंप्रति पितृसमाः, युवराजर्षिवत् तथाहि—॥ ३०६ ॥ अचलपुरे जितशत्रुनृपपुत्रो युवराजः, श्रीरोहाचार्यपार्श्वे प्रव्रजितः, क्रमात्सकलागमपारदृश्वा विविधलब्धिमांश्च जज्ञे ॥ ३०७ ॥ विहरन्नेकदाऽचलपुरे समागतः पृच्छति, अत्र केऽपि साधवः? सागारिका जल्पंति, न शक्नुवंति साधूपद्रवकृतो राजपुरोधःपुत्रयोरग्रे ॥ ३०८ ॥ ततस्तत्प्रतिबोधं मनसिकृत्य, तयोर्गृहे लोकैर्गृहमानुषैश्च भृशं वारितोऽपि भिक्षार्थं प्राप ॥ ३०९ ॥

हवे पिता जेम एकांत वत्सलतावाळा हृदययुक्त थया थका पुत्रने मीठे वचने अने ताडना आदिकथी पण शिखामण आपे छे, तथा मोटी प्रतिष्ठाये चडावे छे, तेम केटलाक गुरुओ पण युवराजऋषिनी पेठे श्रावक लोको प्रत्ये पिता समान होय छे, ते युवराजऋषिनुं दृष्टांत नीचे मुजब छे ॥ ३०६ ॥ अचळपुरमां जितशत्रु राजानो युवराज पुत्र हतो, तेणे श्रीरोहाचार्य पासे दीक्षा लीधी हती, अनुक्रमे ते सघळा आगमोमां पारगामी तथा नाना प्रकारनी लब्धिओवाळो थयो ॥ ३०७ ॥ एक दहाडो विहार करता थका ते अचळपुरमां आव्या, अने पुछवा लाग्या के अहीं कोइ साधु छे के नहीं? त्यारे श्रावकोए कह्युं के, अहीं राजानो तथा पुरोहितनो पुत्र साधुओने बहु रंजाडे छे, तेथी तेनी आगळ कोइ साधु अहीं रही शकता नथी ॥ ३०८ ॥ पछी तेने प्रतिबोधवानुं मनमां धारीने, लोकोये तथा घरनां माणसोये घणुं वार्या छतां पण ते ऋषि भिक्षा माटे ते कुमारोने घेर गया ॥ ३०९ ॥

ततो मास्मदृष्टौ महर्षेरवज्ञाभूदित्यतो भीतभीताभिरंतःपुरनारीभिर्महर्षे मंदं मंदं वद, उपरिभूमिस्थौ कुमारौ श्रोष्यतः ॥ ३१० ॥ इत्यादि निवार्यमाणोऽपि गाढगाढस्वरं धर्माशिषं दत्ते, श्रुत्वाऽऽगतौ कुमारौ ऊचतुश्च, ऋषे नर्त्तितुं वेत्सि ॥ ३११ ॥ ऋषिरजल्पत वाढं, परं युवां सम्यग् वादयतं; ततो मुनिरनृत्यत्, तौ च वादयतः, परं न सम्यग् जानीतः ॥ ३१२ ॥ ततोऽवकाशं लब्ध्वा विसृज्य नृत्तं, शिक्षितौ महर्षिणांगान्युत्तार्य, च क्रंदंतौ मुक्त्वा स्वपदं प्राप महर्षिः ॥ ३१३ ॥ ज्ञातं राज्ञा, प्राप्तः गुरुपार्श्वे, उपलक्षितो मुनिः क्षमितश्च, ततो नृपाऽत्याग्रहादीक्षां प्रतिपाद्य शिरसि लोचं प्रथमं कृत्वा च प्रगुणीकृतौ प्रव्राजितौ च ॥ ३१४ ॥

त्यारे जनानानी स्त्रीओये विचार्युं के, आपणी नजर आगळ आ महर्षिनी अवज्ञा न थाय तो सारुं एम विचारी करती एवी ते स्त्रीओये मुनिने कह्युं के, हे महर्षि ! तमो धीरे धीरे बोलो ? केमके माळ उपर रहेला बन्ने कुमारो क्यांक सांभळशे ॥ ३१० ॥ एवी रीते निवारण करतां छतां पण ऋषि तो मोहोटे मोहोटे सादेथी धर्माशिष देवा लाग्या; ते सांभळी ते बन्ने कुमारो आवीने कहेवा लाग्या के, हे ऋषि ! तमोने नाचतां आवडे छे ॥ ३११ ॥ त्यारे ऋषिए कह्युं के, खूब आवडे छे, परंतु तमारे सारी रीते वगाडवुं पडशे; पछी मुनि तो नाचवा लाग्या, अने ते बन्ने कुमारो वगाडवा लाग्या, पण तेओने सारी रीते (मृदंग आदिक) वगाडतां आवडयुं नहीं ॥ ३१२ ॥ पछी अवकाश मेळवीने, नाचवुं छोडी दइ, मुनिए तेओने एवी तो शिक्षा करी के तेओनां हाडके हाडकां उतरी गयां, पछी तेओने त्यां रडता छोडीने, मुनि पोताने स्थानके गया ॥ ३१३ ॥ पछी ते वातनी ज्यारे राजाने खबर पडी, त्यारे ते गुरु पासे आव्यो, अने मुनिने ओळखीने तेणे खमाव्या; पछी राजाना अत्यंत आग्रहथी ते बन्ने कुमारोने दीक्षा आपीने, तथा प्रथमथीज मस्तकपरथी लोच करी तेओने सावधान करीने तेणे प्रव्रज्या आपी ॥ ३१४ ॥

यतः—बलाद्दत्तानि बालानां । विद्याभोजनमौषधं ॥ गवां नासिकया चाज्यं । तथा धर्मोऽपि पुष्टये ॥ ३१५ ॥ इति, यथाऽसौ युवराजर्षिर्भ्रातृजं पुरोहितपुत्रं च ताडयित्वापि धर्मं प्रत्यपादयत्, एवं केचिद्गुरवोऽपि पितृसमाः, इति पितृदृष्टांतभावना ॥ ३१६ ॥ मायत्ति, माता हि पितुरप्यधिकतरैकांतिकात्यंतिकवात्सल्यभृद्भवेत्, तदुक्तं—सुधामधुविधुज्योत्स्ना—मृद्वीकाशर्करादिभिः ॥ वेधसा सारमादाय । जनितं जननीमनः ॥ ३१७ ॥ शिक्षयति च पुत्रं विविधभोज्यप्रदर्शनाद्यनुकूलाचरणाद्युपायशतैरपि साम्नैवेति, तथा केचिद्गुरवोऽपि संति भव्यानिति मातृसमाः, कमलश्रेष्ठिसुतप्रतिबोधकतृतीयाचार्यवत्, तद्यथा—॥ ३१८ ॥

केमके—बाळकोने विद्या, भोजन, अने औषध जेम बळात्कारे आपवामां आवे छे, तेमज गायने पण जेम नाळथी बळात्कारे घी पावामां आवे छे, तेम बळात्कारे आपेलो धर्म पण पुष्टिकारक छे ॥ ३१५ ॥ इति, जेम आ युवराजऋषिए भत्रिजाने तथा पुरोहितना पुत्रने मार मारीने पण धर्म पमाड्यो, तेम केटलाक गुरुओ पण पिता समान होय, एवी रीते पिताना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ३१६ ॥ हवे माता छे ते, पिताथी पण अधिक रीते एकांत अत्यंत वत्सलतावाळी होय छे; कह्युं छे के—अमृत, मध, चंद्र; चांदनी, द्राक्ष तथा साकर आदिकमांथी पण सत्व खेंचीने ब्रह्माये मातानुं मन बनावेलुं छे ॥ ३१७ ॥ वळी ते माता पुत्रने विविध प्रकारनो भोज्य देखाडवा आदिकथी, तेम तेना मनने पसंद पडे तेवा सेंकडोगमे उपायो तथा आचरणोथी प्रीति वचनेज शिखामण आपे छे, तेम केटलाक गुरुओ पण, कमळशेठना पुत्रने प्रतिबोधनारा त्रीजा आचार्यनी पेठे भव्यो प्रत्ये माता सरीखा होय छे; ते त्रीजा आचार्यनुं दृष्टांत नीचे मुजब छे ॥ ३१८ ॥

श्रीपुरनगरे श्रीपतिः श्रेष्ठी, परमसम्यग्दृष्टिः, तस्य कमलः सुतः, परं धर्मपराङ्मुखो निर्लज्जो व्यसनी गुरुदर्शनं दुरितमिति मन्यते ॥ ३१९ ॥ साधर्मिकान् सर्पानिव द्वेष्टि, देवाधिदेवस्तुतिपाठं शोकाक्रंदमिव गणयति, धर्मविषये बहुधापि पितुः शिक्षा भस्मनि हुतायतेस्म ॥ ३२० ॥ नास्तिकः सर्वथोल्लंठवचनो निरंकुशं गर्जन्नगरांतश्चचार; अन्यदा श्रीशंकरसूरीणामागमः, श्रेष्ठिना पुत्रस्वरूपविज्ञपनं. कमलस्य गुरुपार्श्वे प्रेषणं, गुरुभिरुपदेशपृच्छा च ॥ ३२१ ॥ वत्स किं विज्ञातं, कमलः—न किंचित्, किं कारणं, मया भगवतां कथादि कथयतां चलंती घंटिकाऽष्टोत्तरशतवारं गुणिता, ततश्च पूज्यैश्चरमेरुतोमरादिशब्दाः केऽपि गलबलायमानाः शीघ्रं शीघ्रं पठिताः॥३२२॥

श्रीपुर नामना नगरमां श्रीपति नामे शेठ हतो, ते परम सम्यग्दृष्टी हतो, तेने कमळ नामे पुत्र हतो, परंतु ते धर्मथी पराङ्मुख, निर्लज अने व्यसनी हतो तथा गुरुना दर्शनने तो पाप रूपेज मानतो ॥ ३१९ ॥ साधर्मिओ प्रत्ये तो सर्पोनी पेठे द्वेष राखतो हतो. देवाधिदेवनी स्तुतिना पाठने शोकना विलाप सरखो जाणतो हतो; वळी धर्मना संबंधमां तेनो पिता तेने शिखामण आपतो हतो, परंतु ते सघळी राखमां घी होमवा सरखी थती हती ॥३२०॥ सर्वथा प्रकारे उद्धंत वचनवाळो थइने नास्तिक थयो थको अंकुश रहित थइने गर्जना करतो थको नगरमां ते भमतो हतो; एक वखते त्यां श्रीशंकरसूरि पधार्या, शेठे तेमने पुत्रनुं वृत्तांत कह्युं, तथा पछी कमलने गुरुपासे तेणे मोकल्यो; गुरुए पण उपदेश देइने तेने पुछ्युं के ॥ ३२१ ॥ हे वत्स! तुं शुं समज्यो? त्यारे कमले कह्युं के, हुं तो कंइ पण समज्यो नथी; गुरुए पुछ्युं के, तेनुं कारण शुं? त्यारे तेणे कह्युं के, ज्यारे आप साहेब कथा आदिक कहेता हता, त्यारे आपना गळांना घंटडी एकसो आठवार चालती में गणी, अने पछीतो आप चमर मेरु तोमर आदिक केटलाक शब्दो गडबड गडबड करीने तुरत तुरत जणी गया ॥ ३२२ ॥

तत्रांतरे घंटिकाचलनसंख्या नाऽज्ञायीत्यादि; ततोऽयोग्योऽयमित्युपेक्षितस्तैः, कमलः सुष्ठुहसितो, जरद्गव इति लोके जगर्जे, लोकाज्ज्ञाततद्वृत्तांतः श्रेष्ठी लज्जितः ॥ ३२३ ॥ पुनरन्यदा शीलसागरगुर्वागमः, प्राग्वत् सर्वं, नवरं अधःपश्यताऽस्मद्व्याख्यानं सम्यक् चिंतनीयमिति गुरुशिक्षावचः, कमलेन कीटिकादरप्रवेशसंख्याकरणान्निंदित उपेक्षितः सर्वैरपि सः ॥ ३२४ ॥ अथान्यदा केऽप्याचार्या विपश्चिज्जनमनोवसंतास्तत्रैयरुः तैरपि श्रुतं कमलस्वरूपं, हितार्थितया मनसि प्रतिज्ञातश्च तत्प्रतिबोधः, श्रेष्ठिनो ज्ञापनं ॥ ३२५ ॥

ते वखते घंटडी चालवानी संख्या मने मालुम पडी नहीं; इत्यादि. पछी तेने अयोग्य जाणीने तेओए तेनी उपेक्षा करी; पछी लोकोमां पण ते कमळनी 'आ गळीओ बेल छे,' एवी घणी हांसी थइ; पछी लोकोने महोडेथी तेनुं ते वृत्तांत जाणवाथी शेठने घणी शरम थइ ॥ ३२३ ॥ वळी एक दहाडो त्यां शीलसागर नामे गुरु पधार्या, सघळुं वृत्तांत पूर्वनी पेठेज जाणवुं, एटलुं विशेष के, तेने गुरुमहाराजे एवी रीतनुं शिखामणनुं वचन कह्युं के, तारे नीचे जोइने अमारुं व्याख्यान सारी रीते विचारवुं, त्यारे कमळे तो दरमां जती कीडीओनी संख्या गणी, अने तेथी तेनी सघळाओए निंदा तथा उपेक्षा करी ॥ ३२४ ॥ हवे एक दहाडो त्यां विद्वानोना मनने वसंत सरखा एवा कोइक आचार्यजी महाराज पधार्या; तेओए पण ते कमळनुं वृत्तांत सांभळ्युं, अने तेथी हितार्थीपणाथी करीने तेने प्रतिबोधवानी तेमणे प्रतिज्ञा करी; अने पछी तेमणे ते वात शेठने जणावी ॥ ३२५ ॥

गुरूणामादरं दृष्ट्वा श्रेष्ठिना गुरुपार्श्वे प्रहितः कमलः, प्राग्वन्नटनधिया तत्र प्राप्तश्च सः, दुष्टो मूढश्चायमित्यनुकूलाचरणरंजनैहिकफलोपदर्शनादिना साम्ना बोध्य इति विमृश्यावोचुर्गुरवः ॥ ३२६ ॥ भद्र कमल! वेत्सि किमपि वात्स्यायनशास्त्ररहस्यं, कमलः प्रोचे भगवन्! किमहं वेद्मि, प्रसद्यादिशंतु सारं किंचिद्, गुरवः—पूर्वं स्त्रीरसार्थिना स्त्रीणां गुणा अवगंतव्याः, गुणादिष्वपि भावानुविद्धताप्रधानं ॥ ३२७ ॥ यदाह—आकारैः कतिचिद् गिरा कुटिलया काश्चित्क्रियत्यः स्मितैः । स्वैरिण्यः प्रथयंति मन्मथशरव्यापारवश्यं मनः ॥ कासांचित्पुनरंगकेषु मसृणच्छायेषु गर्भस्थितो । भावः काचपुटेषु पुष्करमिव प्रव्यक्तमुत्प्रेक्षते ॥ ३२८ ॥

गुरुमहाराजनो आदर जोइने शेठे तेमनी पासे कमलने मूक्यो; अने ते पण पूर्वनी पेठे भगवाना विचारथी त्यां आव्यो, त्यारे गुरुए विचार्युं के, आ मनुष्य दुष्ट अने मूढ छे, माटे तेने अनुकूल पडे तेवां आचरणोथी तथा आ लोकमां प्रत्यक्ष फळ देखाडवा आदिकथी मीठे वचने प्रतिबोधवो; एम विचारी तेमणे तेने कह्युं के ॥३२६॥ हे भद्र कमळ ! तुं कंइ कामशास्त्रनुं रहस्य जाणे छे ? त्यारे कमळे कह्युं के, हे भगवन् ! हुं शुं जाणुं ? माटे कृपा करीने आप तेनो कंइक रहस्य समजावो. त्यारे गुरुजीए कह्युं के, पहेलां तो स्त्रीरसना अर्थीये स्त्रीओना गुणो जाणवा जोइए, गुणोमां पण तेओना भावनुं जाणवुं, ते उत्तम छे ॥ ३२७ ॥ कह्युं छे के—केटलीक स्त्रीओ आकारथी, कोइक वक्र वचनोथी तथा केटलीक स्वच्छंदचारी स्त्रीओ हास्यथी, मनने कामदेवना बाणना व्यापारमां वश करे छे, तेम केटलीक स्त्रीओनो कोमळ छायावाळा अंगोमां रहेलो हृदयगत भाव, काचना प्यालामां रहेला जळनी पेठे प्रगटज देखाइ आवे छे ॥ ३२८ ॥

इत्यादि कामकथानिराकृतसहृदयः प्राह कमलः भगवन्! क एवमन्यो वेत्ति, नीरस-पूर्वसूरिवाग्विषदग्धः पुनरुल्लास मे मनस्तद्भवद्वचनामृतसारण्या, नित्यं वंदनां करिष्यामीति प्रतिशुश्रुवे ॥ ३२९ ॥ ततः प्रत्यहमायाति, कदाचिदर्थकथा, कदाचित्स्त्रीकथा, कदाचिदिंद्रजालविद्याविनोदः, कदाचित् प्रश्नप्रहेलिकादयः, एवं मासोऽत्यगात् ॥ आसन्ने विहारावसरे श्राद्धा यथार्हं नियमान् प्रपद्यंते, कमलोऽपि गुरून् सविनयमापृच्छे ॥ ३३० ॥ गुरवः स्माहुः भद्र विजिहीर्षवो वयं, कमपि नियमं गृहाण, धर्मो हि सारः पुरुषार्थेषु स च संयमसाध्य इत्यादि ॥ ३३१ ॥

इत्यादिक कामकथाओथी वश थयेलां मनवाळो कमळ कहेवा लाग्यो के, हे भगवन्! आवी आवी (उत्तम बाबत) बीजो कोण जाणी शके? पूर्वना अन्ने आचार्योनी रस विनानी वाणीरूपी विषथी दग्ध थयेलुं मारुं मनरूपी वृक्ष, आजे आपना आ वचनोरूपी अमृतनी नहेरथी फरीने प्रफुल्लित थयुं छे; माटे हवे तो हुं आपने हमेशां वांदवा आवीश, एवुं तेणे नियम ग्रहण कर्युं ॥ ३२९ ॥ पछी ते हमेशां त्यां आववा लाग्यो; त्यां कोइ दिवसे अर्थकथा, कोइ दिवसे स्त्रीकथा, कोइ दिवसे इंद्रजाळ संबंधि विद्याविनोद, तो कोइ दिवसे प्रश्नसमश्या, एम एक मास व्यतीत थयो. पछी गुरुमहाराजने विहार करवानो वखत नजदीक आववाथी, श्रावको यथायोग्य नियमो लेवा लाग्या, कमळे पण विनयपूर्वक गुरुमहाराजनी रजा मागी ॥ ३३० ॥ त्यारे गुरुजीए तेने कर्युं के, हे भद्र! हवे अमो विहार करवाना छीये, माटे तुं कंइक नियम ग्रहण कर. केमके, सर्व पुरुषार्थोमां धर्म साररूप छे, अने ते संयमथी सधाय छे; इत्यादि ॥ ३३१ ॥

कमलोऽपि विटतापटुरवक्, भूयांसोऽपि नियमाः प्राक् संति मे, तद्यथा—उपविश्यै-व शयनीयं, स्ववांछया न मर्त्तव्यं, पक्वान्नेषु कवेल्लकेष्टकादि न भक्ष्यं, क्षीरेषु स्नुह्या-दिक्षीराणि न पेयानि, अकृतं नालिकेरं मुखे न निक्षेप्यं, परधनं गृहीत्वा नाऽर्पणीयं ॥ ३३२ ॥ यद्यर्पणीयं चेत् महाविलंबेनेत्यादिः गुरवोऽवदन् भद्र नायं हास्यावस-रः, किमपि नियमरत्नं गृहाण ॥ ३३३ ॥ केलीकिलः सोऽवक् प्रातिवेश्मिकस्य रजोरत कुलालस्य टट्टिं दृष्ट्वा मया भोक्तव्यं, नान्यथेति मे नियमोऽस्तु ॥३३४॥ गुरुभिस्ततोऽपि तस्य धर्मावाप्तिं विज्ञाय सर्वसमक्षं स एव नियमो दृढीचक्रे, पाल-यति च स लोकलज्जादिना, किंचिदाचार्यसंपर्कजधर्मश्रद्धयापि च ॥ ३३५ ॥

त्यारे कुच्चाइमां कुशळ एवो कमळ पण कहेवा लाग्यो के, साहेब ! में तो पहेलेथीज नीचे मुजब घणां नियमो ग्रहण कर्या छे; ते सांभळो. बेसीनेज सुवुं. पोतानी इच्छाथी मरवुं नहीं, पकवानोमां नळीयां तथा इंट आदिक खावुं नहीं, दूधमां थोर आदिकनुं दूध पीवुं नहीं, परधन लइने पाछुं आपवुं नहीं ॥ ३३२ ॥ जो पाछुं कदाच आपवुं पडे तो महोटो विलंब करवो; इत्यादि. ते सांभळी गुरुमहाराजे कह्युं के, हे भद्र ! आ कंइ हांसीनो अवसर नथी, माटे कंइक पण नियमरूपी रत्न तुं ग्रहण कर. ॥ ३३३ ॥ ते सांभळी मश्करो ते कमळ बोल्यो के, मारा मुतिकारक पडोशी कुंभारनी (मायानी) टाल जोइने मारे खावुं, ते शिवाय खावुं नहीं, एवो मने नियम करावो ॥ ३३४ ॥ गुरुमहाराजे तेथी पण तेने धर्मनी प्राप्ति जाणीने सघळाओनी समक्ष तेज नियम तेनी पासे दृढ कराव्यो; अने ते कमळ पण लोक-लज्जा आदिकथी तथा कंइक कंइक आचार्य महाराजना संगथी उत्पन्न थयेली धर्मश्रद्धाथी पण पाळवा लाग्यो ॥ ३३५ ॥

अन्यदा राजकुले रुद्धो गृहमुत्सूरेऽगात् भोक्तुं यावदुपविशति, तावन्नियमं सस्मार; कुलालस्य गृहं प्राप्तः, परं स न गृहे, ततः खनिं प्राप्तः, नीचैः खनतः प्राप्तनिधेः कुलालस्य दृष्टिं दृष्ट्वा, दृष्टेति जल्पन् मुष्टिं बध्वा पश्चाद्धावितः ॥ ३३६ ॥ शंकितेन कुलालेनार्धं सर्वं वा तव, परं मा गाढं वदेत्युक्त्वा पश्चाद्वालितो निधिं प्राप, कुलालाय पुनर्दयया किंचिद्ददौ; तत इहापि दृष्टधर्मफलस्तानेव गुरून् शरणीचक्रे, तदुक्तं धर्मं सम्यगाराध्य स्वर्गमवाप, क्रमाच्छिवंगमीति ॥ ३३७ ॥ यथा हि एते गुरवः कमलं साम्नैवाऽशिक्षयंस्तन्मनोरंजनप्रकारैरेवं मे गुरवो भव्यांस्तन्मनोरंजनादिभिः साम्नैव धर्मे प्रवर्त्तयंते ते मातृसमाः, इति मातृदृष्टांतभावना ॥ ३३८ ॥

एक दिवसे राजदरबारमां रोकाइ जवाथी ते असूरो घेर आव्यो, तथा जेटलामां भोजन करवाने बेसे छे, तेटलामां तेने ते नियम सांभरी आव्युं; तेथी ते कुंभारने घेर गयो, परंतु कुंभार घेर नहोतो, तेथी ते माटीखाणे गयो, त्यां नीचेथी खोदतां ते कुंभारने ते वखते निधान प्राप्त थयुं हतुं; तेनी दाढी जोइने, 'जोइ जोइ' एम बोलतो थको ते मूठी वाळीने पाछो दोडयो ॥ ३३६ ॥ कुंभारने शंका पडवाथी, तेणे तेने कह्युं के, अरे ! अरधुं अथवा बधुंये निधान तुं लेजे, परंतु म्होटे सादे बोल नहीं, एम कही तेने पाछो वाळयो, अने तेथी तेने ते निधान मळ्युं; वळी दया लावीने तेणे कुंभारने तेमांथी थोडुंक आप्युं; पछी त्यारथी मांडीने, अहीं पण धर्मनुं फळ जोइने, तेणे तेज गुरुनुं शरणुं लीधुं; तथा तेमणे कहेलो धर्म सम्यक् प्रकारे आराधीने ते स्वर्गे गयो, तथा अनुक्रमे ते मोक्षे जशे ॥ ३३७ ॥ माटे जेम ते गुरुमहाराजे कमळने तेनुं मन जेम खुशी थाय तेवा प्रकारोथी मीठे वचनेज शिखामण आपी, तेम जे गुरुओ भव्योने तेमना मनने खुशी उपजाववा आदिकथी मीठे वचनेज धर्ममां प्रवर्तावे छे, तेओने मातासमान जाणवा; एवी रीते माताना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ३३८ ॥

कप्पतरुणोत्ति, कल्पतरुवत्केचन गुरवः सर्वोत्तमज्ञानलब्धिसमृद्धिभृतः सुराणामप्याराध्यास्त्रिजगतोऽपि स्पृहणीयगुणा दुर्लभदर्शनाः सकलमनोवांछितफलार्पणशक्तिभृतो भक्तिजलसेकमात्राराधिता निजाश्रितानां मनोऽभिमताशेषसुखफलसंपादका भवंति ॥ ३३ए ॥ त्र्युत्तरपंचदशशत (१५०३) तापसादिप्रतिबोधनत्परमान्नभोजनादिकेवलज्ञानावधिमनोवांछितफलदायिश्रीगौतमगणधरादिवत् ॥ ३४० ॥ इत्युक्ताः सर्पादिनिर्दिष्टांतैश्चतुर्दशधा गुरवः, तेष्वाद्याः षट् सर्वथाऽप्ययोग्याः कुगुरव एवेति त्यागमर्हंति, अपरे च षड् भवजलधितरणतारणप्रवणविषणा यथोत्तरमधिकाधिकशुभफलप्रदाश्च सुगुरवः, इत्यादरेण सेव्या इति तत्त्वं ॥ ३४१ ॥

हवे केटलाक गुरुओ कल्पवृक्षनी पेठे सर्वोत्तम ज्ञान तथा लब्धिनी ऋद्धिवाळा होय छे, तेमज देवोने पण पूजवा लायक, त्रणे जगतमां पण जेओना गुणो स्वाय छे एवा, तथा जेमनुं दर्शन थवुं पण दुर्लभ छे, तेमज सघळां मनोवांछित फळो देवामां शक्तिवाळा, तथा फक्त भक्तिरूपी जळ सींचीने आराधवाथी पोताना आश्रितोने मनवांछित सर्व सुखोरूपी फळोने आपनारा थाय छे ॥ ३३ए ॥ (कोनी पेठे) तो के, पंदरसो त्रण तापसादिकोने प्रतिबोधनारा तथा खेकखीरना भोजनथी मांडीने केवळज्ञान सुधी मनोवांछित फळोने देनारा श्रीगौतमगणधर आदिकोनी पेठे ॥ ३४० ॥ एवी रीते सर्प आदिकना दृष्टांतोवडे करीने चार प्रकारना गुरुओ कह्या, तेओमां पहेला छ तो सर्वथा प्रकारे अयोग्य कुगुरुओज छे, माटे तेओ तजवा लायक छे, अने बाकीना छ आ भवरूपी समुद्रमांथी तरवा तारवाने समर्थ छे, तथा उत्तरोत्तर अधिक अधिक शुभ फळोने देनारा सुगुरुओ छे, माटे तेओने आदरपूर्वक सेववा, एवो भावार्थ छे ॥ ३४१ ॥

अथेयमेव द्वादशजंगी श्रोतृनप्याश्रित्याऽतिदेशेन दर्श्यते, तत्र केचित् श्रोतारः सर्पोपमाः स्युः, येषु सुधापूरोपमा अपि सुगुरूपदेशा एकांतिकहिता अमृतमया अपि विषतयैव परिणमंति ॥ ३४२ ॥ यदाह—सासाईतं जलं । पत्तविसेसेण अंतरं गुरुअं ॥ अहिमुहपडिअं गरलं । सिप्पउडे मुत्तिअं होइ ॥ ३४३ ॥ दृष्टांताः कालकसूरिजागिनेयतुरमिणिनगरीशदत्तनृपादयः ॥ तथा केचिदामोषकतुल्याः, ये गुरूणां छिद्रान्वेषिणः, पदे पदे सदसत्प्रमादस्खलिताद्युच्चारयंतस्ता दृग्निंदापराजवादिहेतुदुर्वचनायुधैस्तर्जयंतो धर्मोपदेशाद्युपाददते गुरुभ्यो धनमिवामोषका धनिभ्यः ॥ ३४४ ॥

हवे तेज बोर जांगा (सांजळनारा) श्रावकोने आश्रीने पण अतिदेशे करीने देखाडे छे; हवे तेओमां केटलाक श्रावको सर्प सरखा होय छे, के जेओ मध्ये अमृतना समूह सरखा पण सुगुरुना उपदेशो, के जे उपदेशो एकांत हितकारी तथा अमृतमय होय छे, तोपण तेओने झेररूपेज परिणमे छे ॥ ३४२ ॥ कह्युं छे के—स्वाति नक्षत्रनुं पाणी पण पात्रविशेषमां पडवाथी तेना परिणाममां मोटो तफावत पडे छे, केमके सर्पना मुखमां पडवाथी ते झेररूप परिणमे छे, अने छिपना संपुटमां पडवाथी तेज जळ मोतीरूपे परिणमे छे ॥ ३४३ ॥ अहीं कालकसूरिना जाणेज तथा तुरमिणी नगरीना स्वामी दत्तराजा आदिकोनां दृष्टांतो जाणवां. वळी केटलाक श्रावको लुंटारा जेवा पण होय छे, के जेओ गुरुओना छिद्रो जुए छे, तथा पगले पगले (गुरुओना) साचा खोटा प्रमाद, स्खलना आदिकने प्रकाशीने निंदा पराजव आदिकना हेतुरूप एवां दुर्वचनोरूपी आयुधोवडे गुरुओनी तर्जना करीने, लुंटाराओ जेम धनवानोनुं धन लुंटी ले छे, तेम गुरुओ पासेथी धर्मोपदेश आदिक ग्रहण करे छे ॥ ३४४ ॥

श्रीगुरवोऽपि तया तर्ज्यमाना अपि माऽभूवन्नमी धर्मद्वेषिण इत्यादिविकल्पाहित-त्रियस्तेभ्यस्ततथाविधेभ्योऽपि श्राद्धेभ्यो यथार्हं धर्मोपदेशादि ददते, ततस्ते आ-मोषकतुल्याः ॥ ३४५ ॥ भणिताश्चैते खरंटादितुल्यतयाऽऽगमेऽपि, यथा—जह सिढिलमसुइदव्वं । छुप्पंतं पि हु नरं खरंटेइ ॥ एवमणुसासगं पिहु । दूसंतो भन्नइ खरंटो ॥ ३४६ ॥ थद्धो छिद्दप्पेही । पमायखलिआणि निच्चमुच्चरइ ॥ सड्ढो स वक्किकप्पो । साहुजणं तणसमं गणइ ॥ ३४७ निच्छइओ मिच्छत्ती ! खरंटतुल्लो सवक्कितुल्लो अ ववहारओ बहुजं । जिणगेहाइसु गच्छंति ॥ ३४८ ॥

तेमज गुरुओ पण तेवी रीते तर्जना पामतां छतां पण एम विचारे छे के, आ कुश्रावको धर्मना द्वेषी न थाय तो सारुं, एम विचारी जयना मार्या तेवा श्रावको प्रत्ये पण योग्य धर्मोपदेश आदिक आपे छे, माटे तेवा श्रावको लुंटारा सरखा छे ॥ ३४५ ॥ वळी तेवाओने आगममां पण नीचे मुजब खरंट आदिकनी उपमा आपेली छे. जेम नरम एवुं (विष्ठा आदिक) अशुचि द्रव्य, तेने स्पर्श करनारा मनुष्यने खरडे छे, तेम पोताने उपदेश आपनार प्रत्ये पण जे द्वेष करे छे, ते खरंट कहेवाय छे ॥ ३४६ ॥ कागडा सरखो श्रावक क्षुद्र तथा छिद्र जोनारो थयो थको हमेशां साधुओना प्रमाद स्खलि-तोने प्रकाशे छे, तथा तेओने तृण समान गणे छे ॥ ३४७ ॥ एवो खरंट सरखो तथा कागडा तुल्य एवो ते श्रावक निश्चयथी मिथ्यात्वी होय, तथा व्यवहारथी फक्त घणुं करीने ते जिनमंदिर आदिकमां जाय छे ॥ ३४८ ॥

इति, यथा च ठका मायया परेषां धनाद्यपहरंति, तथा केचिच्छ्राद्धास्तादृग्विन-यसंवेगवैराग्याभासदर्शनसम्यग्श्राद्धक्रियादेवगुरुसाधर्मिकभक्तिप्रभृतिभिर्विश्वास्य परे-षां धनाद्यपहरंति ॥ ३४९ ॥ श्रूयते च,—भ्रमंति दांभिकाः केचिद्देवगुरु-धार्मिकाः ॥ परद्वीपाद्युपेतेन । विक्रीतौ वणिजा यती ॥ ३५० ॥ तत्संबंधश्च, भृगुक्षेत्रे केचिदाचार्याः, तेषां गच्छो महान्, बालशैक्षाद्याकुलः, तत्रान्यदा द्वीपां-तरात्प्रवहणमागतं, तन्मध्यादेको वणिग् मायावी कर्प्पत्याऽधीतश्रावकाचारो भ्रमन् वसतिं प्राप ॥ ३५१ ॥ ववंदे गच्छं, प्रारेभे परिचयं, जज्ञे चाभिमत इव गच्छस्य, आवर्जितौ क्षुल्लकौ, प्रस्ताविता तयोरग्रे प्रवहणवार्त्ता, जाता तयोस्तद्दिदृक्षा ॥३५२॥

वळी जेम ठगो कपटथी परनां धन आदिकने हरे छे, तेम केटलाक श्रावको, तेवा प्रकारना विनय, संवेग तथा वैराग्यना आभासरूप सम्यग्दर्शन, श्रावकनी क्रिया, देव, गुरु तथा साधर्मिकोनी भक्ति आदिकवडे करीने परने विश्वास उपजावी तेओनां धन आदिकने हरी ले छे ॥३४९॥ शास्त्रमां संभळाय छे के, देव, गुरु तथा धर्म विनाना केटलाक कपटीओ आ दुनियामां फरे छे; जेम परद्वीपथी आवेला एक वणिके बे यतिओने वेच्या छे ॥ ३५० ॥ तेनुं वृत्तांत नीचे मुजब छे; भृगुक्षेत्रमां कोइक आचार्य वसता हता, तेओनो गच्छ महोटो हतो, अने ते बाळकोने शिक्षा आदिक देवामां व्याकुळ हतो; एक वखते बीजा द्वीपथी एक वहाण आव्युं, तेमां एक वणिक हतो, के जे महा धूर्त तथा कपटथी श्रावकनो आ-चार जाणेलो हतो; ते भमतो थको उपाश्रये आव्यो ॥ ३५१ ॥ तेणे सघळा साधुओने वांद्या, तेओनो परिचय कर्यो, अने तेथी साधुओने पण ते वहालो थइ पड्यो; पछी तेणे बे नानी वयना साधुओने वश कर्या, तथा तेओनी पासे तेणे वहाण संबंधि कथा कहेवा मांडी, अने तेथी ते बाळसाधुओने वहाण जोवानी उत्कंठा थइ ॥ ३५२ ॥

गुरूनापृच्छ्य तं खलं पुरस्कृत्य गतावुपसागरं, तदा च वाहनपूरणिकावसरः, प्रोत्तंजितः
सितपट इत्यादि, आरुरुह्व तदाऽसौ दिदर्शयिपामिषाद्धठः सः ॥ ३५३ ॥ ता-
वत्प्रेरितं यानं, प्राप्तं बर्बरकूले, विक्रीतौ तत्र तौ, गृहीतं बहु तन्मूल्यं धनं, र-
ज्यंते तत्र दुकूलानि नृशोणितैः, तद्द्येते तत्र तौ तीक्ष्णकुरैः, आकृष्यते रक्तं
॥ ३५४ ॥ एवं कष्टं सहमानयोर्गतो बहुः समयः, अन्यदा भृगुपुरागतपरिचि-
तश्राद्धेनोपलक्ष्य मोचितौ, पश्चात्प्रासावालोचितप्रतिक्रांतौ क्रियापरौ सेवतेस्म गच्छं
॥ ३५५ ॥ गतेषु बहुषु वर्षेषु स एव द्रोही वणिगागात्, 'निसीही' इत्यादिप्रक्रिया-
पूर्वं प्रवृत्तो वंदितुं यावदुपलक्षितस्तावत्क्षुल्लकाभ्यां, नतु तेन तौ ॥ ३५६ ॥

तेथी गुरू महाराजनी आज्ञा मागीने, तथा ते दुष्टने आगळ करी तेओ समुद्र किनारे आव्या, ते वखते वहाण हंकारवानो समय हतो, अने तेथी सढ चडाव्यो, इत्यादि अने ते वखते ते दुष्ट वणिक पण ते साधुओने देखाडवाना मिषथी तेओने लइ तेमां चडी बेठो. ॥ ३५३ ॥ एटलामां वहाण तो चालता मां-ड्युं, अने बब्बर कांठे पहोंच्युं, त्यां ते दुष्ट ते बन्ने साधुओने वेचीने तेओनी किंमतनुं घणुं धन लीधुं; हवे त्यां मनुष्यना रुधिरथी कपडां रंगवामां आवतां हतां, अने तेथी ते साधुओना शरीरमां त्यां धारवाळी छरीओ घोंचवामां आवती हती, अने तेम करी तेओनुं रुधिर खेंचवामां आवतुं हतुं. ॥ ३५४ ॥ एवी रीते तेओने कष्ट सहन करतां थकां घणो वखत निकळी गयो; एटलामां एक वखते त्यां भृगुपुरथी आवेला कोइक ओळखी-ता श्रावके तेओने ओळखीने छोडाव्या, अने तेथी पाछा आवी आलोचना लइ तेओ क्रियामां तत्पर थइ गच्छनी सेवा करवा लाग्या. ॥ ३५५ ॥ पछी केटलांक वर्षो गया बाद तेज दुष्ट वणिक पाछो त्यां आव्यो, 'निसीही' आदिक क्रियापूर्वक जेटलामां ते वांदवा लाग्यो, तेटलामां ते बन्ने साधुओए तेने ओळखी कहाड्यो, परंतु ते दुष्टे तेओने ओळख्या नहीं. ॥ ३५६ ॥

आगतमात्रेण निमंत्रितौ कुलौ यानदर्शनाय, ब्रूतः स्म च तौ,—दिहं बब्बरकूलं । दिठ्ठाणि अ सद्दु तुम्ह चरिआई ॥ अन्ने वंद सुसावय । जे तुम्ह गुणे न याणंति ॥ ३५७ ॥ तच्छ्रुत्वा नष्टः सः, ज्ञाततत्त्वो गच्छश्चिरं नंदतिस्मेति, एवंविधा अन्येऽपि बहवः प्रसिद्धा इति ॥ ३५८ ॥ अथ वणिग्वत्, केचन श्रावका ऐहिकर्म-मंत्रतंत्रनिमित्तचिकित्सादिनोपकुर्वंतमेव गुरुमिति कृत्वा जजंते, वस्त्राहारादिनोपचरंति च, नापरं मुधादायितयेति वणिक्समाः, दृष्टांताः प्रसिद्धाः ॥ ३५९ ॥ अन्ये च वंध्यगवीसदृशाः, येषु सुबह्वपि गुरूपदिष्टं जस्मनि हुतायते, न पुनः कस्मैचिद्गुणाय, ब्रह्मदत्तचक्र्यादिष्विवेति ॥ ३६० ॥

पछी तो तेणे श्रावकवेशने धरनार ते बन्ने साधुओने वहाण जोवा माटे निमंत्रण कर्यु, त्यारे ते साधुओ कहेवा लाग्या के, हे श्रावक! अमोए बब्बरकुल जोयुं, तेम तारां चरित्रो पण जोयां, माटे हे सुश्रावक! जे तारा गुणो नथी जाणता, तेओने जइने तुं वांद ॥ ३५७ ॥ ते सांभळी त्यांथी ते नाशी गयो, अने गच्छ पण सावचेत थइने त्यारथी आनंद करवा लाग्यो. एवी रीतना बीजा पण घणा श्रावको प्रसिद्ध छे ॥ ३५८ ॥ हवे केटलाक श्रावको वणिक सरखा होय छे के जेओ आ लोकमां फायदाकारक एवां मंत्र, तंत्र, निमत्त तथा वैदक आदिकवडे करीने उपकार करनारनेज गुरु मानीने तेने सेवे छे, तथा तेओनेज वस्त्र, आहार आदिकथी संतोषे छे, परंतु बीजाने नहीं. केमके बीजाने देवुं ते तेओ फोगट देवुं माने छे, माटे तेवाओने वणिक सरखा जाणवा; तेनां दृष्टांतो प्रसिद्ध छे ॥ ३५९ ॥ वळी केटलाक श्रावको वंध्या गाय सरखा होय छे, के जेओ प्रत्ये गुरुए आपेलो घणो उपदेश पण राखमां घी नाखवा तुल्य थाय छे, परंतु कंइ पण गुणकारी थतो नथी; कोनी पेठे? तो के ब्रह्मदत्तचक्रि आदिकोने विषे जेम ॥ ३६० ॥

अन्ये च पुनर्नटोपमाः, ये सुगुरूक्तं धर्मोपदेशं सरसकथासूक्तादिरूपं धारयंति, सर्वमपि लोकरंजनार्थं कंठस्थतयैव, न पुनर्मनागप्यंतर्भेदयंति; एते च प्रायोऽभव्या दूरभव्या गुरुतरकर्माणो वा सर्वथाप्यभव्या इत्युपदेशायोग्या इति ॥ ३६१ ॥ तथा केचन धेनुसदृशाः, येषु दत्तं स्वल्पमपि धर्मपदं महाफलाय कल्पते, धनपतिमहेभ्यवत् ॥ ३६२ ॥ तथाहि—नंदनृपे राज्यमनुशासति धनपतिः श्रेष्ठी श्राद्धेषु अग्रेसरः स्वक्रियानिष्ठो यथाव्यवहारशुद्ध्या व्यवहरति; अन्यदापूर्ववस्तुप्राभृतीकरणात्तुष्टेन राज्ञा मुख्यो मंत्री कृतः ॥ ३६३ ॥ प्रमादपंकनिमग्नो व्यस्मरत् सर्वधर्मकर्म, दूरीकृता व्यवहारशुद्धिः, न जानाति साधर्मिकान् नापि गुरुदेवानपि ॥ ३६४ ॥

वळी केटलाक श्रावको नट सरखा होय छे, के जेओ सुगुरुए कहेला सरसकथा तथा सुभाषित आदिकरूप धर्मोपदेशने धारी राखे छे, तथा ते सघळुं (बीजा) लोकोने खुशी करवा माटे कंठे राखे छे, परंतु जरा पण तेओनुं हृदय भींजातुं नथी, एवी रीते उपर वर्णवेला ते छए प्रकारना श्रावको अभव्य, दुर्भव्य, अथवा भारे कर्मी होवाथी सर्वथा प्रकारे अभव्य होवाथी उपदेशने अयोग्य छे ॥ ३६१ ॥ हवे केटलाक श्रावको वळी गाय सरखा होय छे, के जेओने आपेलो अल्प धर्मोपदेश पण धनपति शेठनी पेठे महाफलदायक थाय छे ॥ ३६२ ॥ ते कहे छे :—नंदराजा राज्य करते छते एक धनपति नामे शेठ हतो, के श्रावकोमां शिरोमणि तथा पोतानी क्रियामां निष्ठ थयो थको व्यवहारशुद्धिथी व्यापार करतो हतो; एक वखते अपूर्व वस्तु भेट करवाथी संतुष्ट थयेला राजाये तेने मुख्य मंत्री कर्यो ॥ ३६३ ॥ अने तेथी प्रमादरूपी कादवमां खुंचवाथी तेणे सघळुं धर्मकार्य छोडी दीधुं, व्यवहारशुद्धि पण दूर करी, तेम साधर्मिको तरफ तथा देवगुरु तरफ पण तेणे ध्यान आप्युं नहीं ॥ ३६४ ॥

मदिरामत्त इव गतविवेकचैतन्योऽभूत्, ततो गुरुभिस्तत्प्रतिबोधाय गाथा प्रैषि ॥३६५॥ उच्छिन्ना किंनु जरा । नट्ठा रोगा य किं गयं मरणं ॥ पिहिअं च नरयदारं । जेण जणो नो कुणइ धम्मं ॥ ३६६ ॥ तां वाचयित्वा सद्यः प्राबुध्यत, सम्यग्धर्ममारा- धयामासेति ॥ ३६७ ॥ अन्ये तु मित्रप्रतिमा, ये गुरुषु प्रीतिं परां वहमानांस्तदुक्तं धर्मोपदेशपदं परमार्थहितबुद्ध्या प्रतिपद्यंते, आत्मानं च गुरूणां स्वजनादप्यधिकं मन्यं- ते ॥ ३६८ ॥ परं यथावसरं विशेषकार्यादौ प्रश्नादिबहुमानमपेक्षंते, अनापृष्टाश्च म- नाग् रुष्यंतीति, तथा चागमः—॥ ३६९ ॥ मित्तसमाणो माणो । ईसिं रूसइ अपुच्छिओ कज्जे ॥ मन्नंतो अप्पाणं । मुणीण सयणाओ अब्भहिअं ॥ ३७० ॥

जाणे मदिराथी उन्मत्त थयो होय नहीं, तेम ते निर्विवेकी थइ गयो, त्यारे गुरुमहाराजे तेने प्रतिबोधवा माटे नीचे मुजब एक गाथा मोकली ॥ ३६५ ॥ शुं घडपण चाल्युं ? शुं रोगो नाश पाम्या ? शुं मृत्यु नष्ट थयुं ? तथा शुं नरकनुं द्वार बंध थयुं ? के जेथी माणस धर्म नथी करतो ॥ ३६६ ॥ ते गाथा वांचीने ते तुरत प्रतिबोध पाम्यो, तथा सम्यग् धर्म आराधवा लाग्यो ॥ ३६७ ॥ वळी केटलाक श्रावको तो मित्र सरखा होय छे, के जेओ गुरु प्रत्ये परम प्रीतिने धारण करता थका तेओए कहेला धर्मोपदेशने परमार्थ हितबुद्धिथी स्वीकारे छे, तेमज गुरुना आत्माने स्वजनथी पण अधिक माने छे ॥ ३६८ ॥ परंतु अवसर पडे विशेष कार्य आदिकमां प्रश्न आदिकना बहु माननी अपेक्षा राखे छे, अने ते बाबत जो तेमनी सलाह न लेवामां आवे, तो तेओ जरा रीसाइ पण जाय छे; आगममां पण कह्युं छे के ॥ ३६९ ॥ मित्र समान श्रावकनी जो कार्य पडये सलाह न लेवामां आवे तो ते गुरु साथे रीसाइ जाय छे; केमके ते गुरुना आत्माने स्वजनथी पण अधिक माने छे ॥ ३७० ॥

एके पुनर्बंधुवत्, श्रीगुरुवचनं परमार्थहितधियांगीकुर्वते, मुनिष्वेकांतेन हार्दस्नेहभृतः, पराजवादौ त्वरंत्येव च सहायाः. परं विनयकर्मसु तथाऽनादरभृत इति बंधुसमाः ॥ ३९१ ॥ यथाह—हिअए ससिणेहोच्चिअ । मुणीण मंदायरो विणयकज्जे ॥ बं-धुसमो साहूणं । पराजवे होइ सुसहाओ ॥ ३९२ ॥ केचन पुनः पितृसमा, मातृसमाश्च, ततोऽप्यधिकवात्सल्यभृतः, उजयेऽपि चैकांतवत्सलाः, प्रमादस्खलितादौ शिक्षयंति यथाविधि साधूनपि ॥ ३९३ ॥ न च दृष्टतरस्खलिता अपि मनागपि मनसि निःस्नेहा भवंति युगप्रधानश्रीकालिकसूरिशिष्यशिक्षक शय्यातरश्रावकवत् श्रीश्रेणिकादिवच्च ॥ ३९४ ॥

वळी केटलाक श्रावको बंधु सरखा होय छे, केमके तेओ परमार्थ हितबुद्धिथी गुरुमहाराजनुं वचन स्वीकारे छे, तेमज तेओ प्रत्ये एकांत अंतरंग स्नेहवाळा होय छे, तेमज उपद्रव आदिकमां सहायजूत पण थाय छे, परंतु विनय कार्यमां तेवा आदरवाळा होता नथी, माटे तेओ बंधु सरखा छे ॥ ३९१ ॥ कह्युं छे के—हृदयमां तो मुनिओ प्रत्ये स्नेहवाळो परंतु विनय कार्यमां मंद आदरवाळो एवो बंधु समान श्रावक साधुओने पराजव समये उत्तम सहायजूत थाय छे ॥ ३९२ ॥ वळी केटलाक श्रावको पिता समान तथा माता समान पण होय छे, अने तेथी पण अधिक वत्सलतावाळा होय छे; ते बन्ने प्रकारना श्रावको एकांत वत्सल होय छे; तेम तेओ प्रमाद तथा स्खलना आदिकमां साधुओने पण योग्यतापूर्वक शिखामण आपे छे ॥ ३९३ ॥ वळी तेओनी स्खलना जोइने पण जरा पण तेओ स्नेहरहित थता नथी; कोनी पेठे ? तो के युगप्रधान श्रीकालिकसूरिना शिष्यने शिखामण आपनार शय्यातर श्रावकनी पेठे, तथा श्रेणिक आदिकनी पेठे ॥ ३९४ ॥

तदुक्तं—चिंतइ जइकज्जाइं । न दिट्ठखलिओवि होइ निन्नेहो ॥ एगंतवच्छलो जइ । जणस्स जणणीसमो सड्ढो ॥ ३१५ ॥ तत्र पितृसमा ये यथावसरं साधूंस्तीक्ष्णमपि शिक्षयंति बलभद्रनृपवत्, तथाहि—॥ ३१६ ॥ श्वेतांबिकापुर्यां श्रीआषाढाचार्याः स्वशिष्यानागाढयोगान् ग्राहयंतो निशि हृच्छूलेन मृता देवीभूताः, स्नेहात्स्वदेहमधिष्ठाय योगान् संपूर्णीकृतवंतः ॥ ३१७ ॥ ततो नव्यमाचार्यं स्थापयित्वा स्ववृत्तांतं निवेद्य च स्वस्थानं प्राप्ताः ॥ ३१८ ॥ ततस्तच्छिष्यास्तत्स्वरूपं दृष्ट्वा न ज्ञायते कोऽपि कीदृश इत्यव्यक्तमतवादिनो मिथो वंदनमकुर्वाणा राजगृहेमौर्यवंशोत्पन्नबलभद्रनृपेण सुश्रावकेण साम्नाऽप्रतिबोध्यानां तेषां प्रतिबोधनोपायमपरमविजानयता चौरा इति कृत्वा धृताः ॥ ३१९ ॥

कह्युं छे के—जे श्रावक यतिना कार्योनी देखरेख राखे छे, तेम तेनी स्खलना जोइने पण स्नेह रहित थतो नथी, तथा एकांत वत्सल एवो श्रावक साधु मत्ये माता सरखो छे ॥ ३१५ ॥ तेमां पण पिता समान तेओने जाणवा, के जेओ यथा अवसरे बलभद्रराजानी पेठे साधुओने आकरी शिक्षा पण आपे छे. ते कहे छे ॥३१६॥ श्वेतांबिका नगरीमां श्रीआषाढाचार्य पोताना शिष्योने आगाढ योग वहन करावता थका रात्रिए हृदयशूलनी व्याधिथी मृत्यु पामीने देवरूपे थया; परंतु स्नेहथी पोताना ते शरीरमां पेसीने तेओना ते योगो तेमणे पूरा कराव्या ॥ ३१७ ॥ तथा पछी नवीन आचार्यने स्थापीने तथा पोतानुं वृत्तांत निवेदन करीने तेओ पोताना स्थानके गया ॥ ३१८ ॥ पछी तेमना शिष्यो तेमनुं स्वरूप जोइने 'कोइ पण केवो होय, ते जणातुं नथी' एवी रीतना अव्यक्त मतने स्थापन करता थका परस्पर वंदना न करता थका, राजगृहीमां मौर्यवंशमां उत्पन्न थयेला बलभद्रराजा नामना उत्तम श्रावक तेओने मीठे वचने प्रतिबोध्या, परंतु तेओने प्रतिबोध न लाग्यो ते माटे बीजो उपाय न जणातां तेओने चोररूपे पकडया ॥ ३१९ ॥

कुट्टयितुमारेभिरे, तेऽवोचन्, न वयं चौरा यतयो वयं, त्वं श्राद्धः, किमस्मान् कुट्टयसि, राजाह को वंदकः कीदृश इत्याद्युक्तियुक्तिभिः प्रतिबोधिता इति ॥ ३०० ॥ मातृसमाश्च ये साम्नैव प्रायः शिक्षयंति श्रीश्रेणिकवत् ॥ ३०१ ॥ अन्यदा सौधर्मेंद्रेण कृतां श्रीसम्यक्त्वदार्ढ्यविषये श्रीश्रेणिकनृपप्रशंसां, अश्रद्दधानः सुरः परीक्षितुमनाः साधुवेषो नद्यां मत्स्यान् गृहीतुं जालक्षेपादिविकर्म कुर्वन् ॥ ३०२ ॥ श्रीश्रेणिकेन तदा श्रीवीरजिनं वंदित्वा पुरं प्रत्यागच्छता दृष्टश्चिंतितं च हा धिगेष निष्कलंकक्षितींदुनिर्मलं भगवच्छासनं कलंकयति ॥ ३०३ ॥ ततो यथाऽन्ये न पश्यंति, तथैनं निवर्तयाम्यस्माद्दुष्कर्मणः, ततो निर्व्यंजनेन साम्ना तच्छिक्षा ॥३०४॥

तथा तेओने मार मारवा मांड्यो, त्यारे तेओ कहेवा लाग्या के, अमो चोर नथी पण साधुओ छीए, अने तमो श्रावक थइने शामाटे मारो छो ? त्यारे राजाए ' कोण केवो होय ? ते शुं जणाय ? ' इत्यादि वचन युक्तिथी तेओने प्रतिबोध्या ॥ ३०० ॥ माता समान श्रावको तेओने जाणवा, के जेओ प्राये करीने मीठे वचनेज श्रेणिकराजानी पेठे शिखामण आपे छे ॥ ३०१ ॥ एक वखते सौधर्मेंद्रे समकीतनी दृढताना संबंधमां श्रीश्रेणिकराजानी प्रशंसा करी; तेपर श्रद्धा नहीं करनारो एक देव तेनी परीक्षा करवानी इच्छाथी साधुनो वेष लइ नदीमांथी मांछला पकडवा माटे जाळ नाखवा आदिकनुं कार्य करवा लाग्यो ॥ ३०२ ॥ ते वखते श्रीवीरप्रभुने वांदीने पाछा वळता श्रेणिकराजाए तेने जोइने विचार्युं के, अरे ! बहु खोटुं थयुं ! आ साधु बीजा निष्कलंक चंद्र सरखा निर्मळ एवा प्रभुना शासनने कलंकीत करे छे ॥ ३०३ ॥ माटे जेटलामां तेने बीजा न जुए तेटलामां तेने आ दुष्कार्यथी हुं अटकावुं, एम विचारी एकांते जइ तेने मीठे वचने तेमणे शिखामण आपी ॥ ३०४ ॥

ततः पुनरग्रे साध्वीं पीवरगर्भामद्राक्षीन्नृपः, माभूच्छासनोड्डाह इति कृत्वा स्वगृहे आनाय्य साम्ना शिक्षयित्वाऽपवरके आप्तदासीकृतरक्षां तां स्थापयामास प्रसवावधीत्यादि ॥ ३०५ ॥ कल्पतरुसदृशाश्च केचन श्राद्धाः, यथा हि कल्पतरवः स्वजातौ तरुरूपायां परमावधिभूताः सुमनःसेविताः सकलवांछितदायिनश्च स्वाश्रितेभ्यो भवंतीति ॥ ३०६ ॥ तथा केचिच्छ्राद्धाः श्राद्धेषु परमोत्कर्षमासाः, नत्वादृढशीलसम्यक्त्वादिगुणैः सुराणामपि सेव्या ॥ ३०७ ॥ स्वाश्रितेभ्यो यथाईंधनार्पणप्रतिष्ठारोपणादिनेह धर्मारोपणतत्साहाय्यकरणादिना परलोकेऽपि च वांछितदायिनश्च भवंति श्रीसंप्रतिनृपादिवत् ॥ ३०८ ॥

वळी आगळ चालतां ते राजाए एक साध्वीने पूरे दिवसे गर्भवंती दीठी; तेणीने जोइ तेणे विचार्युं के, शासननी निंदा न थाय तो सारुं, एम विचारी तेणीने पोताने घेर लावीने तथा मीठे वचने शिखापण आपीने ज्यांसुधी तेणीने प्रसव थाय. त्यांसुधी एक खातरीदार दासीना रक्षण नळे राखी. इत्यादि ॥ ३०५ ॥ वळी केटलाक श्रावको कल्पवृक्ष सरखा होय छे; जेम कल्पवृक्षो पोतानी वृक्षरूप जातिमां अत्यंत उत्कृष्ट, देवोथी सेवायेला, तथा पोताना आश्रितोने मनोवांछित देनारा होय छे ॥ ३०६ ॥ तेम केटलाक श्रावको बीजा श्रावकोमां पण ऊंचा दरज्जावाळा होय छे; तथा तेवा प्रकारनां दृढ शील तथा सम्यक्त्व आदिक गुणोये करीने देवोने पण सेववा लायक होय छे ॥ ३०७ ॥ तथा तेवा श्रावको पोताना आश्रितोने आ जन्ममां योग्य धन आपे छे, तथा तेओने दरज्जे चडावे छे, तेम तेओने धर्म पमाडी तथा तेमां सहाय करवा आदिके करीने श्रीसंप्रतिराजा आदिकनी पेठे परलोकमां पण वांछित अर्थोने देनारा थाय छे ॥ ३०८ ॥

षष्ठ्यधिकशतत्रय (३६०) वणिक्पुत्रसाधर्मिकस्वसमीकारकसाजगसिंहवत् श्रीऋ-
षभदेवान्वयालंकारसाधर्मिके भक्तिमच्छ्रीभरतचक्रिश्रीदंडवीर्यनृपादिवत् ॥ ३८९ ॥
श्रीअभयकुमारश्रीवस्तुपालादिमंत्रिवच्च ; तेषां संगतिरपि महाभ्युदयहेतुश्छायेव क-
ल्पतरूणां, यथा श्रीअभयकुमारमंत्रिणः संगतिः श्रीआर्द्रकुमारस्य कालसौकरिकात्म-
जसुलसादीनां चेति ॥ ३९० ॥ निदर्शनैरित्यवगत्य योग्यायोग्यान् गुरून् श्रा-
द्धजनांश्च सम्यक् ॥ योग्यादरं भोः कुरुतेह शुद्धधर्मार्थिनो येन शिवं लभध्वं
॥ ३९१ ॥

(वळी कोनी पेठे ? तोके) त्रणसोसाठ साधर्मी वणिकपुत्रोने पोतानी बराबर करनार आ जगसिंह शेठनी पेठे, तेमज श्रीऋषभदेव प्रभुना वंशमां आभूषण समान अने साधर्मिको प्रत्ये भक्तिवान एवाश्री भरतचक्री तथा दंडवीर्य राजा आदिकनी पेठे; ॥ ३८९ ॥ तेमज श्रीअभयकुमार तथा श्रीवस्तुपाल मंत्री आदिकनी पेठे; वळी तेओनी संगति पण कल्पवृक्षनी छायानी पेठे महान् अभ्युदयना हेतुवाळी होय छे; जेम श्रीअभयकुमारनी संगति श्रीआर्द्रकुमारने तथा कालसौकरिकना पुत्रने सुलसाने फळदायक थइ छे ॥ ३९० ॥ एवी रीते उपर वर्णवेलां दृष्टांतो-वडे करीने योग्य अयोग्य गुरुओनुं तथा श्रावकोनुं स्वरूप सम्यक प्रकारे जाणीने हे भव्य लोको! शुद्ध धर्मनी प्राप्ति माटे योग्योना आदर करो, के जेथी तमो मोक्षने मेळवो ॥ ३९१ ॥

॥ इति श्री तपागच्छेशश्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे द्वितीयेंऽशे षष्ठस्तरंगः समाप्तः ॥ श्रीरस्तु ॥

एवी रीते श्री तपागच्छना स्वामी एवा श्री मुनिसुंदरसूरिजीए रचेला श्री उपदेशरत्नाकरमां बीजा अंशमां छट्ठो तरंग समाप्त थयो ॥ श्रीरस्तु ॥

समाप्त.

श्री उपदेश रत्नाकर

भाग १ लो.

समाप्त.

श्री उपदेश रत्नाकर

भाग १ लो.

समाप्त.